नन्ददास:

जीवन और कृतियों का आलोचनात्मक अध्ययन

(प्रयाग विश्वविद्यालय की डी० फिल्० उपाधि के लिए प्रस्तुत शोध प्रबन्ध)

प० उमाशंकर शुक्ल जो (हिन्दी विभाग, प्रयाग विश्वविद्यालय) के निर्देशन में;

भवानीदत्त उप्रेती एम० ए०

द्वारा

प्रस्तुत

१९६३

भूमिका

भूमिका
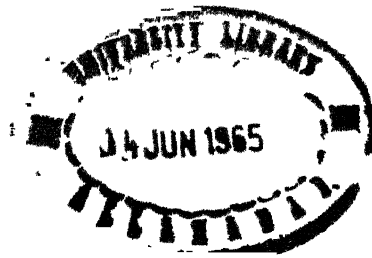
१ अष्टछाप के भक्त कवियों में सूरदास के उपरान्त नन्ददास का ही नाम लिया जाता है। उनकी सरस कृतियां, विशेष रूप से -- रास पंचाध्यायी और भंवरगीत सहृदय साहित्यिकों को सदा ही आकर्षित करती रही हैं। फिर भी नंददास विषयक स्वतंत्र आलोचनात्मक अध्ययन की ओर जिज्ञासु बहुत कम विद्वानों का ध्यान गया है और जो अध्ययन प्रस्तुत किए भी गए हैं उनमें प्रायः क्रमबद्धता एवं समग्र दृष्टिकोण की प्रवृत्ति के दर्शन नहीं होते हैं। यद्यपि इस कवि के जीवन और रचनाओं पर पूर्ण प्रकाश डालने वाले स्वतंत्र ग्रन्थों के अभाव की पूर्ति, जैसा होना चाहिए वैसी नहीं हो पाई है तथापि उन विद्वानों द्वारा उल्लेखनीय कार्य हुआ है जिन्होंने हिंदी साहित्य के इतिहास, अष्टछाप, वल्लभ सम्प्रदाय, भ्रमरगीत परम्परा इत्यादि पर गवेषणात्मक और व्याख्यात्मक अध्ययन किया है। इसके अतिरिक्त कवि के ग्रन्थों के सम्पादन तथा सम्पादित ग्रन्थों की भूमिका के रूप में प्रस्तुत कार्य भी अध्ययन का महत्वपूर्ण अंग रहा है। नन्ददास विषयक, इस सम्पूर्ण अध्ययन की आधुनिक शृंखला का दिग्दर्शन एवं उन विभिन्न दिशाओं की ओर संकेत करना, जिन पर विद्वानों के विचारों का प्रकाश अभी तक नहीं पड़ा है, प्रस्तुत प्रकरण का अभिवांछनीय अंग है।

प्रस्तुत अध्ययन पर किए गए कार्य का सिंहावलोकन

हिन्दी साहित्य के इतिहासज्ञों द्वारा प्रस्तुत कार्य

गार्सा द तासी

२ हिन्दी साहित्य के इतिहास सम्बन्धी कार्य का सूत्रपात करने वाले फ्रांसीसी विद्वान् गार्सा द तासी का "इस्त्वार दै ला लितेरात्यूर एंदुई एंदुस्तानी" नामक साहित्य का इतिहास ग्रन्थ संवत् १८९६ में हिन्दी जगत में प्रविष्ट हुआ। इस ग्रन्थ में नन्ददास के जीवन संबंधी तो कोई चर्चा नहीं मिलती है परन्तु ग्रन्थों की सूची

उपलब्ध होती है ।[१] इस सूची में कवि के २४ ग्रन्थों का उल्लेख है । इस उल्लेख का आधार-सूत्र क्या था, इसका कोई विवरण नहीं मिलता है । यह आभास अवश्य मिलता है कि सूची में समाविष्ट ग्रन्थों में से पंचाध्यायी, नाममंजरी अथवा नाममाला तथा अनेकार्थमंजरी को तासी ने स्वयं देखा था । शेष ११ ग्रन्थों -- सुदामाचरित्र, विरह मंजरी, प्रबोध चन्द्रोदय नाटक, गोवर्धन लीला, दशमस्कंध, रासमंजरी, रस-मंजरी, रूप मंजरी और मानमंजरी के विषय में, तासी को उनके मित्र डा० सैंगर द्वारा -- जिनके पास ५७६ पृष्ठों का ग्रन्थ था, ज्ञात हुआ था । इसी के आधारपर उक्त नौ ग्रन्थों और रुक्मिणी मंगल तथा भंवरगीत के नाम दिए हैं । रुक्मिणी-मंगल और भंवरगीत को तासी ने छपे हुए रूप में भी देखा था ।

३ डा० स्प्रैंगर के पास उपलब्ध उक्त ५७६ पृष्ठों के ग्रन्थ का क्या नाम था, उसका प्रमुख विषय क्या था इत्यादि प्रश्नों का समाधान तब तक नहीं हो सकता है जब तक उसकी प्राप्ति-उपरान्त परीक्षा न कर ली जाय। जिस प्रकार तासी ने तीन ग्रन्थों को स्वयं देखा था, संभव है उक्त ग्रन्थ के लेखक अथवा संग्रहकर्ता ने शेष ग्यारह ग्रन्थों को देखा हो अथवा इस ग्रन्थ में यह सूचना किसी अन्य ऐसे ग्रन्थ से ली गई हो जिसमें नन्ददास कृत ग्रन्थों का विवरण दिया हो ।

कुछ भी हो, यह मानना पड़ता है कि नन्ददास के विषय में, चाहे वह उनके कुछ ग्रन्थों की सूचना मात्र ही हो, ~~सर्वप्रथम चर्चा करने वाले कुछ ग्रन्थों की सूचनामात्र भी ली~~, सर्वप्रथम चर्चा करने वाले तासी महोदय ही हैं और तत्कालीन एवं परवर्ती साहित्यकारों के हृदय में नन्ददास विषयक अधिक ज्ञानप्राप्ति की उत्कंठावृत्ति की जागृति में भी यह संक्षिप्त सूचना सहायक हुई तथा यदि शिवसिंह सैंगर जैसे भारतीय हिन्दी-सेवियों ने इन्हीं महानुभाव से प्रेरणा ग्रहण की हो तो असम्भव नहीं ।

शिवसिंह सैंगर

४ तासी महोदय के उक्त प्रयास के कुछ वर्ष उपरान्त ही शिवसिंह सैंगर ने अपने 'शिवसिंह सरोज' में नन्ददास के विषय में संक्षिप्त किन्तु प्रकाश डाला

१-इस्त्वार दे ला लितेरात्यूर एंदुईए एंदुस्तानी, संशोधित तथा परिवर्धित संस्करण पृ० ४४५-४४७ ।

है ।[१] सरोजकार ने नन्ददास को ब्राह्मण, रामपुर निवासी, विट्ठलनाथ के शिष्य और संवत् १५८५ में उदय होना लिखा है । इनमें से प्रथम दो बातों का उल्लेख कदाचित् भक्तमाल के आधार पर किया गया है । संवत् १५८५ में उदय होने की बात किस आधार पर कही गयी है, इसका न सरोज में कोई विवरण मिलता है और न किसी अन्य सूत्र से ही समर्थन होता है । सेंगर ने कृतियों के अन्तर्गत-- नाममाला, अनेकार्थ, पंचाध्यायी, रुक्मिणीमंगल, दशमस्कंध, दानलीला, मानलीला तथा हजारों पदों के होने का उल्लेख किया है । नाममाला, अनेकार्थ, पंचाध्यायी, रुक्मिणीमंगल तथा दशमस्कंध का उल्लेख तो सरोजकार ने उसी प्रकार किया है जिस प्रकार तासी ने, परन्तु तासी द्वारा उल्लिखित शेष नौ ग्रन्थों को छोड़ दिया है तथा दानलीला एवं मानलीला के नाम नये ग्रन्थों के रूप में दिये हैं ।

डा० ग्रियर्सन

५- तासी तथा शिवसिंह सेंगर के ग्रन्थों के आधार पर जार्ज ग्रियर्सन ने `माडर्न वर्नाक्युलर लिटरेचर आव हिन्दोस्तान` नामक अंग्रेजी ग्रन्थ की रचना की । डा० ग्रियर्सन का उक्त ग्रन्थ संवत् १९४६ में लिखा गया । उसमें नन्ददास के विषय में शिवसिंह सरोज का अनुकरण किया गया ज्ञात होता है और सरोजकार द्वारा उल्लिखित सात ग्रन्थों को ही दुहराया गया है ।

नागरीप्रचारिणी सभा

६ काशी नागरीप्रचारिणी सभा की खोज रिपोर्ट भी प्रस्तुत प्रसंग में उल्लेखनीय है । सभा द्वारा खोज कार्य का आरम्भ सन् १९०० ईसवी से हुआ और अब तक यह कार्य होता चला आ रहा है । यद्यपि आलोच्य कवि के जीवन वृत्त से संबंधित कोई महत्वपूर्ण सूचना इन रिपोर्टों के द्वारा प्रकाश में नहीं आ सकी तथापि कृतियों की सूचना की दृष्टि से इनका महत्व कम नहीं है ।

१- शिवसिंह सरोज, शिवसिंह सेंगर पृ० १७६ ।

प्रथम खोज रिपोर्ट में नन्ददास की किसी रचना का उल्लेख नहीं है। आगे की रिपोर्टों में जोगलीला,[1] फूलमंजरी और रासलीला[2] तथा कृष्णमंगल[3] के नाम मिलते हैं। इनके अतिरिक्त खोज रिपोर्टों में नन्ददास के नाम से जिन ग्रन्थों का उल्लेख किया गया, उनका समावेश तासी, शिवसिंह सेंगर और मिश्रबन्धुओं के इतिहासों में हो चुका था। उपर्युक्त चार ग्रन्थों का ही खोज रिपोर्टों में प्रथम बार उल्लेख हुआ है।

मिश्रबन्धु

७ इधर सभा का खोजकार्य चल ही रहा था, उधर मिश्रबन्धु भी अपने विनोद की रचना में तल्लीन थे। सन् १९११ ई० में मिश्रबन्धुओं के सम्मिलित प्रयास के फलस्वरूप 'मिश्रबन्धु विनोद' की रचना हुई। यद्यपि इसका आधार स्तम्भ सभा की खोज रिपोर्टें ही हैं तथापि उसमें चिन्तन का अभाव नहीं है। इस ग्रन्थ के नए संस्करण में (१) ज्ञानमंजरी, (२) हितोपदेश तथा (३) विज्ञानार्थ प्रकाशिका (गद्य) नामक नन्ददास के नए ग्रन्थों का उल्लेख हुआ है।[4] प्रथम दो के विषय में कुछ भी प्रकाश नहीं डाला गया है कि वे कहां से प्राप्त हुए हैं। अन्तिम ग्रन्थ है जिसको छत्रपुर में देखे जाने का उल्लेख मिश्रबन्धुओं ने किया है और जो विज्ञानार्थ प्रकाशिका नामक संस्कृत ग्रन्थ की ब्रजभाषा में टीका है।

८ मिश्रबन्धुओं ने नन्ददास को तुलसीदास का भाई बताया है किन्तु किस आधार पर ऐसा माना, इसका कोई विवरण नहीं दिया। नन्ददास का कविता काल संवत् १६२३ के लगभग माना गया है। रचनाओं के अन्तर्गत -- अनेकार्थनाममाला, रासपंचाध्यायी, रुक्मिणीमंगल, हितोपदेश, दशमस्कंध-भागवत, दानलीला, मान-लीला, ज्ञानमंजरी, अनेकार्थमंजरी, रूप मंजरी, नाममंजरी, नाम चिन्तामणिमाला,

---

१- खो० रि० सन् १९०६-८।

२- ,, ,, ,, १९२९-३१।

३- ,, ,, ,, १९३५-३७।

४- मिश्रबन्धु विनोद - द्वितीय संस्करण।

रसमंजरी, विरहमंजरी, नाममाला, नासिकेत पुराण गद्य और ज्ञानलीला के का उल्लेख किया है। २५२ वैष्णव की वार्ता के आधार पर जीवन चरित पर प्रकाश डालने का प्रयास किया है।

९ मिश्रबन्धुओं ने नन्ददास की कविता की आलोचना इस प्रकार की है :-

"इनकी कविता बड़ी ओजस्विनी, गम्भीर एवं मनोहारिणी होती थी, रासपंचाध्यायी पढ़कर चित्त प्रसन्न हो जाता है।[1] शब्द योजना के विषय में उनका मत है :- "नन्ददास अत्यन्त सुन्दर शब्द योजना प्रस्तुत करते हैं।[2] वस्तुत: आलोचना की दृष्टि से मिश्रबन्धुओं का कार्य अल्प होते हुए भी महत्वपूर्ण है, क्योंकि नन्ददास के काव्य पर आलोचना का सूत्रपात विनोद में ही मिलता है जो भावी आलोचकों एवं हिन्दी साहित्य के इतिहासकारों के लिए मार्गदर्शक सिद्ध हुआ।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल
---

१० नागरीप्रचारिणी सभा की खोज रिपोर्टें तथा मिश्रबन्धु विनोद में निहित सामग्री ही आगे चलकर आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के हिन्दी साहित्य के इतिहास[3] के लिए आधारस्तम्भ सिद्ध हुई जिसे आचार्य जी ने प्रखर प्रतिभा के सहारे विकास और परिपूर्णता की ओर अग्रसर किया। उन्होंने यद्यपि नन्ददास के जीवन अथवा काव्य के विषय में विस्तृत विवरण नहीं दिया तथापि कवि को प्रकाश में लाने के लिए और उसे समझने के लिए मौलिक प्रयास किया। शुक्ल जी ने नन्ददास को सूरदास का समकालीन माना है। उन्होंने नन्ददास-तुलसीदास-सम्बन्ध और वार्ता के विषय में लिखा है :-

"गोस्वामी जी का नन्ददास से कोई सम्बन्ध नहीं था। यह बात पूर्णतया सिद्ध हो चुकी है। अत: वार्ता की बातों को जो वास्तव में भक्तों का गौरव

१- मिश्रबन्धु विनोद, १९९३ ई० संस्करण, पृ० २८१
२- वही ,, ,, ,, ,,
३- शुक्ल जी का इतिहास संवत् १९८६ में प्रथम बार प्रकाशित हुआ।

प्रचलित करने और वल्लभाचार्य जी की गद्दी की महिमा प्रकट करने के लिए पीछे से लिखी गई है, प्रमाण कोटि में नहीं ले सकते ।'[1]

११ स्पष्टत: शुक्ल जी ने वार्ता को प्रमाणित नहीं माना है, किन्तु इसके लिए उन्होंने कोई तर्क उपस्थित नहीं किए हैं । उनके मतानुसार वार्ता कथाओं में ऐतिहासिक तथ्य केवल इतना है कि नन्ददास ने गोसाईं विट्ठलनाथ जी से दीक्षा ली ।[2]

१२ आचार्य शुक्ल ने अष्टछाप में सूरदास के पश्चात् नन्ददास को ही माना है और यह भी माना है कि अनुप्रासादि युक्त साहित्यिक भाषा और चुने हुए संस्कृत पद-विन्यास आदि की दृष्टि से नन्ददास की समानता में सूर भी जिन्होंने स्वाभाविक चलती भाषा का ही अधिक आश्रय लिया है, नहीं ठहर पाते हैं ।[3]

१३ शुक्ल जी ने नन्ददास के एक नए ग्रन्थ की सूचना भी दी है । इस ग्रन्थ का नाम सिद्धान्त-पंचाध्यायी दिया है ।[4]

डा० रामकुमार वर्मा

१४ डा० रामकुमार वर्मा जी ने अपने 'हिन्दी साहित्य के आलोचनात्मक इतिहास' में नन्ददास के जीवन, उनके ग्रन्थ, काव्यकला और काव्य गुणों पर विस्तार से तथा गम्भीरता के साथ विचार करके विषय को आगे बढ़ाने का प्रयास किया है ।[5] ग्रन्थों की सूची का आधार नागरीप्रचारिणी सभा की १६२२ ई० तक की खोज रिपोर्टें हैं तथा जीवनी विषयक विवेचन भक्तमाल एवं २५२ वार्ता पर आधारित है ।

१- हिन्दी साहित्य का इतिहास 'शुक्ल' पृ० १७४ ।

२- वही, पृ० १७४-१७५ ।

३- वही, पृ० १७५ ।

४- वही, पृ० १७५ ।

५- हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, डा० वर्मा पृ० - ५४३-५६४ ।

१५ वर्मा जी ने नागरीप्रचारिणी सभा की १६२०-२२ की खोज रिपोर्ट के आधार पर नन्ददास कृत नाममाला ग्रन्थ की हस्तलिखित प्रति में रचना संवत् १६२४ दिये जाने की सूचना के अनुसार यह निश्चित् किया है कि नन्ददास, तुलसीदास और सूरदास के समकालीन थे । उनके अनुसार नन्ददास का, चन्द्रहास का भाई होना युक्तिसंगत था । आचार्य शुक्ल की भांति नन्ददास के तुलसीदास का भाई न होने की बात तो वर्मा जी ने नहीं लिखी है किन्तु इस सम्बन्ध के निश्चित् होने के लिए किसी अन्य प्राचीन प्रमाण द्वारा सिद्ध होने की ओर संकेत किया है तथा ठीक मर परीक्षण के अभाव में भागवत का अनुवाद भाषा में होना भी सन्दिग्ध माना है ।[१]

१६ इन इतिहास ग्रन्थों के उपरान्त अन्य अनेक इतिहास-ग्रन्थों की भी रचना होती रही है किन्तु नन्ददास विषयक कोई नवीन बात उनमें दृष्टिगत नहीं होती है, उन्हीं बातों का उनमें दिग्दर्शन कराया गया है जिनका उन ग्रन्थों की रचना के समय तक आलोचकों द्वारा उद्घाटन हो चुका हो ।

कृतियों के सम्पादकों द्वारा प्रस्तुत कार्य

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र

१७ नन्ददास विषयक अध्ययन के द्वितीय सोपान का निर्माण उन विद्वानों द्वारा हुआ जिन्होंने नन्ददास की कृतियों के पाठों के सम्पादन का कार्य किया । यद्यपि कवि के प्रकाशित ग्रन्थों में सर्वप्रथम प्रकाशित रासपंचाध्यायी मथुरा में संवत् १८७२ में छपी थी तथापि कुशल सम्पादन में वह भारतेन्दु हरिश्चन्द्र द्वारा ही प्रकाशित हुई । भारतेन्दु जी ने संवत् १६३५ की 'हरिश्चन्द्र चन्द्रिका' में रास-पंचाध्यायी का सम्पादन कर उसे प्रकाशित किया । इसमें आरंभ में कोई लेख नहीं दिया है जिससे यह ज्ञात करना संभव नहीं है कि किन साधनों के आधार पर इसका

१- हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, डा० वर्मा, पृ० ५६३-६४ ।

सम्पादन किया गया है। इसका शीर्षक केवल पंचाध्यायी रक्खा गया है और यह अध्यायों में भी विभक्त नहीं है। इसमें २८४ रोले संग्रहीत हैं।

राधाकृष्णदास

१८ भारतेन्दु द्वारा रासपंचाध्यायी के उपर्युक्त चन्द्रिका में प्रकाशन के पच्चीस वर्ष बाद बाबू राधाकृष्णदास ने रासपंचाध्यायी का सम्पादन किया जो नागरी-प्रचारिणी सभा काशी से प्रकाशित हुई। राधाकृष्णदास ने उक्त संस्करण के आरंभ में उपक्रम के अन्तर्गत हरिश्चन्द्र चन्द्रिका एवं मथुरा की लाखों में छपी प्रति के संपादन का आधार माना है। इनके अतिरिक्त बाबू कार्तिक प्रसाद खत्री तथा किशोरीलाल गोस्वामी की दो प्रतियां भी उनके पास थीं। स्वसम्पादित ग्रन्थ का नाम उन्होंने रासपंचाध्यायी रक्खा है और उसे पांच अध्यायों में विभाजित किया है। भक्तमाल और २५२ वार्ता के आधार पर नन्ददास के जीवन पर प्रकाश डाला है। तुलसीदास और नन्ददास के गुरु भाई होने की भी सम्भावना प्रकट की है। `उनके पद बहुतसे ऐसे थे जो बिना अच्छे गवैये के गाये नहीं जा सकते थे` के कथन द्वारा नन्ददास के पदों की संगीतात्मकता प्रकट की है।

१६ राधाकृष्णदास जी ने रास पंचाध्यायी के सम्पादन का मौलिक प्रयास तो किया ही है, साथ ही वह आधुनिक भी है। भारतेन्दु के उपरान्त यही प्रथम प्रयास था जिसमें ग्रन्थ को अध्यायों में विभाजित करके प्रक्षिप्त दोहों को मूल पाठ में स्थान न देते हुए फुट नोट में दिया गया। साथ ही ग्रन्थ के पाठ के पूर्व कवि का परिचय देने का प्रयास भी इसी सम्पादन में सर्वप्रथम मिलता है।

बाबू बालमुकुन्द गुप्त

२० काशी नागरीप्रचारिणी सभा के प्रकाशन के एक वर्ष के उपरान्त बाबू बाल-मुकुन्द गुप्त ने, [illegible], मथुरा की लीथो प्रति और संवत् १८६४ की छपी प्रति के आधार पर रास पंचाध्यायी तथा [illegible] का सम्पादन कर प्रकाशित कराया। गुप्त जी ने इस प्रकाशन की प्रति में ३२२ छन्द रक्खे हैं जो राधा[illegible]दास की प्रति से कुछ कम हैं। इसके पश्चात् के संपादकों ने इन्हीं का अनुसरण किया।

२१ कवि की कृतियों के सम्पादकों ने प्रमुखत: रासपंचाध्यायी तथा भंवरगीत के सम्पादन की ओर ही रुचि प्रदर्शित की है, वैसे भी नन्ददास के केवल रास पंचाध्यायी, भंवरगीत, अनेकार्थमंजरी, नाममाला ही प्राय: प्रकाशन का अवसर पाते रहे हैं। इनमें भी भूमिका सहित सटिप्पण कार्य रासपंचाध्यायी और भंवरगीत के प्रकाशनों में ही मिलता है। इस दिशा में राधाकृष्णदास एवं बालमुकुन्द गुप्त ने पाठ के पूर्व आवश्यक परिचय देकर पथ-प्रदर्शन का कार्य किया।

२२ उपर्युक्त सम्पादकों के उपरान्त डा० उदयनारायण तिवारी ने रास पंचाध्यायी और भंवरगीत, विश्वम्भरनाथ मेहरोत्रा तथा प्रेमनारायण टण्डन ने भ्रमरगीत का सम्पादन किया और साथ ही कवि के जीवन एवं काव्य का परिचय भूमिका के रूप में देकर यथास्थान ग्रन्थ की टिप्पणियां प्रस्तुत की गईं।

पं० उमाशंकर शुक्ल

२३ नन्ददास के सम्पूर्ण ग्रन्थों का निर्धारण करते हुए उनके सम्पादन का कार्य सर्वप्रथम पं० उमाशंकर शुक्ल जी ने किया। उनके महत् प्रयास के परिणाम स्वरूप सन् १९४२ ई० में नन्ददास की सम्पूर्ण कृतियां "नन्ददास" ग्रन्थ में सुसम्पादित रूप में हिन्दी संसार में प्रकाश में आईं तथा उनके ग्रन्थों के संबंध में अनेक भ्रमों का निराकरण हुआ। इस ग्रन्थ में विद्वान् सम्पादक महोदय ने विस्तृत भूमिका देकर उसमें कवि की जीवनी और रचनाओं पर गवेषणापूर्ण विचार प्रस्तुत किए हैं। जीवन-चरित को प्रकट करने के लिए शुक्ल जी ने अन्तर्साक्ष्य और बहिर्साक्ष्य दोनों प्रकार की सामग्री का उपयोग किया है। स्रोतों से प्राप्त सामग्री की भी चर्चा की है। कवि के नाम से कहे जाने वाले ३० ग्रन्थों का उल्लेख कर उनमें से प्रत्येक की सप्रमाण परीक्षा करके निष्कर्षों की ओर स्पष्ट संकेत किए हैं। इसके अतिरिक्त काव्य-समीक्षा की दृष्टि से भी कृतियों पर प्रकाश डाला है। यद्यपि नन्ददास के पदों के प्रामाणिक संग्रह का उसमें भी अभाव है, तथापि शुक्ल जी के नन्ददास द्वारा इस क्षेत्र में एक महान आवश्यकता की पूर्ति की ओर प्रयास का सूत्रपात हुआ और एक निश्चित सीमा तक आवश्यकता की पूर्ति भी हुई। सम्पादन के लिए इसमें अधिक

से अधिक प्रतियों की सहायता ली गई है जिससे पाठ अधिक स्पष्ट हो पाये हैं। वस्तुत: यह बड़े अध्यवसाय तथा ज्ञानबीन के साथ प्रस्तुत किया गया और सम्पादक महोदय ने जहां कहां भी साधन प्राप्त हुए, उन्हें एकत्र कर ग्रन्थ को अधिक से अधिक उपयोगी बनाने का प्रयास किया।

बाबू ब्रजरत्नदास

२४ सम्पादन के क्षेत्र में अगला प्रयास बाबू ब्रजरत्नदास जी द्वारा हुआ। उनके वर्षों के परिश्रम के फलस्वरूप संवत् २००६ में `नन्ददास ग्रन्थावली` नाम से नंददास की सम्पूर्ण कृतियों का सम्पादन हुआ। इसमें कवि के कुछ पदों के सम्पादन का भी महत्वपूर्ण कार्य हुआ जो अपने ढंग का प्रथम प्रयास था। बाबू जी ने भी एक बड़ी भूमिका देकर नन्ददास की जीवनी और कृतियों के निर्धारण का प्रयास किया है। उन्होंने कवि की कृतियों की कथावस्तु को संक्षेप में देकर काव्य की आलोचना पर भी ग्रन्थ के आकार के अनुसार प्रकाश डाला है। वस्तुत: जो कार्य शुक्ल जी ने आरंभ कर (के पूर्णता की ओर अग्रसर किया, बाबू जी ने) उसे पूर्णता के निकट पहुंचाने का सफल प्रयास किया। यद्यपि इसमें भी कवि के नाम से कहे जाने वाले सभी पदों का सम्पादन नहीं हो पाया है और अनेक त्रुटियां रह गई हैं तथापि नन्ददास-काव्य के सम्पादन के अद्यावधि पर्यन्त पं० शुक्ल जी के `नन्ददास` के उपरान्त `नन्ददास ग्रन्थावली` ही ऐसा ग्रन्थ है जिसकी सहायता से कवि को अधिक निकटता से पहचाना जा सकता है।

अन्य सम्पादक

२५ इसके अनन्तर नन्ददास की सम्पूर्ण कृतियों से युक्त सम्पादन का कोई कार्य [illegible] नहीं होता है, यद्यपि इस और कार्य करने की आवश्यकता अभी पूर्ण नहीं हुई है क्योंकि कविकृत कतिपय ग्रन्थों के पाठ की समस्या अब भी वैसी ही बनी हुई है और उक्त ग्रन्थ में इन पाठों को परिशिष्ट में देकर काम चलाया गया है। उपर्युक्त सम्पादनों के उपरान्त रासपंचाध्यायी और भंवरगीत को ही विद्वानों ने पृथक पृथक अथवा सम्मिलित रूप में सम्पादित किया जिसका आधार उक्त [illegible] ही रहे हैं और पाठ-निर्धारण की ओर प्रयास का उनमें अभाव है। भंवरगीत का

पाठ तो प्राय: निश्चित सा है किन्तु रासपंचाध्यायी का पाठ अभी निश्चित नहीं हो पाया है। बाबू ब्रजरत्नदास जी के बाद के संपादकों ने कवि के जीवन और कृतियों का कुछ परिचय तथा टीका करके देने तक ही कार्य को सीमित रक्खा है। 'नन्ददास ग्रन्थावली' के उपरान्त किए गए इस प्रकार के प्रयासों में निम्नलिखित प्रमुख हैं :-

रासपंचाध्यायी और भंवरगीत : डा० सुधीन्द्र

इसमें सम्पादक ने पाठ देने से पूर्व कवि-परिचय तथा रचनाओं का और संकेत किया है। पाठ के साथ साथ टीका भी दी है।

रासपंचाध्यायी : श्री कैशनीप्रसाद चौरसिया

इसमें श्री चौरसिया जी ने शुक्ल जी के 'नन्ददास' में सम्पादित रासपंचाध्याय के पाठ को ही पृथक रूप से प्रकाशित कराया है तथा कवि-परिचय एवं टिप्पणिया दी हैं।

रासपंचाध्यायी : डा० प्रेमनारायण टण्डन

इसमें सम्पादक ने विस्तृत कवि-परिचय एवं अन्त में दी गई टिप्पणियों के अन्तर्गत विचारपूर्ण तथा नवीन तथ्यों को भी सामने रक्खा है। इसका प्रकाशन सन् १९६० में हुआ है। नन्ददास के ग्रन्थों के सम्पादन-कार्य का यही आधुनिकतम ग्रन्थ है।

२६ प्रस्तुत प्रकरण में डा० स्नेहलता श्रीवास्तव का सन् १९६२ में प्रकाशित 'भंवरगीत--विश्लेषण और विवेचन' नामक ग्रन्थ भी उल्लेखनीय है। इसमें डा० स्नेहलता श्रीवास्तव ने कवि के भंवरगीत के विश्लेषण और विवेचन के साथ साथ भंवरगीत का पाठ भी दिया है। किन्तु यहां सम्पादन कार्य की अपेक्षा आलोचना ही प्रधान है। अत: इसका उल्लेख आलोचनात्मक कार्य के प्रसंग में करना अधिक समीचीन होगा।

आलोचनात्मक अध्ययन

२७ नन्ददास विषयक अध्ययन का तीसरा क्षेत्र उन आलोचनात्मक ग्रन्थों द्वारा निर्मित हुआ जो 'अष्टछाप', वल्लभसम्प्रदाय, कृष्णभक्ति काव्य और भ्रमरगीत की परम्परा से संबंधित है। सूरदास तथा तुलसीदास विषयक ग्रन्थों में भी नन्ददास की चर्चा की गई है। कुछ ऐसे भी ग्रन्थ हैं जिनका संबंध नन्ददास के जीवन एवं काव्य की आलोचना से ही है। उनका विवरण नीचे यथास्थान दिया गया है।

वियोगी हरि

२८ नन्ददास काव्य की आलोचना के क्षेत्र में सर्वप्रथम वियोगी हरि जी का नाम लिया जा सकता है। उनका ब्रजभाषा के प्रमुख कवियों का काव्य संग्रह 'ब्रजमाधुरीसार' नाम से संवत् १९८० में प्रकाशित हुआ। यद्यपि यह विशुद्ध आलोचनात्मक ग्रन्थ नहीं है तथापि सम्पादक ने इसकी भूमिका के रूप में जो उल्लेख दिए हैं वे आलोचना की दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं। अत: इसका उल्लेख प्रस्तुत प्रसंग में करना असंगत नहीं होगा।

२९ श्री वियोगी हरि ने बाबू राधाकृष्णदास, मिश्रबन्धु, २५२ वार्ता, भक्तमाल भक्तनामावली और [illegible] के आधार पर नन्ददास के जीवन वृत्त के संबंध में विचार किया है। ब्रजमाधुरीसार के सम्पादक ने नन्ददास के विषय में लिखा है:-

'इनका भक्तिभाव भरी पदावली पर गोसाईं विट्ठलनाथ जी ऐसे मुग्ध हो गए कि उन्हें अष्टछाप में उपयुक्त स्थान दे दिया। अष्टछाप में यदि सूरदास सूर्य हैं तो नन्ददास निश्चय ही चन्द्रमा हैं।'[1] रचनाकौशल के विषय में लिखते हैं :-

'नन्ददास जी के ग्रन्थ इतने रोचक, सरस और भावपूर्ण हैं कि उनके जोड़ के ग्रन्थ हिन्दी साहित्य में बहुत कम होंगे, कृत्रिमता का तो कहीं नाम भी नहीं। रास पंचाध्यायी को यदि हम हिन्दी का गीतगोविन्द कहें तो अत्युक्ति नहीं होगी।

१- ब्रजमाधुरीसार, वियोगी हरि, पृ० ७३ ।

रोला छन्द में नन्ददास जी जितने सफल हुए हैं उतना कोई अन्य कवि नहीं हुआ । छन्दबद्ध कोश लिखने वालों में भी उन्हीं का सर्वप्रथम नाम है।[1] ग्रन्थ का महत्व स्पष्ट है अत: इस सम्बन्ध में अधिक लिखना अनावश्यक होगा ।

डा० दीनदयालु गुप्त

३० विशुद्ध आलोचनात्मक दृष्टि से अष्टछाप के कवियों के संबंध में अध्ययन करने वाले विद्वानों में डा० गुप्त जी सर्वप्रथम है । अष्टछाप के अन्य कवियों के साथ साथ नन्ददास के जीवन एवं रचनाओं पर भी गुप्त जी ने विभिन्न दृष्टिकोणों से विस्तार में विचार किया है । उन्होंने कवि के जीवन-चरित्र निर्धारण के लिए भक्तमाल और २५२ वार्ता को आधार रूप में ग्रहण किया है । रचनाओं और उनकी प्रामाणिकता पर स्वतंत्र दृष्टिकोण से विचार किया है और अन्य कवियों के साथ नन्ददास की भक्ति एवं दार्शनिक विचारों की समीक्षा की है । कवि की रचनाओं की विशेष समीक्षा के अन्तर्गत विशद विवेचन करने का भी प्रयास किया है । इसके अतिरिक्त अष्टछाप में स्थान निर्धारण का भी प्रश्न उठाकर उसपर युक्तियुक्त विचार करके सर्वश्रेष्ठ अष्टछापी कवियों का क्रम-- सूर, परमानन्ददास और नन्ददास रूप में दिया है ।

३१ यद्यपि नन्ददास विषयक आलोचनात्मक अध्ययन की दिशा में प्रथम प्रयास का फल होने से 'अष्टछाप और वल्लभसंप्रदाय' अत्यन्त महत्वपूर्ण ग्रन्थ है तथापि लेखक महोदय का उद्देश्य नन्ददास के जीवन और काव्य की ही आलोचना न होकर भक्त कवियों के समूह का अध्ययन करना था । अत: उक्त ग्रन्थ के प्रकाश में आने के अनन्तर भी कवि विषयक स्वतंत्र अध्ययन की आवश्यकता का महत्व कम नहीं जान पड़ता है ।

डा० रामरतन भटनागर

३२ डा० गुप्त जी के उपर्युक्त ग्रन्थ के पश्चात् ही डा० रामरतन भटनागर ने नन्ददास पर प्रथम स्वतंत्र आलोचनात्मक ग्रन्थ लिखकर एक महान आवश्यकता की

१- ब्रजमाधुरी सार, वियोगी हरि, पृ० ३३ ।

पूर्ति का और प्रयास किया है । इनमें समाविष्ट आलोचना का आधार पं० उमाशंकर शुक्ल जी का `नन्ददास` है । इस ग्रन्थ में सात शीर्षकों के अन्तर्गत-- जीवनी, रचनाएं, नन्ददास काव्य में पुष्टिमार्ग के सिद्धान्त, नन्ददास का पदावली साहित्य नन्ददास की भक्ति, काव्य और कला तथा परिशिष्ट-- वल्लभाचार्य का शुद्धाद्वैत दर्शन और पुष्टिमार्ग पर लेखनी उठाई गई है । इन शीर्षकों के अन्तर्गत केवल एक परिचयात्मक दृष्टिकोण की ही झलक मिलती है और नन्ददास के अध्ययन की उस शृंखला में जो डा० गुप्त जी के प्रयत्न के फलस्वरूप सामने आई, कोई उल्लेखनीय विकास दृष्टिगोचर नहीं होता ।

श्री प्रभुदयाल मीतल

३३ डा० भटनागर के उपरान्त श्री प्रभुदयाल मीतल प्रमुख आलोचक हैं, जिन्होंने `अष्टछाप परिचय` नामक ग्रन्थ में अन्य अष्टछापी कवियों के साथ नन्ददास के विषय में भी विचार प्रस्तुत किए हैं । मीतल जी ने `जीवन सामग्री और उसकी आलोचना` `जीवनी` और `काव्यसंग्रह` नामक शीर्षकों के अन्तर्गत कवि की चर्चा की है ।[१] सूरदास और परमानन्ददास के पश्चात् अष्टछाप में नन्ददास को सर्वश्रेष्ठ कवि माना है । मीतल जी नन्ददास को तुलसीदास का भाई मानने के पक्ष में हैं । उनके अनुसार इस सम्बन्ध में कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए क्योंकि वार्ता में इस बात का स्पष्ट कथन है । मीतल जी के इस प्रयास से नन्ददास विषयक स्वतंत्र अध्ययन की आवश्यकता की पूर्ति में कोई विशेष योगदान दृष्टिगत नहीं हुआ ।

डा० श्यामसुन्दरलाल दीक्षित तथा डा० स्नेहलता श्रीवास्तव

३४ आलोचनात्मक ग्रन्थों के अन्तर्गत डा० श्यामसुन्दरलाल दीक्षित तथा डा० स्नेहलता श्रीवास्तव के क्रमशः `कृष्णकाव्य में भ्रमरगीत और उसकी परम्परा` ~~नामक ग्रन्थ उल्लेखनीय हैं । इन ग्रन्थों में~~ और `हिन्दी में भ्रमरगीत और उसकी परम्परा` नामक ग्रंथ उल्लेखनीय हैं । इन ग्रन्थों में नन्ददास का अध्ययन उनके भंवरगीत की दृष्टि से हुआ

हुए ही किया गया है तथा उनमें भ्रमरगीतकारों में नन्ददास को सूरदास के उपरांत प्रमुख माना है। कवि के जीवन अथवा अन्य ग्रन्थों के विषय में समीक्षा की इन आलोचकों के विषयों से बाहर होने के कारण आशा नहीं की जा सकती है।

प्रो० कृष्णदेव

३५- नन्ददास विषयक अध्ययन की दिशा में एक और प्रयास प्रो० कृष्णदेवकृत 'अष्टछाप के कवि नन्ददास' ग्रन्थ के रूप में सामने आता है। लेखक ने इस ग्रन्थ में अनेक छोटे छोटे शीर्षकों के अन्तर्गत कवि के जीवन और काव्य के विषय में लेखनी उठाई है। उनका यह कार्य गवेषणात्मक न होकर परीक्षार्थियों के हित के अधिक निकट ज्ञात होता है तथा इसमें बुद्धि का वह परिश्रम और गंभीरता नहीं दिखाई देती जो अनुसन्धित्सु के गवेषणात्मक कार्य हेतु अपेक्षित होता है। अतः इससे भी नन्ददास विषयक अध्ययन की आवश्यकता की पूर्ति नहीं हो पाई।

३६ प्रस्तुत प्रकरण में डा० स्नेहलता श्रीवास्तव द्वारा प्रणीत 'नन्ददास का भंवरगीत--विश्लेषण और विवेचन' नामक ग्रन्थ भी उल्लेखनीय है। लेखिका का यह ग्रन्थ जुलाई १९६२ ई० में प्रकाशित हुआ है और नन्ददास विषयक अध्ययन का आधुनिकतम प्रयास है। इसमें कवि के भंवरगीत का विश्लेषण और विवेचन किया गया है। लेखिका ने विभिन्न शीर्षकों के अन्तर्गत नन्ददास के व्यक्तित्व और कृतित्व, धार्मिक और दार्शनिक विचारधारा की पृष्ठभूमि, पुष्टिमार्गी भक्ति का विवेचन, भंवरगीत का सांस्कृतिक चित्रण, शिल्पविधान एवं विवेचन और विश्लेषण द्वारा कवि विषयक अध्ययन को गति प्रदान की है। ग्रन्थ के अन्त में भंवरगीत का पाठ-भेदसहित संपादित रूप भी दिया है।

अन्य आलोचक

३७ उपर्युक्त ग्रन्थों के अतिरिक्त नन्ददास के विषय में उन विद्वानों द्वारा भी कुछ प्रकाश पड़ा है जिनके अध्ययन कार्य का केन्द्र तुलसीदास तथा सूरदास थे। वार्ता-ग्रन्थों में नन्ददास को तुलसीदास का भाई कहा गया है और मूल गुसाईं चरित के रचयिता ने भी इन दोनों को गुरुभाई बतला दिया है। इसके फलस्वरूप तुलसीदास के जीवन

चरित्र पर प्रकाश विचार करते समय अनेक लेखकों ने जिनमें श्री रामनरेश त्रिपाठी और डा० माताप्रसाद गुप्त जी प्रमुख हैं, नन्ददास की भी चर्चा की है, त्रिपाठी जी ने तुलसीदास को नन्ददास का चचेरा भाई माना है जिसका उल्लेख उनके 'तुलसी और उनकी कविता' नामक ग्रन्थ में मिलता है।[1] डा० माताप्रसाद गुप्त जी ने २५२ वार्ता की प्रामाणिकता पर सन्देह प्रकट किया है, अत: नन्ददास के साथ तुलसीदास का सम्बन्ध भी सन्देह से बाहर नहीं पाता।[2]

३८ सूरदास के आलोचकों के ग्रन्थों में नन्ददास की चर्चा होने का कारण यह है कि सूरकृत कही जाने वाली 'साहित्य लहरी' के १०६ वें पद में 'नन्दनदास हित साहित्यलहरी कीन' वाला पद आया हुआ है। जिससे विद्वानों ने यह अर्थ लगाया है कि साहित्य लहरी की रचना सूर ने नन्ददास के लिए की थी। इसी बात को परंपरा में सूर के आलोचकों ने नन्ददास को भाई मान लिया है।

३९ तुलसीदास तथा सूरदास के आलोचकों द्वारा नन्ददास की चर्चा किए जाने का यह तात्पर्य नहीं है कि इन विद्वानों ने नन्ददास विषयक अध्ययन को कोई गति प्रदान की है। वस्तुत: तुलसी और सूर के आलोचकों द्वारा नन्ददास विषयक प्रश्न दो मतों के बीच में ही पड़ा रहने के कारण किसी एक दिशा में विकास को प्राप्त न हो सका।

पत्र-पत्रिकाएं

४० प्रस्तुत प्रकरण में उस कार्य की ओर भी संकेत करके देना आवश्यक प्रतीत होता है जो विभिन्न पत्रिकाओं में प्रकाशित होता रहा तथा जिसके अन्तर्गत स्रोतों से प्राप्त सामग्री[3] का निरीक्षण-परीक्षण हुआ। उसको विस्तृत रूप में कहने से

१- तुलसी और उनकी कविता, रामनरेश त्रिपाठी, पृ० ११० ।

२- तुलसीदास, डा० गुप्त, पृ० ७१ ।

३- पत्रिकाओं में प्रकाश में आने के साथ साथ स्रोत सामग्री निम्नलिखित पुस्तकों में भी प्रकाश में आई :-

(१) 'रत्नावली' — संपादक नाहरसिंह सोलंकी, सं० १९९५ । इसमें मुरलीधर चतुर्वेदीकृत 'रत्नावली की जीवनी' और रत्नावलीकृत 'लघुदोहासंग्रह' प्रकाशित

को आवश्यकता इसलिए नहीं है कि यह सम्पूर्ण कार्य उपर्युक्त ऐतिहासिक, संपादन सम्बन्धी तथा आलोचनात्मक ग्रन्थों में कहीं न कहीं समाहित है। फिर भी पत्र-पत्रिकाओं में भी यह कार्य सर्वप्रथम प्रकाश में लाने से द्रष्टव्य है। इस प्रकार के कार्य के फलस्वरूप लिखे गए लेखों में से निम्नलिखित उल्लेखनीय हैं:-

(१) 'महाकवि नन्ददास'--पं० रामदत्त भारद्वाज, विशाल भारत, जून १९३९ ई०। इसमें सोरों सामग्री सर्वप्रथम प्रकाश में आयी।

(२) 'तुलसीदास और नन्ददास'-- रामचन्द्र तिवारी, विशाल भारत, अगस्त १९३९ ई०।

(३) तुलसी स्मृति अंक (सनाढ्य जीवन), सितम्बर १९३९। इसमें डा० दीनदयालु गुप्त जी और श्री भगवत शर्मा के लेख उल्लेखनीय हैं। इन लेखक महोदय के लेखों में सोरों विषयक वह सामग्री आ जाती है, जो अन्य लेखों में भी बिखरी पड़ी है।

(४) 'तुलसीदास और नन्ददास के जीवन पर नया प्रकाश'--डा० दीनदयालु गुप्त, हिन्दुस्तानी, जुलाई १९३९ ई०।

(५) नन्ददास-- श्री प्रभु प्रसाद बहुगुणा, नागरीप्रचारिणी पत्रिका, माघ संवत् १९९६।

(६) 'कुछ प्राचीन वस्तुएँ'--पं० रामदत्त भारद्वाज। 'माधुरी' सन् १९४० ई०। इसमें भ्रमरगीत की पुष्पिका प्रथम बार प्रकाश में आई।

(७) 'वर्णतंत्र और वर्णफल'-- पं० रामदत्त भारद्वाज। सोरों सामग्री का यह अंश सन् अगस्त १९४० ई० की 'माधुरी' में प्रकाशित हुआ।

हुए।

(२) दोहा रत्नावली--प्रभुदयाल शर्मा, संवत् १९९६।

(३) तुलसी-चर्चा -- श्री रामदत्त भारद्वाज तथा भद्रदत्त शर्मा, सं० १९९८। इसमें सोरों से प्राप्त समस्त सामग्री देते हुए संपादकों ने तत्संबंधी तब तक प्रकाशित लेख भी [illegible] किए हैं।

(४) 'सूकरक्षेत्र (सोरों) माहात्म्य'-कृष्णदास, प्रकाशक-लक्ष्मी स्टोर्स, कासगंज १९९६ वि०

(५) 'रत्नावली'-[illegible], सं० १९९८ भूमिका में समस्त सोरों सामग्री पर प्रकाश डाला है।

(६) तुलसी का घर बार-- श्री रामदत्त भारद्वाज, संवत् २००६।

(८) सोरों से प्राप्त गोस्वामी तुलसीदास के जीवनवृत्त से संबंध रखने वाली सामग्री की बहिरंग परीक्षा` नामक डा० माताप्रसाद जी गुप्त का लेख अगस्त-सितम्बर १६४० ई० को सम्मेलन पत्रिका में सर्वप्रथम प्रकाश में आया ।

(६) `महाकवि नन्ददास का जीवन चरित्र` : डा० दीनदयाल गुप्त । यह लेख सन् १६४१ की हिन्दुस्तानी में छपा ।

(१०) सन् १६४१ में नवीन भारत के तुलसी अंक में पं० रामदत्त भारद्वाज ने मुरलीधर चतुर्वेदी कृत `रत्नावली चरित` को प्रकाशित कराया ।

(११) हिन्दुस्तानी भाग १२ में श्री ~~चन्द्रबली के~~ चन्द्रबली पाण्डेय का `गोस्वामी तुलसीदास और सनाढ्य सोरों सामग्री` नामक लेख प्रकाश में आया ।

४१ इसके अतिरिक्त नन्ददास विषयक अध्ययन के विकास की दृष्टि से श्री विश्वनाथ मिश्र का हिन्दुस्तानी में प्रकाशित `नन्ददास की रचनाओं के नामवाची शब्द` नामक लेख उल्लेखनीय है । इसमें लेखक ने अनेकार्थ भाषा और नाम माला के शब्दों का अर्थ, पर्याय तथा अन्तर्कथाओं द्वारा स्पष्ट करने का सराहनीय कार्य किया है ।[१]

प्रस्तुत अध्ययन की आवश्यकता

४२ नन्ददास की जीवनी-निर्धारण एवं कृतियों की आलोचना से संबंध रखनेवाले अब तक किए गए कार्य से, जिसका सिंहावलोकन उपर्युक्त परिच्छेदों में किया गया है, यह स्पष्ट है कि ऐसे अध्ययन की आवश्यकता बराबर बनी हुई है जिसके द्वारा कवि के [illegible] मूल्य को [illegible] निकटता से समझा जा सके । इस आवश्यकता को दृष्टिगत रखते हुए जिस दिशा में और जिस प्रकार का कार्य अपेक्षित है और जिसका निर्वाह प्रस्तुत अध्ययन के सीमित क्षेत्र में सम्भव है, उसे निम्नप्रकार से प्रकट किया जा सकता है ।

४३ कवि की रचना को ठीक प्रकार से समझने के लिए उसके अन्तस्थल में, स्थूल-रूप से ही क्यों न हो, प्रवेश करना आवश्यक है और अन्तःस्थल में प्रवेश, उसके जीवन

१. हिन्दुस्तानी, सन् [illegible], पृ० [illegible] ।

चरित से परिचय प्राप्त किए बिना नहीं हो सकता है । अत: कवि की कृतियों पर प्रकाश डालने से पूर्व, जीवन चरित्र और व्यक्तित्व पर विचार करना प्रथम आवश्यकता है । जीवन चरित्र-निर्धारण के दो ही साधन हैं -- अन्तस्साक्ष्य और बहिस्साक्ष्य । इसके अतिरिक्त जनश्रुतियों से भी इस कार्य में सहायता ली जा सकती है । नन्ददास ने अन्य समकालीन भक्त कवियों की भांति अपने विषय में कुछ नहीं लिखा है । जो कुछ लिखा भी है, उसका पूर्ण उपयोग अभी तक नहीं हो पाया है । अभी तक लेखकों ने मित्रोल्लेख के अतिरिक्त, नन्ददास के केवल पदों में ही, आत्मोल्लेख का आभास पाया है तथा उनकी अन्य रचनाओं में निहित कतिपय उल्लेखों से भी व्यक्तित्व और स्वभाव पर प्रकाश पड़ सकता है, यह बात सर्वथा उपेक्षित हो रही है । मित्र का उल्लेख रहस्यमय ही बना हुआ है । तुलसीदास-नन्ददास-संबंध का प्रश्न भी वार्ता-ग्रन्थों एवं सोरों सामग्री के विवादास्पद होने के कारण किसी एक निष्कर्ष के अभाव में अभी तक प्रश्न ही बना हुआ है । जहां तक कवि की जन्म तिथि आदि तिथियों का सम्बन्ध है, वह तो नितान्त ही मतभेदों से उलझा हुआ है । आवश्यकता इस बात की है कि कवि की सभी रचनाओं में आत्मोल्लेख का आभास देने वाले कथनों की परीक्षा की जाय तथा बहिस्साक्ष्य के रूप में प्राप्त होने वाली सम्पूर्ण सामग्री की परीक्षा करके खरी उतरी हुई सामग्री के आधार पर जीवन चरित्र का निर्माण करने का प्रयास किया जाय, यही प्रयास प्रस्तुत अध्ययन के ~~द्वितीय~~ पहले अध्याय में प्रस्तावित है ।

४४ कवि के जीवनचरित्र से परिचय प्राप्त कर लेने के उपरान्त प्रस्तुत अध्ययन के केन्द्र बिन्दु -- काव्य की ओर अनायास ही ध्यान आकृष्ट होता है । यथार्थत: किसी भी कवि के विषय में अध्ययन का उद्देश्य उसकी कृतियों का रसास्वादन लेना ही है और इस रसास्वादन का आधार कृतियां होती हैं । अत: कवि के नाम से कही जाने-वाली कृतियों में से उसकी वास्तविक कृतियों के निर्धारण का प्रश्न, साहित्य के प्रति उसके योगदान के सच्चे रूप को आंकने के लिए सम्मुख आता है । कविवर नन्ददास के विषय में भी यही कहा जा सकता है कि उनके नाम से अनेक कृतियां कही जाती हैं और अनेक विद्वानों ने इनकी प्रामाणिकता पर विचार करके उनके निर्धारण का प्रयास किया है किन्तु दशमस्कंधभाषा जैसे सन्दिग्ध ग्रन्थ की प्रामाणिकता पर अभी तक किसी ने विचार नहीं किया है । साथ ही गोवर्धन लीला और सुदामा चरित्र पर

प्रामाणिकता की दृष्टि से विचार करने की आवश्यकता कम नहीं हुई है। प्रेम बारा-खड़ी की प्रामाणिकता भी नन्ददास की प्रवृत्ति और शैली को दृष्टिगत रखते हुए विचारणीय है। दूसरे अध्याय में इन्हीं सब दिशाओं में प्रकाश डालने का प्रयत्न किया गया है।

४५ नन्ददास की कृतियों की रचना के कालक्रम के समुचित अध्ययन की दिशा प्रायः अछूती ही है। इस प्रकार का अध्ययन वस्तुतः बहुत पहले ही हो जाना चाहिए था। क्योंकि कालक्रम के ज्ञान से ऐतिहासिक जिज्ञासा का समाधान तो होता ही है, काव्य के विकास की गति का आकलन भी हो सकता है। किन्तु अभी तक इस ओर विद्वानों ने विशेष ध्यान नहीं दिया है। नन्ददास की कृतियों के काल क्रम का किञ्चित प्रयास यद्यपि डा० दीनदयालु गुप्त जी ने किया है तथापि उनका यह प्रसंग अत्यन्त संक्षेप में है जिससे जिज्ञासा का समाधान नहीं होता है। अतः पृथक रूप से इस पर विचार करने की आवश्यकता है। नन्ददास ने अपनी किसी भी कृति में रचना-काल का और संकेत नहीं किया है। ऐसी दशा में विषय निर्वाह एवं शैली का तुलनात्मक अध्ययन ही काल-क्रम पर विचार करने का मार्ग दिखाई पड़ता है। अस्तु इसी दिशा की ओर अध्ययनकार्य को अग्रसर करना तीसरे अध्याय का ध्येय रखा गया है।

४६ कवि की कृतियों को ठीक ठीक समझने के लिए उनकी कथावस्तु और उसके आधार पर विचार करना उतना ही आवश्यक है जितना कृतियों का निर्धारण। यद्यपि रासलीला भाषा और भंवरगीत के विषय में इस प्रकार का कार्य उपलब्ध हो जाता है तथापि इन ग्रन्थों की भी प्रत्येक भाव सरणि का परिचय देकर उसके प्रमुख आधार को सम्मुख रखने और कवि की संपूर्ण कृतियों के स्वतंत्र रूप से उसी प्रकार के अध्ययनानुगमन की आवश्यकता अपने मूल रूप में दृष्टिगत होती है। इसी आवश्यकता की पूर्ति के लिए प्रस्तुत अध्ययन के चौथे अध्याय में नन्ददास की कृतियों की कथावस्तु एवं उसके आधार को अध्ययन का विषय बनाया गया है।

४७ नन्ददास को तब तक पूर्ण रूप से नहीं समझा जा सकता जब तक उनके काव्य में निहित उन तत्वों की खोज न कर ली जाय जिनमें उनके दार्शनिक रूप को प्रश्रय मिला है। पुष्टि सम्प्रदाय के सिद्धान्त तत्वों का जितना स्पष्ट दिग्दर्शन नन्ददास-

काव्य में हुआ है, उतना अष्टछाप के किसी भी कवि के काव्य में नहीं हुआ । इन्हीं तत्वों को नन्ददास के काव्य में से खोज कर प्रस्तुत करना पांचवें अध्याय में अभीष्ट है ।

४८ यदि यह कहा जाय कि नन्ददास पहले भक्त थे फिर कवि तो असंगत नहीं होगा । अतः उनकी कृतियों पर विचार कर लेने के उपरान्त उनकी भक्ति की ओर ही सर्वप्रथम दृष्टि जाती है । गुसाईं विट्ठलनाथ जी से दीक्षा पाने के अनन्तर वे पूर्णरूपेण कृष्णार्पण हो गए । वे अब गुसाईं विट्ठलनाथ जी और पुष्टि सम्प्रदाय के विद्वानों के सत्संग में तो रहते ही थे, कथा-वार्ता और शास्त्र-चर्चा में भी तल्लीन रमे-से रहने लगे । काव्य और संगीत में स्वाभाविक रुचि होने के कारण उनका मन कीर्तन में विशेष रूप से लगता था । वे भक्तिभावपूर्ण उत्तम पदों की रचना कर के शास्त्रोक्त विधि से उनका गायन करने लगे । इस प्रकार नन्ददास का कवि रूप भक्ति के उर्वरा क्षेत्र से ही होकर उन्नति को प्राप्त हुआ । छठे अध्याय में नन्ददास की भक्ति के इस क्षेत्र का दिग्दर्शन कराया गया है ।

४९ कवि के काव्यपक्ष का अध्ययन, अध्ययन के विभिन्न आवश्यक अंगों में से सबसे अधिक लोकप्रिय हुआ है । वस्तुतः नन्ददास ने अपनी भक्ति और सहृदयता की अभिव्यक्ति का माध्यम कला को ही बनाया है । उनकी भक्ति-दर्शनयुक्त कला की त्रिवेणी ब्रज-भाषा काव्य का शृंगार है । कदाचित इसीलिए उनके आलोचकों ने उनके लिए "और कवि गढ़िया नन्ददास जड़िया" जैसी उक्तियों का प्रयोग किया है । यद्यपि नन्ददास का काव्य कृष्ण के वासनाहीन भक्तों के ही सम्यक आनन्द का हेतु है तथापि काव्य और कलाओं के सत्पात्र पाठक भी अपने मनोनुकूल रस उससे प्राप्त कर सकते हैं । कला की सर्वश्रेष्ठ सार्थकता यही है कि उसका तत्व तो पारदर्शी रसिकजनों को ही प्राप्त हो किन्तु उसका सामान्य आनन्द सर्वजन सुलभ बन जाय । काव्य और कलाएं जितना कुछ हमारी भावनाओं का मार्जन और प्रक्षालन कर सकती हैं, नन्ददास का काव्य उससे किसी अंश में कम नहीं करता । जो कुछ, तल्लीनता का पुंज और व्यापक-भावना का सौंदर्य है, वह नन्ददास के काव्य में मिल जाता है । इसके अतिरिक्त उनके काव्य में जो अलौकिक अध्यात्म है, वह अधिकारियों के लिए सर्वथा सुरक्षित है । इसकी माधुर्य और प्रसादयुक्त कोमलकान्त पदावली साहित्यिकों के लिए

अंगूर के गुच्छों के समान हैं जिसमें माधुर्य रस भरा हुआ है ।[1] कला की इन्हीं महत्वपूर्ण विशेषताओं का उद्घाटन करना प्रस्तुत अध्ययन के सातवें अध्याय का विषय है । यद्यपि यह सत्य है कि नन्ददास प्रथम भक्त हैं, फिर कवि, किन्तु यह भी असत्य नहीं है कि नन्ददास की लोकप्रियता उनकी कला के ही कारण है ।

५० स्मरणीय है कि नन्ददास की कृतियाँ जहां एक ओर आकार में लघु हैं वहीं दूसरी ओर सब मिलाकर परिमाण में अधिक नहीं हैं । अत: प्रस्तुत अध्ययन में विस्तार की अपेक्षा गहनता एवं चिन्तनशील मनन का अधिक अवलम्ब ग्रहण किया गया है । यहां विश्लेषण एवं निरीक्षण द्वारा कवि की काव्य किरणों के सात रंगों को सात अध्यायों में दिखा कर आठवें अध्याय में उपसंहार की योजना की गई है और एक जिज्ञासु की भांति, कवि कृतियों के अध्ययन की सरणि का स्वतंत्र रूप से अनुसरण करते हुए लेखक की दृष्टि उन स्थलों की ओर अनायास ही गई है जहां पहुंचते पहुंचते कवि विषयक अध्ययन की उपर्युक्त आवश्यकताएँ प्राय: पूर्ण हुई मिलती हैं । इसप्रकार प्रस्तुत प्रबन्ध एक ओर तो कवि की कृतियों के स्वतंत्र अध्ययन एवं मनन के प्रयास के फलस्वरूप होने से नितान्त मौलिक है, दूसरी ओर, इसके द्वारा नन्ददास के जीवन और कृतियों से संबंधित अध्ययन उस स्तर तक ऊपर उठा हुआ है जहां तक ऊपर दिखाई गई प्रस्तुत अध्ययन की आवश्यकता की पूर्ति हो पाई है ।

प्रस्तुत अध्ययन के महत्व के संबंध में उपर्युक्त संकेत कदाचित् पर्याप्त होगा ।

१-हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास : डा० रामकुमार वर्मा, पृ० ६६०।

विषय सूची

संक्षेप और संकेत

अष्टछाप : कांकरोली	- अष्टछाप (प्राचीन वार्ता रहस्य द्वितीय भाग), विद्या-विभाग, कांकरोली ।
खो० रि०	- खोज रिपोर्ट
चौ०	- चौपा …चौप…
डा०	- डाक्टर
दे०	- देखिए
टी०	- टीका
न० ग्रं०	- नन्ददास ग्रन्थावली : बाबू ब्रजरत्नदास जी
नन्ददास : 'शुक्ल'	- नन्ददास : पं० उमाशंकर शुक्ल जी,
ना० प्र० सभा	- नागरी प्रचारिणी सभा
पृ०	- पृष्ठ

अध्याय १

जीवन चरित

जीवन चरित

जीवन चरित विषयक सामग्री

१   नन्ददास के जीवन चरित्र के विषय में प्राप्त सामग्री दो रूपों में सामने आती है : (१) कवि-कृतियों के रूप में और (२) कवि-कृतियों से इतर -- बहिर्साक्ष्य के रूप में । आगामी परिच्छेदों में इन दोनों रूपों पर विचार करके उसके जीवन चरित्र पर प्रकाश डालने का प्रयास किया गया है ।

कवि-कृतियां

२   पदावली, अनेकार्थभाषा, रसमंजरी, रूपमंजरी, विरहमंजरी, रुक्मिणी मंगल, रासपंचाध्यायी और सिद्धांत पंचाध्यायी ही कवि की ऐसी कृतियां हैं जिनसे उसके जीवन चरित विषयक किंचित सूचनाएं प्राप्त होती हैं ।

पदावली

३   पदावली के अधिकांश आत्मकथनात्मक पद गुरुप्रशस्ति विषयक है । इन पदों में कवि ने गुसाईं विट्ठलनाथ जी के प्रति अपनी भक्ति भावना प्रकट की है :

कवि कहता है : (१) प्रातःकाल उठते ही तीनों लोकों के वन्दनीय पुरुषोत्तम श्रीवल्लभ सुत के मुख कमल के दर्शन करो और उन पर तन मन धन निछावर करो ।[१]

(२) रुक्मिणी और पद्मावती के प्राणपति विट्ठल जी की जय हो, जो नन्ददास के नाथ हैं तथा गिरिराजधारी के साक्षात अवतार हैं,[२]

(३) [illegible] का विस्तार करने वाले, निजजनों का पोषण करने वाले और प्रभु रूप में प्रकट श्री विट्ठलनाथ जी तथा उनके पुत्र गिरिधर जी का भजन करूं ।[३]

(४) पुष्टि भक्ति के [illegible] तथा गिरिधर के अवतार श्री विट्ठलनाथ जी पर नन्ददास निछावर होता है,[४]

१- न० ग्रं० -- [illegible] ६ ।   २- वही, पद० ७ ।

३- वही, पद० ८ ।   ४- वही, पद० १० ।

(५) 'इस लोक के एकमात्र बन्धु और प्रभु रूप रसिकशिरोमणि श्री वल्लभसुत का प्रात:काल उठते ही नाम लो' उसी पद में विट्ठलनाथ के लिए कवि कामना प्रकट करता है : 'राज करो श्री गोकुल धाम'[1]

(६) कवि प्रात:काल उठकर श्री वल्लभसुत के पवित्र यश का गान करता है और अपने को उनके चरणों पर रहने वाला वल्लभ कुल का दास कहता है।[2] वह विट्ठल नाथ जी को 'प्रभु षटगुन संपन्न' कह कर उनकी शरण ग्रहण करने की बात भी कहता है और कामना करता है कि वे गोकुल में युगों तक राज्य करें।[3]

(७) आचार्य वल्लभ के जन्म के विषय में लिखे गए एक पद में कवि ने वल्लभ को पूर्ण पुरुषोत्तम ब्रह्म कहा है।[4]

(८) यमुनापुलिन, वृन्दावन, रास आदि को वह श्री विट्ठलनाथ जी की कृपा से निरख निरख कर उन पर [illegible] होता है।[5]

(९) यमुना के विषय में कवि का कथन है : 'यमुना जी ऐसा सौभाग्य दें कि लौकिक बातों का त्याग करूं और पुष्टिमार्ग में रह कर उनका भजन करूं, तभी गिरिधर लाल मिल सकते हैं।'[6] इसी प्रकार तीन अन्य पदों में भी कवि ने यमुना की महिमा लिखी है।[7] एक पद में गंगाजी की महिमा का वर्णन किया है।[8]

(१०) कवि ने राम और कृष्ण दोनों की स्तुति साथ साथ करते हुए कहा है कि दशरथ सुत और नन्दनन्दन दोनों ही उसके ठाकुर हैं।[9] एक पद में जानकी जी[10] का और दो पदों में हनुमानजी[11] का भी गुणगान किया है।

(११) नन्ददास को गोवर्धन पर्वत, मधुपुरी, यमुना और वृन्दावन में रहना ही प्रिय है[12] और नन्दग्राम तो उन्हें बहुत ही प्रिय लगता है।[13] गोवर्धन धारण के अवसर को तो कवि अपने दुखों को दूर कराने का सुयोग ही समझता है।[14]

१- न०ग्रं० पदसंख्या -११ । २- वही, पद० १२ । ३- वही, पद०१३ ।
४- वही, पद० ६ । ५- वही, पद० ४८ । ६- वही, पद १६ ।
७- वही, पद० १४, १५, और १७ । ८- वही, पद० १८ ।
९- वही, पद ३ । १०- वही, पद ४ । ११- वही, पद० १९ और २०।
१२-वही, पद २२ । १३- वही, पद २१ । १४- वही, पद० १९८ ।

अन्य कृतियां

४ उपर्युक्त पदों के अतिरिक्त, कृतियों में जो उल्लेख जीवन चरित्र विषयक सामग्री के रूप में ग्रहण किए जा सकते हैं, वे निम्न प्रकार हैं। :

(१२) कवि का कथन है : 'गुरु चरणों के प्रताप से सदा हृदय में आनन्द की वृद्धि होती है।[१]

(१३) 'नन्ददास' सदा अपने प्रभु का मंगल गान करता है।[२]

(१४) 'आनन्दघन और सुन्दर नन्दकुमार को नमस्कार है जो रस मय, रसकारण और रसिक हैं तथा जो जगत के आधार हैं।'[३]

(१५) उत्तम हृदय से किया हुआ प्रेम जन्म भर नहीं मिटता है जैसे चकमक पत्थर की अग्नि युगों तक जल में रहने पर भी नहीं मिटती है।'[४]

(१६) भूत का प्रभाव होने और मदिरा पीने पर भी सुधि रह जाती है किन्तु प्रेम सुधा रस का पान करने पर कोई सुधि नहीं रहती है।[५]

(१७) व्रज का प्रेम विरह निपट अटपटा चटपटा है, जो सुलझाने पर भी नहीं सुलझता है और उसके सुलझाने में बड़े बड़े लोग उलझ जाते हैं।[६]

(१८) निशिदिन की जो कामना थी, भगवान ने पूरी कर दी और सखियाँ (इन्दुमती) महामनोरथरूपी सागर के पार हो गईं।[७]

(१९) संसार में धनी वही है जिनके [illegible] ही धन हैं।[८]

(२०) '[illegible] श्री शुकदेव जी को वन्दना करता हूं।[९]

(२१) 'स्त्री, पुत्र, पति आदि से कोई सुख नहीं मिलता है और इनसे प्रतिदिन व्याधि ही बढ़ती है तथा ये क्षण क्षण महादुख देते हैं।[१०]

(२२) अनेकार्थ भाषा के निम्नलिखित उल्लेख भी द्रष्टव्य हैं। कोष्ठक में दोहा-संख्या लिखी है :

१- न० ग्र०, पृ० २०० । २- वही, पृ० २११ । ३- वही, पृ० १९४ ।
४- वही, पृ० १५० । ५- वही, पृ० १३८ । ६- वही, पृ० १६५ ।
७- वही, पृ० १९३ । ८- वही, पृ० ५३ । ९- वही, पृ० १ ।
१०- वही, पृ० ५२ ।

स्वर्ण की ममता त्याग कर हरिनाम कह (१८)। कपट छोड़कर हरि का भजन कर (१९)। विषयों को विष के समान समझ कर छोड़ दे और अमृतमय हरि का भजन कर (२०)। हृदय में गिरिधर श्याम को धारण कर (२१)। आलस्य का त्याग करके श्याम का भजन कर (२८)। यौवनावस्था बीती जा रही है, गोपाल का भजन कर ले (२९)। गोत्र वही धन्य है जहां विद्वानों का आदर होता है (४४)। संसार के प्रलोभनों में पड़कर श्री कृष्ण को न भूल (४१)। हे हरि मेरे अज्ञान को दूर कर दीजिए(५२) श्रीकृष्ण से वैसा ही प्रेम कर जैसा मुदिता स्त्री अपने पति से करती है (१०१) हे सरस्वती माता, मेरे हृदय में घनश्याम के प्रति प्रेम उत्पन्न कर (१०२)।

५ इनमें, (१) से (८) तक के उद्धरणों से सूचित होता है कि नन्ददास वल्लभ संप्रदाय में दीक्षित थे और विट्ठलनाथ जी उनके दीक्षा गुरु थे, यह बात उद्धरण (६) से विशेष रूप से व्यंजित होती है। वे सदा अपने गुरु के अनन्य निकट रहते थे। जैसा कि उद्धरण (२), (३), (४) और (५) से प्रकट होता है, विट्ठलनाथ जी को वे गिरिधर का अवतार मानते थे।

उद्धरण (५) और (६) के अन्तिम कथनों से विदित होता है कि इन पदों की रचना नन्ददास ने उस समय के आस पास की होगी जब विट्ठलनाथ जी अड़ैल छोड़ कर संवत १६२३ में गोकुल में आये और संवत् १६२८ से स्थायी रूप से गोकुल में रहने लगे थे[1] साथ ही उद्धरण (६) वाले पद के "श्री विट्ठलेश वरौ" के [illegible] कथन से यह भी ज्ञात होता है कि इस पद की रचना, जहां एक ओर विट्ठलनाथ जी द्वारा गोकुल को स्थाई निवास बनाने के समय हुई, वहीं दूसरी ओर इस पद की रचना के समय के आस पास ही नन्ददास ने विट्ठलनाथ जी को गुरु रूप में ग्रहण किया होगा। अधिक संभव यही जान पड़ता है कि इन (५) और (६) वाले पदों की रचना संवत् १६२३ के आसपास ही, जब विट्ठलनाथ जी सर्वप्रथम अड़ैल छोड़कर व्रज-गोकुल पधारे, हुई होगी और उसी समय के आसपास उन्होंने विट्ठलनाथ जी से दीक्षा प्राप्त की होगी।

उद्धरण (२) वाला पद, विट्ठलनाथ जी की प्रथम पत्नी रुक्मिणी की मृत्यु हो जाने पर पद्मावती से विवाह होने के उपरान्त रचा हुआ ज्ञात होता है। पद्मावती का विवाह संवत् १६२० वि० में हुआ था।[2] इस पद में [illegible] नंदनंदन साथ के

अनुसार पद की रचना के समय नन्ददास विट्ठलनाथ के शिष्य हो चुके थे होंगे । इस पद को और इस बात को कि विट्ठलनाथ जी सपरिवार संवत् १६२३ में सर्वप्रथम अड़ैल से ब्रज गोकुल आये, दृष्टि में रखते हुए यही अनुमान जान पड़ता है कि नन्ददास को विट्ठलनाथ जी की दोनों पत्नियों के विषय में उसी समय (संवत् १६२३ में) जानकारी हुई होगी । अत: इस पद की रचना भी उद्धरण (५) और (६) वाले पदों के उपरान्त संवत १६२३ में ही हुई होगी । उद्धरण (३) और (७) से प्रकट होता है कि श्री विट्ठलनाथ जी के पुत्र गिरिधर जी और पिता आचार्य वल्लभ को भी नन्ददास ब्रह्म का अवतार मानते थे तथा उनके प्रति भी अपार श्रद्धा रखते थे ।

उद्धरण ~~(७)~~ (८) से सूचित होता है कि वृन्दावन, यमुना पुलिन, वहां के निकुंज आदि गिरिधर की लीला-स्थलियों का नन्ददास को दर्शन कराने का श्रेय विट्ठलनाथ जी को ही है । इसका तात्पर्य यह हुआ कि नन्ददास का मूल निवासस्थान ब्रज या वृन्दावन से बाहर था और विट्ठलनाथ जी के कहने से ही वे वृन्दावन में आये तथा वहां रहने लगे । इससे यह भी ध्वनित होता है कि वे स्वयं वृन्दावन में नहीं आए वरन् विट्ठलनाथ जी की कृपा से ही उन्हें वहां आने का अवसर मिला । ऊपर लिखा जा चुका है कि नन्द-दास जी विट्ठलनाथ जी की शरण में संवत् १६२३ के आस पास आए थे और सं० १६२३ में ही विट्ठलनाथ जी अड़ैल से ब्रज गोकुल में ~~अकेले-समय~~ आये । अत: उक्त उद्धरण (८) के प्रकाश में कहा जा सकता है कि नन्ददास जी का विट्ठलनाथ जी से साक्षात्कार उनके अड़ैल से गोकुल में आते समय ही कहीं मार्ग में हुआ और विट्ठलनाथ जी कृपा करके उन्हें गोकुल में ले आए ।

६ उद्धरण (६) से यमुना और गंगा जी के प्रति कवि की आस्था प्रकट होती है । यहां लौकिक बातों को त्याग कर और पु[illegible] में रहकर उनका भजन करूं, तथा गिरि-धर मिलैं का कथन द्रष्टव्य है । इससे प्रकट होता है कि नन्ददास पुष्टिमार्गी थे और इस मार्ग में आने के लिए आवश्यक था कि वे लौकिक बातों को त्याग कर दिया जाय । यह पद भी दीक्षा के समय का ही जान पड़ता है, इससे यह भी ज्ञात होता है कि पुष्टि मार्ग में आने ~~के लिए~~ से पूर्व या आने के समय नन्ददा[illegible] सांसारिक बातों में उलझे हुए थे । तभी उन्हें, गिरिधर प्राप्ति हेतु पु[illegible] में आने के लिए [illegible] उन सांसा-रिक बातों को छोड़ने के लिए प्रतिज्ञाबद्ध होना पड़ा । यहां पर 'बात लौकिक' कहने से कवि का तात्पर्य गृहस्थ जीवन से रहा हो, तो असम्भव नहीं । यदि ऐसा है तो इससे

अनुसार इतना तो आभास मिल जाता है कि पुष्टिमार्ग में आने के पूर्व नन्ददास गृहस्थ जीवन में रह चुके होंगे और पुष्टिमार्ग में आने पर उसका परित्याग करना पड़ा होगा, किन्तु उनके गृहस्थ जीवन के विषय में अन्य कुछ भी ज्ञात नहीं होता है ।

७ उद्धरण (१०) से राम और कृष्ण दोनों अवतारों के प्रति नन्ददास की भक्ति भावना विदित होती है । इन पदों की शैली बहुत साधारण है और नन्ददास के योग्य नहीं है । यदि ये नन्ददास के ही पद हैं तो इनकी रचना उन पदों से पूर्व हुई होगी जिनका प्रणयन कवि के पुष्टिमार्ग में आने पर हुआ है । दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि इनकी रचना कवि के पुष्टि मार्ग में प्रविष्ट होने से पूर्व की है । इस दशा में यह ज्ञात होता है कि पुष्टि मार्ग में आने से पूर्व नन्ददास एक ऐसे परिवार से संबंध रखते थे जिसमें हिन्दू धर्म की सामान्य भक्ति भावना का प्रचार था और विष्णु के अवतारों के प्रति समान रूप से श्रद्धा बरती जाती थी । जानकी और हनुमान जी के विषय में लिखे गये पदों का उक्त भक्तिभावना से कोई विरोध प्रकट नहीं होता ।

८ उद्धरण (११) इस बात का साक्षी है कि कवि के हृदय में श्री कृष्ण की लीला-स्थली गोवर्धन, नन्दग्राम, मधुपुरी, यमुनातट और वृन्दावन के प्रति अपार स्नेह था तथा पुष्टि सम्प्रदाय में आने के उपरान्त वह इन स्थलों से अन्यत्र नहीं जाता था । अन्तिम कथन से कवि की दीनता का भाव व्यक्त होता है ।

९ उद्धरण (१२) से कवि की गुरुचरणों के प्रति और कृष्ण-कृपा के प्रति श्रद्धा तथा विश्वास का भाव व्यक्त होता है । (१३) से ज्ञात होता है कि नन्ददास गायक भी थे । (१४) से सूचित होता है कि वे रसिक भाव के थे । (१५), (१६) और (१७) से कवि की प्रेम प्रवृत्ति का ज्ञान होता है । (१६) में कवि ने अपने विषय में कुछ न लिख पाने का मानों कारण ही बता दिया है, (१५) और (१७) में इंगित प्रेम सुधारस को पीने से उन्हें कोई सुधि नहीं रही तो आश्चर्य नहीं । जो कुछ लिखा है, वह भी जान पड़ता है कि तत्[illegible] में ही लिखा गया है । (१८) में सखचरी से तात्पर्य स्वयं नन्ददास से ही है ।[१] इससे प्रतीत होता है कि कवि की मनोवांछित वस्तु प्राप्त हो गई अर्थात् श्री कृष्ण स्वरूप की प्राप्ति हो गई । इससे यह भी ध्वनित होता है

१- अ[illegible]प और वल्लभ सम्प्रदाय : डा० गुप्त, पृ०

दीक्षोपरान्त नन्ददास की प्रवृत्ति श्रीकृष्ण के स्वरूप-प्राप्ति की ओर हो रही ।

उद्धरण (१९) में कवि श्रीकृष्ण को ही प्रमुख धन मानता है । (२०) में शुकदेव जी की वन्दना द्वारा उनके प्रति श्रद्धाभाव व्यक्त किया गया है । (२१) में गृहस्थ जीवन की ओर संकेत मिलता है । यद्यपि यह गोपियों के मुख से कहलाया गया है तथापि इसमें नन्ददास की वैराग्य वृत्ति की ओर ही संकेत उपलब्ध होता है । इससे प्रकट होता है कि नन्ददास गृहस्थ जीवन में रहे होंगे और उनके स्त्री, पुत्र आदि कुटुम्बी जन भी रहे होंगे तथा दीक्षोपरान्त सब कुछ त्याग कर उन्होंने वैराग्य लिया होगा । इससे ऊपर उद्धरण (९) के कथन की पुष्टि होती है ।

१० उद्धरण (२२) में दोहा संख्या (१८),(१९),(२०) और (४१) से कवि की सांसारिक विषयों और प्रलोभनों से अपने मन को विरत करने की चेष्टा व्यंजित होती है । (२१), (२८) और (५३) से प्रकट होता है कि वह अपने हृदय से आलस्य को दूर करके उसे श्रीकृष्ण में लगाना चाहता है । (४४) से ग्रन्थ रचना के समय उसकी विद्या-प्राप्ति में संलग्नता की सूचना मिलती है जिसकी पुष्टि दोहा संख्या (५२) से होती है, जहां वह भगवान से ही अपने अज्ञान को दूर करने के लिए याचना करता है । दोहा संख्या(२९) के अनुसार कवि ने इन दोहों की रचना अपनी यौवनावस्था में की है । दोहा संख्या (१०२) में वह अपने हृदय में घनश्याम के प्रति प्रेम उत्पन्न हो जाने के लिए सरस्वती सद् से याचना करता है । प्रेम भी ऐसा चाहता है जैसा मुदिता स्त्री का पति के प्रति होता है, यह बात दोहा संख्या (१०१) से प्रकट है ।

दोहों में उल्लिखित उपर्युक्त कथनों से दो बातें ज्ञात होती हैं १ (१) उस ग्रन्थ की रचना पुष्टि सम्प्रदाय में दीक्षा प्राप्ति के तुरन्त उपरान्त हुई होगी । उस समय कवि का मन लौकिक प्रलोभनों, आलस्य, अज्ञान आदि से मुक्त होकर श्री कृष्ण में पूर्णतः वहां लग पाया होगा, इसीलिए वह कभी कंचन से, कभी छल-कपट से, कभी लौकिक प्रलोभनों से और कभी अज्ञान से छुटकारा पाकर हृदय में श्रीकृष्ण प्रेम उत्पन्न होने के लिए [illegible] करता है । साथ ही उस समय वह विद्याप्राप्ति में संलग्न रहा होगा । इन उल्लेखों का [illegible] से साम्यतः सम्बन्ध होना जहां एक ओर यह प्रकट करता है कि ग्रन्थ की रचना पुष्टि [illegible] में [illegible] की दीक्षा ग्रहण करने के

उपरान्त हुई होगी, वहाँ दूसरी ओर दीक्षाकाल और इस ग्रन्थ के रचनाकाल में बहुत कम अन्तर होने का सूचना मिलता है। अधिक से अधिक यह अन्तर एक वर्ष तक का हो सकता है। (२) दूसरी बात जो ज्ञात होती है, वह है इस ग्रन्थ की रचना का कवि की यौवनावस्था में होना।

११ इसके अतिरिक्त रसमंजरी, विरहमंजरी और रास पंचाध्यायी में कवि ने अपने किसी मित्र का भी उल्लेख किया है। रसमंजरी में दिए गए मित्रोल्लेख से ज्ञात होता है कि इस ग्रन्थ की रचना कवि ने अपने एक मित्र के आग्रह पर की थी[1], विरह मंजरी में जिस प्रकार मित्रोल्लेख किया गया है उससे जान पड़ता है कि कवि ब्रज विरह को अपने मित्र को समझा रहा है[2] और रासपंचाध्यायी के तदुल्लेख से यह प्रकट होता है कि मित्र की आज्ञा से ही ग्रन्थ की रचना की गई है।[3] इस मित्र के लौकिक परिचय के विषय में विद्वानों ने भिन्न भिन्न मत व्यक्त किए हैं।

१२ श्री वियोगी हरि विट्ठलनाथ जी की शिष्या गंगाबाई को नन्ददास का मित्र बताते हैं।[4] किन्तु किस आधार पर उन्होंने ऐसा कहा है, इस ओर कोई संकेत नहीं किया और न बाह्य अथवा अन्त:साक्ष्य से ही इसकी वास्तविकता की संभावना प्रकट होती है।

१३ कुछ विद्वानों ने रूप मंजरी ग्रन्थ में कथित नायिका रूपमंजरी को नन्ददास का मित्र होना लिखा कहा है। इन विद्वानों ने कवि के ग्रन्थों में दिए गए मित्रोल्लेख से

१- एक मीत हम सों अस गुन्यौ, मैं नायिका भेद नहिं सुन्यौ।
   हाव भाव हेलादिक जिते, रति समेत समझावहु तिते।
   तू तौ सुनि लै रसमंजरी, मतसिज प्रेमरस परम भरी।
   -- न० ग्र०, पृ० १४४-४५।

२- नंद सभाषत ताको चित, ब्रज को विरह समुझि लै मित।
   -- वही, पृ० १६२।

३- परम रसिक एक मीत मोहि तिन आज्ञा दीनी।
   ताही तें यह कथा यथामति भाषा कीनी॥ - वही, पृ० ४।

४- ब्रजमाधुरी सार : वियोगी हरि, पृ० ९०, पाद टिप्पणी।

से एक ही मित्र होने का अनुमान किया है और उसी की खोज के फलस्वरूप वे उक्त निष्कर्ष पर पहुंचे हैं। रूप मंजरी को नन्ददास का मित्र मानने वाले विद्वानों में बाबू ब्रजरत्नदास जी[1] प्रमुख हैं। डा० दीनदयालु गुप्त जी ने भी रूपमंजरी के ही कवि का मित्र होने की सम्भावना प्रकट की है किन्तु वे इस सम्बन्ध में निश्चित नहीं हैं।[2]

१४ रूप मंजरी को नन्ददास को मित्र मानने का विद्वानों का आधार यह जान पड़ता है कि नन्ददास ने अपनी रचना रूपमंजरी में इस नाम की नायिका का उल्लेख किया है और स्वयं को उसकी सखरी के स्थान पर रखा है तथा वार्ता में किसी कृष्ण भक्तिनी रूपमंजरी से उनकी मित्रता का उल्लेख मिलता है।[3]

१५ रूप मंजरी ग्रन्थ में कवि का कथन है :

(१) इंदुमति अतिमंद मैं अवर नहिन निवहन्ति।
नागर नागर कुंवर पग छबि मग छूटयौ वहन्ति ।।[4]

(२) रूपमंजरी छबि कहन इंदुमति मति कौन।
ज्यौं निरमल निशिनाथ कौं हाथ पसारै बौन ।।[5]

(३) रूपमंजरी से स्वप्न का वर्णन कराते समय कहा गया है :
इत तै इक कोउ नव किसोर सौं। मनमथ ह्वै मन को चोर सौं।
मुसकत मुसकत मो ढिग आयौ। नैनन मैं कछु बाँध सौ नायौ।।
मोहि हंसि बूझनि लाग्यौ तहां। इन्दुमति तेरो सखरी कहां ।।[6]

इससे प्रकट होता है कि रूप मंजरी ग्रन्थ में रूपमंजरी नायिका की सखरी 'इंदुमती' स्वयं नन्ददास हैं।

१६अ. नन्ददास ने रूप मंजरी में जिस प्रेम का वर्णन किया है उसका उद्देश्य अगमातिगम प्रभु की निपट निकट प्राप्त करना है :

जदपि अगम तै अगम अति निगम कहत ताहि।
तदपि रंगीले प्रेम तें निपटनिकट प्रभु आहि ।।[7]

१- न० ग्रं०, भूमिका, पृ० ८ और पृ० ५६ ।

२- अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय : डा० गुप्त, पृ० १०१ ।

३- गोवर्धननाथ जी के प्राकट्य की वार्ता : पृ० २६ तथा २५२ वार्ता (हमी)पृ०[illegible] ।

४- न० ग्रं०, पृ० ११८ । ५- वही, पृ० १२४ । ६- वही, पृ० १२० ।

७- वही, पृ० [illegible] ।

इसीलिए इस प्रसंग में कवि को श्री कृष्ण के यश का वर्णन करना प्रयोजनीय रहा है :

इहि प्रसंग लौं जु कछु बखानों । प्रभु तुम अपनो जस को जानो ॥
तुव जस रस जिहि कवित न होई । भीतिचित्र सम चित्र है सोई ॥ [१]

और जो कुछ भी कवि के हृदय जगत में है, उसको वह वर्णन कर देता है :

अब हौं बरनि सुनाऊं ताही, जो कछु मो उर अन्तर आही ॥[२]

इससे स्पष्ट है कि रूप मंजरी ग्रन्थ में कथित वर्णन उर अन्तर की ही वस्तु है और ऐतिहासिक सत्यता से उसका कोई सम्बन्ध नहीं है । यह बात इससे भी प्रकट है कि ग्रन्थ का प्रमुख भाग स्वप्न के नायक श्री कृष्ण पर आधारित है । रूपमंजरी की नायिका की ऐतिहासिकता भी निम्न कथन से प्रकट है :

इक निसि सखि संग राजकुमारी । पौढ़ि हुती कनक चित्र सारी ॥[३]

यह राजकुमारी रूपमंजरी ही है :

धर पर इक निर्भयपुर रहै । ताको कृति कवि का कहि कहै ।[४]

धर्मधीर तंह कर वह राजा । प्रकट्यौ धर्म करन के काजा ।[५]

ताके इक कमनीय सुकन्या । जिहि अस जनी जननि सोउ धन्या ॥
नाम अनूप रूपमंजरी । अंग अंग सुमंगला चिन्ह भरी ॥[६]

इस कथन में कि किसी रूपमंजरी नामक राजकुमारी से नन्ददास का कभी उक्त प्रकार का साथ हुआ हो कितनी सत्यता होगी, कहने की आवश्यकता नहीं, इसके अतिरिक्त रूपमंजरी, किसी निर्भयपुर नामक नगर के राजा धर्मधीर की पुत्री कही गई है जिसका समर्थन ऐतिहासिक अथवा जनश्रुतिपरक किसी भी आधार से नहीं होता है ।

१६आ. कवि ने यह भी कहा है कि इस रस भरे ग्रन्थ की रचना उसने मित्र हित ही की है, क्योंकि काम से काम प्रभु को रंगीले प्रेम द्वारा ही प्राप्त किया जा सकता है।[७]

१- नं०ग्रं०, पृ० ११८ । २- वही, पृ० ११९ । ३- वही, पृ० १२६ ।
४- वही, पृ० ११९ । ५,६- वही, पृ० १२० । ७- वही, पृ० ११३ ।

ऐसी रंगीले प्रेम की योजना इस ग्रन्थ में की गई है जिसका किसी लौकिक स्त्री से संबंध होने का कोई आधार नहीं ज्ञात होता है, वरन् हरिरस पूर्ण विचार जाल के रस-कणों को कवि ने एकत्र कर संजोया है तथा रूपमंजरी नाम से एक नायिका की कल्पना कर उसके भावों एवं रूप को अपने उद्देश्य के अनुकूल गढ़ा है। निम्न कथन में कवि के उद्देश्य की पूर्ति हुई जान पड़ती है :

> तिहुं काल में प्रगट प्रभु , प्रगट न इहि कलि काल ।
> तातें सपनों ओट दै , मैं गिरिधर लाल ।।
> जो वांछित तो रैन दिन सो कीनो करतार ।
> महा मनोरथ सिंधु तरि सहचरि पहुंचो पार ।।[१]

कवि की अन्य कृतियों से भी यही ध्वनित होता है कि उसे किसी लौकिक जीव का चरित्र वर्णन करना अभीष्ट नहीं रहा होगा।

१७ रूपमंजरी ग्रन्थ के उल्लेख की स्थिति ऊपर स्पष्ट है ही, वार्ता में किसी कृष्ण भक्तिनी रूपमंजरी से नन्ददास की मित्रता का उल्लेख दृष्टव्य है। वार्ता के संबंध में विस्तार में आगे विचार किया गया है। यहां यह कहा जा सकता है कि वार्ता, 'वार्ता' ही है, ऐतिहासिक दृष्टि से उसका महत्व प्राय: नहीं के बराबर है। उनमें घटनाओं और सम्बन्धों को इस प्रकार का रूप दिया गया है जिससे पुष्टि सम्प्रदाय और गुसाईं जी का महत्व प्रकट हो। रूपमंजरी की वार्ता में भी रूपमंजरी और नन्ददास का अकबर के समक्ष अपने इष्टदेव के 'निपट निकट' गाने का रहस्य पूछे जाने पर प्राणोत्सर्ग दिखाना, वैष्णव धर्म का महत्व प्रदर्शित करता है। पुष्टि सम्प्रदाय में दीक्षित होने के उपरान्त अष्टछाप के भक्त कवि नन्ददास की किसी स्त्री के साथ मित्रता होने की बात, उनकी वैराग्य वृत्ति के भी प्रतिकूल बैठती है। । फिर नन्ददास और रूपमंजरी की मित्रता की वार्ता का उल्लेख अन्य किसी भी प्रमाण से समर्थित न होने से अकेला ही पड़ जाता है। कहना तो यह है कि इस तर्क के युग में भी रूपमंजरी ग्रन्थ की वर्ण्य नायिका रूपमंजरी को नन्ददास की मित्र होना कहा जाता है तो वार्ताकार ने भी यदि इसी ग्रन्थ के आधार पर, [illegible] और नन्ददास की वार्ता का सृजन कर, उसे वार्ता में स्थान दिया हो तो असम्भव नहीं।

१- नं० ग्रं०, पृ० १३३।

१८ प्रस्तुत प्रसंग में स्मरणीय है कि रूपमंजरी ग्रन्थ के आधार पर, रूपमंजरी की अपेक्षा 'उषा' को नन्ददास की मित्र मानने का पक्ष अधिक दृढ़ हो सकता है, जबकि उषा के विषय में इन्दुमति कहता है :

इक हुती उषा मेरी अली । सपने काम कुंवर सों मिली ।।[१]

ग्रन्थ में रूपमंजरी के विषय में 'मेरी अली' जैसा कोई संकेत नहीं मिलता है । अतः इन्दुमती और रूप मंजरी का ग्रन्थ में अधिक से अधिक वही सम्बन्ध हो सकता है जो इन्दुमति और उषा का है । किन्तु उषा भागवत में उल्लिखित अनिरुद्ध की प्रेयसी है ।[२] अतः ऐतिहासिक दृष्टि से इन्दुमति और उषा का सखी भाव जिस प्रकार कल्पित है, इन्दुमती और रूपमंजरी का सहचरी पन भी उससे किसी प्रकार कम कल्पित नहीं होगा ।

इस प्रकार प्रकट है कि किसी भी रूपमंजरी से नन्ददास की मित्रता मानने का कोई दृढ़ आधार प्राप्त नहीं है ।

१९ डा० प्रेमनारायण टण्डन ने किसी परिपाटी के अनुसार मित्र का उल्लेख किए जाने की बात लिखी है ।[3] इस सम्बन्ध में यहां इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि तत्कालीन भक्त कवियों के काव्य में अपनी रचना को किसी मित्र के आग्रह पर लिखने की किसी परिपाटी के प्रति कोई प्रवृत्ति नहीं दिखाई देती है । आधुनिक युग में भी किसी लब्ध प्रतिष्ठ कवि के काव्य में इस परिपाटी के ~~प्रति कोई प्रवृत्ति नहीं दिखाई देती है ।~~ कहीं ~~कोई~~ दर्शन नहीं होते हैं । यह दूसरी बात है कि नन्ददास का ही कोई अभिप्राय इस प्रकार की परम्परा को चलाना रहा हो । ऐसी दशा में भी इसे कवि की निजी प्रवृत्ति कहना युक्तियुक्त होगा ।

२० इस प्रकार स्पष्ट है कि नन्ददास द्वारा उल्लिखित मित्र विषयक जिज्ञासा का कोई उचित समाधान अभी तक प्राप्त नहीं हो सका है । इस विषय में स्मरणीय है

१- न० ग्र०, पृ० १२८ ।

२- भागवत [illegible] अध्याय ६२, श्लोक १२ ।

३- रासपंचाध्यायी, भूमिका पृ० ६, संपादक- डा० प्रेमनारायण टण्डन ।

है कि कवि द्वारा मित्र का उल्लेख ग्रन्थों की रचना के कारण से भिन्न नहीं है, अर्थात् रसमंजरी की रचना का कारण किसी मित्र का आग्रह है, विरह मंजरी में ब्रज विरह के वर्णन का कारण मित्र की तद्विषयक जिज्ञासा है और रास पंचाध्यायी की रचना का कारण मित्र की आज्ञा है ।

२१ रचना के कारण का उल्लेख अनेकार्थ भाषा, नाममाला और रूपमंजरी में भी मिलता है, जबकि अनेकार्थभाषा की रचना का कारण वे मनुष्य हैं, जो संस्कृत के शब्दों को समझने तथा उच्चारण करने में असमर्थ हैं,[१] नाममाला की रचना उनके लिए की गई है जो संस्कृत का उच्चारण नहीं कर सकते हैं एवं संस्कृत के नामों को जानना चाहते हैं[२] और रूपमंजरी में निहित प्रान्त्यार्य एवं सूक्ष्म मार्ग का वर्णन कवि ने उनके लिए किया है जो उस पर चलना चाहते हैं ।[३]

२२ अनेकार्थ भाषा में रचना का कारण देते समय नन्ददास का संकेत उन सभी व्यक्तियों की ओर ज्ञात होता है जो संस्कृत नहीं जानते । किन्तु इन व्यक्तियों में कुछ ऐसे होंगे जो संस्कृत जानना चाहते हैं और कुछ ऐसे भी होंगे जिन्हें संस्कृत जानने से कोई तात्पर्य न हो । अत: नाममाला में कवि ने स्पष्ट कर दिया कि वह उसकी रचना उन संस्कृत न जानने वालों के लिए करता है जो संस्कृत के नामों को जानना चाहते हैं । इस प्रकार के लोगों की संख्या संस्कृत न जानने वालों से कम होगी । इस प्रकार रचना के कारण के अन्तर्गत कवि का संकेत जहां एक ओर सामान्य से विशेष की ओर हुआ है वहीं दूसरी ओर उसका प्रयोजन एक से अधिक व्यक्तियों से होना ज्ञात होता है । यह भी प्रकट होता है कि इन व्यक्तियों से नन्ददास का मित्रता जैसा कोई सम्बन्ध नहीं रहा होगा, केवल ग्रन्थ रचना के कारण रूप में ही उनकी ओर संकेत किया होगा ।

२३ [illegible], रूपमंजरी और विरहमंजरी में रचना के कारण के अन्तर्गत कवि का संकेत प्रत्येक में यद्यपि एक व्यक्ति की ओर ही जान पड़ता है तथापि वास्तविकता यह है कि सर्वत्र उसका प्रयोजन उस पूरे वर्ग से था जो क्रमश: नायिका भेद जानने, सूक्ष्म मार्ग

१- न० ग्र० : पृ० ३०, दोहा संख्या ३ ।

२- वही पृ० ७६, दोहा संख्या २ ।

३- वही, पृ० १३८, पं० १० ।

पर चलने अथवा विरह को समझने का अभिलाषी था । विरहमंजरी में प्राप्त उल्लेख से यह बात स्पष्ट हो जाती है । विरहमंजरी में कवि दिखाता है कि श्री कृष्ण सदा वृन्दावन में रहते हैं, फिर भी उनके विरह का अनुभव ब्रजबाला को हुआ । नन्ददास ने [illegible] के श्रीकृष्ण-विरह की बात ग्रन्थारम्भ में ही कह दी :

ब्रजबाला विरहिनि भई कहत चंद सौं बैन ।।[१]

तथा श्रीकृष्ण के सदा वृन्दावन में रहने की बात भी कवि ने स्वयं ही कही है :

प्रसन भये कियौं सुन्दर स्यामा । सदा बसौं वृन्दावन धामा ।।[२]

यहां 'प्रसन भये' से तात्पर्य है कि सदा वृन्दावन में रहने पर भी श्रीकृष्ण का विरह कैसे हुआ --- इस प्रकार के प्रश्न लोगों ने किये । 'प्रसन भये' में 'भये' के बहुवचन के प्रयोग से प्रकट होता है कि प्रश्न करने वाले अनेक व्यक्ति थे । तब उत्तर देते समय भी उन सभी को संबोधित किया जाना चाहिए :

नन्द समाधत ताको चित्त । ब्रज को विरह समुझि लै मित्त ।[३]

अत: यहां मित्त से तात्पर्य एक व्यक्ति से न होकर उन सबसे होना, जिन्होंने प्रश्न किये हैं, असंगत नहीं ज्ञात होगा । इससे विरहमंजरी में नन्ददास का तात्पर्य किसी वास्तविक मित्र से नहीं, वरन् मनुष्यों के उस पूरे वर्ग से जान पड़ता है जो ब्रज विरह के प्रश्न का समाधान चाहता है ।

२४ रसमंजरी में रचना के कारण क्रम में मित्र का उल्लेख अधिक स्पष्ट रूप में मिलता है । फिर भी मित्र की वास्तविकता विषयक बात विरह मंजरी के समान ही ज्ञात होती है । रसमंजरी में कवि तथाकथित मित्र को सम्बोधित करते हुए कहता है :

तू तो सुनि लै रसमंजरी, नखसिख परम प्रेमरस भरी ॥[४]

उसी स्वर में विरहमंजरी में भी कहता है :

(१) प्रथम प्रतहि विरह तू कवि सुनि लै, तातें पुनि पलकान्तर सुनि लै ।[५]
(२) प्रवासि विरह के सुनि अवलच्छिन । बरनित होत तहं बढ़े विचच्छन ।[६]

१-२-३- नं० ग्रं०, पृ० १६२ ।
४- वही, पृ० १४५ । ५-६- वही, पृ० १६२ ।

तब विरह मंजरी की भांति ही रसमंजरी में भी मित्र कहने से कवि का प्रयोजन किसी वास्तविक मित्र से न होने की बात असंगत नहीं प्रतीत होगी । अर्थात् रसमंजरी में भी मित्र कहने से कवि का प्रयोजन किसी वास्तविक मित्र से नहीं वरन् उस पूरे वर्ग से रहा होगा जो नायिका भेद जानना चाहता है । इस सम्बन्ध में निम्नलिखित बातें भी द्रष्टव्य हैं :

(१) रसमंजरी की रचना जिसके आग्रह के कारण हुई है उसे कवि ने 'एक मीत' कहा है जिससे यह भ्रम होता है कि इसकी रचना कदाचित् एक व्यक्ति के लिए की गई है । रूपमंजरी ग्रन्थ के उल्लेख से भी ~~मूलतः~~ स्थूलतः यह प्रतीत होता है कि इसकी रचना उसके लिए की गई है जो एक सूक्ष्म मार्ग पर चलना चाहता है :

तिहि मधि इहि इक सुखिम रहै । सो निकि चलि जो चहि चलि चहै ।[१]

किन्तु यहां कवि का प्रयोजन प्रकृत्या एक व्यक्ति से न होकर उस पूरे जन समूह से है जो इसमार्ग[२] पर चलने का अभिलाषी है और न ही इसका प्रयोजन किसी मित्र से है। इसी प्रकार रसमंजरी में भी 'एक मीत' के उल्लेख से कवि का प्रयोजन मनुष्यों के उस एक समुदाय से हो जो नायिका भेद जानना चाहता है तो असम्भव नहीं । रही मित्र रूप में संकेत की बात, सो विरहमंजरी में भी तो मित्र रूप में ही संकेत है और उसमें मित्र से तात्पर्य मनुष्यों के एक वर्ग से है तो इसमें भी एक वर्ग विशेष से प्रयोजन होना असंगत नहीं होगा ।

(२) नाममाला, रसमंजरी, रूपमंजरी और विरहमंजरी में जिज्ञासु वृत्ति की ओर समान रूप से संकेत मिलता है । अतः इस दृष्टि से रचना का कारण भी समान है । ऊपर लिखा जा चुका है कि नाममाला, रूपमंजरी और विरहमंजरी में कवि का प्रयोजन वस्तुतः किसी मित्र से नहीं है । अतः रसमंजरी में ही किसी मित्र से प्रयोजन होने की बात उक्त सन्दर्भ में असंगत सी लगती है ।

(३) नाममाला[३] और रसमंजरी[४] दोनों ~~ही~~ ग्रन्थों की रचना संस्कृत ग्रन्थों के अनुसार की गई है और दोनों की ही रचना संस्कृत न जानने वालों के लिए की गई है । जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है कि नाममाला में नन्ददास द्वारा रचना का कारण

१- न० ग्र०, पृ० १२८ । २- वही, पृ० १२८, पं० ३८ ।
३- वही, पृ० ८४, चौथी पं० ३४ । ४- वही, पृ० १६१ ।

दिये जाने का संकेत किसी मित्र की ओर नहीं है । तब रसमंजरी में भी मित्रोल्लेख होते हुए भी वस्तुत: किसी मित्र से प्रयोजन न होना असम्भव नहीं और इस सम्बन्ध [सन्दर्भ] में मित्र के उल्लेख की बात कल्पित ही जान पड़ती है ।

(५) रसमंजरी के मित्रोल्लेख के स्पष्टीकरण के सम्बन्ध में कहा जा सकता है कि मित्र की ओर संकेत होने की बातें इस ग्रन्थ में परस्पर प्रतिकूल ज्ञात होती हैं । एक और कवि कहता है :

एक मीत हमसों अस गुन्यो । मैं नायिकाभेद नहिं सुन्यों ।।[१]

जिससे प्रकट होगा कि मित्र ने उक्त बात ग्रन्थ रचना के समय नहीं वरन् उससे पूर्व किसी समय कही है । दूसरी ओर मित्र को सम्बोधित करते हुए उसका कथन है :

तू तौ सुनि गै रसमंजरी । नख सिख परम प्रेम रस भरी ।।[२]

इससे स्पष्ट है कि वह मित्र ग्रन्थ रचना के समय कवि के सम्मुख उपस्थित है और उसी को सम्बोधित करके वह रसमंजरी सुनाता है । काल की दृष्टि से इस प्रकार के प्रतिकूल कथन से तो प्रतीत होगा कि रचना के कारण रूप में मित्रोल्लेख की बात कवि की कल्पना की उपज मात्र है । इसके अतिरिक्त यदि मित्र के आग्रह से ही रसमंजरी की रचना की गई होती तो उसमें वह बात व्यक्त न हो पाती जिससे प्रकट होता है कि इसकी रचना कवि ने स्वयं अपनी ही प्रेरणा से की होगी । कवि ने ग्रन्थ के आरम्भ में ही कहा है-- 'कि संसार में जो कुछ रूप, प्रेम और आनन्द रस है वह सब गिरिधर देव का है तथा उसका वह निसंकोच वर्णन करता है'[३] निजी प्रेरणा से इस ग्रन्थ की रचना होने की बात कवि के उस कथन से भी प्रकट होती है जिसमें उसने कहा है कि वह संस्कृत 'रसमंजरी' के आधार पर वनिताभेद का वर्णन करता है ।'[४] इसी बात का [illegible] [समर्थन] ग्रन्थ के अन्तिम दोहे से भी होता है :

इहि विधि यह रसमंजरी कही जथामति नंद,
पढ़त बढ़त अति चोप चित रसमय सुख को कंद ।[५]

१- नं० ग्रं०, पृ० १४४ । २- वही, पृ० १४५ । ३- वही, पृ० १४४:दोहा पं० ७
४- वही, पृ० १४६, दोहा पं० २४ । ५- वही, पृ० १६१ ।

२५ इस प्रकार प्रकट है कि रसमंजरी और विरहमंजरी में `मित्र` कहने से कवि का किसी वास्तविक मित्र से प्रयोजन नहीं ज्ञात होता है, वरन् यह बात ग्रंथ रचना का कारण देने के प्रयोजन के फलस्वरूप कवि-कल्पना प्रसूत ही जान पड़ती है ।

२६ इसके अनन्तर रासपंचाध्यायी में उपलब्ध मित्र विषयक उल्लेख विचारणीय हैं। रासपंचाध्यायी में कवि का कथन है :

परम रसिक एक मीत मोहि तिन आज्ञा दीनी ।
ताही तें यह कथा जथामति भाषा कीनी ॥ [१]

यहां `आज्ञा दीनी` और `भाषा कीनी` जैसे क्रिया के रूपों से उक्त कथन से पूर्व अर्थात् भूतकाल में ग्रन्थ रचना हो जाने का बोध होता है ।

२७ ग्रन्थ रचना के उपरान्त भी इस प्रकार के उल्लेख देने की आवश्यकता की ओर कवि का संकेत उपलब्ध होता है, जबकि सिद्धान्त पंचाध्यायी में रासपंचाध्यायी की सैद्धान्तिक व्याख्या करते समय उसने कहा है :

(१) नाहिंन कछु शृंगार कथा इहि पंचाध्यायी,
सुन्दर अति निरवृत्त परा तें इति बढ़ाई ॥[२]
(२) जे पंडित शृंगार ग्रंथ मत या में सानैं ।
ते कछु भेद न जानै हरि कौं विषई मानैं ॥[३]

इन कथनों से यह सहज ही प्रकट होता है कि भाषा में लिखे जाने पर रास पंचाध्यायी के शृंगार ग्रन्थ होने के आरोप का कवि को सामना करना पड़ा होगा जिसके प्रतिकारार्थ सिद्धान्त पंचाध्यायी में तो उक्त प्रकार से सफाई दी गई है, रास पंचाध्यायी में भी ग्रंथ रचना किसी परम रसिक मित्र की आज्ञा के कारण होने और उसकी कथा भागवत की पंचाध्यायी का यथासम्भव भाषानुवाद होने की बात का समावेश किया गया है । रास पंचाध्यायी की कथावस्तु पर पृथक रूप से विचार किया गया है, यहां यह कथनीय है कि जब रासपंचाध्यायी, दशमस्कंध भागवत के सम्बन्धित कथाओं का अनुवाद मात्र नहीं है, उसमें कवि कल्पना का भी प्रचुर समावेश मिलता है तो मित्र की आज्ञा से रचना करने के कथन में भी कल्पना का समावेश होने में कोई [illegible] नहीं दिखाई देती ।

२८ रासपंचाध्यायी में मित्र को परम रसिक कहा गया है और ये मित्र नन्ददास के आदरणीय होंगे, तभी तो उनकी आज्ञा से उन्होंने ग्रन्थ रचना की । किन्तु ग्रन्थावलोकन से विदित होता है कि रासपंचाध्यायी की रचना का वास्तविक कारण कवि की निजी प्रेरणा ही रही होगी, किसी की आज्ञा नहीं । यह बात अनेक स्थलों पर व्यक्त है :

(१) मोहन पिय की मलकनि ढलकनि मोर मुकुट की ।
सदा बसौ मन मेरे फरकनि पियरे पट की ॥[1]

(२) अघ हरनी मन हरनी सुन्दर प्रेम बितरनी,
नंददास के कंठ बसौ नित मंगल करनी ॥[2]

(३) यह उज्ज्वल रस माल कोटि जतननि कै पोई ।
सावधान ह्वै पहिरौ तोरौ जनि कोई ॥[3]

इनमें कवि की आत्ममुग्धता और अथक प्रयास जिस प्रकार वर्णित है वह किसी की आज्ञा के कारण चाहे वह मित्र की हो, ग्रन्थ रचना होने पर सम्भव न होता । जिस रास कथा के प्रति नन्ददास महत् मुग्धता प्रकट करते हैं तथा उसको कहते हुए भी नहीं कह पाते हैं[4] उसको किसी लौकिक मित्र की आज्ञा मात्र से भाषा में लिखने की बात की संभावना नहीं जान पड़ती है । साथ ही उक्त उद्धरण (३) के 'तोरौ जनि कोई' वाले वाक्यांश में 'कोई' के प्रयोग से प्रकट होता है कि कवि का प्रयोजन रसिकों के उस पूरे वर्ग से रहा होगा जो रास कथा जानने या सुनने का इच्छुक था, एक व्यक्ति या मित्र से नहीं ।

२९ यह भी उल्लेखनीय है कि कवि ने रसमंजरी और विरह मंजरी में [illegible] एकाधिक बार किया है और यहां तक कि मित्र को सम्बोधित भी किया है ~~यहां तक-कि-मित्र~~ तब भी जैसा कि ऊपर लिखा जा चुका है, कवि द्वारा मित्र का उल्लेख करने की बात उनमें कल्पित ज्ञात होती है तो रासपंचाध्यायी में भी जिसमें एक स्थल पर मित्र की आज्ञा मात्र का उल्लेख है, मित्रोल्लेख की बात को कवि-कल्पना कहा जाय तो असंगत नहीं होगा ।

१- नं० ग्रं०, पृ० २२ । २,३- वही, पृ० २५ ।
४- वही, पृ० २७, छंद ३० ।

३० इसके अतिरिक्त ~~सम्पादक के किसी मित्र का किसी वास्तविक व्यक्ति~~ होने को बात उनकी भावना के अनुकूल नहीं बैठती है, क्योंकि नन्ददास जी केवल श्रीकृष्ण को ही एकमात्र मित्र मानते थे हैं :

(१) मित्र मीत सब जगत के एकै सुन्दर स्याम ।
-- अनेकार्थ ~~मंजरी~~ भाषा ।[१]

(२) अवर भांति ब्रज कौ विरह बनै न क्यौं हू नंद ।
जिनके मित्र विचित्र हरि पूरन परमानंद ।।
-- विरहमंजरी,।[२]

कवि ने ग्रन्थों में पात्रों द्वारा भी श्रीकृष्ण को मित्र रूप में अभिहित किया है :

(१) अहो मीत अहो प्राननाथ यह अचरज भारी
काननि जो मरिहो करिहो काको रखवारो ।।[३]

(२) तू तो आहि मित्र को तेरो । एक मीत सौं नाहिन मेरो ।।[४]

(३) घर आवहु हरि मीत, छिन छिन छुति सौं लागि कैं ।।[५]

जब एक श्रीकृष्ण ही मित्र हैं तो किसी अन्य से मित्रता कैसी ? प्रेम तो एक चित्त से एक ही के साथ हो सकता है और वह गंधी का सौदा तो न नहीं है जो जन-जन के हाथ बिके :

प्रेम एक इक चित्त सौं, एक ही संग समाय ।
गंधी को सौदा नहीं जन जन हाथ बिकाय ।।[६]

३१ उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि नन्ददास के ग्रन्थों में मित्र का उल्लेख कवि कल्पना प्रसूत है और उनका समावेश रचना का कारण बनी के प्रयोजन के फलस्वरूप हुआ होगा । अतः रसमंजरी, विरहमंजरी और रासपंचाध्यायी में मित्रोल्लेख का, किसी व्यक्ति के साथ कवि की मित्रता से कोई सम्बन्ध नहीं ज्ञात होता है ।

१- नं० ग्रं०, पृ० ६२ । २- वही, पृ० १७२ ।
३- वही, पृ० १९८ । ४- वही, पृ० १३१ ।
५- वही, पृ० १७१ । ६- वही, पृ० १३३ ।

जीवन-सामग्री : बाह्य

३२ कवि की कृतियों से इतर, उसके जीवन चरित्र पर प्रकाश डालने वाली निम्न-लिखित सामग्री की गणना की जाती है :

(१) साहित्य लहरी, (२) भक्तमाल, (३) भक्त नामावली,
(४) मूल गोसाईं चरित, (५) वार्ता ग्रन्थ, और (६) सोरों सामग्री

अन्य जो भी सामग्री कवि के जीवन वृत्तों के रूप में दृष्टिगत होती है उसका आधार मूलत: उपर्युक्त सामग्री ही है। यह सामग्री भी भक्तमाल और भक्त नामावली को छोड़ कर ऐसी नहीं है कि कवि के जीवन वृत्त निर्धारण में उसका नि:संकोच रूप से उपयोग हो सके। भक्तमाल और भक्तनामावली में भी जो सूचनाएं दी गई हैं, मूलत: वे भक्त कवि के रूप में नन्ददास के काव्य की विशेषताएं ही प्रकट करने के लिए दी गई विदित होती हैं, कवि के जीवन चरित्र पर इनसे कोई विशेष प्रकाश नहीं पड़ता है। नीचे इस समस्त सामग्री पर विचार किया जाता है।

साहित्य लहरी

३३ सूर कृत तथाकथित साहित्य लहरी का १०९ वां पद निम्नप्रकार है :

मुनि पुनि रसन के रस लेख,
दसन गौरी नंद को लिखि सुबल संवत् पेखि,
नंदनंदन मास है ते हो तृतीया वार,
नंदनंदन जनम ते है बान सुख आगार,
तृतीय ऋक्ष सुकर्म योग विचारि सूर नवीन,
नंदनंदन दास हित साहित्य लहरी कीन ।।

इस पद में 'नंद नंदनदास हित साहित्य लहरी कीन' का कथन विचारणीय है। इस कथन के आधार पर कहा जाता है कि सूरदास ने साहित्य लहरी की रचना नंददास के लिए की थी[१] किन्तु साहित्य लहरी के विषय में सर्वप्रथम बात तो यह है कि इसके

१- [illegible] परिचय — [illegible] मीतल, पृ० १३२।

सूरकृत होने में भी सन्देह है।[1] यदि साहित्य लहरी की रचना सूरदास ने की भी हो तो उक्त पद की प्रामाणिकता असन्दिग्ध नहीं है।[2] ग्रन्थ के अलावा केवल उक्त पद के सूरकृत न होने पर तो पद की अन्तिम पंक्ति का प्रस्तुत प्रसंग में कोई प्रयोजन नहीं रह जाता है किन्तु यदि यह पद सूरकृत हो भी तो `नंदनंदनदास` से प्रयोजन वाले व्य कवि नन्ददास से होने का कोई युक्तियुक्त कारण दृष्टिगत नहीं होता, क्योंकि नन्ददास `नंदनंदनदास` भी कहे जाते हों, इसका कोई आधार नहीं है। `नंदनंदन` शब्द उपर्युक्त पद में तीनों पंक्तियों में प्रयुक्त हुआ है। तृतीय और चतुर्थ पंक्तियों में `नन्दनंदन` का स्वतंत्र अर्थ है जो उपरान्त के पद को मिलाने से प्रकट होता है। अतः इनमें `नंदनंदन` शब्द का अर्थ इसके अनन्तर आने वाले शब्द पर ही निर्भर है। तृतीय पंक्ति में यह प्रयोग `नंदनंदनमास` है तो मास को दृष्टिगत रखते हुए इसका प्रयोजन वैशाख मास से ज्ञात हुआ। चतुर्थ पंक्ति में `नंदनंदन जनम` है तो प्रसंग में `जनम` कृष्ण जन्म का अर्थ प्रकट करता है। अन्तिम पंक्ति में उसी नंदनंदन शब्द के अनन्तर `दास` शब्द आया है और उसी पर उक्त प्रयोगों की भांति ही `नंदनंदन दास` --इस पूरे पद समूह का अर्थ निर्भर है। अतः नंदनंदन दास कहने से कवि का प्रयोजन प्रकृत्या श्रीकृष्ण के दास अर्थात् भक्तों से है। कृष्ण के दास तो अष्टछाप के सभी कवि थे। अतः नन्ददास से ही इसका प्रयोजन मानने का कोई युक्तियुक्त कारण दृष्टिगत नहीं होता है। जान पड़ता है कि जिन विद्वानों ने इससे नन्ददास से प्रयोजन होने का अनुमान किया है उनका मत वार्ता के इस कथन से प्रभावित है कि नन्ददास, सूरदास के साथ कुछ समय तक साम्प्रदायिक ज्ञान और काव्यशास्त्र के अध्ययन के लिए रहे।[3] किन्तु इस प्रकार के आधारों पर उक्त पद में `नंदनंदन दास` से `नंददास` अर्थ निकालना दूर की उड़ान होगी। यदि रचयिता का प्रयोजन नन्ददास से ही होता तो वह नंदनंदनदास के स्थान पर नंददास लिख कर स्पष्ट संकेत करता।

३४ उक्त पद में साहित्य लहरी का रचनाकाल बताया गया है। इसमें मुनि -७, रसन - ०, रस - ६, दशनारीनन्द को - १ = संवत् १६०७ निकलता है। क्र०--

---

१- सूरदास, ब्रजेश्वर वर्मा, पृ० ११३।

२- अष्टछाप और वल्लभ संप्रदाय, डा० गुप्त, पृ० १०-१२।

३- सूरसौरभ - डा० [illegible] शर्मा, पृ० ७।

डा० मुंशीराम शर्मा ने इसे संवत् १६२१ लिखा है ।[1] डा० ब्रजेश्वर वर्मा जी ने संवत् १६७१ निकाला है।[2] डा० श्यामसुन्दरलाल दीक्षित ने संवत् १६२७ लिखा है ।[3] `नंदनंदनदास` का `नन्ददास` अर्थ लेने वाले विद्वानों ने इसी के आधार पर नन्ददास की दीक्षा और जन्मतिथियों का अनुमान लगाया है जो वैज्ञानिक अध्ययन के उपयुक्त नहीं होगा ।

भक्तमाल

३५ इसके रचयिता नाभादास हैं और उन्होंने इसमें नन्ददास का भी उल्लेख किया है :

> श्री नंददास आनंद निधि रसिक प्रभुदित रंगमगे ।
> लीला पद रसरीति ग्रंथ रचना में `नागर` ।
> सरस उक्ति युत युक्ति भक्ति रसगान उजागर ।
> प्रचुर पयध लौं सुजस रामपुर ग्राम निवासी ।
> सकल सुकुल संकलित भक्त पद रेनु उपासी ।
> चन्द्र हास अग्रज सुहृद परम प्रेम पथ में पगे ।

भक्तमाल का रचनाकाल संवत् १७१५ कहा जाता है ।[4] यही एक ऐसा ग्रन्थ है जिसके उल्लेखों को असंदिग्ध रूप से प्रमाण कोटि में ग्रहण किया जा सकता है, क्योंकि इसके रचयिता नाभादास, नन्ददास के नितान्त परवर्ती भक्त थे और उनका काल ~~संवत्~~ नन्ददास के अवसान काल के लगभग आरम्भ होता है ।

३६ उक्त पद में निम्नलिखित सूचनाएं प्राप्त होती हैं :

(१) `नन्ददास रसिक भाव से उपासना करने वाले भक्त थे` । रसिक का अर्थ रसशास्त्र में निपुण और मधुर भाव का उपासक दोनों हो सकते हैं । इससे लौकिक शृंगार में लिप्त पुरुष` -- यह अर्थ भी निकल सकता है किन्तु ऐसा अर्थ नन्ददास जैसे भ-

---

१- सूरसौरभ -- डा० मुंशीराम शर्मा, पृ० ७ ।
२- सूरदास -- डा० ब्रजेश्वर वर्मा, पृ० १२१ ।
३- कृष्णकाव्य में भ्रमरगीत - डा० श्यामसुन्दर लाल पृ० : 303 ।
४- महावीर सिंह गहलौत ; `कल्याण पत्रिका` वैशाख-आषाढ़ संवत् २००६, पृ० १२०।

भक्त के लिए नाभादास द्वारा प्रयोजनीय होना सम्भव नहीं जान पड़ता । नन्ददास के काव्य से विदित होता है कि उन्होंने श्रीकृष्ण का लीला गान रसिक रूप में किया है। इसीलिए नाभादास ने भी नन्ददास को रसिक रूप में अभिहित किया ।

(२) 'नन्ददास लीला पदों और रसरीति के ग्रन्थों की रचना में प्रवीण थे'। इससे प्रकट होता है कि उन्होंने लीला पद और रसरीति के ग्रंथों की रचना की है । उनकी उक्तियां सरस थीं और वे भक्ति रस गान में तल्लीन रहते थे ।

(३) नन्ददास भक्तमाल की रचना के समय तक बहुत प्रसिद्ध हो गए थे ।

(४) ये रामपुर ग्राम के निवासी थे ।

(५) वे सबसे अच्छे कुल के थे ।

(६) वे चन्द्रहास के अग्रज सुहृद थे ।

(७) वे परम प्रेमपथ के अनुगामी थे ।

३७ (१),(२) और (७) में प्राप्त सूचनाएं नन्ददास के काव्य से समर्थित हैं । (३) में स्वाभाविक सूचना है और इसमें संदेह नहीं कि नन्ददास अपनी मधुर भक्ति पूर्ण सुनियोजित कृतियों के लिए नाभादास के समय तक प्रसिद्ध हो गए होंगे । (४), (५) और (६) में उपलब्ध सूचनाएं अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं, जो अन्यत्र अनुपलब्ध हैं । 'रामपुर ग्राम निवासी' — के कथन में ग्राम और निवासी शब्द इस बात को प्रकट करते हैं कि नन्ददास किसी रामपुर ग्राम के निवासी थे ।

३८ 'सुकुल' के कथन से दो अपने अर्थों की सम्भावना विदित होती है : (१) नन्ददास शुक्ल आस्पद वाले ब्राह्मण थे (२) वे अच्छे कुल के थे । 'सुकुल' शब्द के पूर्व का 'सकल' पद विचारणीय है । यदि 'सुकुल का अर्थ 'शुक्ल' आस्पद लिया जाता है तो 'सकल' शब्द का प्रयोग अनावश्यक प्रतीत होगा जो सम्भव नहीं है । वस्तुत: 'सकल' पद सुकुल का विशेषण है । अत: 'सकल' सुकुल का अर्थ हुआ — 'सब प्रकार से अच्छा कुल' या 'सबसे अच्छा कुल' ।

३९ इसी प्रकार 'चन्द्रहास-अग्रज-सुहृद' के चार अर्थ निकाले जाते हैं —

(१) चन्द्रहास के बड़े भाई के मित्र १

१- [illegible] सार — [illegible] पृ० ४६, चतुर्थ संस्करण।

(२) चन्द्रहास के अग्रज और सुहृद ।[1]

(३) चन्द्रहास जिसके प्रिय बड़े भाई थे ।[2]

(४) प्रफुल्ल या प्रसन्नचित्त ब्राह्मण ।[3]

विचारणीय है कि नाभादास इस पंक्ति में नन्ददास का परिचय सामान्य रूप में दे रहे हैं और इस पद की अन्य पंक्तियों के साथ अन्तिम पंक्ति को पढ़ने से `चन्द्रहास अग्रज सुहृद` का अर्थ चन्द्रहास के अग्रज के मित्र-रूप में अनायास ही ध्वनित होने लगता है । किन्तु तत्कालीन साहित्य या इतिहास में चन्द्रहास नाम के किसी व्यक्ति का नाम तो नहीं ही मिलता है, किसी नाम के साथ `हास` जैसे पद के संयोग की प्रवृत्ति तब क्या, अभी तक भी सुनने को नहीं मिलती है । नाम के साथ `दास` और `हास` की कोई समानता भी नहीं है । ऐसी दशा में नाभादास द्वारा प्रयुक्त `चन्द्रहास` शब्द के व्यक्तिवाचक होने में संदेह उत्पन्न होना अस्वाभाविक नहीं होगा । यदि नाभादास को नन्ददास का किसी व्यक्ति से सम्बन्ध बतलाना अभीष्ट होता तो--चन्द्रहास के अग्रज का मित्र कहकर इतना दूरस्थ सम्बन्ध ही क्यों बतलाते, चन्द्रहास के अग्रज का नाम देकर `अमुक` के मित्र कहते । फिर चन्द्रहास भी तो कोई प्रसिद्ध व्यक्ति न था । इस वाक्यांश के अर्थ चाहे जितने निकाल लिए जायं किन्तु इतिहास ही नहीं तत्कालीन साहित्य इस बात का साक्षी है कि `चन्द्रहास` कहने से नाभादास का प्रयोजन किसी व्यक्ति के नाम से नहीं रहा होगा । चन्द्रहास शब्द का प्रयोग तुलसीदास ने भी किया है :

> चन्द्रहास हरु मम परितापं । रघुपति बिरह अनल संजातं ।
> सीतल निसि तव असि बर धारा । कह सीता हरु मम दुख भारा ।[4]

यदि तुलसी के उक्त कथन में चन्द्र हास शब्द से किसी व्यक्ति के नाम का बलात् प्रयत्न किया जाय तो और बात है अन्यथा तुलसी द्वारा भी इस प्रयोग के व्यक्ति-वाचक होने की बात कल्पना में भी नहीं आती है । फिर नाभादास जी के कथन में यह हठ क्यों बरता जाय कि `चन्द्रहास` नन्ददास के भाई का नाम ही है । जो नाभादास `रामपुर ग्राम निवासी` कहकर नन्ददास के निवासस्थान का परिचय स्पष्ट

१- अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय- डा० दीनदयालु गुप्त, पृ० ११८

२- नन्ददास ग्रन्थावली - बाबू ब्रजरत्नदास - भूमिका पृ० ११ ।

३- तुलसी की जीवन भूमि — चन्द्रबली पाण्डेय, पृ० २३१ ।

४- रामचरित मानस, पंचम सोपान, दो० १० ।

शब्दों में देते हैं, वे ही नम नन्ददास का किसी व्यक्ति से प्राप्त सम्बन्ध का या मैत्री सम्बन्ध का परिचय उक्त प्रकार के बहु अर्थव्यंजक पदावली में हैं-- यह असंगत सा जान पड़ता है, अन्यथा वे कवि के निवासस्थान को रामपुर न लिखकर 'दशरथकुल पुर' लिखते जिससे कम से कम चार अर्थ निकलते । प्रथम पंक्ति में, आनन्दनिधि, रसिक, प्रमुदित आदि शब्द नन्ददास की निजी विशेषताएं प्रकट करने के लिए प्रयुक्त हुए हैं । उसी प्रकार अन्तिम पंक्ति में 'चन्द्रहास अग्रज सुहृद' शब्द समूह भी उनकी व्यक्तिगत विशेषताओं को प्रकट करते हुए ज्ञात होते हैं । इस पद-समूह का सीधा सादा अर्थ है --- 'चन्द्रमा के प्रकाश की भांति श्रेष्ठ सखा'[1] अर्थात् अष्टसखाओं में उनका स्थान चन्द्रमा की भांति[2] था[3] । यही अर्थ उपयुक्त ज्ञात होता है । यह उल्लेखनीय है कि नन्ददास प्रमुख अष्ट सखाओं में थे और उनका परिचय देने में अष्टसखाओं में उनका स्थान दिखाना इसीलिए आवश्यक भी था । 'चन्द्रहास अग्रज सुहृद' के पश्चात् 'परम प्रेम पथ में पगे' का कथन नन्ददास के स्वकथन[4] से मेल खाता है और इस पथ से अभिप्राय पुष्टिमार्ग से था । अतः 'परम प्रेम पथ में पगे' होने से नाभादास का प्रयोजन पुष्टिमार्ग में दीक्षित होने से ही, विदित होता है । इस प्रकार पंक्ति के अन्तिम अंश को अर्थ व्यंजना से भी 'चन्द्रहास अग्रज सुहृद' का पूर्व निश्चित अर्थ ही समर्थित होता है ।

४० उक्त कथन में चन्द्रबली पाण्डे द्वारा गृहीत अर्थ भी ग्रहणीय नहीं है । [illegible] पाण्डेय जी चन्द्रहास का अर्थ करते हैं --- 'प्रफुल्ल', 'प्रसन्नचित्त' और [illegible] अग्रज का अर्थ लिया है 'ब्राह्मण' । किन्तु नाभादास 'नन्ददास आनन्दनिधि रसिक प्रमुदित रंगमगे' वाली पंक्ति में 'प्रमुदित' कह चुके हैं, जिसके उपरान्त प्रफुल्ल या प्रसन्नचित्त कहकर उसी विशेषण की पुनरावृत्ति करना नाभादास को अभीष्ट नहीं हो सकता । दूसरे जब प्रकार से उच्च कुल कहने में संकेत ही ब्राह्मण कुल से है, तब पुनः उन्हें 'अग्रज' शब्द द्वारा ब्राह्मण कहने की भी कोई आवश्यकता नहीं रह जाती है । अतः पद में प्रयुक्त शब्दावलि को देखते हुए भी 'चन्द्रमा के प्रकाश की भांति श्रेष्ठ सखा' वाला

१- चन्द्रहास का अर्थ 'चन्द्रमा का प्रकाश', अग्रज का अर्थ श्रेष्ठ या उत्तम और सुहृद का अर्थ है सखा ।

२- [illegible] कहा भी है, 'अष्टछाप में यदि सूरदास सूर्य हों तो नन्ददास [illegible] ही चन्द्रमा हैं' --- ब्रजमाधुरी सार, पृ० ४४ ।

३- नाभादास की दृष्टि में प्रसिद्ध अष्टसखाओं में सूरदास सूर्य की भांति श्रेष्ठ थे और इस बात को कहने की उन्होंने कोई आवश्यकता नहीं समझी क्योंकि सूरदास की

अं हो सर्वाधिक संगत जान पड़ता है ।

भक्त नामावली

४१ यह भक्त ध्रुवदास का कृत है, जिनका जन्म लगभग सम्वत् १६५० और निधन संवत् १७४० माना जाता है ।[१] भक्त नामावली में उन्होंने नन्ददास के जीवन चरित से-प्रसंग विषयक कोई सूचना नहीं दी है, केवल उनके सरस काव्य की प्रशंसा की है, जिससे यह अवश्य सूचित होता है कि नन्ददास रसिक स्वभाव के भक्त थे ।

मूल गोसाईं चरित

४२ ग्रन्थ की पुष्पिका[२] से विदित होता है कि यह ग्रन्थ वेणीमाधव दास कृत है । इसमें रचयिता ने नन्ददास का भी उल्लेख किया है जिसके अनुसार तुलसीदास संवत् १६४९-५० के लगभग वृन्दावन जाकर अपने शिष्य गुरुबन्धु नन्ददास कनौजिया से मिले:

> नंददास कनौजिया प्रेम मढ़े । जिन शेष सनातन तीर पढ़े ।
> सिक्षा गुरु बन्धु भयी तेहि ते । अति प्रेम सों आप मिले येहि ते ।[३]

४३ नन्ददास और तुलसीदास समकालीन थे । अत: इस प्रकार का मिलन असम्भव नहीं था । किन्तु उपर्युक्त कथन से यह स्पष्ट नहीं होता है कि नन्ददास कहने से आलोच्य कवि नन्ददास से ही प्रयोजन था अथवा किसी अन्य नन्ददास से जो कनौजिया थे । आलोच्य कवि नन्ददास अपने सरस और ललित काव्य के लिए प्रसिद्ध थे, इस ओर उक्त ग्रन्थ में कोई संकेत नहीं किया गया है । अत: इस बात की पूरी संभावना है कि चरित कार का प्रयोजन अष्टछाप के प्रसिद्ध कवि नन्ददास से भिन्न किसी अन्य नंददास से होगा जिसका पूरा नाम नन्ददास कनौजिया रहा होगा । किन्तु इधर मूल गोसाईं चरित को नितान्त अप्रामाणिक सिद्ध कर दिया गया है ।[४] अत: इस ग्रन्थ के इस कथन को कि नन्ददास और तुलसीदास गुरु भाई थे कहां तक सत्य माना जा सकता है, कदाचित यह कहने की आवश्यकता नहीं है ।

१-सूरदास-- डा० ब्रजेश्वर वर्मा, पृ० ३६ ।
२-इति श्री वेणीमाधव[illegible] कृत मूलगोसाईं चरित समाप्तम्' ।
३- मूल गोसाईं चरित, दोहा ७१ ।
४- तुलसीदास -- डा० माता[illegible]द गुप्त , पृ० ४४-६१ ।

वार्ताग्रन्थ

४४ वार्ताओं के अन्तर्गत दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता, अष्टसखान की वार्ता और गुसांई जी के चार सेवकन की वार्ताओं में नन्ददास विषयक उल्लेख उपलब्ध होते हैं। दो सौ बावन वार्ता की अनेक प्रतियों में से डाकोर वाली और भावना वाली प्रमुख हैं।

४५ संवत् १९९८ में अष्टछाप (प्राचीन वार्ता रहस्य, द्वितीय भाग) कांकरौली से प्रथम बार प्रकाशित हुआ। सम्वत् २००९ में पं० कण्ठमणि शास्त्री के सम्पादकत्व में यही द्वितीय भाग दूसरी बार प्रकाशित हुआ जिसका आधार संवत् १६९७ की वार्ता कही गई है और जहां कहीं भी भावप्रकाश से अन्तर हो गया है, उसको और भी यथास्थान उसमें संकेत उपलब्ध होता है। प्रस्तुत प्रसंग में इसी 'अष्टछाप' में संकलित नंददास की वार्ता के आधार पर विचार किया गया है और डाकोर वाली २५२ वार्ता की अपेक्षा इसमें जो भी न्यूनाधिक सूचनाएं मिलती हैं, उनका भी यथास्थान उल्लेख किया गया है।

४६ वार्ताओं के प्रवर्तक गोकुलनाथ जी और हरिराय जी दोनों का अभिप्राय 'इन वार्ताओं द्वारा पुष्टि सम्प्रदाय के आचार्यों और उनके भक्तों के महत्व की वृद्धि करना एवं उनका जीवन घटनाओं को इस रूप में उपस्थित करना था कि संप्रदाय के सेवक उनकी ओर आकर्षित होकर तदनुकूल आचरण करने की चेष्टा करें।'[1] पूर्ण वार्ता साहित्य के एक मात्र अध्येता डा० हरिहरनाथ टण्डन का भी कुछ ऐसा ही मत है : 'पुष्टि भक्तों के चरित्रों की विशेष उल्लेखनीय घटनाओं का वैष्णवों के सम्मुख निवेदन करना ही वार्ता साहित्य की सबसे बड़ी विशेषता है और उसका सबसे बड़ा महत्व है। वार्ताओं का मुख्य उद्देश्य वैष्णव समाज के सम्मुख चरित्र विशेष की उज्ज्वलतम घटनाओं के उल्लेख द्वारा उनका कल्याण था।'[2] इस प्रकार पुष्टि सम्प्रदाय के आचार्यों और उनके भक्तों के महत्व प्रदर्शन तथा धार्मिक कल्याण के लिए जो भी चारित्रिक घटनाएं सुनाई जाती होंगी, उनमें से बहुत सी कल्पित अथवा अतिरंजित भी हों तो साम्प्रदायिक दृष्टि से वे महत्वपूर्ण ही होंगी और श्रद्धाभाव के कारण भक्तों को चाहे सत्य प्रतीत हों किन्तु ऐतिहासिक दृष्टिकोण से भी उनका महत्व हो, यह आवश्यक नहीं है।

१- अष्टछाप परिचय : प्रभुदयाल मीतल, पृ० ६३।

२- वार्ता साहित्य : डा० हरिहरनाथ टण्डन, पृ० ५८२

४७ ऐसी दशा में वार्ताओं में आए हुए चरित्र विषयक उल्लेखों अथवा घटनाओं में से कल्पित अथवा अतिरंजित उल्लेखों को पृथक करके वास्तविकता के निकट पहुंचने की नितान्त आवश्यकता है। क्योंकि बिना ऐसा किए वार्ताओं में उल्लिखित सबके कथनों को यथावत् रूप में प्रामाणिक मानने के प्रति जितना ही आग्रह होगा, उतना ही सत्य से दूर हो जाना होगा।

४८ वस्तुतः इन चरित्र विषयक उल्लेखों अथवा घटनाओं में कल्पित अथवा अतिरंजित उल्लेखों को पृथक करके वास्तविकता के उद्घाटन की ओर विद्वानों का ध्यान नहीं गया है और प्रायः सभी ने वार्ताओं के गोकुलनाथ जी कृत होने के पक्ष-विपक्ष में ही युक्ति-युक्त मत व्यक्त करने की चेष्टा की है, जिसकी अब उतनी आवश्यकता नहीं रह गयी है जितनी विश्लेषण-परीक्षण द्वारा इस बात को प्रकट करने की कि इनमें सत्य का अंश कितना हो सकता है। सम्पूर्ण वार्ता साहित्य का ऐसा अध्ययन प्रस्तुत प्रसंग में न तो सम्भव है और न अभीष्ट, अतः उनमें उपलब्ध नन्ददास विषयक उल्लेखों के ही विश्लेषण-समीक्षण द्वारा वास्तविकता के निकट पहुंचने का प्रयास यहां किया जाता है।

४९ ऊपर दिए हुए वार्ताग्रन्थों में संकलित नन्ददास विषयक वृत्तान्तों से प्रमुखतः निम्नलिखित सूचनाएं उपलब्ध होती हैं :

(१) नन्ददास तुलसीदास के छोटे भाई थे।

(२) पुष्टिसम्प्रदाय में आने से पूर्व नन्ददास की लौकिक विषयों में घोर आसक्ति थी जिसकी पुष्टि सिंहनद ग्राम की क्षत्राणी पर आसक्ति की बात से की गई जान पड़ती है, किन्तु गोसाईं जी से दीक्षा ग्रहण करने पर यह आसक्ति छूट गई।

(३) नन्ददास ने भाग[illegible] की भाषा में लिखा और पंडितों के आग्रह पर, गुसाईं जी की आज्ञा से पंचाध्यायी के अतिरिक्त शेष ग्रन्थ को यमुना में प्रवाहित कर दिया। 'डाकोर वाली २५२ वार्ता' के अनुसार तुलसीदास जी की रामायण को देखकर नन्ददास के मन में भी भाग[illegible] भाषा करने की बात उठी, किन्तु ब्राह्मणों के आग्रह पर गुसाईं जी की आज्ञा से उन्होंने भागवत भाषा करने का विचार ही त्याग दिया।

(४) नन्ददास आरम्भ में तुलसीदास जी की भांति रामानन्दी सम्प्रदाय में थे । पीछे कृष्णभक्ति अपना ली और तुलसीदास ने उन्हें कृष्ण भक्ति से पराङ्मुख करने की निष्फल चेष्टा की ।

(५) कांकरौली से प्रकाशित `अष्टछाप` की नन्ददास विषयक वार्ता के कुछ प्रसंग में एक लौंडी की वार्ता दी गई है जिसमें नन्ददास की मृत्यु का उल्लेख प्रस्तुत है ।

५० उपर्युक्त सूचनाओं पर सामूहिक रूप से नीचे विचार किया जाता है :

वार्ता के आरम्भ ~~करने~~ में नन्ददास के विद्वान होने की बात कही गई है: `सो वे नंददास और तुलसीदास दोउ भाई हते । तामें बड़े तो तुलसीदास, छोटे नंददास, सो वे नन्ददास पढ़े बहुत हते ।`[१] इससे प्रकट है कि नन्ददास तुलसीदास से भी अधिक विद्वान थे । इसी लिए बहुत पढ़े होने की बात उन्हीं के लिए कही गई है । वार्ताकार की दृष्टि में यदि तुलसीदास नन्ददास के बराबर भी विद्वान होते तो कदाचित यह उल्लेख होता कि दोनों भाई पढ़े हुए थे । अत: नन्ददास तुलसीदास से भी अधिक विद्वान् ठहरते हैं । ऐसे विद्वान् का लौकिक विषयों में इतना आसक्त होने की बात कि अपना काम काज छोड़कर नाच, गाना, राग, रंग ~~ही~~ सुनने और तुलसीदास द्वारा बहुत समझाने पर भी न मानने की बात असंगत सी ज्ञात होती है । यह असंगति क्षत्राणी के प्रसंग में और भी मुखर हो जाती है, जबकि वे क्षत्राणी का मुख देखने के लिए रात्रिभर घर पर प्रतीक्षा करते हैं और प्रात: भक्त-सेवा-स्मरण करके तीसरे पहर तक क्षत्राणी के द्वार पर बैठे रहते हैं ।[२] यही नहीं, वार्ता में कथित विद्वान् और भक्त नन्ददास क्षत्राणी की लौंडी के पूछने पर [illegible] की भांति कहते हैं :`जो तुम्हारी सेठानी को एक बार मुंह देखूंगो तब अन्नजल करूंगो और मैंने तो काल्हि को जलपान कियो नहीं है ।`[३] इस पर भी क्षत्राणी ने शाम तक मुंह नहीं दिखाया और लौंडी द्वारा `मरी-छानी` का वृत्तान्त कहे जाने पर ही वैष्णव धर्म पालन हेतु वह द्वार पर आई । नंददास

१- अष्टछाप : कांकरौली, पृ० ५२५ ।

२- वही, पृ० ५३२-३३ ।

३- वही, पृ० ५३४ ।

उसका मुख देखकर चले गए । नित्य इसी प्रकार वे क्षत्राणी का मुख देख कर डेरे पर आते यद्यपि नन्ददास मुख देखने के लिए पूरे पूरे दिन द्वार पर बैठे रहते हैं और नित्य मुख देखकर जाते हैं तथापि क्षत्री को बहुत दिनों के उपरान्त यह बात ज्ञात होती है । इस पर भी प्रथम सम्बोधन में ही क्षत्री की जैसे नन्ददास की बुद्धिमत्ता और भगवन्-साक्षात् से, मन पढ़ने से ही परिचय हो, ऐसी बात कही गई है ।[१] इसका कारण वार्ताकार का, वास्तविकता के प्रति आग्रह जान पड़ता है जिसके परिणामस्वरूप नन्ददास को विद्वान्, सेवास्मरण करने वाला, बुद्धिमान तथा भलामानुष कहा गया है और जिसकी पुष्टि उनके काव्य एवं नाभादास के कथन से होती है । किन्तु वार्ताकार को वास्तविकता के जैसे प्रतिकूल हो जाना वांछित है । बेचारा क्षत्री उक्त बात के सारे गांव में फैलने से हंसी होने पर जब सकुटुम्ब गांव छोड़कर गोकुल को चुपचाप चल दिया तो नन्ददास नित्य की भांति उसके घर गए और ताला देखकर पड़ोसियों से उत्तर मिला-"जो अरे भले मनुष्य वे तेरे दुख के मारे सो हमारे पड़ोसी भाजि गए, सो उनने यह ग्राम छाड्यो ।"[२] विद्वान और बुद्धिमान नन्ददास का विवेक पड़ोसियों के उक्त करुणाजनक उत्तर पर भी नहीं जागा और वे उस क्षत्री के पीछे पीछे ही चल दिए । उसका पीछा नन्ददास ने तब तक नहीं छोड़ा जब तक क्षत्री ने उन्हें मल्लाहों से कह कर यमुना पार नहीं उतरने दिया और स्वयं गुसांई जी के पास पहुंच गया । क्षत्री को सम्मुख सामने देख कर गुसांई जी ने नन्ददास की चर्चा इस प्रकार की जैसे वे उनके ज्ञान और भक्ति से पूर्व परिचित हों : "जो तुम इतनी सोच काहे कों करत हो ? वह ब्राह्मण बहुत ही सुज्ञान है और दैवी जीव तातें तिहारे संग करिके याही भांति सो आयो है । सो बड़ो [illegible] होयगो । सो तुमको अब दुख न देगो ।"[३] बिना पूर्व परिचय के या किसी से सुने, नन्ददास की सुज्ञानता और भगवदीय होने की बात जान लेने की चमत्कारपूर्णता के साथ-साथ यहां यह द्रष्टव्य है कि गुसांई जी के मुख से वार्ताकार ने वस्तुस्थिति के प्रतिकूल कोई बात नहीं कहलाई और उनके कथन द्वारा नन्ददास की सुज्ञानता की ही पुष्टि की हुई ।

१- [illegible] : कांकरौली, पृ० ५५१ ।

२- वही, पृ० [illegible] ।

३- वही, पृ० [illegible] ।

५१ इससे प्रकट है कि वार्ता में एक ओर तो सत्य के आग्रह के कारण वार्ताकार नन्ददास को विद्वता और सुज्ञानता को नहीं छिपा पाया है और दूसरी ओर उसके विपरीत इतना मूर्ख बनाया है कि वे अपना विवेक, आचार और लोक लाज सब कुछ से हीन होकर क्षत्राणी के ऊपर आसक्त हैं। नन्ददास की विद्वता और सुज्ञानता का समर्थन वार्ता में उल्लिखित उनके पदों से तो प्रकट है ही, उनकी उच्चकोटि की कृतियां भी उसकी साक्षी हैं। अत: यह सत्य ही है तो नन्ददास जैसे विद्वान और सुविज्ञ भक्त को विवेकहीन और घोर आसक्ति से पूर्ण दिखाने की बात पर सहसा विश्वास नहीं होता है।

५२ स्मरणीय है कि यदि संघ के द्वारिका जाने की बात वार्ता में न दिखाई जाती तो नन्ददास का उसके साथ जाकर मार्ग भूलने और सीनन्द ग्राम में पहुंच कर क्षत्राणी पर अत्यन्त आसक्ति की बात भी नहीं दिखाई जा सकती थी। फिर क्षत्री को ग्राम छोड़कर गोकुल जाने की आवश्यकता और पीछे पीछे आने वाले लोकासक्त नन्ददास को यमुनापार जाते समय क्षत्री नन्ददास को नाव पर से उतार कर गुसाईं जी के पास तक साथ ही आने देता तो गुसाईं जी ~~के-परम-तक-सम्म-के~~ का वह माहात्म्य प्रकट नहीं हो पाता जो बिना पूर्व परिश्रम के उनकी चर्चा करने से हुआ। यदि लोकासक्ति के कारण नन्ददास को अत्यन्त विषयी न दिखाया जाता तो गुसाईं जी के दर्शन मात्र से नन्ददास की बुद्धि के निर्मल होने की बात नहीं कही जा सकती थी तथा उनके भगवदीय होने में गोसाईं जी की कृपा का अधिक महत्व नहीं रह जाता। इससे स्पष्ट है कि विद्वान, ज्ञानवान और भक्त नन्ददास को पतित दिखाने का कारण गोसाईं जी और पुष्टिमार्ग का महत्व प्रकट करना है। इस ओर वार्ता में भी स्पष्ट संकेत मिलता है :

'पाछें तुलसीदास ने श्री गुसाईं जी के पास आइके दंडौत करी, और हाथ जोरि के बिनती करी जो -- महाराज, पहले तो नंददास बड़े विषयी हते, परि अब तो आपकी कृपा तें बड़े भगवदीय भये हैं। जो अत्यन्त भक्ति याकों भई है। सो ताको कारन कहा है? तब गुसाईं जी ने तुलसीदास सों आज्ञा करी, जो यह नंददास तो उत्तम पात्र हतो। सो अब पुष्टिमार्ग में आइके प्रवृत्त भयो है। तातें याकी उत्तम अवस्था हूवै रही है।[१]

५३ उक्त कारण को यदि कोई निज सम्प्रदाय का भक्त पूछता तो वह महत्त्व न प्रदर्शित न होता जो उत्तर मार्गीय भक्त तुलसीदास द्वारा प्रश्न करने पर हुआ। इसी-लिए वार्ता की कतिपय घटनाओं के साथ तुलसीदास का सम्बन्ध जोड़ा गया जान पड़ता है और नन्ददास को तुलसीदास का भाई बता कर बड़ी सतर्कता से इस सम्बन्ध में संदेह के लिए कम से कम अवसर छोड़ने की चेष्टा की गई ज्ञात होती है।

५४ वार्ता के अनुसार नन्ददास क्षत्राणी पर आसक्ति से पूर्व ही इस प्रकार ईश्वरोन्मुख थे कि संघ के मथुरा में कुछ समय रहने के उपरान्त रणछोड़ जी के दर्शन करने की बात जानने पर वे अकेले ही दर्शनार्थ द्वारका जी के लिए चल दिए। इतना ही नहीं वे इस प्रकार भगवद् समर्पित थे कि भगवान की प्रेरणा से ही उन्होंने पहले अलौकिक सुख प्राप्ति के लिए रणछोड़ जी के दर्शन करने की बात सोची।[1] इससे तो यह भी विदित होता है कि उस समय भी नन्ददास अलौकिक सुख की ओर ही उन्मुख थे और यदि किसी लौकिक सुख की ओर उनका ध्यान था तो वह भी 'तीर्थ यात्रा' थी[2] जो अलौकिक सुख से ही सम्बन्धित है। अत: जिस नन्ददास द्वारा अलौकिक भाव की ओर ऐसी आकांक्षा व्यक्त की गई है, उसी की क्षत्राणी पर अत्यधिक आसक्ति दिखाने की बात निरी कल्पना ही प्रतीत होती है।

५५ तुलसीदास द्वारा यह जानने पर कि 'नन्ददास गुसाईं जी के सेवक हो गये, प्रसन्नता व्यक्त की गई है और उससे तो गुसाईं जी का महत्त्व प्रकट किया ही गया है, तुलसीदास द्वारा पतिव्रता धर्म छोड़ने का पत्र में उल्लेख किए जाने पर नन्ददास द्वारा भी पुष्टि सम्प्रदाय के उपास्यदेव कृष्ण के प्रति अत्यन्त आसक्ति दिखा कर उनका महत्त्व प्रकट किया गया है :

'मेरो विवाह प्रथम तो श्री रामचन्द्र जी सों भयो हतो, ता पाछें बीच श्री कृष्ण आ पोहोंचे, सो आय के छीनक ले गये। जो जैसे कोई लौकिक व्याह करि ले जाय, और कोई जोरावर लूटि लेय। सो तैसे [illegible] में बल हो तो मोकों श्रीकृष्ण कैसे ले जाते ? और श्री रामचन्द्र जी तो एक पत्नीव्रत हैं। सो दूसरी पत्नी कूं कैसे अंगीकार करें ? एक पत्नी हू बराबरि न संभारि सके, सो रावण हरि ले गयो'[3]

१- [illegible], पृ० १२८। २-वही, पृ० १३०।
३- वही, पृ० १३१।

५६ यहाँ विचारणीय है कि जो नन्ददास राम और कृष्ण में कोई भेद नहीं मानते हैं,[1] उनके विषय में उक्त प्रकार का कथन कहे जाने की बात कहाँ तक सत्य होगी, कहने की आवश्यकता नहीं । यह बात नहीं है कि तुलसी के दृष्टिकोण का ध्यान रक्खा गया हो । जान पड़ता है कि वार्ताकार को नन्ददास के दृष्टिकोण से कोई परवाह तो नहीं ही थी, अनन्यवादी तुलसीदास के दृष्टिकोण से भी कोई सरोकार नहीं था, अन्यथा कृष्ण की अनन्य भक्ति अपना लेने वाले नन्ददास से पुनः रामभक्ति ग्रहण करने के लिए तुलसीदास के दुराग्रह का उल्लेख वार्ता में नहीं मिलता । वस्तुतः वार्ता में तुलसी को इतनी संकीर्णता में डाल दिया गया है कि वे नन्ददास द्वारा पुनः राम की ओर आकर्षित न होने और कृष्ण की नाना भूमि विषयक चर्चा सुनने पर बिना कुछ कहे ही चल दिए :

'सो यह कीर्तन[2] तुलसीदास ने नन्ददास के मुख तें सुन्यो तब तुलसीदास ने नन्ददास सों न तो राम कह्यो न कृष्ण कह्यो तो तत्काल उहां ते उठि चले ।'[3]

५७ एक ओर तो तुलसीदास को गोकुल की शोभा पर मुग्ध दिखाया है : 'तुलसीदास श्री गोकुल को दर्शन करिकै बहोत प्रसन्न भये और मन में आयो तो ऐसो रमनीक भूमि छोड़ि के नंददास यहां ते कैसे चले गये।'[4] दूसरी ओर इसके सर्वथा विपरीत कथन है : 'ताते अबै तू एक तो मेरे संग चल । तहाँ गये पाछें मेरो मन प्रसन्न होइ तो तू अयोध्या में रहियो, नहीं तो चित्रकूट में नातरु फिरि इहां आइयो ।'[5] न नन्ददास ही उस समय अज्ञान थे और न तुलसीदास ही संकीर्ण दृष्टिकोण के, जो उक्त प्रकार का प्रस्ताव रखते । यथार्थतः नन्ददास की विद्वता, सुज्ञानता और भक्ति को तब तक सार्थक न होने देने का, जब तक वे पुष्टि सम्प्रदाय में नहीं आ गये, वार्ता का कथन पुष्टि सम्प्रदाय के महत्व को प्रकट करता है और तुलसीदास जैसे अन्य मार्गी भक्त द्वारा आकर्षण दिखाने पर भी नन्ददास द्वारा कृष्णभक्ति में ही रहने की बात दिखाने से पुष्टिमार्ग के सम्मुख अन्यमार्ग को पराजय दिखाने का भाव प्रकट होता है ।

१- ऊपर दे० पृ० 2 ।

२- जो गिरि रुचै तो बसौ श्री गोवर्धन, ग्राम रुचै तो बसौ नंदगाम ।
नंदगाम कानन रुचै तो, बसौ भूमि वृन्दावन धाम ॥- न०ग्र०, पद २२

३- अष्टछाप, कांकरौली, पृ० ३०१-३४ ।

४- वही, पृ [illegible] । ५- वही, पृ० [illegible] ।

पृ० वार्ता में नन्ददास द्वारा श्री मद्भागवत सम्पूर्ण भाषा करने का उल्लेख है। पंडितों को जब ज्ञात हुआ कि नन्ददास ने भागवत् भाषा की है तो वे गुसाईं जी के पास गए और उनसे, इससे जीविका की हानि होने की बात कही। उनकी बात सुनते ही गुसाईं जी ने नन्ददास से पंचाध्यायी रख कर, शेष ग्रन्थों को यमुना में प्रवाहित कर देने को कहा और नन्ददास ने उनकी आज्ञा का पालन किया। द्रष्टव्य है कि इतने बड़े भागवत् ग्रन्थ को नन्ददास ने भाषा में लिख लिया किन्तु गुसाईं जी को इस का पता ही नहीं। जो गुसाईं जी अपरिचित होने पर भी नन्ददास की सुज्ञानता और देवी ज्ञान होने की बात जान गये, जिसे कहकर उन्होंने यमुना पार करके आए हुए यात्री की चिन्ता दूर की, वही गुसाईं जी अत्यन्त सन्निकट रहने पर भी भागवत जैसे वृहद् ग्रन्थ को भाषा में लिखने की बात से अनभिज्ञ हैं और पंडितों से इस बात को सुनते हैं:

'तब श्री गुसाईं जी नंददास को बुलाई के कह्यो --जो जो हम सुने हैं जो--तैने श्री भागवत भाषा करी है?'[१] फिर, भागवत की भाषा में लिखना दिन या महीनों का काम तो नहीं था, वह तो वर्षों में पूरा होता, इस पर भी गुसाईं जी को ज्ञात न होने की बात असंगत जान पड़ती है। प्रतीत होता है कि वार्ताकार को किसी बात की संगति-असंगति से कोई सरोकार नहीं था। उसे तो नन्ददास द्वारा भागवत भाषा करने की बात दिखा कर और उससे जीविका की हानि होने से भयभीत पंडितों के आग्रह पर, पंचाध्यायी रखकर यमुना में प्रवाहित करने की बात दिखानी थी जिससे गुसाईं जी के प्रति नन्ददास की आज्ञाकारिता की गम्भीरता प्रकट हो। आलोच्य कवि नन्ददास की रासपंचाध्यायी का प्रारम्भ और अन्त इस प्रकार है कि वह एक स्वतंत्र रचना ज्ञात होती है, अत: भागवत की भाषा में से पंचाध्यायी को रखकर शेष को प्रवाहित करने की बात में कोई सार नहीं जान पड़ता है। भावप्रकाश वाली प्रति में तुलसी की रामायण भाषा को देखादेखी नन्ददास द्वारा भागवत भाषा लिखे जाने का उल्लेख है। जिससे यह स्पष्ट हो जाता है कि जिस प्रकार रामचरित को भाषा में प्रस्तुत किया गया उसी प्रकार कृष्ण चरित्र को भी भाषा में लिखने की बात कही गई और कृष्ण चरित्र के प्रचार के बाधक इन पंडितों के होने के कारण उसकी आवश्यकता न समझी गई तथा गुसाईं जी के प्रति नन्ददास के अनुशासन का भाव भी प्रकट हो गया। डाकोर वाली वार्ता प्रति के अनुसार गुसाईं जी की आज्ञा से भागवत भाषा करने का कार्य आरंभ ही नहीं किया गया, इससे भी गुसाईं जी के प्रति आज्ञाकारिता का भाव ही प्रकट होता है।

५६ छठे प्रसंग में अकबर और बीरबल के मथुरा आने और बीरबल का गुसाईं जी के दर्शन करने के लिए गोकुल जाने का उल्लेख है । साथ ही अकबर और बीरबल के मानसी गंगा पर डेरा डालने पर, बीरबल को नन्ददास से भेंट होने और तानसेन का अकबर के सामने नन्ददास कृत "निपट निकट" वाला पद[१] गाने का भी उल्लेख है । यहाँ तक तो घटनाओं की सत्यता में सन्देह न भी किया जाय तो भी, इसके "निपट निकट" की बात उठा कर एक लौंडी से नन्ददास की ऐसी प्रीति दिखाने पर कि लौंडी के प्राण छूटते ही नन्ददास का भी देहान्त हो गया हो, चमत्कारपूर्ण होने के कारण संदेह के लिए पर्याप्त अवसर है । फिर इन घटनाओं के कारण को और भी, अकबर द्वारा बीरबल से नन्ददास और लौंडी के प्राण छूटने का कारण पूछने पर बीरबल द्वारा संकेत दे दिया गया है, "इनने अपनो धर्म गोप्य राख्यो, जो--इस बात अपनो पूछो सो--यह बात तो कही न जाइ, जब ताईं न दिखाइ जाइ । तातें इनने अपने मन में राख्यो ।"[२] और गुसाईं जी द्वारा इस संकेत का स्पष्टीकरण हो जाता है, "वैष्णव कौ धर्म ऐसो ही है जो -- एसे गोप्य राखनो, और के आगे कहनो नाहीं ।"[३] इससे विदित होता है कि इस प्रसंग में वैष्णव धर्म की गोपनीयता का दृष्टान्त दिया गया है । इसीलिए नन्ददास और लौंडी की प्रीति दिखाई गई और अकबर द्वारा "निपट निकट" वाले गाने के रहस्य को पूछने पर नन्ददास तथा लौंडी के देह त्याग की बात कही गई प्रतीत होती है । इसमें ऐतिहासिकता केवल यही ज्ञात होती है कि नन्ददास की मृत्यु, बीरबल, अकबर और गुसाईं जी के जीवन काल में हो हो गई थी ।

१- देखो री नागर नट निरतत कालिंदी तट,
गोपिन के मध्य राजे मुकुट की लटक ।
काछनी किंकनी कटि पीतांबर को चटक,
कुंडल-किरन रवि रथ की अटक ।
तत थेई तत थेई सबद सटक घट,
उरप तिरप गति पाग की पटक ।
रास मध्य राधे राधे मुरली में येही रट,
"नंददास" गावै तहाँ निपट निकट ॥
—न० ग्रं०, पृ० ३६३।

२-अष्टछाप कांकरौली, पृ० ५५१ । ३-वही, पृ० ५५१-५५२ ।

६० अन्त में वार्ताकार ने लिखा है, "सो वे नंददास जी गुसांई जी के ऐसे—कृपा पात्र भगवदीय हे, और वह लांडी हू एसी भगवदीय भी। तातें इन नंददास की वार्ता को पार नहीं। सो कहां तांई लिखिए।"[१] इस प्रकार वार्ताकार ने गुसाईं जी के भगवदीय होने के उस कथन को, जो नंददास के शरण में आने से पूर्व कहा था, अन्त में सत्य दिखलाने का प्रयत्न किया है। इसमें 'लिखिए' के उल्लेख से प्रतीत होता है कि यह अंश लिपिकार का अपना है और इससे विदित होता है कि वार्ता में ऐसे अंश भी सम्मिलित हैं जिनको मूल वार्ताकार ने न कहा हो और सम्प्रदाय के आग्रहानुकूल परवर्ती भक्तों तथा लिपिबद्ध करने वालों ने सम्मिलित कर दिया हो, ऐसी सम्भावना के होते हुए भी वार्ता के कथनों को ज्यों के त्यों रूप में ग्रहण करना कहां तक संगत है, यह कहने की आवश्यकता नहीं है।

६१ ~~[illegible]~~ स्मरणीय है कि जिस प्रकार चत्राणी की लांडी द्वारा एक मलेछनी का दृष्टान्त देकर गुसाईं जी के प्रति मलेछनी के कृतार्थ होने की बात कही गई है,[२] उसी प्रकार वार्ताकार ने भी नन्ददास से सम्बन्धित कथनों का उल्लेख सम्प्रदाय के भक्तों के लिए दृष्टान्त रूप में ही किया हो तो असम्भव नहीं।

६२ उपर्युक्त विश्लेषण से प्रकट है कि वार्ता में तीन प्रकार के कथनों का समावेश है। एक प्रकार के वे उल्लेख हैं जो अन्तःसाक्ष्य तथा बहिर्साक्ष्य के अनुकूल पड़ते हैं और जिनकी सत्यता असन्दिग्ध है। जैसे :

(१) नन्ददास जी विद्वान और ज्ञानवान थे।

(२) वे विट्ठलनाथ जी के शिष्य थे, श्रीनाथ जी के समक्ष कीर्तन गान करते थे और उच्चकोटि के गायक थे।

(३) विट्ठलनाथ जी से दीक्षा ग्रहण करने से पूर्व वे व्रज गोकुल में नहीं रहते थे, उनका निवास स्थान कहीं अन्यत्र था।

(४) वे जाति के ब्राह्मण थे तथा सम्प्रदाय में आने से पूर्व ही भगवदोन्मुख थे और नित्य ठाकुर सेवा स्मरण करते थे।

६३ दूसरे प्रकार के वे उल्लेख हैं जिनका साम्प्रदायिक महत्व-प्रदर्शन से कोई संबंध नहीं जान पड़ता है और जिन्हें यदि इतर सम्प्रदाय का व्यक्ति भी कहता अथवा।

तब भी उनका क्रम वैसा ही रहता जैसा वार्ता में मिलता है। ऐसे उल्लेख विचार सम्मत हैं और अन्त:साक्ष्य अथवा बहिर्साक्ष्य से समर्थित न होने पर भी उनका किसी भी अन्त: साक्ष्य अथवा बहिर्साक्ष्य से कोई विरोध प्रकट नहीं होता है। इस प्रकार के उल्लेखों से प्राप्त सूचनाओं को केवल वार्ता के ही आधार पर सत्य मानना असंगत नहीं होगा। अत: कवि के जीवन वृत्त के निर्धारण में इनका उपयोग किया जा सकता है। ऐसी सूचनाएं हैं --

(१) तुलसीदास, नन्ददास से उम्र में बड़े थे।

तुलसीदास और नन्ददास का वंशगत कोई सम्बन्ध रहा हो अथवा न रहा हो, किन्तु इसमें सन्देह नहीं कि दोनों ही महानुभाव अपने जीवनकाल में ही अपने काव्य के कारण पर्याप्त प्रसिद्धि प्राप्त कर चुके थे। उस समय इन दोनों भक्तों से परिचित सभी लोगों को यह तो ज्ञात होगा ही कि तुलसी रामभक्त थे और नन्ददास कृष्ण-भक्त तथा तुलसीदास नन्ददास से उम्र में बड़े थे। यह बात उनके जीवन काल के उपरान्त भी प्रसिद्ध रही होगी। वार्ताकारों को, दोनों को भाई बताने से अपने सम्प्रदाय-गुरुओं और भक्तों के महत्त्व को प्रकट करने में चाहे सहायता मिली हो किन्तु उनके वय: क्रम को उलटने से उन्हें स्वभावतया कोई लाभ नहीं था। यदि वस्तुत: नन्ददास तुलसीदास से बड़े होते तो उनके वय: क्रम को उसी रूप में कहने में अपेक्षाकृत अधिक साम्प्रदायिक गौरव प्रकट होता और वे तुलसीदास को नन्ददास से बड़ा कदापि न कहते। अत: उम्र में तुलसीदास का नन्ददास से बड़ा होना निश्चित सा ज्ञात होता है।

(२) [illegible]स की मृत्यु अपने गुरु गुसांई विट्ठलनाथ जी के [illegible] में ही मानसी गंगा पर हुई थी।

नंददास द्वारा देह त्याग करने की बात जब वैष्णवों को ज्ञात हुई तो उन्होंने गुसांई जी को यह सूचना दी, "महाराज। नन्ददास जी ने तो मानसी गंगा पर या रीति सों देह छोड़ी।" नन्ददास द्वारा देह छोड़ने के वार्ताकार के उक्त कथन को [illegible] में भी किसी प्रकार के उलट फेर की सम्भावना नहीं है।

(३) वे सनाढ्य ब्राह्मण थे।

साम्प्रदायिक महत्त्व को प्रकट करने के लिए तुलसीदास को नन्ददास को ही जाति प्रदान करने की [illegible] चेष्टा [illegible] हो की गई हो किन्तु [illegible] की जाति की [illegible] से सम्बन्धी [illegible] का न तो पुष्टि सम्प्रदाय के आचार्यों और भक्तों के

कोई विरोध प्रकट होता है । नाभादास जी ने तो यह सूचित किया ही है कि नंददास सब प्रकार से अच्छे कुल के थे, फिर उनका यह अच्छा कुल सनाढ्य ब्राह्मण में हो तो उससे कोई असंगति नहीं ज्ञात होती है । अतः जब तक अन्य किसी प्रमाण पुष्ट साक्ष्य से उनके सनाढ्य ब्राह्मण होने का प्रत्यक्ष विरोध न हो, वार्ता के कथन को ग्रहण करने में कोई हानि नहीं है ।

६४ वार्ताओं में तीसरे प्रकार के वे उल्लेख हैं जो नन्ददास के काव्य में प्राप्त साक्ष्यों के प्रतिकूल बैठते हैं और अन्य बाह्य साक्ष्यों से भी उनका समर्थन नहीं होता है, साथ ही इस प्रकार के उल्लेखों का कई अंशों में प्रत्यक्ष विरोध भी प्रकट होता है । इस प्रकार के कथन साम्प्रदायिक प्रतिष्ठा तथा सम्प्रदाय के आचार्यों और भक्तों के महत्व को बढ़ा चढ़ाकर प्रकट करने के हेतु गढ़े गए ज्ञात होते हैं । जैसे, नन्ददास-तुलसीदास का भ्रातृ-सम्बन्ध, नन्ददास की क्षत्राणी पर घोर आसक्ति, नन्ददास के कहने पर श्रीनाथ जी का रामचन्द्र जी के रूप में तथा गिरिधर और जानकी जी का राम-जानकी के रूप में तुलसीदास जी को दर्शन देना, अकबर की लौंडी से नन्ददास की प्रीति और उसके देहत्याग करते ही नन्ददास द्वारा स्वयं भी देह त्याग करने का चमत्कारपूर्ण उल्लेख । इनपर ऊपर विचार किया जा चुका है । वस्तुतः इस प्रकार के उल्लेखों का वैज्ञानिक अध्ययन के अन्तर्गत कोई महत्व नहीं है । सत्य तो यह है कि वार्ता वार्ता-दृष्टान्त ही है और पुष्टि सम्प्रदाय के एकांगी रंग में रंगे होने के कारण किसी कथन की सत्यता से उसका कोई सम्बन्ध नहीं प्रतीत होता है और इसीलिए वार्ता का समर्थन करने वाले साक्ष्यों की [illegible] का प्रश्न ही नहीं उठता है । जो सूचनाएं वास्तविकता के निकट विदित होती हैं उनका भी अपना कोई विशेष महत्व नहीं है क्योंकि उनमें से अधिकांश कवि के काव्य से स्पष्ट हैं ही और काव्य के आधार पर ही लिखी गई प्रतीत होती हैं, इसके [illegible] कोई [illegible] सूचना जैसे, जन्म-तिथि, पारिवारिक जीवन इत्यादि की इसमें कोई चर्चा नहीं मिलती है । अतः अन्य किसी सामग्री के न होते हुए भी वार्ता के उन कथनों को जो अन्य प्रामाणिक साक्ष्यों से समर्थित नहीं हैं, और [illegible] दृष्टिकोण से [illegible] लिखे गये प्रतीत होते हैं, केवल वार्ता के आधार पर बलात् नन्ददास के सिर मढ़ना समीचीन नहीं होगा ।

६५ कांकरोली से प्रकाशित भावनावाली २५२ वार्ता में रूपमंजरी के प्रसंग में भी नन्ददास का उल्लेख उपलब्ध होता है । रूपमंजरी ग्वालियर की बेटी थी और पृथ्वी-

पति को लौंडी थी । उसके पास एक गुटका था जिसमें बड़ी सामर्थ्य थी और उसे मुख में रखकर वह नित्य गोवर्धननाथ जी के दर्शन के लिए जाती थी । उसका नन्ददास जी से बड़ा स्नेह था । नन्ददास जी ने उसके लिए बहुत से ग्रन्थ लिखे थे । उनके संग से रूपमंजरी को गोवर्धननाथ जी से ऐसी प्रीति बढ़ गई कि गोवर्धननाथ जी नित्य उसके महल में आकर उसे दर्शन देने लगे । किसी दिन वे न आ सकते तो वह उनके विरह में बहुत दुखी हो उठती थी । और तभी गोवर्धननाथ जी आकर दर्शन दे देते । गोवर्धननाथ जी रात्रि में उसके साथ चौपड़ खेलते थे ।

६६ वार्ता के उक्त कथन में कितनी सत्यता है यह वार्ता के इस कथन से प्रकट है कि गोवर्धननाथ जी उसके महल में आकर नित्य दर्शन देते और उसके साथ चौपड़ खेलते थे । इस विषय में अधिक कहना अनावश्यक है । नन्ददास और रूपमंजरी की प्रीति की बात में भी कोई वास्तविकता नहीं विदित होती है । क्योंकि इस प्रकार के कथन का आधार नन्ददास का रूपमंजरी ग्रन्थ प्रतीत होता है । जिस प्रकार कवि ने अपने ग्रन्थ में रूपमंजरी को बहुत सुन्दर कहा है, उसी प्रकार वार्ताकार ने भी कहा है, "सो रूपमंजरी को रूप बहुत ही सुन्दर हतो । धरती पर छाया परे । ऐसो वाको रूप ।"[1] संभव है कोई रूप-मंजरी नाम की स्त्री विट्ठलनाथ जी की शिष्या रही हो और नन्ददास की उससे भेंट हुई हो, किन्तु जैसा कि ऊपर लिखा जा चुका है नन्ददास जी ने जिस रूपमंजरी का वर्णन अपने इसी नाम के ग्रन्थ में किया है, वह कोई वास्तविक पात्र नहीं है । कवि की भावना के अनुरूप वह एक [illegible] पात्र है । वस्तुतः जैसा कि भावप्रकाशकार ने लिखा है, इस वार्ता का अभिप्राय यही है कि ठाकुर जी में प्रीति बढ़ाने के लिए भगवदीय वैष्णवों का संग निरन्तर करना चाहिए ।[2]

६७ वार्ताओं में गोवर्धननाथ जी के प्राकट्य की वार्ता का नाम भी लिया जा सकता है जिसमें नन्ददास जी का उल्लेख मिलता है । इसमें गोवर्धननाथ जी द्वारा रूपमंजरी के साथ चौपड़ खेलने और नन्ददास जी द्वारा उसके लिए रूपमंजरी ग्रन्थ की रचना करने का उल्लेख है जिस पर ऊपर विचार किया जा चुका है ।

१- दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता (तृतीय खण्ड) : कांकरोली, पृ० २३५ ।

२- श्री गोवर्धननाथ जी के प्राकट्य की वार्ता, पृ० ३०-३१ ।

सोरों-सामग्री

६८ आधुनिक काल में ही, सोरों जिला एटा और उसके आसपास नन्ददास के जीवन चरित्र विषयक निम्नलिखित सामग्री प्रकाश में आई है ।

(१) रामचरित मानस के बालकाण्ड और अरण्यकाण्ड की प्रतियाँ जिनका लिपिकाल संवत् १६४३ बताया जाता है। इन काण्डों की पुष्पिकाएं निम्न प्रकार हैं :

बालकाण्ड की पुष्पिका : "इति श्री रामचरित्र मानसे सकल कलि कलुष विध्वंसने विमल..... रामग्य संवादिनो नाम १ सोपान समाप्त: । संवत् १६५३ शाके . ....१५०८..... वासी नन्ददास पुत्र कृष्णदास हित लिखी रघुनाथदास ने कासीपुरी में ।"[1]

अरण्यकाण्ड की पुष्पिका : इति श्री रामायेन सकल कलि कलुष विध्वंसने वैराग्यै संपादिनो भट सुजन संवादे राम वन चरित्र वननो नाम तृतीयो सोपान आरन्य-कांड समाप्त ।।३।। श्री तुलसीदास गुरु की आज्ञा सों उनके भ्रातासुत कृष्णदास सोरों क्षेत्र निवासी हेत लिखित लछिमनदास कासी जी मध्येसंवत् १६४३ अषाढ़ सुद ४ शुक्रे इति।[2]

(२) नन्ददास के भंवरगीत की दो पन्ने अर्थात् चार पृष्ठ । इन चारों पृष्ठों में से एक अस्पष्ट होने के कारण पढ़ने में नहीं आता । शेष तीन पढ़े जा सकी हैं, उनमें से एक पुष्पिका है जो निम्न प्रकार है --

"भ्रमरगीत सम्पूरनम् वि ..... न नन्ददास भ्राता तुलसीदास के स्यामसरवासी सोरों जी म गै लिखितं कृष्णदास शिष्य बालकृष्ण आज्ञानुसार गुरु कृष्णदास बेटा नन्ददास नाती जीवाराम वे शुक्ल स्यामपुरी सनाढ्य...... रद्वाज गोतो सच्चिदानन्द के बेटा आत्माराम ...... के बेटा रामायन के करता तुलसीदास दूबे ...... टा [illegible] चन्द्रहास तिनके बेटा कृष्णद....स के बेटा कृष्णचंद पोथी लिखी माघ .....रोज चंद्रवार सम्वत् १६७२ शुभम्"[3]

पुष्पिका के उपरान्त निम्न प्रकार का उल्लेख है :

"न कियौ सौ यह लीला गाई याह रतमुंजा बंदौ तुलसीदास के बरना सानुज नंददास कल्प पुत्र रहना जिन पितु आत्माराम तुलसी पितामह रामकृष्ण जस गाए (?) द सुकल

१- तुलसीदास : डा० गुप्त, पृ० ८३ ।

२- रामचरितमानस : रामदत्त भारद्वाज, भूमिका, पृ० २३ ।

मन गुरु प्रवाना दासकृष्ण नाम सों जाना शुक्ल सनाढ्य तेज गुण राशा घन पुराण
श्यामपुर वासा बालकृष्ण में उन कर दा (सु) (सु) कर मंत्र ज्ञान प्रभ बासा......

(३) कृष्णदासकृत सूकरक्षेत्र माहात्म्य भाषा : इसका रचनाकाल संवत् १६१० का कहा जाता है।[१] इसमें कृष्णदास ने तुलसीदास को नन्ददास का चचेरा भाई, कमला को पत्नी और स्वयं को नन्ददास का पुत्र बताया है।[२]

उपर्युक्त सूकर क्षेत्र माहात्म्य भाषा की प्रति में ही उसकी पुष्पिका के नीचे मुरलीधर चतुर्वेदी कृत पांच छप्पय दिए गए हैं और उनके अनन्तर कृष्णदास वंशावली भी मिलती है। मुरलीधर रचित पांच छप्पयों में से चौथे छप्पय में नन्ददास का उल्लेख मिलता है जिसमें नन्ददास को तुलसीदास का चचेरा भाई और नृसिंह को दोनों का गुरु एवं तुलसी को रामपुरवासी तथा नन्ददास को श्यामपुरवासी कहा गया है।[३] कृष्णदास वंशावली में कृष्णदास के वंशजों के नाम मिलते हैं।[४]

(४) कृष्णदास कृत वर्षफल : इसकी पुष्पिका संवत् १८७२ की लिखी हुई मिलती है।[५] वर्षफल में संकल्प के अन्तर्गत चन्द्रहास को नन्ददास का भाई, जीवाराम को पिता और कृष्णदास को पुत्र कहा गया है। नन्ददास द्वारा सोरों स्थित रामपुर का नाम श्यामपुर किए जाने का भी इसमें उल्लेख मिलता है।[६]

(५) दोहा रत्नावली और रत्नावली लघु दोहा संग्रह :

ये तुलसीदास की पत्नी रत्नावली के दोहों के संग्रह कहे जाते हैं। दोहा रत्नावली में २०१ दोहे हैं और इसकी एक प्रति संवत् १८२४ में गोपालदास द्वारा और दूसरी प्रति संवत् १८२९ में गंगाधर ब्राह्मण द्वारा लिखी गई कही जाती है। रत्नावली लघु दोहा संग्रह में १११ दोहे संकलित हैं। ये सभी दोहे, दोहा रत्नावली के २०१ दोहों में से ही हैं। रत्नावली लघु दोहा संग्रह की भी दो प्रतियां हैं, एक संवत् १८१५ में पं० रामचन्द्र द्वारा और दूसरी संवत् १८७५ में पं० वैद्यनाथ द्वारा लिखी हुई कही

१-तुलसीदास : डा० गुप्त, पृ० १०८।
२-रत्नावली : पं० रामदत्त भारद्वाज, भूमिका पृ० २४।
३-तुलसीदास : डा० गुप्त, पृ० १०८-९।
४-'नन्ददास' : रामरतन भटनागर, पृ० ३९।
५-रत्नावली : पं० रामदत्त भारद्वाज, भूमिका, पृ० २४।
६-

गई है ।[१] इन दोनों में से एक दोहे में नन्ददास का भी उल्लेख होना कहा जाता है :

मोहि दीन्हों संदेश पिय अनुज नन्द के हाथ ।[२]

(६) रत्नावली चरित : इसकी रचना मुरलीधर चतुर्वेदी द्वारा संवत् १८२९ में होना कहा जाता है । दूसरी प्रति रत्नावली नाम से मिलती है और उसके रचयिता मुरलीधर चतुर्वेदी के शिष्य राम वल्लभ मिश्र हैं और इसका रचना संवत १८६४ में हुई बताया जाता है ।[3] इनमें एक स्थल पर नृसिंह को तुलसीदास और नन्ददास का गुरु[४] और एक अन्य स्थल पर नन्ददास चन्द्रहास द्वारा अपनी माता के पास रामपुर में रहने का उल्लेख किया गया है ।[५]

(७) गुसाईं जी के सेवक चारि अष्टछापी तिनकी वार्ता : यह प्रति संवत् १६९७ की बताई गई है । इसमें नन्ददास को गोकुल से लिवा लाने के लिए तुलसीदास द्वारा मथुरा पहुंचने मात्र का उल्लेख है ।[६]

(८) अविनाश राय रचित तुलसी प्रकाश के कुछ अंश[७] : इनमें नन्ददास विषयक कोई सामग्री नहीं आई है ।

(९) प्रियादास रचित भक्तिरस बोधिनी पर सेवादास की टीका । संवत १८८४ में यह लिखी कही गई है ।[८]

६६ उपर्युक्त सामग्री से नन्ददास के सम्बन्ध में निम्नलिखित सूचनाएं प्राप्त होती हैं:

(१) नन्ददास और तुलसीदास चचेरे भाई थे । नन्ददास जीवाराम के पुत्र और तुलसी आत्माराम के पुत्र थे । सच्चिदानन्द, परमानन्द, सनातन और पं० नारायण शुक्ल

१-२- रत्नावली : पं० रामदत्त भारद्वाज, भूमिका, पृ० २२-२३ ।
३- वही, पृ० २२ ।
४,५- पं० रामदत्त भारद्वाज : विशाल भारत, फरवरी १९३९, पृ० १८५ ।
६- तुलसीदास : डा० गुप्त, पृ० १२५ ।
७- वही, पृ० १२३-२९ ।
८- रत्नावली, रामदत्त भारद्वाज, भूमिका, पृष्ठ २४-२५ ।

क्रम से उनके पूर्व पुरुष थे। नन्ददास और चन्द्रहास सगे भाई थे तथा नन्ददास के पुत्र का नाम कृष्णदास और चन्द्रहास के पुत्र का नाम व्रजचन्द्र था। नन्ददास की पत्नी का नाम कमला था। जिससे प्रकट है कि चन्द्रहास नन्ददास के भाई, कृष्णदास पुत्र, जीवाराम पिता और कमला पत्नी थीं।

(२) तुलसीदास और नन्ददास दोनों ने गुरु नृसिंह से साथ साथ विद्या प्राप्त की थी।

(३) वे सनाढ्य ब्राह्मण थे।

(४) उनका निवासस्थान सोरों के निकट स्थित रामपुर ग्राम था जिसका नाम बदल कर पीछे नंददास ने श्यामपुर कर दिया था।

(५) एक बार तुलसीदास ने कृष्णदास के हाथ अपनी पत्नी रत्नावली को एक सन्देश भेजा कि मैं राम का स्मरण करता हूं, तू मुझे अपने से पृथक न समझना।

(६) तुलसीदास का विवाह होने तक नन्ददास और चन्द्रहास सोरों योगमार्ग में दादी के पास रहते थे और उनके विवाहोपरान्त दोनों अपनी माता के पास रामपुर में आकर रहने लगे।

(७) नन्ददास ने रासपंचाध्यायी और भागवत ~~दशम~~ के पदों की रचना की।

इस प्रकार सोरों सामग्री द्वारा नन्ददास के आरम्भिक जीवन के विषय में वे सूचनाएं प्रकाश में लाई गई जो अब तक अज्ञात थीं।

७० इस सम्पूर्ण सामग्री की बहिरंग और अन्तरंग एवं परीक्षा प्रत्येक दृष्टि से डा० माताप्रसाद गुप्त द्वारा की जा चुकी है।[१] अत: उसका पुनरुल्लेख अनावश्यक होगा। यहां नन्ददास विषयक उपयुक्त सूचनाओं को दृष्टिगत रखते हुए इस सामग्री पर विचार किया जाता है।

७१ सोरों सामग्री के [illegible] से सर्वप्रथम जिस बात की ओर दृष्टि जाती है, वह है नंददास का वंशक्रम और उनका पारिवारिक सम्बन्ध। इसमें भी नन्ददास का तुलसीदास और चन्द्रहास से भ्रातृ सम्बन्ध प्रमुख है। यदि किसी प्रकार यह सम्बन्ध निश्चित हो जाय तो अन्य बातों का निश्चय सहज हो ही सकता है।

१- [illegible] : डा० माताप्रसाद गुप्त, पृ० ८३-१२८।

७२ तुलसीदास-नन्ददास के भाई-भाई होने का उल्लेख २५२ वार्ता में भी उपलब्ध होता है। किन्तु उसमें यह नहीं कहा गया है कि वे चचेरे भाई थे। उसमें यह भी नहीं बताया गया है कि चन्द्रहास भी उनके भाई थे -- 'नंददास जी तुलसीदास के छोटे भाई हो।' वार्ताकार का अभिप्राय तो यही ज्ञात होता है कि तुलसीदास और नन्ददास सगे भाई थे और वे दोनों ही भाई थे। ऊपर लिखा जा चुका है कि तुलसीदास को नन्ददास का भाई बताने में वार्ताकारों का साम्प्रदायिक प्रयोजन रहा है, ऐतिहासिकता से उसका कोई सम्बन्ध नहीं जान पड़ता, यदि कोई सम्बन्ध ही होता तो नाभादास उसकी ओर संकेत करते। नाभादास जी ने दोनों कवियों की काव्य और व्यक्तित्व की प्रशंसा की है। दोनों प्रसिद्ध कवियों का परस्पर भाईभाई होना उल्लेखनीय बात होती और नाभा जी कम से कम एक के परिचय के साथ तो इसका उल्लेख करते। वार्ता की जिसकी किसी प्रकार से भी साम्प्रदायिक महत्व को बढ़ा चढ़ा कर दिखाने की प्रवृत्ति और भक्तमाल में उल्लेख का अभाव यह प्रकट करता है कि तुलसीदास और नन्ददास का उक्त प्रकार का कोई सम्बन्ध नहीं रहा होगा।

७३ सोरों सामग्री में तुलसीदास और नन्ददास के भ्रातृ सम्बन्ध की ओर सर्वप्रथम संकेत अरण्य काण्ड की पुष्पिका के अन्तिम वाक्य में मिलता है, जो संवत् १६४३ में लिखा गया कहा जाता है। किन्तु यह वाक्य शेष प्रति और पुष्पिका के उपरान्त लिखा गया जान पड़ता है।[१] इसके उपरान्त प्रमरगीत की प्रति में नन्ददास को तुलसीदास का भाई कहा गया है। पुष्पिका में इसका लिपिकाल संवत् १६७२ दिया गया है। इसके अवलोकन से तो जान पड़ता है कि इस प्रकार की पुष्पिका जानबूझ कर तुलसीदास तथा नन्ददास के तथाकथित सम्बन्ध की पुष्टि हेतु प्रस्तुत हुई है। इस पुष्पिका में संवत् १६७२ के अंक तो स्पष्ट हैं, किन्तु तिथि के स्थान पर कागज न रहने से उक्त संवत् के सत्यापन के प्रयास का कोई अवसर ही नहीं रह गया है।

७४ तुलसीदास और नन्ददास के भ्रातृ सम्बन्ध का स्पष्ट उल्लेख १६ वें विक्रमाब्द में लिपिबद्ध सोरों सामग्री में ही उपलब्ध होता है। जैसे, शिवलाल द्वारा लिखित कृष्णदास वंशावली (लिपिकाल सं० १८००)[२], दोहा रत्नावली --गोपालदास द्वारा लिपि-

---

१- तुलसीदास : डा० गुप्त, पृ० ६६।

२- वही, पृ० ६६।

बद्ध (संवत १८२४)[1] और गंगाधर ब्राह्मण द्वारा लिपिबद्ध (सं० १८२९)[2], रुद्रनाथ द्वारा लिखित कृष्णदास कृत वर्षफल (लिपिकाल १८७२)[3] ।

७५ इस प्रकार ज्ञात होता है कि सोरों सामग्री में तुलसीदास और नन्ददास के भ्रातृत्व का स्पष्ट उल्लेख उपर्युक्त १९वें विक्रमाब्द की प्रतियों में ही उपलब्ध होता है । इससे पूर्व की लिपिबद्ध सामग्री की प्राचीनता पर उनकी लिखावट की अस्वाभाविक विकृति और प्रकृति की भिन्नता एवं तिथि के अभाव में सहज ही विश्वास नहीं हो सकता है । अतः १९वें विक्रमाब्द में लिपिबद्ध सामग्री से स्पष्ट है कि इसमें तुलसीदास नन्ददास का सम्बन्ध दिखाने की बात वार्ता के उपरान्त की है । यदि वार्ता के ही कथन के आधार पर अथवा वार्ता के कथन की पुष्टि के लिए ही उपर्युक्त सामग्री में उक्त दोनों कवियों के भाई भाई होने का उल्लेख किया गया हो और बालकाण्ड, अरण्यकाण्ड तथा भ्रमरगीत की पुष्पिकाओं में भी तभी (१९वें वि० में) अथवा उसके उपरान्त किसी समय इस प्रकार के उल्लेखों को सम्मिलित कर दिया गया हो तो असम्भव नहीं ।

७६ नन्ददास-तुलसीदास के भाई भाई होने की वार्ता और सोरों सामग्री की बात की पुष्टि हेतु सोरों सामग्री से ही मिली कुछ श्री प्रभुदयाल मीतल जी की खोज में नन्ददास की निम्नलिखित तथाकथित रचना प्राप्त हुई है जिसमें मीतल जी के मतानुसार नंददास ने अपने ज्येष्ठ भ्राता के रूप में तुलसीदास की पदवंदना की है —

श्रीमत्तुलसीदास स्व गुरु भ्राता पद बंदे ।
शेष सनातन विपुल ज्ञान जिन पाइ अनंदे ।।
रामचरित जिन कीन, ताप त्रय कलिमल हारी ।
करि पोथी पर सही, आदरेउ आप मुरारी ।।
राखी जिनकी टेक, आप मदनमोहन धनुधारी ।।
बाल्मीकि अवतार कहत, जेहि संत प्रचारी ।।
नंददास के हृदय नयन को खोलेउ सोई ।
उज्ज्वल रस टपकाय दियौ, जानत सब कोई ।।[4]

१-२- गीतावली : रामदत्त भारद्वाज, भूमिका, पृ० २२ ।
३- वही, भूमिका, पृ० २९ ।
४- अष्टछाप परिचय : प्रभुदयाल मीतल, पृ० ३०२ ।

किन्तु श्री मोहन जी को ज्ञात ही होगा कि इस पद का उल्लेख उनसे पूर्व ही लाहौर से प्रकाशित होने वाले पत्र 'सुधाकर' के जनवरी १९३९ के विशेषांक में श्री गुरांदित्ता खन्ना के 'महाकवि नन्ददास सम्बन्धी एक नई खोज' शीर्षक लेख में हो चुका था। जिसमें खन्ना जी ने लिखा था कि, 'दो सौ बावन वैष्णवों की वार्ता नामक जो ग्रंथ है, उसे गोकुल नाथ जी ने लिखा था। उसके आधार पर नन्ददास को गोस्वामी तुलसीदास जी का भाई मानते चले आ रहे हैं। नाभादास जी के भक्तमाल में नन्ददास जी के भाई का नाम चन्द्रहास ही लिखा है, पर सबसे बड़ी और महत्वपूर्ण बात इस (रोला) रचना से जो सिद्ध होती है, वह यह है कि नन्ददास जी तुलसीदास जी के सगे भाई नहीं, गुरु भाई थे अर्थात् नन्ददास और तुलसीदास के गुरु महाराज एक ही थे नरहरि (नृसिंह) जी।'[1]

७७ खन्ना जी के उपर्युक्त कथन की प्रतिक्रिया के फलस्वरूप पं० रामदत्त भारद्वाज की लेखनी से यह निष्पक्ष बात अनायास ही निकल पड़ी कि 'इस पद्य-प्रमाण के समक्ष सामने 'वैष्णव वार्ता' का कोई महत्व नहीं रह जाता और इसका वर्णन ऐतिहासिक सत्य नहीं कहा जा सकता।'[2] किन्तु दूसरे ही क्षण वे प्रकृतिजात अपने स्वकल्पनीय साम्प्रदायिक दृष्टिकोण के प्रभाव में आकर लिखते हैं : 'किन्तु तुलसीदास जी के जीवनकाल के लिखे हुए दो सौ बावन वैष्णवों की वार्ता जैसे माननीय और प्रामाणिक ग्रन्थ को एक अप्रामाणिक रोला छन्द के भरोसे असत्य सिद्ध करने की चेष्टा करना उचित नहीं।'[3] यही नहीं वे इसकी अप्रामाणिकता भी सिद्ध कर देते हैं, 'उक्त रोला छन्द की आठ पंक्तियां अष्टछापान्तर्गत महाकवि नन्ददास की किसी पुस्तक में नहीं पाई जातीं। हां बाबा वेणीमाधव दास के नाम से रचित 'मूल गोसाईं चरित' नामक अनगढ़ पुस्तक के आधार पर अन्य किसी मत वाले नन्ददास की गढ़न्त प्रतीत होता है। यह महाकवि नन्ददास की कृति कदापि नहीं।'[4] अन्त में भारद्वाज जी को, गुरु भ्राता का अर्थ गुरु भाई के साथ साथ 'बड़ा भाई' लेकर काम चलाना पड़ा है, 'वास्तव में तुलसीदास और नन्ददास भाई भाई थे, और गुरुभाई भी थे और दोनों के गुरु महाराज नरहरि (नृसिंह) जी ही थे।'[5]

१- नवज्योत्स्ना ता : पं० रामदत्त भारद्वाज का 'महाकवि नामक लेख, पृ० १९, पृ० ९६३
२,३,४ और ५- वही, पृ० ९९४।

७८ स्मरणीय है कि नन्ददास रोला छन्द के विशेषज्ञ थे । उन्होंने इस छन्द में अपनी कला का उत्कृष्टतम उदाहरण प्रस्तुत किया है । इस छन्द को उन्होंने भावोत्कर्ष एवं भाषा माधुर्य को प्रस्तुत करने वाले ग्रन्थों की रचना के लिए ही अपनाया है । शैली की दृष्टि से भी इन पंक्तियों से नन्ददास की शैली के ढांचे में ढली होने का किंचित भी आभास नहीं मिलता है । इन पंक्तियों में तो परिचय देने की धुन में वंदना का कार्य कवि की वन्दना करने की प्रवृत्ति के प्रतिकूल हो गया है । नन्ददास ने श्री शुकदेव जी, श्रीकृष्ण एवं अपने गुरु की वन्दना अनेक स्थानों पर की है किन्तु कहीं भी वन्दना-व्यंजक शब्द को पंक्ति के अंतिम शब्द के रूप में नहीं रखा है । जैसे;

(१) वंदो कृपानिधान श्री शुभ कारो ।[१]

(२) तन्नमामि पद परम गुरु कृष्ण कमलदलनैन ।[२]

(३) नमो नमो आनन्द घन सुन्दर नन्दकुमार ।[३]

(४) प्रथमहि प्रनतु प्रेम मय परम जोति जो आहि ।[४]

(५) जै जै जै श्री कृष्ण रूप गुन कर्म अपारा ।[५]

(६) जयति रुक्मिनी-नाथ पद्मावती,प्रानपति विप्रकुलछत्र आनंदकारी ।[६]

७९ इसके अतिरिक्त श्रीमत्, स्व, राजी और नगन जैसे शब्दों का स्वभाव नन्ददास काव्य से मेल नहीं खाता है । अत: यह कहना ठीक ही है कि यह नन्ददास की रचना नहीं हो सकती । जब यह नन्ददास की रचना ही नहीं ठहरती है तो इसमें उल्लिखित बातों पर विचार करना आवश्यक है । किन्तु इन सबसे यह तो प्रकट होता ही है कि तुलसीदास और नन्ददास के परस्पर भाई भाई के सम्बन्ध को बनाये रखने के लिए भरसक प्रयत्न किये गये हैं । यदि वार्ता के अनुसार वे सगे भाई नहीं जान पड़ते तो सोरों की सामग्री के अनुसार वे चचेरे भाई तो हो सकते हैं । फिर यदि चचेरे भाई होने में संदेह हो तो उपर्युक्त रचना के अनुसार गुरु भाई मानने में क्या हानि है ? उस दिन की भी

१-न० ग्र०, पृ० १ छन्द सं० १ । २- वही, पृ० ७६ दो० सं० १ ।
३-वही, पृ० १३६, दोहा सं० १ । ४-वही, पृ० १२७ दोहा सं० १ ।
५-वही, पृ० ३८, छन्द सं० १ । ६- वही, पृ० ३२५, पद सं० ७ ।

आशा भी जा सकती है जब यह कहा जाने लगेगा कि वे तो गुरु भाई नहीं थे, तुलसी दास की गोकुल यात्रा के समय दोनों ने भाई चारा लगा लिया था । तब तो मानना ही पड़ेगा कि दोनों भाई भाई थे ।

नन्ददास और चन्द्रहास

८० सोरों सामग्री में नन्ददास को चन्द्रहास का भाई कहा गया है और सर्वप्रथम भ्रमरगीत की पुष्पिका में यह उल्लेख मिलता है । भ्रमरगीत की पुष्पिका की विश्वसनीयता पर ऊपर लिखा जा चुका है । इसके अनन्तर मुरलीधर चतुर्वेदी की सं० १८२९ की रचना 'रत्नावली-चरित' के एक दोहे में नन्ददास के साथ चन्द्रहास का भी उल्लेख मिलता है । कृष्णदास कृत कृष्णदास वंशावली में जो सूकरक्षेत्र माहात्म्य भाषा के साथ सं० १८१० या उसके उपरान्त किसी समय लिखी गई तथा सं० १८१२ में लिपिबद्ध वर्षफल में चन्द्रहास का उल्लेख किया गया है ।

८१ प्रकट है कि सोरों सामग्री में नन्ददास-तुलसीदास के भ्रातृत्व की भाँति ही चन्द्रहास का भी स्पष्ट उल्लेख १९ वें विक्रमाब्द में ही मिलता है । इससे पूर्व भक्तमाल में भी, [1]'चन्द्रहास अग्रज सुहृद' रूप में चन्द्रहास का उल्लेख मिलता है । चन्द्रहास अग्रज सुहृद के कथन में जैसा कि ऊपर लिखा जा चुका है, नाभादास का 'चन्द्रहास' कहने से प्रयोजन किसी व्यक्ति के नाम से नहीं था । जान पड़ता है कि भक्तमाल के इसी 'चन्द्रहास' शब्द को नन्ददास के भाई का नाम समझ कर सोरों सामग्री के निर्माताओं ने तुलसी और नन्ददास के भ्रातृत्व को बल प्रदान करने की दृष्टि से ग्रहण कर लिया है । क्योंकि ऐसा करने से उनकी सामग्री को नाभादास के भक्तमाल का तथाकथित समर्थन प्राप्त हो गया और उसके द्वारा तुलसीदास नन्ददास भाई भाई होने की वार्ता के कथन का अनुमोदन भी हो गया ।

८२ नंददास के ~~[illegible]~~ तथाकथित पुत्र कृष्णदास, पत्नी कमला, पिता जीवा राम एवं अन्य पूर्व पुरुषों के सम्बन्ध पर विचार करना प्रकृत्या संभव नहीं है । क्योंकि इनका समर्थन अन्य किसी भी सामग्री से नहीं होता है । किन्तु [illegible] है कि तुलसी दास और चन्द्रहास के साथ नन्ददास के उपर्युक्त सम्बन्ध को सोरों सामग्री के निर्माताओं

१- जिसका रचनाकाल संवत् [illegible] कहा जाता है, दे० ऊपर पृ० 22 ।

ने उक्त प्रकार से स्वच्छंद होकर व्यक्त किया है, जब कि उस सम्बन्ध को परीक्षा के अन्य साधनों से वे परिचित रहे होंगे । तब पुत्र, पिता, माता, पत्नी एवं पूर्वपुरुष जैसे सम्बन्धों को, जिनके वे ही शोधकर्ता हैं, प्रकट करने में महान स्वच्छन्दता का उपयोग हुआ हो तो असम्भव नहीं ।

८३ इसी प्रकार नन्ददास को सनाढ्य शुक्ल ब्राह्मण कहने का कारण वार्ता के ही आधार पर कहा गया जान पड़ता है ।

रामपुर और श्यामसर या श्यामपुर :

८४ उपर्युक्त सं० १६७२ में लिखी गई बताई जाने वाली भ्रमरगीत की पुष्पिका में नन्ददास को श्यामसर वासी कहा गया है । किन्तु सं० १७१५ में रचित भक्तमाल में नन्ददास को रामपुर ग्राम निवासी बताया है । यदि नन्ददास वस्तुतः श्यामसरवासी होते तो नाभादास जी अवश्य वैसा ही लिखते । किन्तु बात तब स्पष्ट होती है जब १९ वें विक्रमाब्द में लिपिबद्ध कृष्णदास कृत `कृष्णदास वंशावली` और `वर्षफल` तथा मुरलीधर चतुर्वेदी कृत छप्पय का अवलोकन किया जाता है । कृष्णदास वंशावली में उन्हें रामपुर ग्राम का निवासी बताया गया है, यद्यपि उनके तथाकथित पुत्र कृष्णदास तक का इस वंशावली में उल्लेख है तथापि कहीं भी श्याम सर नहीं लिखा गया है । रत्नावली चरित में भी उन्हें रामपुर का ही वासी दिखाया गया है । श्यामसर का कोई उल्लेख नहीं है । तो क्या इन ग्रन्थों के लिपिकाल तक श्यामसर या श्यामपुर को नन्ददास का वासस्थान नहीं माना जाता था ? कृष्णदास रचित वर्षफल (लिपिकाल सं० १८७२) में कहा गया है कि नंददास ने रामपुर का नाम ही बदल कर श्यामसर या श्यामपुर कर दिया था, किन्तु इससे पूर्व ही मुरलीधर चतुर्वेदी ने अपने छप्पय में स्पष्ट रूप से लिखा है, `तुलसीदास और नन्ददास दो भाई थे । एक सीताराम का भजन करता था, दूसरा घनश्याम का । एक रामपुर में रहता था दूसरा श्यामपुर में । एक ने राम कथा लिखी है, दूसरे ने भागवत के पद कहे हैं,` प्रकट है कि छप्पयकार के मत से रामपुर और श्यामपुर दो भिन्न ग्राम थे । मुरलीधर चतुर्वेदी ने यद्यपि तुलसीदास और नन्ददास को एक ही पितामह के वंशज होने की बात लिखी है तथापि इस सत्य का [illegible] उनकी लेखनी से आप ही हो गया कि तुलसीदास और नन्ददास दो भिन्न भिन्न स्थानों के रहनेवाले

थे । ~~इस प्रकार सोरों सामग्री में ही~~ इस प्रकार सोरों सामग्री में ही परस्पर प्रति-कूल कथनों का समावेश मिलता है । ऐसी सामग्री पर सहज ही विश्वास नहीं हो पाता है । प्रकट तो यही होता है कि नाभादास के कथन के आधार पर ही नन्ददास का निवासस्थान रामपुर बताया गया है और इस प्रकार भक्तमाल के समर्थन की प्रतीति दिखाते हुए नन्ददास द्वारा उसी ग्राम का नाम श्यामपुर रखने की बात गढ़ ली गयी है जिसका रहस्योद्घाटन मुरलीधर के उपर्युक्त छप्पय से भी जाता है ।

८५ परस्पर प्रतिकूल कथनों का एक और उदाहरण है, उसी भ्रमरगीत की प्रति में फिर उसके उपरान्त सूकरक्षेत्र महात्म्य भाषा में और कृष्णदास वंशावली में नंददास को सनाढ्य शुक्ल वंश का ब्राह्मण कहा गया है किन्तु कृष्णदास वंशावली में ही उन्हें `वल्लभ कुल वल्लभ` भी कहा गया है । नन्ददास सनाढ्य शुक्ल कुल से `वल्लभ कुल वल्लभ` कैसे हो गये, इस बात पर सोरों सामग्री में कोई प्रकाश नहीं डाला गया है । कदाचित् सोरों सामग्री के निर्माताओं ने यह समझ कर इस पर प्रकाश डालने की आवश्यकता न समझी हो कि रामपुर का जैसे श्यामपुर हो सकता है, वैसे ही `सनाढ्य शुक्ल कुल` का `वल्लभ कुल ` हो सकता है । जब तुलसीदास और नन्ददास का भ्रातृ सम्बन्ध ही असंदिग्ध नहीं है तो शेष सूचनाएं जिनमें तुलसीदास का नन्ददास के भाई से रूप में उल्लेख हुआ है, कैसे असन्दिग्ध हो सकती हैं ? एक बात सोरों सामग्री में अवश्य वास्तविक मिलती है, वह है उसका यह कथन कि नन्ददास ने `भागवत रास` और भागवत के पदों की रचना की, किन्तु इतना भी न लिखा जाता तो कैसे ज्ञात होता कि इस सामग्री के निर्माताओं का प्रयोजन अष्टछाप के कवि नन्ददास से ही है ।

८६ वस्तुत: सत्य यह है कि सोरों सामग्री का कोई भी अंश बहिरंग एवं अन्तरंग परीक्षाओं में खरा नहीं उतरता है ।[१] तथा इस सामग्री का विपुलांश तुलसीदास से सम्बन्धित है किन्तु तुलसी काव्य के साथ भी उक्त सामग्री की संगति नहीं बैठती है ।[२] अत: खेद का विषय है कि [illegible] से सम्बन्धित अपने ढंग की नवीन सूचनाएं देनेवाली उपर्युक्त सामग्री को इस कठोर तर्क के युग में तब तक नहीं ग्रहण किया जा सकता जब तक उससे सम्बन्धित समस्त सन्देहों एवं उसमें ही निहित प्रतिकूल कथनों का [illegible] नहीं हो जाता ।

१- [illegible]पांच : डॉ० [illegible], पृ० ६२-१२७ । २-वही, पृ० ११२-२८ ।

स्मरणीय है कि डा० रामदत्त भारद्वाज जी ने सोरों सामग्री से संबंधित स्वाभाविक सन्देहों का समाधान प्रस्तुत करने का प्रयास किया है[1] किन्तु उक्त सामग्री में आए हुए प्रतिकूल कथनों के समाधान की ओर उनका ध्यान नहीं गया है। डा० भारद्वाज जी ने जहां एक ओर सोरों सामग्री के आधार पर रामपुर को तुलसीदास और नन्ददास दोनों की जन्मभूमि बताया[2] है, वहां दूसरी ओर, जैसा कि ऊपर कहा गया है, सोरों सामग्री के अन्तर्गत परिगणित मुरलीधर चतुर्वेदीकृत कृष्णायन में आए हुए उस उल्लेख पर कोई टीका नहीं की है जिससे प्रकट होता है कि तुलसीदास रामपुर में और नन्ददास श्यामपुर में रहते थे, अर्थात् रामपुर और श्यामपुर दो भिन्न ग्राम थे। इसके अतिरिक्त कृष्णदास वंशावली में नन्ददास को जो सनाढ्य कुल वल्लभ के स्थान पर 'वल्लभकुल वल्लभ' कहा गया है उसका भी भारद्वाज जी ने कोई स्पष्टीकरण नहीं दिया है।

गोस्वामी तुलसीदास नामक ग्रन्थ में डा० भारद्वाज जी के सोरों सामग्री विषयक नवीनतम विचार मिलते हैं। इसमें भारद्वाज जी ने उक्त सामग्री के प्रति अपनी उसी धारणा को बल प्रदान करने की चेष्टा की है जो विद्वानों द्वारा इस सामग्री की परीक्षा के पूर्व उनकी थी। यहां उन्होंने अरण्य काण्ड, बालकाण्ड और भक्तमाल पर सेवादास की टीका की प्रतियों की हस्तलेख विशेषज्ञ द्वारा की गई परीक्षा में खरी उतरने का भी उल्लेख किया है,[3] किन्तु हस्तलेख विशेषज्ञ महोदय की रिपोर्ट से इतना तो प्रकट होता ही है कि इन प्रतियों में एक रंग की स्याही के ऊपर दूसरे रंग की स्याही फेरने और तिथियों के अंकों को पुनः लिखने का प्रयास हुआ है। उल्लेखनीय है कि इन प्रतियों के लिपि निर्धारण के विषय में हस्तलेख विशेषज्ञ द्वारा भी अंतिम रूप से कुछ नहीं कहा गया है।[4] इसके अतिरिक्त भ्रमरगीत की पुष्पिका पर जो अपनी प्रकृति के कारण अकेली ही सारी सोरों सामग्री के सन्देहास्पद होने की घोषणा करती प्रतीत होती है और जिसमें पक्ष और तिथि के स्थान का कागज रहस्यपूर्ण ढंग से निकल गया है, भारद्वाज जी ने कोई टीका नहीं की है।

१-गोस्वामी तुलसीदास : डा० रामदत्त भारद्वाज, पृ० 226-821। २-वही, पृ० ९९१-९२।
३- वही, पृ० २२८। ४- वही, पृ० ४६७ (परिशिष्ट)

निष्कर्ष :

८७ नंददास के जीवन चरित विषयक जिस सामग्री का ऊपर विवेचन किया गया है उसमें से कविकृतियां, भक्तमाल और भक्तनामावली के उल्लेखों को छोड़कर प्राय: सभी सामग्री जन-श्रुतियों पर आधारित हैं । वार्ताओं के विषय में कहा जाता है कि वे गोकुलनाथ जी द्वारा प्रणीत हैं । जब यह बात ऐतिहासिक दृष्टि से ठीक नहीं बैठती है तो यह कहा जाता है कि वार्ताओं को गोकुलनाथ जी ने कहा है, लिखा नहीं, लिपिबद्ध उनके शिष्यों ने किया । इसमें जितने भी चमत्कारपूर्ण अंश हैं उनके साम्प्रदायिक दृष्टिकोण से प्रचलित होने के कारण उन्हें ज्यों का त्यों ग्रहण नहीं किया जा सकता है । वार्ता का ही लगभग अनुगमन करने वाली सोरों सामग्री का भी जनश्रुतियों से अधिक महत्व नहीं है और इन्हें ग्रहण करने से पूर्व अत्यन्त सतर्कता बरतने की आवश्यकता है । इन दोनों स्रोतों पर ऊपर विचार किया जा चुका है ।

८८ इधर यह भी प्रचलित हो चला है कि सूरदास ने नन्ददास के लिए साहित्य-लहरी की रचना की थी । इस जनश्रुति का आधार कदाचित साहित्य लहरी के निर्माण तिथि विषयक प्रसिद्ध पद की अन्तिम पंक्ति 'नन्द[illegible]साहित' वाला कथन है । इस कथन को नन्ददास से सम्बन्धित होने की पुष्टि अब तक प्राप्त किसी साधन से नहीं हो पायी है । अत: इसे डा० ब्रजेश्वर वर्मा के शब्दों में, 'अनावश्यक कल्पना मानने में कोई हानि नहीं है ।'[१] उक्त कथन के ही आधार पर यह भी प्रसिद्ध है कि पुष्टि सम्प्रदाय में आने के उपरान्त सूरदास ने नन्ददास को चन्द्रसरोवर (पार सोली) में अपने पास छ: महीने तक रक्खा । उन्हें विद्या का घमण्ड था । सूर ने दैन्य की शिक्षा दी और विद्यामद दूर किया । उसी समय उन्होंने नन्ददास के लिए साहित्य लहरी की रचना की । इसके अनन्तर सूरदास ने नन्ददास में गृहस्थ भावना देखकर उन्हें घर जाने के लिए प्रेरणा दी, परन्तु नन्ददास तैयार नहीं हुए, तब उन्होंने स्पष्ट शब्दों में कह दिया— जब तक तुम घर जाकर गृहस्थाश्रम का उपभोग न कर लोगे तब तक लीला का साक्षात्कार न कर सकोगे । तुम्हारे हृदय में अभी वैराग्य पूर्ण नहीं है । एक बार गृहस्थाश्रम का उपभोग कर लो, साथ ही वहाँ पुष्टिमार्ग का प्रचार करना ।

१- सूरदास : डा० ब्रजेश्वर वर्मा, पृ० ९५ ।

८९ सूरदास और नन्ददास दोनों अष्टछाप के भक्त थे । सूरदास आयु, अनुभव और साम्प्रदायिक ज्ञान में नन्ददास से बड़े बड़े थे । अत: सूरदास के ज्ञान और अनुभव का लाभ नन्ददास ने उठाया होगा, इसमें सन्देह नहीं किया जा सकता, किन्तु साहित्य लहरी की रचना उनके लिए ही किए जाने की बात पीछे दिए गये विवेचन को दृष्टिगत रखते हुए असंगत है । रही गृहस्थाश्रम में पुन: जाने की बात । ``बात लौकिक तजी`` वाले नन्ददास के पद[1] से यह आभास मिलता ही है कि नन्ददास पुष्टि सम्प्रदाय में आने से पूर्व गृहस्थाश्रम में ~~[illegible]~~ भी रह चुके होंगे । इसके प्रकाश में यह असंगत नहीं कि वे पुन: गृहस्थाश्रम में लौट गए हों । किन्तु वे अल्प समय के लिए ही इस बार ब्रज गोकुल से बाहर गृहस्थाश्रम में रहे होंगे, क्योंकि दीक्षोपरान्त के उनके पदों से ज्ञात होता है कि वे विट्ठलनाथ जी के नित्य निकट ही रहा करते थे और अन्य पदों से यह भी प्रकट होता है कि वे ब्रज गोकुल को छोड़ कर कहीं नहीं जाते थे ।

९० यह भी सुना जाता है कि नन्ददास-तुलसीदास भाई-भाई थे । इसका आधार कदाचित २५२ वार्ता का वह कथन है जिसमें नन्ददास को तुलसीदास का छोटा भाई कहा गया है । इस सम्बन्ध में विस्तार से ऊपर विचार किया जा चुका है और इसमें ऐतिहासिकता का इतना आग्रह तो ज्ञात होता है कि दोनों कवि समकालीन थे और तुलसीदास नन्ददास से आयु में बड़े थे ।

`इस बात की किम्वदन्ती भी मानसी गंगा पर सुनने को आती है कि यहीं पर नन्ददास का गोलोकवास हुआ था और वे यहां अपनी यशकाया से निवास करते हैं ।[2]

९१ नंददास के ललित काव्य की महत्ता के विषय में भी [illegible] सुनने में आती हैं, जिनसे नन्ददास के काव्य में रुचि रखने वाला प्रत्येक सहृदय परिचित होगा । जैसे `और सब गढ़िया नंददास जड़िया`, `और कवि गढ़िया नंददास जड़िया तो अन्य पाल-शिया` आदि । सहृदय पाठकों को कवि के काव्य से इनकी सत्यता का प्रमाण स्वत: ही मिल जाता है, अधिक कहने की आवश्यकता नहीं ।

१- [illegible] ग्र० पृ०, पृ० ३२८, पद सं० ९६ ।

२- [illegible] और वल्लभ सम्प्रदाय : डा० गुप्त, पृ० २६० ।

जीवन चरित

६२ गत परिच्छेदों में नन्ददास के जीवनवृत्त विषयक जिस सामग्री पर विचार किया गया है, प्राय: वही उनके जीवन के विषय में जिज्ञासा रखने वाले सभी विद्वानों के सम्मुख आधारभूत सामग्री के रूप में आई है। अत: नीचे आगामी परिच्छेदों में कवि के जीवन वृत्त निर्धारण करते समय उपर्युक्त सामग्री का तो उपयोग किया ही गया है, साथ ही उन सभी आधुनिक विद्वानों के विचारों का भी यथास्थान ध्यान रक्खा गया है जिन्होंने इस सामग्री के आधार पर अपने मत व्यक्त किए हैं।

जन्म, दीक्षा एवं देहावसान काल

६३ जैसा कि ऊपर दिए गए विवेचन से स्पष्ट है, कवि की कृतियों में कोई भी ऐसा उल्लेख नहीं मिलता है जिसमें उनकी जीवन घटनाओं की तिथियों की ओर संकेत किया गया हो। बहिर्साक्ष्य में भी इस प्रकार का कोई उल्लेख दृष्टिगत नहीं होता है जिसकी सहायता से उक्त तिथियों के विषय में इदमित्थम् कहा जा सके। ऐसी दशा में निश्चित तिथियों का पता लगाना यद्यपि संभव नहीं है तथापि अन्तर्साक्ष्य एवं बहिर्साक्ष्य में उपलब्ध तत्सम्बन्धी कतिपय उल्लेखों का अवलम्ब ग्रहण करके जीवन की प्रमुख घटनाओं -- जन्म, दीक्षा और [illegible] के काल-बिन्दुओं के यथासम्भव निकट पहुंचने का प्रयास क्यों नहीं होगा।

६४ नन्ददास की जन्मतिथि लिखने का आधुनिक प्रयास करने वाले सर्वप्रथम व्यक्ति हैं शिवसिंह सेंगर विदित होते हैं। उनके सरोज में नन्ददास का जन्म संवत् १५८५ लिखा हुआ है।[१] किस आधार पर उन्होंने यह संवत लिखा है, इसका कोई [illegible] सरोज में नहीं दिया गया है। अत: इस विषय में कुछ नहीं कहा जा सकता। सरोजकार के ही अनुसरण पर डा० [illegible]र जी वर्मा ने भी, नन्ददास का जन्म संवत् १५८५ ही लिखा है।[२] [illegible]ओं ने कवि का कविता काल सं० १६२३ के लगभग माना

१- शिवसिंह सरोज : शिवसिंह सेंगर, पृ० ४४२।

२- हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास : डा० वर्मा, पृ० ५५१।

३- [illegible] विनोद (प्रथम भाग) : [illegible] पृ० २८१।

है ।[1] मिश्रबन्धुओं के इस कथन का आधार कदाचित सन् १६०३ ई० की नागरीप्रचारिणी सभा की वह खोज रिपोर्ट थी जिसमें नन्ददास कृत अनेकार्थ भाषा का रचनाकाल सं० १६२४ दिया गया है, जिसकी वास्तविकता में कोई असम्भावना नहीं दिखाई पड़ती । आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने भी नन्ददास का कविता काल सं० १६२५ या उसके और आगे तक मानने के पक्ष में अपना मत व्यक्त किया है ।[2] आचार्य जी का मत भी उपर्युक्त खोज रिपोर्ट पर ही आधारित जान पड़ता है ।

६५ पो० कण्ठमणि शास्त्री जी ने एक ओर तो कांकरोली के इतिहास में नन्ददास का जन्म संवत् १५७० के लगभग अनुमान किया है,[3] दूसरी ओर अष्टछाप (प्राचीन वार्ता रहस्य) में संवत् १५६० होने का अनुमान किया है,[4] किन्तु इन अनुमानों का कोई आधार नहीं दिया है जिस पर विचार किया जा सके ।

६६ बाबू ब्रजरत्नदास जी ने संवत् १६०० के आसपास या विशेष कुछ पहले ही नन्ददास जी का जन्मकाल होने की बात कही है ।[5] बाबू जी ने यह समय रत्नावली के उस दोहे के आधार पर निकाला है जिसमें रत्नावली ने कहा है कि अनुज नन्द के हाथ प्रिय ने मेरे लिए सन्देश भेजा ।[6] यह स्पष्टत: तुलसीदास नन्ददास के भ्रातृ सम्बन्ध पर आधारित है और इस संबंध की अप्रामाणिकता की ओर पीछे संकेत किया जा चुका है । यहां अधिक कहना अनावश्यक होगा ।

६७ नन्ददास का जन्म संवत् खोजने के प्रयास से सम्बन्धित डा० दीनदयालु गुप्त जी का मत विशेष उल्लेखनीय है, क्योंकि जबसे नन्ददास की जन्मतिथि विषयक गुप्त जी का मत प्रकाश में आया है, तब से नन्ददास के सभी आलोचकों ने उसी का अनुमोदन किया है । हां बाबू ब्रजरत्नदास जी इसमें अपवाद स्वरूप हैं, जिनके मत की ओर ऊपर संकेत

१-मिश्रबन्धु विनोद (प्रथम भाग) : मिश्रबन्धु, पृ० २८१ ।
२-हिन्दी साहित्य का इतिहास : शुक्ल, पृ० १७४ ।
३-कांकरोली का इतिहास : पो० कण्ठमणि शास्त्री, पृ० १२० ।
४-अष्टछाप : कांकरोली, पृ० 12 (ऐतिहासिक दृष्टि में अष्टछाप नामक शीर्षकान्तर्गत) ।
५-न० ग्रं० [illegible] पृ० ३८ ।

किया जा चुका है । गुप्त जी के अनुसार नन्ददास जी का जन्म संवत् १५९० और दीक्षा संवत् १६१६ आता है ।[१] उन्होंने इन संवतों को सूरदास की तथाकथित रचना साहित्य लहरी के उस पद के आधार पर निकाला है, जिसकी अन्तिम पंक्ति में `नंदनंदनदासहित साहित्यलहरी कीन` लिखा गया है । पीछे विस्तार में लिखा जा चुका है कि साहित्य लहरी की रचना नन्ददास के लिए नहीं, वरन् कृष्णभक्तों के लिए की गई है और `नंद-नंदनदास` से `नंददास` अर्थ लगाने की कल्पना का कोई प्रमाण पुष्ट आधार उपलब्ध नहीं है । अतः नन्ददास के जन्म और दीक्षा के संवत् संयोग से चाहे वे ही निकलें जो गुप्त जी ने कहे हैं, किन्तु साहित्य लहरी के आधार पर उनका निर्धारण पीछे कहे गये कारणों से अवास्तविक होगा । यही बात उन विद्वानों के मतों के विषय में भी कही जा सकती है जिन्होंने साहित्यलहरी का ही आधार ग्रहण करते हुए गुप्त जी से भिन्न मत निर्धारण करके नन्ददास का दीक्षा काल संवत् १६०६ के लगभग और संवत् १६०७ माना है ।[२]

९८ दो सौ बावन वार्ता में नन्ददास को तुलसीदास का छोटा भाई कहा गया है। यह बात जनश्रुति में भी प्रचलित है । इस सम्बन्ध में ऊपर लिखा जा चुका है कि नन्ददास तुलसीदास के भाई तो नहीं, समकालीन अवश्य थे और तुलसीदास से आयु में छोटे थे । तुलसीदास का जन्म संवत् १५८९ में माना जाता है। इससे ज्ञात होता है कि नन्ददास का जन्म संवत् १५८९ के पूर्व नहीं, तुलसी की जन्मतिथि के पश्चात् ही किसी समय हुआ होगा ।

९९ पीछे जहां एक ओर यह कह आये हैं कि अनेकार्थ भाषा की रचना संवत् १६२४ में हुई है, वहीं दूसरी ओर यह भी कहा जा चुका है कि कवि के दीक्षा काल और इस ग्रन्थ के रचनाकाल में अधिक से अधिक एक वर्ष का अन्तर रहा होगा । इस प्रकार अनेकार्थ भाषा के रचनाकाल और उसमें उल्लिखित कवि के कथनों के अनुसार उसका दीक्षा काल संवत् १६२३ आता है और जैसा कि ऊपर लिखा जा चुका है, कवि द्वारा अपने सम्प्रदाय गुरु गोस्वामी विट्ठलनाथ जी की स्तुति में दीक्षा काल के आस पास रचे गये पदों के अवलोकन करने पर भी यही संवत् आता है । अतः १६२३ ही नन्ददास की दीक्षा तिथि का निकटतम संवत् ज्ञात होता है ।

१-अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय : डा० गुप्त, पृ०

२-अष्टछाप : कांकरोली पृ० १२ (ऐतिहासिक दृष्टि से अष्टछाप नामक शीर्षकान्तर्गत) ।

३-... परिचय : प्रभुदयाल मीतल, पृ० २०६ ।

१०० ऊपर अब और भी संकेत किया जा चुका है कि अनेकार्थ भाषा की रचना कवि के यौवन काल में हुई होगी, वस्तुत: कवि का कथन निम्नप्रकार है :

'बयस जु यौवन जात है भजि लै मदन गोपाल'[१]

इससे प्रकट होता है कि अनेकार्थ भाषा की रचना कवि के यौवनकाल के उस भाग में हुई जिसमें मनुष्य को स्वभावत: यौवन को खोने का अनुभव होने लगता है। साधारण स्थिति में इस प्रकार का अनुभव ३५ वर्ष की आयु के आस पास का होना आरम्भ होता है। इस प्रकार यदि अनेकार्थ भाषा की रचना के समय नन्ददास की आयु कम से कम ३५ वर्ष की भी रखें तो उनका जन्मकाल अनेकार्थ भाषा के रचनाकाल (१६२४) में से ३५ वर्ष कम करने पर संवत् १५८९ आता है, यही तुलसीदास का जन्म संवत भी है।[२] किन्तु हम अभी अभी कह आये हैं कि नन्ददास का जन्म संवत्, तुलसीदास के जन्म संवत् अर्थात् १५८९ के उपरान्त का हो सकता है। ऐसा संवत् १५९० हो आता है, क्योंकि इसकी संगति इस दृष्टि से भी बैठती है कि नन्ददास समकालीन होते हुए आयु में तुलसीदास से छोटे थे और इसलिए भी कि अनेकार्थ भाषा की रचना के समय नन्ददास की स्वभावत: जो कम से कम आयु होनी चाहिए, उसमें और इसमें न्यूनातिन्यून अन्तर है। अत: नन्ददास का जन्म संवत् १५९० ही ठहरता है।

१०१ नन्ददास के देहावसान काल को ज्ञात करने के लिए भी विद्वानों ने अनेक प्रयास किये हैं। पो० कण्ठमणि शास्त्री जी ने एक ओर संवत् १६४० के लगभग[३] कवि का देहावसान माना है दूसरी ओर सं० १६४२ भी माना है।[४] अपने अनुमानों के आधारों की ओर शास्त्री जी ने कोई संकेत नहीं किया है। बाबू ब्रजरत्नदास जी ने सं० १६६२ के पहले नंददास की मृत्यु होने की बात लिखी है। उन्होंने लिखा है कि 'नंददास का देहावसान अकबर के समय में हुआ था और अकबर की मृत्यु सं० १६६२ में हुई थी।'[५] किन्तु बाबूजी का मत अनिश्चित है क्योंकि सं० १६६२ से कितने समय पूर्व

१- म०ग्रं०, पृ० ५२।
२- तुलसीदास : डा० गुप्त, पृ० १४०।
३- कांकरोली का इतिहास : कण्ठमणि शास्त्री, पृ० १२० ब।
४- अष्टछाप (प्राचीन वार्ता रहस्य) : कण्ठमणि शास्त्री पृ० १२ (ऐतिहासिक दृष्टि में अष्टछाप नामक शीर्षकान्तर्गत)
५- न० ग्रं०, भूमिका, पृ० २६।

नन्ददास की मृत्यु हुई, यह स्पष्ट नहीं किया है। डा० दीनदयालु गुप्त जी के मत से नन्ददास की मृत्यु संवत् १६४३ से पहले होनी चाहिए, क्योंकि उनकी मृत्यु बीरबल के जीवन काल में ही हुई थी और बीरबल की मृत्यु संवत् १६४३ में कश्मीर की लड़ाई में हुई थी।[1] गुप्त जी ने भी किसी निश्चित संवत् की ओर संकेत नहीं किया है। श्री प्रभुदयाल मीतल जी के अनुसार नन्ददास की मृत्यु अनुमानतः सं० १६४० के लगभग हुई होगी, क्योंकि उनके देहावसान के समय विट्ठलनाथ जी विद्यमान थे।[2] प्रो० कृष्णदेव का भी इसी प्रकार का मत है, 'गोस्वामी विट्ठलनाथ की मृत्यु सं० १६४२ में हुई। अतः नन्ददास इससे पूर्व संवत् १६४० के लगभग ही गोलोकवासी हुए होंगे।'[3] डा० प्रेमनारायण टण्डन लिखते हैं, 'विट्ठलनाथ जी का गोलोकवास संवत् १६४२ में और बीरबल का देहावसान संवत् १६४३ में होना सर्वमान्य है। अतएव नन्ददास का गोलोकवास भी सं० ~~१६४३ में [illegible]~~ १६४२ के कुछ पूर्व होना चाहिए। अनुमान से यह संवत् १६४१ माना जा सकता है।'[4]

१०२ ऊपर वार्ता-ग्रन्थों पर विचार करते समय यह भी कह आये हैं कि नन्ददास की मृत्यु गोस्वामी विट्ठलनाथ जी के जीवन काल में ही हो गई होगी। गोस्वामी विट्ठलनाथ जी की मृत्यु संवत् १६४२ में हुई थी।[5] अतः नन्ददास का देहावसान काल संवत् १६४१ होने में कोई असम्भावना नहीं ~~[illegible]~~ ज्ञात होती है।

जन्म, दीक्षा एवं देहावसान की तिथियों पर प्रकाश पड़ने के साथ साथ, पिछले कहे गये आधारों के अनुसार नन्ददास का शेष जीवन चरित्र निम्न रूप में सामने आता है।

जन्मभूमि और निवासस्थान

१०३ भक्तमाल में नन्ददास नामक दो भक्तों का उल्लेख मिलता है। एक के विषय

१- अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय : डा० गुप्त, पृ० -
२- अष्टछाप परिचय : श्री प्रभुदयाल मीतल, पृ० ३०६।
३- अष्टछाप के कवि नन्ददास : प्रो० कृष्णदेव, पृ० २१।
४- रासपंचाध्यायी, भूमिका, पृ० ५३ : प्रेमनारायण टण्डन।
५- अष्टछाप परिचय : श्री प्रभुदयाल मीतल, पृ० ५३।

में नाभादास जी ने केवल इतना लिखा है, `नाभा ज्यों नंददास भुई, एक बच्छ जिवाही`
प्रियादास जी ने इस पर एक कवित्त की टीका की है, जिससे ज्ञात होता है कि ये बरोली निवासी एक भक्त थे और खेती करते हुए साधु सेवा में लगे रहते थे। किसी दुष्ट ने बछवा मारकर उनके द्वार पर सुला दिया था, जिसे उन्होंने जिला दिया। स्पष्ट है कि ये बरोली निवासी नन्ददास, अष्टछाप के कवि नन्ददास नहीं हो सकते क्योंकि ये व्यवसायी कहे गए हैं और इनके कवि होने का संकेत तक नहीं है। दूसरे नन्ददास जी को रामपुर ग्राम का निवासी कहा गया है और इनके विषय में यह भी कहा गया है कि ये लीला पद तथा रसरीति ग्रन्थों की रचना करने में चतुर थे। यहां नाभादास का प्रयोजन अष्टछाप के प्रसिद्ध कवि नन्ददास से ही था। अत: नाभादास जी के अनुसार नंददास जी का निवासस्थान रामपुर ग्राम ठहरता है जिसे सभी विद्वानों ने एक मत से स्वीकार किया है। खेद का विषय है कि नन्ददास के रामपुर के ग्राम की स्थिति निर्धारण के लिए अभी तक कोई प्रमाण पुष्ट आधार उपलब्ध नहीं हो सके हैं।

१०४ उल्लेखनीय है कि पुष्टि संप्रदाय में प्रवेश के अनन्तर नन्ददास जी प्राय: गोकुल और उसके आस पास की श्रीकृष्णलीला स्थलियों में ही रहते थे और इन स्थलियों को छोड़कर वे अन्यत्र कहीं नहीं जाते थे। यह बात उनके अनेक पदों से प्रकट होती है जिसको ओर ऊपर संकेत किया जा चुका है। वार्ता के इस कथन में भी कोई अत्युक्ति नहीं जान पड़ती है कि वे मानसी गंगा पर भी रहते थे और वहीं पर उनकी मृत्यु हुई थी।

१०५ इससे प्रकट है कि नन्ददास अपने ग्राम रामपुर में पुष्टि सम्प्रदाय में दीक्षा ग्रहण करने से पूर्व ही रहे होंगे और श्रीकृष्ण भक्ति अपना लेने पर वे उनकी विहार भूमि ब्रज-गोकुल में निवास करते होंगे।

जाति और कुल

१०६ भक्तमाल में नन्ददास को `सकल सुकुल` कहा गया है, जिससे `सबसे अच्छा कुल` अथवा `सब प्रकार से अच्छे कुल` की सूचना मिलती है। अत: भक्तमाल के कथन ही से यह तो प्रकट हो जाता है कि नन्ददास उच्च कुल के अर्थात् ब्राह्मण थे। इसके विरोध में कोई साक्ष्य नहीं उपलब्ध होता है। उनकी उपजाति के सम्बन्ध में भी, मूल गोसाईं चरित को छोड़कर प्राय: सभी एक मत जान पड़ते हैं। मूल गोसाईं चरित में उन्हें कनौजिया कहा

गया है किन्तु इस चरित को अप्रामाणिक सिद्ध कर दिया गया है ।[1] अत: उसके कथन को ग्रहण नहीं किया जा सकता शिवसिंह सेंगर ने उपजाति के चक्कर में न पड़कर नंददास को केवल ब्राह्मण कहा है ।[2] मिश्रबन्धु विनोद में पहले उन्हें केवल (कान्यकुब्ज) ब्राह्मण कहा गया था किन्तु बाद के संस्करण में उन्होंने भी यह बात निकाल दी है ।[3] सुकवि सरोज में उन्हें शुक्ल कहा गया है ।[4] ऊपर वार्ता द्वारा उन्हें सनाढ्य ब्राह्मण कहे जाने की उपयुक्तता पर विचार किया जा चुका है और उसके अनुसार नन्ददास को सनाढ्य कुल का ब्राह्मण मानने में कोई असंगति नहीं जान पड़ती है । सोरों सामग्री में जो वार्ता के कथनों को पुष्टि हेतु प्रस्तुत हुई जान पड़ती है, नन्ददास को सनाढ्य शुक्ल ही कहा गया है ।

इष्टदेव, गुरु और सम्प्रदाय

१०७ नन्ददास का सम्पूर्ण काव्य इस बात का साक्षी है कि श्रीकृष्ण ही उनके इष्टदेव थे । अपने प्रत्येक ग्रन्थ और प्रत्येक पद से ही नहीं, प्रत्येक छन्द से भी भांक भांक कर कवि यही पुकारता दृष्टिगत होता है कि 'मेरे इष्टदेव श्रीकृष्ण हैं ।' इस पर अधिक कहना अनावश्यक होगा ।

१०८ नन्ददास ने अनेक पदों में गोस्वामी विट्ठलनाथ का स्तुति गान किया है । इन पदों में कवि के इस प्रकार के कथन मिलते हैं जिनसे यह सहज ही प्रकट होता है कि उनके दीक्षा गुरु गोस्वामी विट्ठलनाथ जी थे । जैसे, 'श्री वल्लभकुल को दास कहाऊं'[5] 'श्री विट्ठलेश वरौं'[6] आदि । गोस्वामी विट्ठलनाथ जी ने नन्ददास जी को पुष्टि संप्रदाय में दीक्षित किया था, यह बात पीछे कही जा चुकी है ।

पुष्टि सम्प्रदाय में प्रवेश से पूर्व जीवन और शिक्षा

१०९ अन्य बातों की भांति नन्ददास ने अपने आरम्भिक जीवन और शिक्षा के संबंध

१-तुलसीदास : डा० गुप्त, पृ० ४४-६१ ।
२-शिवसिंह सरोज : शिवसिंह सेंगर, पृ० ४४२ ।
३-मिश्रबन्धु विनोद (प्रथम भाग) : मिश्रबन्धु, पृ० २२७, २६१ ।
४-सुकवि सरोज, द्वितीय भाग, पृ० ६ ।
५-६- न० ग्रं०, पृ० ३३९ ।

में भी कोई विशेष उल्लेख अपनी कृतियों में नहीं किया है । उनके काव्य से केवल इतना ज्ञात होता है कि पुष्टि सम्प्रदाय में आने से पूर्व वे एक ऐसे परिवार से सम्बन्ध रखते होंगे जिसमें हिन्दुओं की सामान्य धार्मिक भावनाओं के अनुसार राम और कृष्ण दोनों ही रूपों की परमात्म-भाव से पूजा होती होगी । उनके काव्य से यह भी सूचित होता है कि उनकी प्रारम्भिक शिक्षा का समुचित प्रबन्ध रहा होगा जिसके फलस्वरूप उनके हृदय में विद्या के प्रति अनुराग का बीज अंकुरित होकर यथा समय मनोहर काव्य-लता के रूप में विकसित हुआ ।

११० कवि के काव्य में ऐसे स्थल नहीं मिलते हैं जो उसकी करुणा जनक स्थितियों का आभास देते हों । उनकी प्रारम्भिक रचनाओं में भी इस प्रकार के स्थल नहीं दिखाई पड़ते हैं, जिसका कारण सम्भवत: उनके प्रारम्भिक जीवन का सर्वथा निरापद होना रहा होगा ।

१११ गोस्वामी विट्ठलनाथ जी से दीक्षा प्राप्त करने के पूर्व नन्ददास जी के गृहस्थ जीवन में रहने की बात उनकी पदावली से सूचित होती है । किन्तु उनका विवाह कब हुआ था, उनके कोई सन्तान भी थी, उनके माता, पिता, भाई आदि कुटुम्बी जनों का क्या परिचय था आदि बातों की स्पष्ट सूचना देने में प्रामाणिक साक्ष्य मौन हैं । हाल ही में सोरों सामग्री इस मौन को भंग करते हुए उक्त सूचनाओं के साथ प्रकट हुई है किंतु खेद है कि वैज्ञानिक परीक्षा के सम्मुख अनुत्तीर्ण हो जाने से उसका अभी तक उपयोग नहीं किया जा सका है । दीक्षा प्राप्ति के पूर्व जीवन से संबंधित तर्क संगत सूचनाएं वार्ता में भी केवल इतनी ही मिलती हैं कि नन्ददास शिक्षा प्राप्त, [illegible], धार्मिक विचारों वाले और अपने कर्तव्यों के प्रति पूर्ण सजग रहने वाले व्यक्ति थे ।

११२ कांकरौली के इतिहास में श्री कण्ठमणि शास्त्री जी ने एक नवीन बात यह लिखी है कि "नन्ददास का मूल नाम मंगल था, पर काव्य में नन्ददास नाम की छाप रखने से वह साहित्यजगत में इसी नाम से प्रख्यात हो गये ।"[१] किन्तु शास्त्री जी ने यह नहीं बताया कि "[illegible]" का मूल नाम मंगल किस आधार पर सिद्ध होता है । अत: बिना किसी आधार के इस पर विचार करना संभव नहीं जान पड़ता है ।

यही नन्ददास के [illegible] प्राप्ति से पूर्वजीवन की उपलब्ध झांकी है ।

[illegible]

दीक्षोपरान्त जीवन और स्वभाव

११३ पुष्टि संप्रदाय में प्रवेश करने के उपरान्त नन्ददास ने कुछ समय तक विद्याध्ययन किया और संस्कृत के ज्ञान की वृद्धि में लगे रहे । यह बात अनेकार्थ भाषा और नाममाला से प्रकट हो जाती है । उन्होंने विट्ठलनाथ जी के सत्संग के साथ साथ सूरदास जैसे वरिष्ठ भक्तों के साम्प्रदायिक ज्ञान और अनुभव का भी पूरा लाभ उठाया । काव्य रचना के लिए भी उन्हें सूरदास से प्रेरणायें मिलती रहीं । उनका संस्कृत का ज्ञान बढ़ा चढ़ा था, जैसा कि उनके ग्रन्थों में संस्कृत-प्रयोग से विदित होता है । विदेशी शब्दों के प्रयोग के वे विरुद्ध थे । इसीलिए उनके काव्य में विदेशी शब्दों का प्रयोग नहीं के बराबर हुआ है । इसका कारण यह भी ज्ञात होता है कि उनके सम्मुख सभी आधार ग्रन्थ संस्कृत में थे और संस्कृत के प्रति उनकी विशेष श्रद्धा थी । इसीलिए उन्होंने संस्कृत न जानने वालों के लिए गद्य रचना भी की । उन्हें काव्य शास्त्र का भी पूर्ण ज्ञान था । इस बात का साक्षी उनका उत्कृष्ट कोटि का काव्य है ।

११५ वल्लभ सम्प्रदाय में आने पर कवि ने लौकिक बातों का त्याग कर दिया और कीर्तन सेवा करने लगे । शीघ्र ही अष्टछाप के प्रमुख भक्तों में उनकी गणना होने लगी । किन्तु श्री गोवर्धननाथ जी के प्राकट्य की वार्ता में अष्टछाप के भक्तों के विषय में जो छप्पय दिया गया है उसमें नन्ददास के स्थान पर किन्हीं विष्णुदास का उल्लेख हुआ है ।[1] यह प्राकट्य की वार्ता उन्हीं हरिराय जी की लिखी हुई है जिन्होंने वार्ताओं पर भाव प्रकाश लिखते हुए नन्ददास के संबंध में लिखा है, 'जिनके पद अष्टछाप में गाइयत हैं ।[2] जान पड़ता है कि अष्टछाप की स्थापना के समय से नन्ददास के दीक्षा

१- सूरदास सो तो कृष्ण तोक परमानन्द जानो ।
कृष्णदास सो ऋषभ छीत स्वामी सुबल बखानो ।।
अर्जुन कुंभनदास, चत्रभुज दास विशाला ।
विष्णुदास सो भोज स्वामी गोविंद श्री माला ।।
अष्टछाप आठों सखा श्री द्वारकेश परमान ।
जिनके कृत गुनगान करि निज जन होत सुजान ।।

—गोवर्धननाथ जी के प्राकट्य वार्ता, श्री वेंकटेश्वर स्टीम प्रेस, बम्बई, १९०५ ई०, पृ० २० ।

२- अष्टछाप कांकरौली, पृ० ३२६ ।

े काल तक विष्णुदास अष्टछाप में रहे होंगे और दीक्षा के उपरान्त वहाँ स्थान नंद-
ास को प्राप्त हुआ । जो भी नन्ददास अष्टछाप के भक्त थे--इसमें कुछ भी
ंदेह नहीं ।

१९६ अपने इष्टदेव की लीला भूमि होने से, गोवर्धन, गोकुल, वृन्दावन, नन्दग्राम,
मुनातट, ब्रज और मथुरा के प्रति उनकी अतीव आसक्ति थी । इसीलिए वे इन स्थानों
े प्राय: कहीं नहीं जाते थे ।

१९७ वे रसिक स्वभाव के भक्त थे, सौंदर्य प्रिय थे और सदा कृष्ण की प्रेम भक्ति
े आनन्द में निमग्न रहते थे । इसीलिए उनके काव्य में इन्हीं गुणों की अभिव्यक्ति के
र्शन होते हैं । उनके काव्य से कहीं भी यह प्रकट नहीं होता है कि कभी उन्हें लौकिक
ष्टों का सामना करना पड़ा हो, संभवत: अत्यन्त प्रसन्नचित रहना उनके स्वभाव का
ंग था । उनको अपने सम्प्रदाय के प्रति पूर्ण निष्ठा तो थी ही, अन्य सगुण भक्ति
ंप्रदायों के प्रति भी उनके हृदय में आदर की भावना रही होगी । इसीलिए कहीं भी
ैसे संप्रदायों के विरुद्ध उनके उल्लेख नहीं मिलते हैं । किन्तु निर्गुण भक्ति, ज्ञान-मार्ग
ौर योग-मार्ग का उन्होंने खुल कर विरोध किया है, यह बात उनके भंवरगीत से प्रकट
ोती है ।

१९८ दीक्षोपरान्त भी कभी वे गृहस्थ जीवन में रहे थे, ऐसा कोई उल्लेख उनके
ाव्य में नहीं मिलता है ।

निष्कर्ष

१९९ उपर्युक्त विवेचन से ज्ञात होगा कि नन्ददास का जन्म संवत् १५९० वि० में एक
ाछे ब्राह्मण कुल के सम्पन्न परिवार में हुआ । उनके माता, पिता आदि प्रिय जनों के
िषय में कोई प्रमाण पुष्ट विवरण प्राप्त नहीं होता है । उनका जन्म स्थान राम-
ुर था । रामपुर ग्राम की क्या स्थिति थी, यह निश्चय के साथ नहीं कहा जा सकता।
ितना ज्ञात होता है कि यह ग्राम ब्रज मथुरा से पूर्व दिशा में कहीं पर रहा होगा ।
ाशी, प्रयाग अथवा उसके आसपास के जिलों में इस ग्राम के स्थित होने की अधिक संभा-
ना है । कृष्णभक्ति में दीक्षा लेने के पूर्व वे इसी ग्राम में रहते रहे होंगे ।

१२० बचपन में उन्हें विद्या प्राप्त करने की सभी सुविधाएं प्राप्त रही होंगी, जिससे पुष्टि सम्प्रदाय में आने से पूर्व ही उन्होंने अच्छी शिक्षा ग्रहण कर ली ।

१२१ अवस्था प्राप्त करने पर नन्ददास ने कदाचित् गृहस्थाश्रम में भी प्रवेश किया होगा । किन्तु उनके गार्हस्थ्य जीवन के विषय में कोई प्रामाणिक सूचना नहीं मिलती है । इस समय उनके हृदय में राम और कृष्ण दोनों अवतारों के प्रति समान भक्ति भावना थी । कुछ समय गृहस्थ जीवन में रहने के उपरान्त वे कृष्ण भक्ति की ओर आकर्षित हुए और उन्होंने संवत् १६[illegible] में गोस्वामी विट्ठलनाथ जी से पुष्टि सम्प्रदाय में दीक्षा प्राप्त की । वे अपने गुरु विट्ठलनाथ जी को ईश्वर का अवतार मानते थे और नित्य अत्यन्त निकट रह कर उनकी सेवा करते थे ।

१२२ पुष्टि सम्प्रदाय में आते ही उन्हें अष्टछाप में स्थान मिल गया और वे साम्प्रदायिक सेवा और कीर्तन में मग्न रहने लगे । इसी समय उन्होंने अपने संस्कृत ज्ञान की वृद्धि के लिए अनेक ग्रन्थों का अध्ययन मनन किया और उसके प्रचार के लिए अनेकार्थ भाषा तथा नाममाला जैसे ग्रन्थों की रचना की । उन्होंने सम्प्रदाय के पुराने भक्त सूरदास के साम्प्रदायिक ज्ञान और अनुभव का भी पूर्ण लाभ उठाया और शीघ्र ही अष्टछाप के प्रमुख भक्तों में उनकी गणना होने लगी । ग्रन्थ रचना की प्रेरणा भी उन्हें सूरदास से मिली । ग्रन्थों के साथ साथ वे गेय पदों की रचना करके कीर्तन के समय उनका गान करते थे और कृष्ण की प्रेमभक्ति में मग्न रहते थे । श्रीकृष्ण की भक्ति की दीक्षा ग्रहण करने के उपरान्त वे अनन्य भावना के कारण उनकी लीलास्थलियों को छोड़कर प्रायः अन्यत्र नहीं जाते थे । स्मरणीय है कि नंददास के हृदय में इस प्रकार की अनन्य भावना उनके बचपन के धार्मिक संस्कारों एवं विद्या के प्रति अनुराग के साथ ही साथ विकसित हुई होगी और उन्होंने स्वेच्छा से ही लौकिक बातों को त्यागकर वैराग्यमय जीवन को अपनाने की चेष्टा की होगी ।

१२३ वे सहृदय थे । रसिकता उनके स्वभाव की विशेषता थी । उन्हें अपने जीवन में कदाचित् ही कभी किसी प्रकार के क्लेशों का सामना करना पड़ा हो, अन्यथा वे सदा ही प्रसन्नचित्त रहते थे । यही कारण है कि उनके काव्य में करुणापूर्ण दीन स्वरों की कोई उल्लेखनीय [illegible] नहीं सुनाई पड़ता है ।

इस प्रकार [illegible] रसामृत का पान करते हुए संवत् १६४१ में मानसी गंगा पर उनके जीवन की दैहिक लीला [illegible] हुई ।

अध्याय २

कृतियां

२

कृतियां

कवि के नाम से मिलने वाली कृतियां और उनकी प्रामाणिकता-अप्रामाणिकता

१ नन्ददास के नाम से निम्नलिखित ३२ ग्रन्थों का उल्लेख प्राप्त होता है :

(१) रासपंचाध्यायी [1]
(२) नाम मंजरी
(३) अनेकार्थ मंजरी
(४) रुक्मिणी मंगल
(५) भंवरगीत
(६) सुदामा चरित
(७) विरह मंजरी
(८) प्रबोधचन्द्रोदय नाटक
(९) गोवर्धन लीला
(१०) दशमस्कंध
(११) रास मंजरी
(१२) रस मंजरी
(१३) रूप मंजरी
(१४) मान मंजरी
(१५) दान लीला [2]
(१६) मानलीला
(१७) हितोपदेश [3]
(१८) ज्ञान मंजरी
(१९) नाम चिन्तामणिमाला
(२०) नासिकेत पुराण
(२१) श्याम सगाई
(२२) विज्ञानार्थ प्रकाशिका
(२३) सिद्धान्त पंचाध्यायी [4]

१- इस्त्वार द ला लितेरात्यूर ऐंदुई ए ऐंदुस्तानी--- गार्सां द तासी, भाग २, द्वितीय संस्करण, पृ० ४४५ ।

२- शिवसिंह सरोज, शिवसिंह सेंगर, १८८३ ई० संस्करण पृ० ४४५ ।

३- मिश्रबन्धु विनोद --- मिश्रबन्धु, द्वितीय संस्करण, पृ० २४८ ।

४- हिन्दी साहित्य का [illegible] --- आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पृ० [illegible] ।

(२४) जोग लीला [1]	(२६) बांसुरी लीला[3]
(२५) फूल मंजरी	(३०) अर्थ चन्द्रोदय
(२६) रानी मंगा	(३१) प्रेम बार खड़ी [4]
(२७) कृष्ण मंगल	(३२) पनिहारिन लीला [5]
(२८) रास लीला [2]	

२ इन ग्रन्थों में से सात अप्राप्य हैं।[6] पनिहारिन लीला का केवल नाम ही सुना जाता है।[7] अन्य ग्रन्थों में से नाम मंजरी, मान मंजरी और नाम चिन्तामणिमाला एक ही ग्रन्थ के तीन नाम हैं।[8] दानलीला, [illegible] और रासलीला किसी अप्रसिद्ध नन्ददास की कृतियां हैं।[9] जोगलीला नन्ददास की रचना न होकर किसी उदय नामक कवि की रचना है।[10] रानी मंगा के विषय में भी निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि यह ग्रन्थ नन्ददास कृत नहीं है।[11] नन्ददास की शैली देखकर पुरुषोत्तम कवि की फूलमंजरी को किसी प्रतिलिपिकार ने नन्ददास कृत लिख दिया है।[12] नासिकेत पुराण

१- (२४) खो०रि०-- ना०प्र०सभा, संवत् १६०६-८।
   (२५) खो०रि०-- ना०प्र०सभा, संवत् १६२६-३१।
   (२६) खो०रि०-- ना०प्र०सभा, संवत् १६२६-३१।
   (२७) खो०रि०-- ना० प्र०सभा, संवत् १६३५-३७।

२- द्वारिकेश पुस्तकालय, कांकरौली द्वारा प्राप्त हस्तलिखित ग्रन्थ।

३- हिन्दी पुस्तक साहित्य --डा० माताप्रसाद गुप्त, ४८६-६०।

४- हिन्दुस्तानी, सन् १६४६, पृ० ३५६।

५- अष्टछाप और वल्लभ संप्रदाय - डा० दी०द०गुप्त, पृ० ३६८

६- प्रबोधचन्द्रोदय नाटक, मानलीला, विज्ञानार्थप्रकाशिका, रासमंजरी, बांसुरी लीला, अर्थचन्द्रोदय, ज्ञानमंजरी -- 'नन्ददास' - शुक्ल, भूमिका, पृ० ३६।

७- अष्टछाप और वल्लभ संप्रदाय--डा०दी०द०गुप्त, पृ० ३६६।

८- नन्ददास--'शुक्ल', भूमिका,पृ०२०। ६- वही, पृ० २०, १०-वही, पृ० ४०।

११-अष्टछाप और वल्लभ संप्रदाय, डा० दी०द० गुप्त, पृ० ३६८।

१२- वही पृ० ३६० ।

की रचना स्वामी नन्ददास वृन्दावन वाले के द्वारा होना कहा जाता है।[१] कृष्ण मंगल अत्यन्त छोटी रचना है जिसमें एक ही पद है जिससे इसे ग्रन्थों में सम्मिलित करने की अपेक्षा पदों में गणना करना अधिक संगत होगा। इस प्रकार निम्नलिखित रचनाएं ही अब नन्ददास की कही जाती हैं, जिनमें उनकी छाप है तथा जिनकी अनेक हस्तलिखित प्रतियां भी प्राप्त हैं :[२]

(१) रासपंचाध्यायी	(२) दशमस्कंध	(३) भंवरगीत
(४) रूप मंजरी	(५) रसमंजरी	(६) विरहमंजरी
(७) अनेकार्थमंजरी	(८) नाममंजरी	(९) रुक्मिणीमंगल
(१०) श्याम सगाई	(११) सिद्धान्तपंचाध्यायी।	

३ सुदामा चरित और गोवर्धन लीला भी नन्ददास की कृतियां कही जाती हैं।[३] दोहों में लिखी हुई प्रेम बारखड़ी का नाम भी नन्ददास की कृतियों के साथ लिया जाने लगा है।[४]

४ उपर्युक्त कृतियों में दशमस्कंध भाषा, सुदामाचरित, गोवर्धनलीला और प्रेम बारखड़ी को छोड़कर शेष दस कृतियां और पदावली नन्ददास की असंदिग्ध रचनाएं हैं। अत: इनकी प्रामाणिकता पर विचार करना पिष्टपेषण मात्र होगा, जो अनावश्यक है।

<u>दशमस्कंध भाषा की प्रामाणिकता</u>

५ नन्ददास द्वारा दशमस्कंध भागवत का भाषा में अनुवाद किया जाना संदिग्ध है[५] और अभी तक उसकी प्रामाणिकता का उचित परीक्षण नहीं हुआ है। सुदामा चरित और गोवर्धन लीला भी दशमस्कंध के अंश होने से असंदिग्ध रचनाएं नहीं हैं। प्रेम

१- अष्टछाप और वल्लभ संप्रदाय, डा० दी०द० गुप्त, पृ० ३६६।

२- न० ग्रं०, भूमिका, पृ० ३१। ३- वही, पृ० ३१-३२।

४- अष्टछाप परिचय-- प्र० द० मीतल, पृ० ३१३।

५- हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास- डा०रा०कु०वर्मा, पृ० ५५८।

बारह खड़ी मूलत: गुजराती लिपि में मिलती है, अत: विचारणीय है। आगामी परिच्छेदों में नन्ददास के नाम से कही जाने वाली इन्हीं संदिग्ध कृतियों --दशमस्कंध भाषा, सुदामा चरित, गोवर्धनलीला और प्रेम बारहखड़ी की प्रामाणिकता पर विचार किया गया है।

दोहा-चौपाई छन्दों के प्रयोग की विशेष शैली

६ नन्ददास के नाम से चौपाई छन्द में लिखे हुए निम्नलिखित ग्रन्थ प्राप्त होते हैं :

रसमंजरी, रूपमंजरी, विरहमंजरी, दशमस्कंध भाषा, सुदामा चरित और गोवर्द्धनलीला।

७ रस मंजरी, रूप मंजरी, विरह मंजरी और दशमस्कंध भाषा में चौपाई छन्द के साथ साथ दोहों का भी प्रयोग किया गया है, किन्तु सुदामाचरित और गोवर्द्धनलीला में यह प्रयोग नहीं मिलता है।

८ रूपमंजरी और विरह मंजरी ग्रन्थों के [illegible] से विदित होता है कि नन्ददास की दोहों को प्रयोग करने की एक विशेष शैली थी जिसके अन्तर्गत प्रत्येक प्रकार के वर्णन को चौपाई में लिखकर अन्त दोहे में किया है। नन्ददास को दोहों को चौपाइयों के बीच में रखने में किसी वाह्य सीमा के नियन्त्रण में नहीं रहे हैं, जैसे तुलसीदास जी को हम पाते हैं। तुलसी ने सामान्यत: चार चौपाइयों के उपरान्त दोहा दिया है, किन्तु नन्ददास क- ने प्रत्येक वर्णन के अन्त में ऐसा किया है। इस प्रकार के वर्णन के आधार को भी कोई सीमा नहीं रखी है। रूप मंजरी में ही इस प्रकार के वर्णन का एक स्थल पर चौपाई की पैंतीस अर्द्धालियों में विचार किया गया है[१] और एक स्थल पर चार अर्द्धालियों में।[२] रूप मंजरी में दोहों के उपक्रम में एक स्थान पर भी त्रुटि नहीं होने पायी है। विरहमंजरी में भी इस क्रम का आधन्त निर्वाह है, साथ ही उसमें सोरठा छन्द का भी एक निश्चित क्रम से प्रयोग है। बारहमासा विरह वर्णन में प्रत्येक

१- न० ग्रं०, पृ० १२० ।

२- वही. पृ० १२८ ।

मासागमन की सूचना सोरठे में देकर उस मास का विरह वर्णन चौपाई छन्द में किया गया है तथा उपसंहार दोहे में दिया है। दोहे, चौपाई और सोरठे के इस प्रकार के निश्चित क्रम से प्रयोग और समन्वय से विरहमंजरी की शैली अत्यन्त रोचक बन पड़ी है जो दोहा चौपाई में लिखे गये अन्य ग्रन्थों में नहीं मिलती है। इससे प्रकट होता है कि उक्त ग्रन्थों में विरहमंजरी की रचना अन्त में हुई होगी।

रसमंजरी और दशमस्कंध भाषा में दोहा-चौपाई छन्द शैली का निर्वाह

६ रसमंजरी में कवि ने प्रारम्भ में प्रत्येक प्रकार के वर्णन का अन्त दोहे में किया है। यथा, क्रम, प्रेम, आनन्द आदि रसों के श्रीकृष्ण से ही प्रसूत होने की बात चौपाई में लिख कर दोहे में उपसंहार दिया है।[१] इसके पश्चात् ग्रन्थ रचना के कारण क्रम में मित्र का उल्लेख करके अन्त में दोहा दिया है।[२] इसी प्रकार नवोढ़ा के भेदों को बता कर अन्त दोहे में किया है,[३] किन्तु तदनन्तर यौवना, मध्या, प्रौढ़ा, धीरा और अधीरा, सुरतिगोपना तथा परकीया के लक्षणों का वर्णन करके किसी भी वर्णन के अन्त में दोहा नहीं दिया है। यहीं नहीं, युवतियों के प्रकारों के वर्णन के उपरान्त भी दोहे का प्रयोग नहीं है और उक्त प्रकारों का बिना दोहे में उपसंहार दिए नायिका भेद आरम्भ कर दिया है। फिर प्रोषितपतिका के विभिन्न लक्षणों को बताकर अन्त में दोहा दिया है। खंडिता और कलहांतरिता के भी उपभेदों को पृथक पृथक बताकर अन्त में दोहे दिए हैं किन्तु इसके उपरान्त उत्कंठिता के उपभेद बताकर अन्त में दोहा नहीं दिया है। तदनन्तर विप्रलब्धा के उपभेद अलग-अलग वर्णन के उपरान्त दोहे का प्रयोग है किन्तु वासक सज्जा और अभिसारिका के उपभेदों के लक्षणों का पृथक पृथक वर्णन करने पर भी अन्त में दोहों का प्रयोग नहीं है और स्वाधीनपतिका तथा प्रीतमनी के भेदों के अन्त में दोहे दिए हैं। नायक के भेदों का वर्णन कर के भी अन्त में दोहा नहीं दिया है और ग्रन्थ के अन्त में दोहा दिया है।

१- न० ग्र०, पृ० १४४ दोहा ७।
२- वही, पृ० १४५ पंक्ति २४।
३- वही, पृ० १४६ दोहा, ४४।

१० उपर्युक्त विश्लेषण से ज्ञात होगा कि चौपाइयों के साथ दोहों के प्रयोग के विषय में कवि रसमंजरी में प्रयोगावस्था में है और उसमें दोहों के प्रयोग का निश्चित क्रम स्थिर नहीं हो पाया है, जिससे इन छन्दों में वह समन्वय नहीं मिलता जो रूप-मंजरी और विरहमंजरी में मिलता है । रस मंजरी में कवि कहीं तो एक प्रकार के भेदों के लक्षणों का वर्णन करके अन्त दोहे में करता है, कहीं दो प्रकार के भेदों का वर्णन करके उपसंहार दोहे में देता है तथा कहीं अनेक भेदों के वर्णनों के अन्त में भी दोहा नहीं देता । इस प्रकार रसमंजरी में दोहे चौपाई छन्द शैली की तीन दिशाएं मिलती हैं । एक प्रकार के लक्षणों का वर्णन करके दोहा देना, प्रथम दिशा की ओर संकेत है, दो प्रकार के लक्षणों के भेदों का वर्णन करके अन्तिम भेद के अन्त में दोहे का प्रयोग द्वितीय दिशा की ओर और कुछ भेदों का वर्णन केवल चौपाई छन्द में ही करके कहीं भी दोहे का प्रयोग न करना तृतीय दिशा की ओर संकेत करता है । नन्द-दास जी को दोहा-चौपाई छन्द में वर्णन करने में रसमंजरी में प्रकट उक्त तीन दिशाओं में से प्रथम दिशा ही अभिप्रेत है, क्योंकि आगे चलकर रूप मंजरी और विरह मंजरी में वह इसी दिशा की ओर बढ़ते हैं ।

११ दशमस्कंध भाषा में, प्रारम्भ में एक प्रकार के वर्णन के अन्त में दोहे का प्रयोग है । यथा, मित्र के आग्रह करने पर कवि दशमस्कंध में वर्णित कृष्ण चरित को भाषा में सुनाने के कार्य को कठिन अनुभव करता है । इस पर मित्र कहता है, "यदि ऐसा है तो यथाशक्ति ही कुछ कीजिए, अमृत को एक बूंद सुख से जीने के लिए पर्याप्त है ।" और फिर दोहे में उस वर्णन का अन्त किया है ।[1] इसके उपरान्त नवलभावों को कहते हुए शुकदेव जी द्वारा कृष्ण के महत्व का वर्णन किया है ।[2] फिर असुरों के अत्याचारों से पीड़ित धरती का गाय रूप में ब्रह्मा के पास जाने, श्री कृष्ण के अवतार की सूचना देने वासुदेव-देवकी विवाह की कथा कहने, कंस के वध की देववाणी होने इत्यादि का प्रथम अध्याय में ही वर्णन करके, अध्याय के अन्त में उसका माहात्म्य वर्णन दोहे में किया है ।[3] इसके उपरान्त दशमस्कंध में दोहों का निम्नप्रकार से प्रयोग किया है :

(१) अध्याय २, ८, १०, ११, १३, १५, १६, १९, २१, २२, २३, २४, २६, २७, और २८ में अन्त में केवल एक-एक दोहा है ।

---

१. दशम०, पृ० २१६ । २. वही, पृ० २२० । ३. वही, पृ० २२३ ।

(२) अध्याय ८, १२, १८, १९, २० और २५ के अन्त में दो दो दोहे दिए हैं।

(३) अध्याय ३, ४, ५ और ७ में आरम्भ और अन्त दोनों स्थलों पर एक एक दोहा दिया है।

(४) अध्याय १५, २१, २२, २३ और २७ में मध्य भी कुछ वर्णनों के अन्त में दोहे दिए हैं।

(५) अध्याय ६ में आरम्भ में एक और अन्त में दो दोहे दिये हैं।

(६) १५ वें अध्याय में न आरम्भ में दोहे का प्रयोग है और न अन्त में।

१२ इस प्रकार दशमस्कंध में दोहों के प्रयोग की योजना उक्त छः प्रकार से मिलती है जिसमें नन्ददास की चौपाई दोहा छन्द शैली, प्रथम प्रकार की योजना से मेल खाती है, जिसका त्रुटिविहीन निर्वाह रूपमंजरी और विरहमंजरी ग्रन्थों में मिलता है। विरहमंजरी में जिस प्रकार प्रत्येक मास की सूचना सोरठे में दी है, उसी प्रकार दशमस्कंध में भी अध्याय ३, ४, ५, ६ और ७ के आरम्भ में दोहे देकर अध्याय की सूचना दी गई है किन्तु इस प्रकार का प्रयोग अन्य अध्यायों में नहीं मिलता है।

१३ इससे प्रकट है कि रसमंजरी और दशमस्कंध भाषा में, रूपमंजरी तथा विरहमंजरी में व्यक्त नन्ददास की उक्त दोहा चौपाई छन्द शैली का प्रारम्भिक रूप ही दृष्टिगत होता है।

दशम स्कंध भाषा की रचना का कालक्रम

१४ दोहा और चौपाई छन्दों का एक निश्चित क्रम में प्रयोग कर सुन्दर समन्वय स्थापन का कार्य रूप मंजरी में करने के उपरान्त इन छन्दों में क्रम और समन्वयविहीन ग्रन्थ रसमंजरी और दशमस्कंध की रचना का एक ही कवि द्वारा होना असंगत जान पड़ता है। ऊपर किये गये विश्लेषण के आधार पर रसमंजरी और दशमस्कंध की रचनाएं रूप मंजरी की रचना के पूर्व की ही ज्ञात होती है। दोनों के विषय भिन्न हैं और दोनों स्वतंत्र रचनाएं हैं। अत: दोनों का रचनाकाल एक नहीं हो सकता है। या तो दशमस्कंध की रचना रूपमंजरी के पूर्व और रसमंजरी के उपरान्त हुई होगी अथवा रसमंजरी

२५ विषय निर्वाह की दृष्टि से रसमंजरी, रूपमंजरी और विरहमंजरी में पूर्वा-पर संबंध है। रसमंजरी में कवि कहता है कि जब तक नायिकाभेद का ज्ञान नहीं हो जाता तब तक प्रेमतत्व को नहीं जाना जा सकता है।[1] उसने प्रेम और तत्व का यहां पर उल्लेख मात्र किया है तथा प्रेम और तत्व को जानने के लिए जो आवश्यक उपकरण --नायिकाभेद-ज्ञान है, रसमंजरी में उसका ही वर्णन किया है। कवि रसमंजरी में नायिकाभेद कहने के उपरान्त रूप मंजरी में प्रेम का वर्णन करता है।[2] रूपमंजरी में उसे प्रेम का ही वर्णन अभीष्ट है, यह इसलिए कि उसके सुनने और गान करने से रस वस्तु का अनुभव होता है तथा रसवस्तु के अनुभव से ही तत्व को जाना जा सकता है।[3] इस तत्व का उद्घाटन विरहमंजरी के अन्त में होता है।[4] अत: नन्ददास की उक्त तीनों ग्रन्थों का एक ही उद्देश्य जान पड़ता है--'तत्व की प्राप्ति'। इसी में इन ग्रन्थों की रचना का प्रयोजन निहित है।

२६ इस प्रकार रसमंजरी में कवि प्रेम और तत्व का वर्णन करना चाहता है और उसमें प्रेम और तत्व का उल्लेख मात्र करता है। रूप मंजरी में प्रेम का वर्णन करता है और तत्व का उल्लेख मात्र करता है, जिससे यह प्रकट होता है कि वह तत्व का वर्णन करना चाहता है। अत: तत्व को जानने के लिए ही कवि ने रसमंजरी और रूपमंजरी में क्रमश: नायिका भेद और प्रेम-पद्धति का वर्णन किया है। इस भांति रचना के उद्देश्य की दृष्टि से इन तीनों ग्रन्थों का एक ही केन्द्र 'तत्व' है और इन ग्रन्थों में यदि एक भी ग्रन्थ न हो तो उसके उद्देश्य के निर्वाह में व्यवधान उपस्थित हो जायेगा।

२७ रसमंजरी में कवि प्रेम और तत्व का वर्णन करने की ओर स्पष्ट संकेत करता है और उससे यह प्रकट होता है कि उसने रसमंजरी की रचना प्रेम और तत्व को जानने के लिए ही की है। नन्ददास की दृष्टि से यदि नायिकाभेद के ज्ञान के बिना, प्रेम और तत्व को जानना सम्भव होता तो कदाचित् वह नायिकाभेद न लिखता वरन् प्रेम और तत्व का ही वर्णन करता। किन्तु कवि ने प्रेम-तत्व को जानने के लिए नायिका-भेद का ज्ञान आवश्यक समझा। इसीलिए रसमंजरी में वर्णित नायक-नायिकाभेदों और

१- न० ग्र०, पृ० १४४

२,३- वही, पृ० १६७

४. इहि परकार बिरह मंजरी, निरवधि परम प्रेमरस भरी।
जो यहि सुनें गुने हित लावें, सो सिद्धान्त तत्व कों पावें।।
— न० ग्र० पृ० १७२।

हाव, भाव, हेला तथा रति के लक्षणों को रूपमंजरी ग्रन्थ में रूपमंजरी नायिका के लिए घटित किया है। इस प्रकार रसमंजरी ग्रन्थ में, कवि के उद्देश्य के दृष्टिकोण से पूर्ण रचना नहीं है, इसमें संगित प्रेम-तत्त्व के ज्ञान के लिए रूप-मंजरी और विरह मंजरी ग्रन्थों का आश्रय लेना आवश्यक जान पड़ता है, रसमंजरी और रूपमंजरी ग्रन्थों में विषय-निर्वाह की दृष्टि से परस्पर इतना घनिष्ठ सम्बन्ध है कि रसमंजरी के उपरान्त बिना रूपमंजरी ग्रन्थ की रचना किए दशमस्कंध भाषा जैसे वृहद् ग्रन्थ का रचना किये जाने का अनुमान नहीं लग सकता।

१८ इससे ज्ञात होता है कि रसमंजरी, रूपमंजरी और विरहमंजरी एक ही कवि की रचनाएं हैं। अतः यदि ये मंजरी ग्रन्थ और दशमस्कंध भाषा एक ही कवि की कृतियां हों तो दशमस्कंध भाषा की रचना इन ग्रन्थों में रूपमंजरी और रसमंजरी के पूर्व का ठहरता है किन्तु ऐसी अवस्था में दशमस्कन्ध की रसमंजरी से पूर्व की रचना न होने के प्रबल और पुष्ट कारण हैं जो नीचे दिये जाते हैं :

(अ) यदि दशमस्कंध भाषा की रचना रसमंजरी से पूर्व की होती तो रसमंजरी में दोहों का प्रयोग रूपमंजरी की भांति निश्चित क्रम से होता। विशेष रूप से जबकि दशमस्कंध के अन्तिम अध्यायों में निश्चित क्रम मिलता है, तब रसमंजरी में उस क्रम का निर्वाह न होने का कोई कारण नहीं। अध्यायों के अन्त में दोहों के प्रयोग की बात पर विचार न भी करें और एक प्रकार के वर्णन के अन्त में दोहों की खोज दशमस्कंध भाषा में करें तो अध्याय १, १५, २१, २२ और २७ में ही इस प्रकार के दोहे कुछ स्थानों में मिलेंगे। इस प्रकार प्रकट है कि दोहों के प्रयोग की जो योजना नन्ददास की दोहा-चौपाई छन्द शैली में निहित है, दशमस्कंध और रसमंजरी दोनों में उसका आरंभिक रूप ही दिखाई देता है, जबकि रसमंजरी में, उसके दशमस्कंध भाषा के उपरान्त की रचना होने के कारण दोहों के प्रयोग के क्रम में निश्चितता आ जानी चाहिए। किन्तु ऐसा नहीं हो पाया है। अतः दशमस्कंध भाषा, रसमंजरी के पूर्व की रचना नहीं ज्ञात होती।

(ब) रसमंजरी में कवि कहता है कि रूप, प्रेम, आनन्द रस जो कुछ भी जग में है वह सब श्रीकृष्ण का ही है और उसका वह वर्णन करता है।[१] इससे यह आभास

१- न० ग्रं०, पृ० १५३, पं० ७।

मिलता है कि कवि ने रस-मंजरी से पूर्व रूप, प्रेम और आनन्द-रस-संयुक्त वर्णन वाले ग्रन्थों की रचना नहीं की है और उसके उपरान्त ही इस प्रकार की रचनाओं का पुन: प्रणयन किया है। इसमें सन्देह नहीं कि रसमंजरी कवि की सर्वप्रथम रचना नहीं है और श्यामसगाई, अनेकार्थ-भाषा तथा नाममाला की रचना इससे पूर्व हो चुकी थी, किन्तु यह उल्लेखनीय है कि श्याम सगाई, शैली और विषय निर्वाह की दृष्टि से नितान्त प्रारम्भिक रचना है एवं अनेकार्थ भाषा तथा नाममाला दोनों कोष ग्रन्थ हैं। अत: रूप, प्रेम और आनन्द-रस वाले ग्रन्थों की रचना रसमंजरी से ही आरम्भ होती है। इस प्रकार दशमस्कंध भाषा को, जिसमें कि उक्त रसों का समावेश मिलता है, रसमंजरी के पूर्व की रचना मानने में यह भी एक बड़ी बाधा है।

(ख) दशमस्कंध भाषा सहित नन्ददास ग्रन्थावली का अवलोकन करने से ज्ञात होता है कि रस-मंजरी, रूप मंजरी, विरहमंजरी, रुक्मिणीमंगल और रासपंचाध्यायी से, भावों के साथ साथ शब्द और वाक्य विन्यास तथा कहीं कहीं छन्दों के चरणों को ज्यों का त्यों दशमस्कंध में ग्रहण किया गया है। उदाहरणार्थ :

(१) प्रेम की प्रथम अवस्था आही। कवि जन भाव कहत हैं ताही।।
नैन बैन जब प्रगटे भाव, ते सब सुकवि कहत हैं हाव।।
--रसमंजरी।[1]

प्रथमहि प्रिय सों प्रेम जु आही। कवि जन भाव कहत हैं ताही।।
--रूपमंजरी।[2]

जगत वियापी ब्रह्मु जाहि। प्रभु की प्रभा कहत कवि ताही।।
--दशमस्कंध।[3]

रसनि में जो उपपति रस आही। रस की अवधि कहत कवि ताही।।
--रसमंजरी।[4]

(२) बाट घाट तन झांकत ऐसे। बिनु अभ्यास बलि-विधा जैसे।।
--रसमंजरी।[5]

१- न० ग्र०, पृ० १६०। २- वही, पृ० १३०। ३- वही, पृ० २७२
४- वही, पृ० १२४। ५- वही, पृ० १३३।

मारग ठौर ठौर तृन छये । पंथ चलत पथिकन भ्रम भये ।।
ज्यों अभ्यास बिनु विप्र सु वेद, समुझि न परै अरथ पद भेद ।।
--दशमस्कंध भाषा ।[१]

(३) खंजन प्रकट किये दुख दैना । संजोगिन तिय के से नैना ।।
निरमल जल महुं जलज फूले । तिनपर लंपट अलिकुल झूले ।।
--विरहमंजरी ।[२]

भावों सलिल सुक्क अस भये, जैसे मुनि मन निरमल भये ।।
सरनि मध्य सरसोरुह फूले । तिनपर लंपट अलिकुल झूले ।।
--दशमस्कंध भाषा ।[३]

ठौर ठौर सर सरसिज फूले । तिनपर लंपट अलिकुल झूले ।।
--दशमस्कंध भाषा ।[४]

(४) नंद समाधत ताको चित्त । ब्रज को विरह समुझि ले मित्त ।।
--विरहमंजरी ।[५]

नंद समाधत ताको चित्त । सब अरिष्ट बस होतु है मित्त ।।
--दशमस्कंध भाषा ।[६]

(५) प्रश्न भये कियौं सुन्दर स्यामा । सदा बसौ वृन्दावन धामा ।।
याके विरह जु उपज्यौ महा । कहौ नन्द के कारण कहा ।।
--विरहमंजरी ।[७]

कत यह बात बरस की सबै । कर सौं उचकि लियौ गिरि तबै ।।
याते संका उपजति महा । कहौ नन्द या कारण कहा ।।
--दशमस्कंध भाषा ।[८]

(६) कुसुम धूरि धूंधरो दिसा इंदु उदै रस पान ।
कुहु कुहु जो कोकिल करै विरहो जोवे कान ।- रूप मंजरी ।[९]

१- न० ग्र०, पृ० २८२ । २- वही, पृ० १६८ । ३- वही, पृ० २२७ ।
४- वही, पृ० २८५ । ५- वही, पृ० १६२ । ६- वही, पृ० २३६ ।
७- वही, पृ० १६२ । ८- वही, पृ० ३११ । ९- वही, पृ० १५० ।

कुसुम धूरि घूंघरी सुकुंजे । मधुकर निकर करत तहं गुंजे ।

--विरहमंजरी ।[१]

कुसुम धुरि धूंधरी सुकुंज । गुंजत मंजु घोष अलि पुंज ।।

--दशमस्कंध भाषा ।[२]

(७) अहो देवि अम्बिके गौरि ईश्वरि सब लायक ।

महा माय बरदाय सु संकर तुमरे नायक ।।

--रुक्मिणीमंगल ।[३]

अहे गवरि ईश्वरि सब लायक । महामाय बरदाय सुनायक ।।

--दशमस्कंध भाषा ।[४]

(८) मधुरवस्तु ज्यों खात निरन्तर सुख तौ भारी ।

बीच बीच कटु अम्ल तिक्त अतिसय रुचिकारी ।।

--रासपंचाध्यायी ।[५]

मधुरवस्तु ज्यों खात है कोई । बीच बीच अमलरस रुचिकर होई ।।

--दशमस्कंध ।[६]

(९) जाको सुन्दर स्याम कथा छिन छिन नई लागै ।

ज्यों लंपट पर जुवति बात सुनि सुनि अनुरागै ।।

--रासपंचाध्यायी ।[७]

रति सों कृष्ण कथा अनुसरै । छिन छिन प्रति नूतन सी करै ।।

जैसे लंपट बनिता बात । सुनत सुनत कबहूं न अघात ।।

--दशमस्कंध भाषा ।[८]

(१०) सावन सरित न रुकै करै जो जतन कोउ अति ।

कृष्ण हरे जिनको मन ते क्यों रुकहि अगम गति ।।

--रासपंचाध्यायी ।[९]

जैसे उमगति सावन सरिता । कौन पै रुकहि प्रेम रस भरिता ।।

--दशमस्कंध भाषा ।[१०]

१- न० ग्रं०, पृ० १६५ । २- वही, पृ० २७६ । ३- वहीं, पृ० १०३ ।
४- वही, पृ० २९८ । ५- वही, पृ० ११ । ६- वही, पृ० २८७ । ७-वही, पृष्ठ ६ ।
८- वही, पृ० २८३ । ९- वही, पृ० ६ । १०- वही, पृ० ३०२ ।

(११) सकल जंतु अविरुद्ध जहां, हरिमृग संग चरहिं ।
काम क्रोध मद लोभ रहित, लीला अनुसरहिं ।।
--रासपंचाध्यायी ।[1]

हरि अरु मृग एक संग चरै, तृत पियास नैकु न संचरै ।।
मृद भरि श्रीहरि कौं नित चहै । काके काम क्रोध मद नरै ।।
--दशमस्कंध भाषा[2]

१६ दशमस्कंध के उपर्युक्त उदाहरणों में प्रकट अनुकरणमूलक प्रवृत्ति का स्पष्टीकरण क्रमशः नीचे दिया जाता है ।

दशमस्कंध में ब्रह्मा के द्वारा कृष्ण की स्तुति के प्रसंग में यदि कवि का उक्त कथन नहीं होता तो कथा के विकास में कहीं अधिक मुखरता आती, रूपमंजरी में कवि ने उक्त कथन के द्वारा ही उपपति रस का परिचय दिया है और फिर रूपमंजरी के लिए इस रस की योजना की बात कही है । इससे पूर्व रस मंजरी में भी कवि इस प्रकार की कथन शैली का परिचय दे चुका था, जैसा कि रसमंजरी के उक्त उद्धरण से प्रकट है । अतः इस बात से असहमति प्रकट नहीं की जा सकती है कि रसमंजरी में कवि हाव,भाव हेला और रति के लक्षणों का वर्णन व्यक्ति-प्रधान शैली में करता है और ये कथन सर्वथा स्वाभाविक और पूर्ण हैं तथा उन्हीं का रूपमंजरी में समावेश हुआ है । दशमस्कंध में व्यक्तिगत कथन की उक्त शैली रसमंजरी और रूपमंजरी के प्रभाव से ही प्रयुक्त हुई ज्ञात होती है तथा दशमस्कंध की सम्बन्धित अर्द्धालियों का अर्थ की दृष्टि से प्रयोग भी त्रुटिहीन नहीं है क्योंकि `जो जगत व्यापी ब्रह्म है वह ईश्वर की प्रभा है` -- इस प्रकार का कथन किसी अर्थ का सम्पादन नहीं करता है । इससे केवल छन्द की पूर्ति होती है ।

दूसरे उदाहरणों में `मारग` और `बाट` शब्दों का प्रयोग विचारणीय है । वर्षा ऋतु में बाट ही तृणों से आच्छादित हुए होते हैं और `मारग` जो राजमार्ग का अर्थ सम्पादन करता है, इस प्रकार का प्रयोग अपेक्षाकृत असंगत है । अतः `मारग` की अपेक्षा `बाट घाट` का प्रयोग स्वाभाविक है, जो नन्ददास की पद-योजना के

१- न० ग्रं०, पृ० ५ । २- वही, पृ० २६७ ।

भी अधिक अनुकूल है। दोनों स्थानों पर भावों में भी समानता है और जान पड़ता है कि दशमस्कंध में रूपमंजरी के ही कथन को मानों व्या ग्या कर दिया गया है। अत: दशमस्कंध में उक्त प्रयोग रूपमंजरी के पश्चात् ही किया गया प्रतीत होता है।

तीसरे उद्धरणों में, दशमस्कंध में सर्वप्रथम तीसरे अध्याय में जलाशयों के भावों में स्वच्छ होने और उन पर भंवरों के गूंजने का कथन संगत नहीं जान पड़ता क्योंकि जलाशय वर्षा के उपरान्त कुंवार में स्वच्छ होते हैं। विरहमंजरी का कथन कुंवार मास के वर्णन में ही कहा गया है जो नितान्त संगत है। यह सत्य है कि दशमस्कंध भाषा भागवत का अनुवाद है किन्तु छन्दों के चरणों का समान होना दृष्टव्य है। इस समानता को देखते हुए यही संगत जान पड़ता है कि सलिलों के स्वच्छ होने की ऋतु को भी समान होना चाहिए, जो नहीं है। अत: विरह मंजरी में यह प्रयोग मौलिक है और कृष्ण जन्म के समय सामयिक प्रभाव के वर्णन में उक्त कथन का उल्लेख दशमस्कंध के कवि द्वारा विरहमंजरी की देखादेखी में ही किया गया जान पड़ता है।

चौथे उद्धरण में, दशमस्कंध में उक्त कथन वासुदेव द्वारा नन्द से यह कहे जाने पर कि जहां मित्रों का वियोग होता है, वहां कोई सुख नहीं होता है, नन्द के द्वारा कहलाया गया है जिसमें मित्र को सान्त्वना देने को और वह बल प्रकट नहीं होता है, जो विरहमंजरी के प्रसंग में प्रकट है। विरहमंजरी में यह प्रश्न होने पर कि श्रीकृष्ण के सदा वृन्दावन में रहने पर भी उनका विरह क्यों होता है, नन्ददास एक मित्र के प्रति इस प्रश्न का समाधान यह कह कर करते हैं कि ब्रज का विरह चार प्रकार का होता है। विरह मंजरी में समाधान या सान्त्वना देने का कारण उक्त प्रश्न है, किन्तु दशमस्कन्ध में ऐसा कोई प्रश्न ही नहीं है। दूसरी बात उल्लेखनीय है कि विरहमंजरी में नन्दन से तात्पर्य स्वयं नन्ददास कवि से है और दशमस्कंध में गोपराज 'नन्द' से। दोनों स्थलों पर मित्र को सम्बोधित किया गया है। दशमस्कंध में जहां द्वितीय चरण स्वाभाविक है, प्रथम चरण विरहमंजरी के कथन को दृष्टिगत रखते हुए अपेक्षाकृत असंगत प्रतीत होता है। रसमंजरी में भी कवि इसी स्वर में उत्तर दे चुका है :

बातों नन्द कहत तब उत्तर। मुरत्व का मन मोहित दूतर।[१]

इस प्रकार रसमंजरी और विरहमंजरी के कवि की अपने मित्र को उत्तर देने की यह नव प्रवृत्ति है और दशमस्कंध में उक्त कथन विरहमंजरी के प्रभाव के कारण ही किया गया

छठें उदाहरण में, विरहमंजरी में वसंत ऋतु के वैशाख मास के वर्णन में कुसुमधूरि का उल्लेख है और वसन्त में जो कुसुम की धूरि से कुंजें निश्चित रूप से धूंधरी रहती हैं। रूपमंजरी में भी वसन्त ऋतु के छवि वर्णन में ही कुसुम धूरि का उल्लेख वृन्दावन का [illegible] है किन्तु दशमस्कंध में कुसुम धूरि का उल्लेख वृन्दावन की शोभा के सामान्य चित्रण के प्रसंग में है जिसके अन्तर्गत सभी प्रकार की छटाओं का एक स्थान पर वर्णन किया गया है। अत: रूपमंजरी, विरहमंजरी और दशमस्कंध के उक्त उल्लेखों को देखने से यही जान पड़ता है कि रूपमंजरी और विरहमंजरी में इसका समावेश मौलिक रूप में हुआ है और दशमस्कंध में वहीं से लिया गया है।

सातवें उदाहरण में, रुक्मिणीमंगल में कृष्ण द्वारा रुक्मिणीहरण के पूर्व, देवालय में रुक्मिणी गौरी की पूजा करने जाती है और जिस प्रकार रुक्मिणी ने गौरी की पूजा का वर्णन किया है उसी प्रकार का वर्णन मखिनी गोपियां, दशमस्कंध में यमुनातट पर बालू की प्रतिमा बना कर उसकी पूजा के समय करती हैं। उक्त समान उल्लेखों में रुक्मिणी मंगल का उल्लेख ही स्वाभाविक और मौलिक प्रतीत होता है, क्योंकि रुक्मिणी गौरी के मन्दिर में जाकर विरह के पूर्व कुल रीत्यानुसार विधिवत् पूजा करती है किन्तु दशमस्कंध में न ऐसी कोई रीति है और न ही कोई देवालय। अत: रुक्मिणीमंगल का कथन स्वतंत्र कथन है और दशमस्कंध में उसी का अनुकरण है।

आठवें, नवें, दसवें और ग्यारहवें उदाहरणों के विषय में भी यही बात कही जा सकती है कि उक्त कथनों का मौलिक उल्लेख रासपंचाध्यायी में ही हुआ है और दशमस्कंध के सम्बन्धित कथन उन्हीं के अनुकरण पर दिए गए हैं।

२० इससे विदित होता है कि दशमस्कंध भाषा की रचना उस काल के उपरान्त हुई जब नन्ददास की रसमंजरी, रूपमंजरी, विरहमंजरी, रुक्मिणीमंगल, और रास पंचाध्यायी की रचना हो चुकी थी।

२१ प्रस्तुत प्रकरण में यह भी [illegible] है कि दशमस्कंध भाषा में अनेक स्थलों पर तुलसी के राम चरित मानस से भाव और शब्दावली यथावत् रूप में ग्रहण की गई जान पड़ती है। यथा;

(१) सरिता सर निरमल जल सोहा, संत हृदय जस गत मद मोहा ॥

--रामचरितमानस ।[१]

(२) सुन्दर सर निर्मल जल ऐसे । संत जनन कौ आनन जैसे ।।

--दशमस्कंध भाषा ।[२]

(२) बूंद अघात सहहिं गिरि जैसे । खल के बचन संत सह जैसे ।

--रामचरितमानस ।[३]

गिरिगन पर जलधर वर बरसे । ते परि गिरि कछु किया न परसे ।
परी पै निरसै नाहिं ऐसै । कष्टनि पाय कृष्न जन जैसे ।।

--दशमस्कंध भाषा ।[४]

(३) छुद्र नदी भरि चली तोराई । जस थोरे धन खल बौराई ।

--रामचरितमानस ।[५]

पाछे सूष्क हुती जे सरिता । उलगि चली बहुत जल भरिता ।
अजितेन्द्रिय नर ज्यों इतराई । देह गेह धन सम्पति पाई ।।

-- दशमस्कंधभाषा ।[६]

इन उल्लेखों से ज्ञात पड़ता है कि दशमस्कंध भाषा में मानों रामचरितमानस के सम्बन्धित स्थानों की व्याख्या की गई हो । रामचरितमानस की रचना संवत् १६३१ में आरम्भ हुई थी ।[७] और सम्वत् १६३३ से पूर्व समाप्त नहीं हुई होगी ।[८] फिर रचना के उपरान्त उसका विद्वानों में प्रचार होने में कुछ कम समय नहीं लगा होगा और उस समय तक नन्ददास की रासपंचाध्यायी पर्यन्त ग्रन्थों की रचना हो गई होगी, जिनकी भाषा और भावों का दशमस्कंध भाषा में प्रभाव है ।

१-रामचरितमानस, किष्किन्धा काण्ड, शरद ऋतु वर्णन । २-न०ग्र०, पृ० २७६ ।
३- ,, ,, वर्षा ,, ।४- ,, पृ० २८८ ।
५- ,, ,, ,, ,, ।६- ,, पृ० २८८ ।
७- तुलसीदास -- डा० माताप्रसाद गुप्त, पृ० २३१ ।
८- वही, पृ० २४१ ।

दशमस्कंध भाषा का कवि नन्ददास से भिन्न

२२ उपर्युक्त विश्लेषण से दशमस्कंध भाषा की रचना रसमंजरी के पश्चात् की ही नहीं, रासपंचाध्यायी के भी उपरान्त की ज्ञात होगी, किन्तु छन्द निर्वाह, विषय-निर्वाह, तथा रचना के दृष्टिकोण के विचार से दशमस्कंध भाषा की रचना रसमंजरी के पूर्व की ठहरती है। दशमस्कंध भाषा रसमंजरी, रूपमंजरी, विरहमंजरी, रुक्मिणीमंगल तथा रासपंचाध्यायी यदि एक ही कवि की रचनाएं होतीं तो दशम-स्कंध की रचना रस मंजरी के पूर्व होने की दशा में उसमें रासपंचाध्यायी पर्यन्त ग्रंथों का प्रभाव तो नहीं ही होता, रसमंजरी में दोहों का निश्चित् नियम से प्रयोग भी होता और दशमस्कंध की रचना रसमंजरी के पश्चात् होने की दशा में उसमें दोहों और चौपाइयों का निश्चित् नियम और समन्वय तो होता ही, रसमंजरी, रूपमंजरी तथा विरहमंजरी में जो सामीप्य संबंध है वह नहीं होता। किन्तु ऊपर दिए गए विवेचन से ऐसा ज्ञात नहीं होता। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि दशमस्कंध भाषा की रचना का कवि अष्टछाप के कवि नन्ददास से भिन्न जान पड़ता है। इस सम्बन्ध में निम्नलिखित बातें भी द्रष्टव्य हैं :

(१) अष्टछाप के कवियों में नन्ददास ही ऐसे कवि हैं, जिन्होंने पदों के अति-रिक्त अन्य छन्दों में प्रबन्ध रचना भी की है किन्तु दशमस्कंध भाषा के अतिरिक्त नन्ददास की सभी रचनाएं छोटी ही हैं। इसका कारण है कि अन्य अष्टछापी कवियों की भांति नन्ददास भी पदों में कीर्तन गान करते थे और सम्भव कथा कहने की अपनी विशेषता के कारण उन्होंने अन्य छन्दों में छोटी छोटी रचनाएं कीं। श्यामसगाई, अनेकार्थभाषा, नाममाला, रसमंजरी, रूपमंजरी, विरहमंजरी, रुक्मिणी मंगल, रासपंचाध्यायी, सिद्धान्तपंचाध्यायी और भंवरगीत सभी छोटी छोटी रचनाएं हैं तथा अष्टछाप के कवियों की दैनिक चर्या को [illegible] रखते हुए पदों के अतिरिक्त भिन्न पदों में छोटी आकार की रचनाएं सम्भव थीं। [illegible] है कि श्यामसगाई, जो कि प्रारम्भिक रचना और [illegible] छोटी रचना है, के अतिरिक्त सभी रचनाएं आकार की दृष्टि से अधिक असमान नहीं हैं। इन ग्रन्थों की तुलना में दशमस्कन्ध भाषा एक वृहद् रचना है। अद्यावधि २९ अध्याय उपलब्ध हैं और ये २९ अध्याय

हो परिमाण में नन्ददास जो के उक्त सभी ग्रन्थों के लगभग बराबर हैं । दशमस्कंध के प्रारम्भ में कवि के कथन से ज्ञात होता है कि उसका एक मित्र भागवत दशमस्कंध के कृष्णचरित्र को भाषा में सुनाने का आग्रह करता है । कवि द्वारा इस कार्य को अत्यन्त कठिन बताने पर मित्र यथाशक्ति वर्णन करने को कहता है,[1] प्राप्त २६ वें अध्याय के अन्त में कवि का ऐसा कोई संकेत नहीं है जिससे यह ज्ञात हो सके कि उसने इसी अध्याय तक दशमस्कंध की रचना की है । अत: यह प्रकट है कि २६ वें अध्याय के आगे[2] अध्यायों को भी लिखा गया होगा । पूरे दशमस्कंध में ६२ अध्याय हैं । सम्भव है इस सम्पूर्ण ग्रन्थ-दशम स्कंध को भाषा में लिखा गया हो और शेष अध्याय अनुपलब्ध हों । फिर भी ग्रन्थ के अन्त में किसी ऐसे संकेत के अभाव में, जिससे ग्रन्थ के अन्त की सूचना मिले, अध्यायों की संख्या के विषय में 'इदमित्थम्' कहना सम्भव नहीं है । चाहे जो हो, प्राप्त २६ अध्यायों को दृष्टिगत रखते हुए ही यह कहा जा सकता है कि अष्टछाप के कवि नन्ददास द्वारा इतने वृहत् ग्रन्थ की रचना किये जाने की सम्भावना नहीं जान पड़ती है ।

(२) नन्ददास ने रसमंजरी[2] और रासपंचाध्यायी[3] की रचना का कारण अपने किसी मित्र का आग्रह या आज्ञा बताया है । दशमस्कंध भाषा में भी मित्र का उल्लेख है ।[4] रसमंजरी और रासपंचाध्यायी में उक्त मित्र को 'मीत' कहा गया है किन्तु दशमस्कंध में 'मित्र'। दशमस्कंध भाषा में प्राय: प्रत्येक अध्याय में मित्र को सम्बोधित करके वर्णन किए गए हैं :

१-न० ग्र०, पृ० २१६ ।

२- वही, पृ० ।

३- वही, पृ० ।

४- वही, पृ० ।

सो यह अजगर परम पवित्र । सुन्यो वृन्दावन मधि मित्र ।।[१]

0 0 0

जहाँ मित्र कछु चित्र न कीजे । हरि की बालकता में मन दीजे ।।[२]

0 0 0

जहाँ मित्र तुम भोजन करो । आनै मन तन को जिनि डरो ।।[३]

0 0 0

जहाँ मित्र इहि विधि व्रज गोपी । परम पवित्र कृष्णरस ओपी ।।[४]

0 0 0

मित्र कहत अचरिज सो हिये । ज्यों हरि त्रिभंग तनु किये ।।[५]

\- - - - -

नन्द कहत अचरज जिनि मानि । गिरि धरवर अचरज की खानि ।।[५]

0 0 0

मित्र कहत कि व्रज में जाऊँ । पुनि अकुंठ बैकुंठहि पाऊँ ।।
बहुरि जु लोकनि में फिरि आवें । यह संदेह मोहि भरमावे ।।
नन्द कहत कछु जिनि करि चित्र । जिनके मन मोहन से मित्र ।।[६]

इस प्रकार के आत्म कथन रासपंचाध्यायी या रसमंजरी के मध्य में नहीं मिलते हैं । रासपंचाध्यायी में उल्लिखित मित्र रसिक है और रसमंजरी में उसकी नायिका भेद जानने की इच्छा से उस रसिकता की पुष्टि होती है । किन्तु दशमस्कंध भाषा में कथित मित्र परम विचित्र है । वह कृष्ण चरित्र सुनने की इच्छा व्यक्त कर अपनी धार्मिक वृत्तिमात्र का परिचय देता है तथा बीच बीच में कवि से प्रश्नों के समाधान के लिए आग्रह करता है । इस प्रकार रसमंजरी और रासपंचाध्यायी में उल्लिखित मित्रों के स्वभाव में जहां समानता है, वहीं दशमस्कंध में कथित मित्र की रुचि से उनकी भिन्नता है । रसमंजरी नन्ददास की प्रारम्भिक रचनाओं में से है और रासपंचाध्यायी अन्तिम रचनाओं में । शैली की-दृष्टि और विषय-निर्वाह की दृष्टि से दशमस्कंध भाषा की रचना यदि नन्ददास की ही होती तो रासपंचाध्यायी के पूर्व की ही होती किन्तु रासपंचाध्यायी

१-२ - न० ग्रं०, पृ० २६२ ।   ३- वही, पृ० २६५ ।
४- वही, पृ० २६७ ।   ५- वही, पृ० २७७ ।

के पूर्व हो कवि को मनोवृत्ति में इस प्रकार परिवर्तन होने का किसी भी समय संभावना नहीं दिखाई देता है।

इसके अतिरिक्त रसमंजरी और रासपंचाध्यायी ग्रन्थों में कवि ने मित्र द्वारा गुरु या श्रीकृष्ण का महत्व वर्णन नहीं किया है किन्तु दशमस्कंध भाषा में मित्र द्वारा गुरु गिरिधर देव का माहात्म्य वर्णन किया गया है।[१] नन्ददास ने किसी भी ग्रंथ में गुरु का नाम नहीं लिया है, पदों में भले ही लिया हो। दूसरी बात है नन्ददास के गुरु, विट्ठलनाथ जी थे, गिरिधर जी नहीं। इस प्रकार दशमस्कंध भाषा में मित्रोल्लेख और उसकी मनोवृत्ति की रसमंजरी और रासपंचाध्यायी के तदुल्लेखों से विभिन्नता दृष्टिगत होती है।

(३) दशमस्कंध जैसे वृहद् ग्रन्थ में कहीं कहीं तो एक एक अध्याय में अनेक बार कवि की छाप है, किन्तु कहीं भी `नन्ददास` नाम से कवि छाप नहीं मिलती है और प्रत्येक स्थल पर `नंद` ही लिखा गया है। रसमंजरी, रूपमंजरी और विरहमंजरी जिनमें कवि छाप `नंद` रूप में भी मिलती है, की ही शैली का अनुसरण कर दशमस्कंध की रचना की गई जान पड़ती है। मंजरी ग्रन्थों के अतिरिक्त अन्य सभी ग्रन्थों में केवल `नन्ददास` नाम से ही कवि छाप मिलती है किन्तु दशमस्कंध भाषा में एक स्थल पर भी `नंददास` की छाप नहीं मिलती है।

(४) दशमस्कंध भाषा की रचना क्यों की गई, इसका कारण उसमें स्पष्ट मिलता है :

> परम विचित्र मित्र इक रहै। कृष्ण चरित्र सुन्यौ सो चहै।
> तिनकहि दशमस्कंध जु आहि। भाषाकरि कछु बरनौं ताहि।।
> सबद संस्कृत के हैं जैसे। मो पै समुझि परत नहिं तैसे।।
> तातें सरल सु भाषा कीजे। परम अमृत पीजै सुख जीजे।।[२]

इसमें भाषा में लिखने की बात से ज्ञात होता है कि कवि भागवत की कथा को सर्वप्रथम इसी ग्रन्थ के रूप में भाषा में लिख रहा है।

१,२- न० ग्र०, पृ० २१६।

रासपंचाध्यायी में भी उसकी रचना का कारण दिया गया है :

परम रसिक इक मित्र मोहि तिन आज्ञा दीनी ।
ताते मैं यह कथा जथा मति भाषा कीनी ।।[1]

यहाँ कथा का तात्पर्य दशमस्कंध भागवत की रास कथा से है । कवि के उक्त कथन से ज्ञात होता है कि वह इस कथा को सर्वप्रथम ही भाषा में लिख रहा है ।

यदि दशमस्कंध भाषा और रासपंचाध्यायी का कवि एक ही होता तो दोनों में भाषा में लिखने की बात का उक्त प्रकार का उल्लेख न होता । क्योंकि शैली तथा विषय निर्वाह की दृष्टि से दशमस्कंध की रचना रासपंचाध्यायी से पूर्व की ही हुई होती और रासपंचाध्यायी की कथा दशमस्कंध में कवि कह ही चुका तो उसी कथा को पुनः भाषा में कहने की आज्ञा की बात सम्भव नहीं जान पड़ती है । यह बात अवश्य समझ में आती, यदि दशमस्कंध भाषा में २८ वें अध्याय तक ही रचना होती, किन्तु ऐसा नहीं है । यदि रासपंचाध्यायी को दशमस्कंध की रचना से पूर्व की मान भी लिया जाय तो भी यह संगत नहीं जान पड़ता है कि रोला छन्द में अत्यन्त सुन्दर शैली में रास कथा को लिख कर नन्ददास जी पुनः उसी कथा को दशमस्कंध की शिथिल शैली में लिखें । इस प्रकार रासपंचाध्यायी के कवि द्वारा दशमस्कंध भाषा की रचना किये जाने की सम्भावना नहीं प्रतीत होती है ।

(५) विरहमंजरी में कवि ग्रन्थ के माहात्म्य के रूप में लिखता है :

इहि परकार बिरहमंजरी । निरवधि परम प्रेम रस भरी ।।
जो इहि सुनै गुनै हित लावै । सो सिद्धांत तत्व को पावै ।।[2]

सिद्धान्त तत्व से कवि का प्रयोजन पुष्टिमार्ग के उस सिद्धान्त से है जिसमें भावदु-विरहावस्था में भगवान की लीला के अनुभव मात्र से संयोगावस्था का सुख अनुभूत होता है तथा भक्त को भगवान का अनुग्रह प्राप्त होता है । किन्तु दशमस्कंध भाषा में इससे भिन्न दृष्टिकोण सम्मुख आता है । कवि के अनुसार दशमस्कंध 'आश्रय वस्तु' का रसमय सिन्धु है और उसमें से वह सिद्धान्त रत्नों को निकालना चाहता है ।[3] जिससे ज्ञात

१-न० ग्रं०, पृ० ४ ।   २-वही, पृ० १७२ ।   ३-वही, पृ० २१६ ।

होता है कि दशमस्कंध के कवि का सिद्धान्त, विरहमंजरी के कवि से भिन्न है, दशम-स्कंध भाषा में आश्रय वस्तु की प्राप्ति कृष्ण चरित्र के श्रवण द्वारा अभिलषित है जिसमें कवि हृदय की वह विकलता देखने में नहीं आती जो विरहमंजरी या कवि की अन्य असन्दिग्ध रचनाओं में मिलती है।

(६) दशमस्कंध में आत्म विज्ञापन का भाव नन्ददास ग्रन्थावली की अपेक्षा अधिक व्याप्त है। अन्य किसी भी ग्रन्थ में कवि ने तीन बार से अधिक किसी वर्णन को अपने नाम से संबंधित नहीं किया है, जबकि दशमस्कंध में एक-एक अध्याय में अनेक स्थलों पर कवि ने अपना नाम ही नहीं मित्र के साथ वार्तालाप का रूप भी दिया है जो नन्ददास की मनोवृत्ति के अनुकूल नहीं जान पड़ता है। यह बात रूपमंजरी ग्रन्थ से और भी स्पष्ट हो जाती है जिसमें कवि अपने नाम विज्ञापन के अनेक प्रसंग उपस्थित होने पर भी नाम नहीं देता है और इन्दुमति या सहचरी के मिस प्रसंग को स्पष्ट करता है।

(७) दशमस्कंध भाषा में अनेक स्थलों पर भाषा का प्रयोग इस प्रकार है जैसा नन्ददास के अन्य ग्रन्थों में कहीं भी नहीं मिलता है। यथा, 'कि' संयोजक का दशम-स्कंध भाषा में अत्यधिक प्रयोग नन्ददास की शैली के अनुकूल नहीं है। यहां इस प्रकार के प्रयोग के कुछ उदाहरण दशमस्कंध से दिए जाते हैं :

१-कहो कि हो प्रभु मैं तुम जाने। प्रकृति तें परे जु पुरुष बखाने।[१]
२-सुनतहिं उठ्यो तलपते कंस। कहत कि आयो बाल नृसंस।[२]
३-सबनि कही कि नंद बड़ भागी। लरिकहिं रंचक आंचन लागी।[३]
४-कहत कि यह सिसु हाथ न आयो। यह कोउ गिरिवर जाय उड़ायो।[४]
५-कहन लगी कि जु ईस्वर कोई। जाको चितवनि में जग होई।[५]
६-कहत कि यह माखन सब लीजै। वहाँ मित्र हठ नाहिन कीजै।[६]
७-कहन लगे कि मरे हे सबै। हरि नन्ददास जिवाये अबै।[७]

१-न० ग्रं०, पृ० २२८।   २-वही, पृ० २३१।   ३-वही, पृ० २४१।
४-वही, पृ० २४२।   ५-वही, पृ० २४३   ६-वही, पृ० २५७।
७-वही, पृ० २५८।

८-देवन में जु देव बड़ होई । क्या जानहिं कि आहि कल सोई ।[१]

९-कन्त कि यह बल नहिन मनुज को । निरवधि ईश्वर बल जु मनुज को ।[२]

इन उदाहरणों में `कि` के प्रयोग से शैली में वह शिथिलता आ गई है जो शेष नन्ददास ग्रन्थावली में कहीं भी नहीं मिलती ।

(८) दशमस्कंध भाषा में ऐसे अनेक शब्दों या शब्दरूपों का प्रयोग हुआ है, जो नन्ददास के अन्य ग्रन्थों में नहीं मिलता है । उदाहरणार्थ :

रपट, रहपट, भौतिक, कृतारथ, साम्नात, आत्यंतिक, बाग, गमुना, पंगा, वनादिक, गंवार, कुबोल, दरबो, मिथ्यावादी, दीनमान, आस्वादित, कुत्सित, दरेर, इत्यादि । इसके अतिरिक्त `फक मारत परे` की समान उक्तियों का भी प्रयोग हुआ है ।

(९) नन्ददास ने संस्कृत के तत्सम शब्दों को अपनी शैली के सांचे में इस प्रकार ढाला है कि उसमें ब्रज भाषा की मधुरता तो आई ही है, मूल शब्दों की स्वाभाविकता भी नहीं मिटने पाई है । दशमस्कंध में अनेक ऐसे शब्दों का, जो आलोच्य कवि के अन्य ग्रन्थों में ब्रजभाषा के सांचे में ढल कर प्रयुक्त हुए हैं, तत्सम रूप में ही प्रयोग हुआ है । ऐसे शब्दों के कुछ उदाहरण नीचे दिए जाते हैं :

दशमस्कंध में प्रयुक्त शब्द	नन्ददास के अन्य ग्रन्थों में प्रयुक्त उन्हीं शब्दों का रूप
चरित्र	चरित
ज्योति	जोति
कीर्ति	कीरति
रक्षक	रच्छक
ज्ञान	ग्यान

१- न० ग्र०, पृ० ३५८ ।

२- वही, पृ० ३५२ ।

श्रवण, श्रवन	स्रवन
श्रम	स्रम
निर्मल	निरमल
प्रश्न	प्रसन आदि

२३ उपर्युक्त विवेचन से विदित होगा कि अष्टछाप के कवि नन्ददास द्वारा दशम स्कन्ध भाषा की रचना मानना सत्यता से नितान्त पराङ्मुख होना होगा ।

नन्ददास की कृति होने का भ्रम और समाधान

२४ प्रस्तुत प्रसंग में वे बातें उल्लेखनीय हैं जिनसे दशमस्कंध भाषा का, आलोच्य कविकी रचना होने का भ्रम होता है । इस भ्रम का सर्वप्रमुख कारण है -- दशमस्कंध भाषा के कवि द्वारा अष्टछाप के कवि नन्ददास के व्यक्तित्व, भाषा और शैली का यथासम्भव अनुकरण । यह अनुकरण निम्नलिखित दिशाओं में दिखाई पड़ता है :

(१) कवि छाप : दशमस्कंध भाषा के कवि द्वारा यद्यपि नन्ददास के सभी ग्रन्थों का प्रभाव ग्रहण किया गया प्रतीत होता है तथापि समान छन्दों में लिखे गये ग्रन्थ रसमंजरी, रूपमंजरी और विरहमंजरी का उसपर सर्वाधिक प्रभाव पड़ा है । इसीलिए इन ग्रन्थों में जिस प्रकार `नंद` रूप में कवि छाप है, भाषा दशमस्कंध में सर्वत्र उसके कवि ने `नंद` रूप में ही कवि छाप दी है । किन्तु यह सत्य छिपा नहीं है कि इन मंजरी ग्रन्थों -- रूपमंजरी में `नन्ददास` छाप भी मिलती है, जो दशमस्कंध में कहीं नहीं मिलती ।

(२) मित्रोल्लेख : दशमस्कंध भाषा के कवि ने नन्ददास की रसमंजरी की देखा देखी मित्र के आग्रह की बात लिखी है । रसमंजरी और दशमस्कंध के मित्रोल्लेख में जो भिन्नता है वह इस बात के लिए पर्याप्त प्रमाण है कि ये उल्लेख दो भिन्न विभिन्न कवियों के हैं । नन्ददास के मित्र संबंधी उल्लेख से दशमस्कंध का ही कवि नहीं का कवि भी प्रभावित हुआ है :

एक सखी मन मित्र माँहि यह आज्ञा दीनी ।
ताते मैं मति उकति [illegible] में कीनी ।। --दानलीला

प्रकट है कि नन्ददास की शैली का अनुकरण एक दशमस्कंध के कत्ति के कवि ने ही नहीं, अन्य कवियों ने भी किया है। जोगलीला की मथुरावाली प्रति के अन्त में 'नन्ददास' की छाप भी है :

नित्य बसों नन्ददास के औरि संकेत सधाम। स्याम स्यामा दोउ ।।[1]

किन्तु यह रचना नन्ददास की नहीं है।[2]

(३) भाषा-शैली की समानता :

इस पर ऊपर प्रकाश डाला जा चुका है और यहां इतना स्मरणीय है कि नन्ददास की भाषा और शैली के अध्ययन के उपरान्त, उसी शैली में 'उद' कवि ने अपने ग्रन्थों की रचना की थी जिनमें भाषा तो नंददास की [illegible] से प्रभावित है ही, भाव भी नन्ददास काव्य से मिलते हैं, इस बात को हिन्दी के विद्वान् मानने लगे हैं।[3]

(४) चौपाई-दोहा छन्द शैली :

नन्ददास ने रस मंजरी, रूप मंजरी और विरह मंजरी की रचना चौपाई दोहा छन्द शैली में की है और दशमस्कंध भाषा की रचना भी दोहे-चौपाइयों में होने से तथा उसमें 'नंद' रूप में कवि छाप होने से यह भ्रम होना स्वाभाविक है कि उक्त मंजरी ग्रन्थों की भांति ही दशमस्कंध की रचना कदाचित नन्ददास की हो। किन्तु नन्ददास की छन्द शैली की दशमस्कंध की शैली से भिन्नता किस सीमा तक है, यह ऊपर दिखाया जा चुका है।

(५) वार्ता का उल्लेख :

२५२ वार्ता में कहा गया है कि तुलसीदास की देखा-देखी नन्ददास ने भागवत को भाषा में किया। किन्तु ऐतिहासिक दृष्टि से विचार करने पर यह बात निराधार कल्पित जान पड़ती है। यदि अष्टछाप के कवि नन्ददास द्वारा भागवत को भाषा में करने का वार्ता का कथन सत्य होता तो नाभादास अवश्य भक्तमाल में इसका उल्लेख करते। किन्तु नाभादास ने केवल 'लीलापदरस रीति

१-अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय-डा० दीनद० गुप्त, पृ० ~~[illegible]~~ २४२।

२- वही, पृ० [illegible]।   2. वही, पृ० २४६।

३- [illegible]

ग्रन्थ रचना किए जाने का उल्लेख किया है तथा भागवत भाषा के लिए कोई संकेत नहीं किया है। नन्ददास द्वारा भागवत भाषा लिखे जाने पर वह एक बृहद और महत्वपूर्ण रचना होती और नाभादास जी उसके लिए "कृष्णचरित" जैसा कोई शब्द या पदसमूह "लीलापदरधरीति" के साथ जोड़ते। वार्ता के कथन से तो यही ज्ञात होता है कि पूरा भागवत भाषा में लिखा गया और रासलीला या पंचाध्यायी रख कर गुसाईं जी की आज्ञा से शेष को यमुना में बहा दिया गया।

वार्ता के ही अनुसार दोहा-चौपाई छन्द में प्राप्त दशमस्कंध भाषा नन्ददास की रचना नहीं ठहरती है, क्योंकि उसमें स्पष्ट लिखा है कि पंचाध्यायी रखकर शेष को यमुना में बहा दिया गया।[1] नन्ददास कृत प्राप्त पंचाध्यायी रोला छन्द में लिखी गई है और उसके अवलोकन से विदित होता है कि नन्ददास ने उसे ही सर्वप्रथम भाषा में लिखा है। तथा यह स्वतंत्र रचना है। ऐसी उत्कृष्ट रचना के उपरान्त दोहा चौपाई में पुन: पंचाध्यायी के लिखे जाने की बात कल्पना में भी नहीं आती। फिर वार्ता की किसी किसी प्रति के अनुसार तो भागवत को भाषा में लिखने का कार्य विट्ठलनाथ जी के कहने पर आरम्भ ही नहीं किया गया।[2]

२५ उपर्युक्त विश्लेषण और विवेचन से यही विदित होता है कि दशमस्कंध भाषा का कवि अष्टछाप के कवि नन्ददास से भिन्न है।

दशमस्कंध भाषा का रचयिता :

२६ यदि दशमस्कंध भाषा अष्टछापी कवि नन्ददास की रचना नहीं है तो इसका रचयिता कौन है? इसका उत्तर यही है कि यह किसी अप्रसिद्ध नन्द या नन्ददास नामक कवि की रचना है, जिसके नाम की छाप इसमें सर्वत्र मिलती है और जिसने नन्ददास की भाषा शैली और छन्दों के अध्ययन के उपरान्त उसी शैली में ग्रन्थ रचना की है। नन्ददास की शैली का अनुकरण अनेक कवियों ने किया है, इनमें उदय नामक कवि प्रमुख हैं। नागरी प्रचारिणी सभा की खोज रिपोर्ट में एक

`नंद` कवि का उल्लेख हुआ है। उसकी एक रचना `सगारथ लीला` का भी उल्लेख मिलता है किन्तु रिपोर्ट में कवि के विषय में कुछ भी ज्ञात न होने की बात लिखी गई है।[1] खोज रिपोर्ट में अष्टछाप के कवि नन्ददास के अतिरिक्त एक अन्य `नंददास` का भी उल्लेख मिलता है। इनके विषय में भी कुछ ज्ञात न होने की बात कही गयी है।[2] इनके अतिरिक्त किसी `नंद व्यास` नामक कवि का भी उल्लेख उक्त रिपोर्ट में मिलता है। इनके विषय में लिखा है कि ये १७८९ के पूर्व वर्तमान थे और मानलीला तथा यज्ञ लीला इनकी रचनाएं थीं। इनके भी विषय में अन्य कुछ ज्ञात न होने की बात लिखी गई है।[3] डा० माताप्रसाद गुप्त जी ने `हिन्दी पुस्तक साहित्य` में अष्टछाप के कवि नन्ददास के अतिरिक्त एक `नंददास गोस्वामी` का उल्लेख किया है किन्तु उनके विषय में केवल इसके कि उनकी रचना `रासपंचाध्यायी` थी, अन्य कोई सूचना उसमें नहीं दी गई है।[4]

२७ सम्भव है उक्त नंद कवि, नंददास गोस्वामी और नंदव्यास में से किसी ने पूर्ण भागवत दशमस्कंध की भाषा में रचना की हो जिसमें से २९ अध्याय प्राप्त हैं और खोज के सफल होने पर अन्य अध्याय भी मिल सकें। यह भी असम्भव नहीं कि उदय कवि ने ही इस ग्रन्थ की रचना की हो और उपनाम `नंद` रखा हो तथा नन्ददास की शैली से घनिष्ठ साम्य को देखते हुए उसे नन्ददास की रचना माना जाने लगा हो। उल्लेखनीय है कि उदयकवि के काव्य में नन्ददास की शैली से घनिष्ठ साम्य है। यह भी दृष्टव्य है कि जहां कहीं भी दशमस्कंध भाषा में नन्ददास की शैली का अनुकरण न कर स्वतंत्र शैली अपनाई गई है, उसमें नन्ददास-काव्य में व्यक्त लालित्य नहीं आ पाया है।

सुदामा चरित

२८ इस कृति की रचना शैली भी वही है जो दशमस्कंध भाषा की है। डा० दीनदयालु गुप्त जी का अनुमान है : `यह रचना नन्ददास कृत सम्पूर्ण भागवत भाषा

१-२-३- हिन्दी हस्तलिखित [illegible] का संक्षिप्त विवरण, डा० श्यामसुन्दरदास, भाग-१, पृ० ७३।

४- हिन्दी पुस्तक साहित्य-डा० माताप्रसाद गुप्त, पृ० ५९०।

का जो अब अप्राप्य है, अंश है । इसके अंतिम छन्दों में कवि ने दशमस्कंध भागवत का उल्लेख भी किया है ।[1] दशमस्कंध भागवत में ८० और ८१ वें अध्यायों में यह कथा है । ~~दशमस्कंध भागवत में ८० वें और ८१ वें अध्यायों में यह कथा है ।~~ अत: सम्भव यही जान पड़ता है कि यह उस सम्पूर्ण दशमस्कंध भागवत का ही अंश होगा, जिसके १ से २९ तक के अध्याय प्राप्त हैं । इसमें भी 'नंददास' रूप में कवि छाप नहीं मिलती है, 'नंद' रूप में ही मिलती है ।[2] अन्त में निम्न प्रकार का उल्लेख है :

> परम विचित्र सुदामा नित सुनि । हृदय कमल में राखौ गुनि गुनि ।।
> नंददास की कृति संपूरन । भक्ति मुक्ति पावै सोइ तूरन ।।[3]

कवि छाप के उपरान्त इस प्रकार के कथन से प्रकट होता है कि ये कथन कवि के नहीं हैं, किसी अन्य व्यक्ति द्वारा उल्लिखित हैं । डा० दीनदयालु गुप्त जी के अनुसार यह उल्लेख 'लिपिकार द्वारा किया जान पड़ता है'।[4] इन पंक्तियों का शेष कृति के साथ अवलोकन करने पर दोनों अंशों की शैली की समानता प्रकट हो जाती है । जिसने उक्त पंक्तियों को लिखा है, उसी के द्वारा शेष कृति सहित दशमस्कंध भाषा की भी रचना होना असम्भव नहीं है । नन्ददास की ही शैली का अनुकरण करके ग्रन्थ में उसी के नाम की छाप बड़ी सतर्कता से दी गई ज्ञात होती है । पं० उमाशंकर शुक्ल जी ने भी सुदामा चरित को नन्ददास की संदिग्ध रचना कहा है ।[5] चाहे जो हो, क्योंकि दशमस्कंध भाषा नन्ददास की रचना नहीं है, अत: उसी का अंश होने के कारण सुदामा चरित भी अकन आलोच्य कवि की रचना नहीं हो सकती ।

गोवर्धन लीला

२९ भागवत दशमस्कंध में २४ वें और २५ वें अध्यायों में गोवर्धन लीला ~~में कुल ७८ पंक्तियां हैं जिनमें~~ वर्णित है । प्राप्त गोवर्धन लीला में कुल ७८ पंक्तियां हैं जिनमें से लगभग आधी पंक्तियां कुछ ज्यों की त्यों और कुछ किंचित पाठ भेद से दशमस्कंध भाषा के २४ वें २५ वें अध्यायों के समान ही हैं । इस समानता से दोनों रचनाएं एक ही कवि

१- अष्टछाप और वल्लभ संप्रदाय-डा० दी०द० गुप्त, पृ० ३४१ ।
२-३- नं०ग्रं०, पृ० २१६ । ४-अष्टछाप और वल्लभ संप्रदाय-डा०गुप्त,पृ० ३४१ ।
५- नन्ददास-'शुक्ल', भूमिका, पृ० ३६ ।

को जान पड़ती है । पं० उमाशंकर शुक्ल जी के मतानुसार गोवर्धनलीला प्रधानतया दशमस्कंध के अध्याय २४ और २५ से ली गई है, अतएव वह कवि की स्वतंत्र कृति नहीं है ।[१] पीछे दिए गए विवेचन से दशमस्कंध नन्ददास की रचना नहीं ठहरती अत: गोवर्धनलीला के भी नन्ददास कृत होने की कोई सम्भावना दृष्टिगत नहीं होती है ।

प्रेम बारह खड़ी

३०   'प्रेम बारह खड़ी' एक छोटी सी रचना है जिसे नन्ददास कृत कहा जाता है । इस रचना को महावीर सिंह गहलोत ने सन् १९४६ की हिन्दुस्तानी पत्रिका में प्रकाशित कराया था । श्री गहलोत ने इसका सम्पादन पं० बसंत राम जी शास्त्री (अहमदाबाद) से प्राप्त तथाकथित मूल प्रति के पाठ के अनुसार किया है और ज्ञात होता है कि उसकी हस्तलिखित प्रति को स्वयं गहलोत जी ने भी नहीं देखा है । श्री बसन्त राम जी सम्प्रदाय के प्रसिद्ध विद्वान् हैं । उन्होंने ही इसे सर्वप्रथम गुजराती लिपि में प्रकाशित किया था । गहलोत जी के अनुसार शास्त्री जी का कथन है कि उन्होंने नन्ददास के अन्य ग्रन्थों के संग 'प्रेम बार खड़ी' को भी कई स्थलों पर प्राचीन हस्तलिखित पोथियों में पाया है ।[२] किन्तु आश्चर्य होता है कि खोज रिपोर्ट, हिन्दी के इतिहास ग्रन्थ एवं कवि कृतियों के संकलन में इस रचना का समावेश तो नहीं हो ही पाया, वल्लभ सम्प्रदाय के खोजी विद्वान् डा० दीनदयालु गुप्त जी को भी यह कृति नन्ददास की रचनाओं के साथ कहीं नहीं मिली ।

३१   प्रेम बारह खड़ी के अन्तिम से पूर्व के दोहे में कर्ता और कृति का उल्लेख निम्न मिलता है :

> ज्ञ ज्ञा : ज्ञान ध्यान करि कृष्ण को बार खड़ी धरि नैन ।
> नंददास तब उधौ गए [illegible] करि प्रनाम निज ऐन ।।३६।।[३]

१- नन्ददास,- 'शुक्ल', भूमिका, पृ० ३९-४० ।

२- हिन्दुस्तानी, सन् १९४६, पृ ३५९ ।

३- वही, पृ० ३६२ ।

इसी को दृष्टिगत रखते हुए गहलोत जी इस रचना को अष्टछापी कवि नन्ददास को कहने में कोई बाधा नहीं मानते हैं। किन्तु स्मरणीय है कि नन्ददास की कर्ता और कृति का उल्लेख करने की प्रवृत्ति कुछ और ही देखने में आती है :

नन्ददास ने किसी भी कृति में कृति का और अपने नाम का उल्लेख साथ साथ उक्त प्रकार से नहीं किया है। कवि ने कृतियों में अपने नाम का उल्लेख किसी हित साधन के रूप में कृति का सम्बन्ध अपने नाम से जोड़ कर ही किया है। यथा :

(१) नन्ददास पावन भयो जो यह लीला गाय ।[1]

(२) बजति बधाई नंद के नंददास बलि जाउ ।[2]

(३) तेल सनेह सनेह घृत बाती प्रेम सनेहु ।
सो निज वरनन गिरिधरन, नंददास कंहु नेहु ।।[3]

(४) जाल किसोर सदा बसौ, नंददास के हीय ।।[4] आदि

३२ कवि की इस प्रवृत्ति के दर्शन प्रेम बारह खड़ी में नहीं होते हैं। प्रेम बारह खड़ी के उक्त दोहे में कवि का नाम प्रसंग से इतना असंबद्ध तो है ही कि 'नंददास' नाम के स्थान पर उपयुक्त मात्राओं का अन्य शब्द भी रखा जाय तो भी अर्थ असंगत नहीं जान पड़ेगा। किन्तु नन्ददास की अन्य किसी भी रचना में यह दोष नहीं आने पाया है। वहां कवि का नाम ग्रन्थ के अथवा ग्रन्थ के विषय के साथ इस प्रकार सम्बद्ध है कि उसके नाम के अतिरिक्त अन्य किसी भी शब्द को रखने पर अर्थ की संगति बैठने का कोई अवसर दृष्टिगत नहीं होता है। अतः गहलोत जी कर्ता और कृति के जिस उल्लेख के आधार पर 'प्रेम बारह खड़ी' को नंददास की रचना मानने के पक्ष में हैं, वस्तुतः उसी उल्लेख के कारण यह कृति नन्ददास की नहीं ठहरती है। इसकी पुष्टि इस कृति के दोहों की शैली की शिथिलता से भी हो जाती है। इस प्रकार की शिथिल और

१- भंवरगीत - नन्ददास, छंद ७५ ।
२- स्यामसगाई - ,, छंद २८ ।
३- [illegible]ला- ,, दोहा १२० ।
४- नाम माला - ,, ,, २६३ ।

अलंकार विहीन शैली नन्ददास की कृतियों में आये हुए दोहों में कहीं भी नहीं मिलती है। कोष ग्रन्थ होते हुए भी अनेकार्थ माला और नाममाला में उपमा तथा उत्प्रेक्षा की छटा देखने को मिलती है। शैली की दृष्टि से यह रचना इन कोष ग्रन्थों से पूर्व की ठहरती है। प्रारम्भिक रचना होते हुए भी इसमें क्ष, त्र, ज्ञ का प्रयोग यह प्रकट करता है कि यह अष्टछाप के कवि नन्ददास की रचना नहीं होगी। श्री गहलोत जी ने उक्त व्यंजनों के प्रयोग के विषय में लिखा है: 'जड़िया नन्ददास संस्कृतज्ञ थे और उनसे तत्सम शब्दों को शुद्ध रूप में अपनाने की आशा लगाना सत्य होगा।'[1] किन्तु द्रष्टव्य है कि नन्ददास अनेकार्थ भाषा और नाममाला की रचना के उपरान्त संस्कृतज्ञ और रासपंचाध्यायी की रचना करने के उपरान्त 'जड़िया' कहलाने योग्य हुए। फिर एक ओर इतनी शिथिल शैली और दूसरी ओर संस्कृतज्ञता और जड़ियापन, दोनों की संगति बैठना प्रकृत्या सम्भव नहीं जान पड़ती है।

३३ इसके अतिरिक्त, 'प्रेमबार खड़ी' में शब्दावली का प्रयोग जिस रूप में हुआ है, वह इससे भी नन्ददास की अन्य कृतियों में नहीं मिलता है। जैसे प्रेम बार खड़ी में 'चयन'[2] और 'नयन'[3] शब्द मिलते हैं, जबकि नन्ददास की कृतियों में इन्हें 'चैन' और 'नैन' रूप में प्रयोग किया गया है। 'प्रेम बार खड़ी' में प्रयुक्त 'खबर'[4], 'ख्याल'[5] और 'आखिर'[6] जैसे विदेशी शब्द भी नन्ददास की कृतियों में कहीं नहीं मिलते हैं। इसी प्रकार 'कौन'[7] 'ठौर'[8] 'सबै'[9], 'ती'[10] 'देखी'[11] 'मोमे'[12] 'रैन'[13] आदि शब्दों के प्रयोग भी द्रष्टव्य हैं। जिन्हें कवि ने क्रमश: कौन, ठौर, तब, ती, देखी, मोहे, रैन आदि रूप में प्रयुक्त किया है।

३४ अत: प्रकट है कि कर्ता और कृति के उल्लेख, भाषा शैली तथा शब्द योजना की दृष्टि से 'प्रेम बार खड़ी' नन्ददास की रचना नहीं ठहरती है। इस रचना में

१- हिन्दुस्तानी, सन् १६४६, पृ० ३६६ ।

२-३- प्रेम बार खड़ी, दोहा सं० १ । ४- वही, दोहा २ ।

५- वही, दोहा २१ । ६- वही, दोहा १८ । ७- वही, दोहा ११ ।

८- वही, दोहा १२ । ९- वही, दोहा ३, ७, १३, ३४ ।

१०, ११- वही, दोहा १३ । १२- वही, दोहा २८ । १३- वही, दोहा ३० ।

जिस प्रकार कवि को छाप दी गई है, उससे स्पष्ट होता है कि इसके रचयिता ने बलात नन्ददास के नाम की छाप लगा दी है, क्योंकि आलोच्य कवि की कृतियों की भांति इसमें कवि के नाम का कृति से अनिवार्य सम्बन्ध प्रकट नहीं होता है ।

प्रामाणिक कृतियां

३५ इस प्रकार निम्नलिखित कृतियां नन्ददास की असंदिग्ध रचनाएं ठहरती हैं :

(१) श्याम सगाई, (२) अनेकार्थभाषा, (३) नाम माला,
(४) रसमंजरी, (५) रूप मंजरी, (६) विरहमंजरी,
(७) रुक्मिणीमंगल, (८) रासपंचाध्यायी, (९) सिद्धांतपंचाध्यायी,
(१०) भंवरगीत और (११) पदावली

पंचमंजरी ग्रन्थ और उनके नाम

३६ पदावली को छोड़कर नन्ददास की उपर्युक्त सभी कृतियों के दो पदों से संयुक्त नाम हैं । श्यामसगाई, रुक्मिणीमंगल, रासपंचाध्यायी, सिद्धान्तपंचाध्यायी और भंवरगीत की रचनाओं के नाम इनमें वर्णित विषय के अनुसार ही मिलते हैं किन्तु अनेकार्थमंजरी, मान मंजरी, रस मंजरी, रूप मंजरी और विरहमंजरी ग्रन्थों के वर्ण्य विषय यद्यपि भिन्न भिन्न हैं तथापि इनके नामों के अन्त में एक ही पद --`मंजरी` मिलता है । कवि द्वारा इन ग्रन्थों के नामों के साथ `मंजरी` शब्द लगाये जाने की बात का कारण खोजने का अभी तक कोई प्रयास नहीं हुआ है । इस सम्बन्ध में कभी तो यह सम्भावना प्रकट करके काम चलाया गया कि रूप मंजरी नाम की कोई स्त्री नन्ददास की मित्र थी और उसकी मित्रता को स्थाई बनाये रखने के उद्देश्य से कवि ने रूप मंजरी ग्रन्थ की रचना की और बाद अन्य ग्रन्थों के नामों के साथ मंजरी पद का संयोग किया गया अथवा इस बात को रहस्यमय कह कर छोड़ दिया गया ।[१]

[illegible]

३७ पीछे लिखा जा चुका है कि इस मंजरी के साथ नन्ददास का वस्तुतः कोई मित्रता नहीं था ।[१] अतः उसके साथ मित्रता को स्थाई बनाने की दृष्टि से रसमंजरी ग्रन्थ की रचना करने और बार बार अन्य ग्रन्थों के नामों के साथ मंजरी पद लगाये जाने की बात निराधार ज्ञात होती है । इस प्रकार उक्त पांच ग्रन्थों के नामों का 'मंजरी' पद युक्त होने की बात वस्तुतः रहस्यमय बनी हुई है । इसी रहस्य के उद्घाटन का यहां प्रयास किया गया है ।

३८ कवि की कृतियों के अवलोकन से ज्ञात होगा कि उसने अपने ग्रन्थों का नाम उनके आरम्भ या अन्त में कहीं न कहीं दिया है । मंजरी ग्रन्थों में भी इनके नामों की ओर संकेत करने वाले उल्लेख ग्रन्थ के आरम्भ या अन्त में मिलते हैं ।

३९ अनेकार्थ मंजरी में कवि लिखता है :

उचरि सकत नहिं संस्कृत ज्ञान अनर्थ ।
तिन हित नंद सुमति जथा भाषा कियो सुअर्थ ।।[१]

इससे प्रकट है कि कवि को इस ग्रन्थ का नाम भाषार्थ अथवा अनेकार्थ भाषा ही रखना अभिप्रेत था, अनेकार्थ मंजरी नहीं, क्योंकि 'अनेकार्थ मंजरी' नाम का ग्रन्थ में कोई भी उल्लेख नहीं मिलता है और इसकी कुछ प्रतियां अनेकार्थमंजरी के नाम से मिलने का कारण-[illegible] निम्नलिखित दोहा ज्ञात होता है :

अनेकार्थ की मंजरी पढ़ै सुनै नर कोय ।
अर्थ भेद जानै सबै पुनि परमारथ होय ।।[२]

किन्तु स्मरणीय है कि यह दोहा इस कृति के उन १२० दोहों में से नहीं है जिनका नन्ददास कृत होना निश्चित माना जाता है ।[३] अतः अनेकार्थ मंजरी नाम कवि को अभिप्रेत नहीं था और उसके द्वारा इंगित 'अनेकार्थ भाषा' ही ग्रन्थ का नाम होना तर्क सम्मत है ।

१- न० ग्र०, पृ० [illegible] ।
२- वही, पृ० [illegible] ।
३- वही, भूमिका, पृ० [illegible] ।

४० नाम माला में कवि का कथन है :

उचरि सकत नहिं संस्कृत जान्यौ चाहत नाम ।
तिन हित नंद सुमति जथा रचत नाम के दाम ।। [१]

यहाँ कवि नाम के दाम अथवा नाममाला के नाम से रचना करने का स्पष्ट संकेत देता है । ग्रन्थ के अन्त में भी ऐसा ही कथन है :

माला एक ब्रज गुननता गहे जु नाम का दाम ।
जो नर कंठ करै सुनै जानै श्री घनस्याम ।। [२]

इससे स्पष्ट है कि नाम के दाम अथवा नाममाला के रूप में ही ग्रन्थ का नामोल्लेख करते हुए उसके माहात्म्य का उल्लेख किया गया है और ग्रन्थ में किसी भी स्थल पर ऐसा कोई उल्लेख नहीं मिलता है जिससे यह इंगित हो कि कवि को इस रचना के नाम के साथ मंजरी पद लगाना अभीष्ट था । अतः स्पष्ट है कि कवि ने इस ग्रन्थ का नाम वस्तुतः नाम को दाम अथवा नाममाला ही रक्खा होगा ।

४१ उपर्युक्त विवेचन से विदित होता है कि अनेकार्थ भाषा और नाममाला के नामों के साथ मंजरी पद होने का इन ग्रन्थों में कोई प्रमाण नहीं मिलता है और इनके नामों का क्रमशः अनेकार्थ भाषा तथा नाममाला होना ही कवि के उल्लेखों द्वारा समर्थित है । इस प्रकार इन दो ग्रन्थों के नाम भी कवि की अन्य कृतियों की भाँति ग्रन्थ के वर्ण्य विषय के अनुसार ही मिलते हैं ।

४२ अनेकार्थ भाषा और नाममाला के वास्तविक नामों से परिचय प्राप्त कर लेने पर शेष तीन मंजरी ग्रन्थों के नाम विचारणीय रह जाते हैं । इनमें भी प्रत्येक में ऐसे उल्लेख मिलते हैं जिनसे यह निश्चित रूप से ज्ञात होता है कि कवि ने इन ग्रन्थों की रचना, रसमंजरी, रूप मंजरी और विरह मंजरी के नामों से ही की थी । यथा, रस मंजरी में कवि का कथन है :

तू यों सुनि ले रसमंजरी, [illegible] परी ।[३]

१- नं० ग्रं०, पृ० ९६ । २- वही, पृ० १०० । ३- वही, पृ० १९५ ।

यहि विधि यह रसमंजरी, कही जथा मति नंद ।
पढ़त बढ़त अति चोप चित, रसमय सुख को कंद ।।[1]

इसी प्रकार रूपमंजरी[2] और विरहमंजरी[3] में भी कवि ने ग्रन्थों के नामों की ओर संकेत किया है ।

४२अ ऊपर संकेत किया जा चुका है कि उक्त नाम मंजरी ग्रन्थों में से सबसे प्रथम रसमंजरी की रचना हुई, उसके उपरान्त रूपमंजरी और अन्त में विरह मंजरी का प्रणयन हुआ ।[4]

यह स्मरणीय है कि दो पदों से संयुक्त नाम -- रसमंजरी में एक पद 'रस' ही ग्रन्थ के वर्ण्य विषय से सम्बन्धित है और यह सम्बन्ध ग्रन्थ के आरम्भ में ही प्रकट है, जबकि कवि लिखता है :

नमो नमो आनन्द घन सुन्दर नंद कुमार ।
रसमय रसकारन रसिक जग जाके आधार ।।
है जु कछू रस यहि संसार, ताकहुं प्रभु तुम हो आधार ।

0 0

जु प्रेम आनन्द रस जो कछु जग में आहि ।
सो सब गिरिधर देव को निधरक बरनौं ताहि ।।[5]

0 0

तू तौ सुनि लै रसमंजरी, नव शिख परम प्रेम रस भरी ।[6]

दूसरे पद -- मंजरी, का ग्रन्थ के वर्ण्य विषय से कोई सम्बन्ध नहीं है । इस पद को ग्रन्थ के नाम के साथ लगाने का कारण यह है कि कवि ने इस ग्रन्थ की रचना संस्कृत रसमंजरी के अनुसार की है :

रस मंजरि अनुसार कै नंद सुमति अनुसार ।
बरनत बनिता भेद जहं प्रेम सार विस्तार ।।[7]

१- न० ग्रं०, पृ० १६१ । २- वही, पृ० १२३, पंक्ति ५३०-३३ ।
३- वही, पृ० १७२ पंक्ति १०१ । ४- दे० ऊपर पृ० ७३ । ५- न० ग्रं०, पृ० १४४ ।
६-७- वही, पृ० १४५ ।

४३ इसी प्रकार रूपमंजरी और विरह मंजरी ग्रन्थों के नामों के प्रत्येक के दो पदों में से एक-एक मुख्य पद -- क्रमश: रूप और विरह, उनमें वर्णित विषय के अनुसार हैं। यह बात कवि के निम्नलिखित कथनों से स्पष्ट होती है :

(१) रूप मंजरी में कवि ने लिखा है :

प्रथमहि गनऊं प्रेममय परम जोति जो आहि ।
रूपमय पावन रूप निधि नित्य कहत कवि ताहि ।।[1]

इससे प्रकट है कि जो प्रेममय है, वही रूपनिधि है और उसी प्रेममय तथा रूपनिधि का वर्णन होने से इस ग्रन्थ के नाम का प्रथम पद -- रूप, रखा गया । इसके अतिरिक्त ग्रन्थ में सम्पूर्ण वर्णनों का केन्द्र रूप मंजरी का रूप ही है :

सखि अस अद्भुत रूप निहारै, मोहनि मन कौतुकनि कर तारै ।
कहत कि कछु इक करउं उपाई, जौं यह रूप अकल नहिं जाई ।।[2]

रूप को निष्फल न होने देने के लिए किए गए इसी उपाय का फल रूपमंजरी ग्रन्थ है ।

(२) विरहमंजरी में कवि का कथन है :

परम प्रेम उज्ज्वलन एक, कढ़यो जु तन मन नैन ।
व्रजबाला विरहिन भई, कहत नंद सौं बैन ।।[3]

इसी व्रजबाला के विरह का वर्णन विरहमंजरी का मुख्य विषय है और उसका विरह ही ग्रन्थ के प्रत्येक वर्णन में व्याप्त है । ग्रन्थ का आरम्भ ही विरह के प्रसंग से होता है :

प्रकट भये जिहिं सुंदर स्यामा , सदा बसौ वृंदावन धामा ।
याके विरह जु उपज्यौ महा कहौ नंद सौं कारन कहा ।।[4]

इसी विरह को नन्ददास समझाते हैं :

नंद समोधत ताको चित । व्रज को विरह समुझिये मित ।।[5]

इसीलिए ग्रन्थ के नाम के साथ विरह पद का संयोग किया गया ।

१- नं० ग्रं०, पृ० ११७ । २- वही, पृ० १२४ ।

३,४-और ५- नं० ग्रं०, पृ० १६२ ।

अध्याय ३

कृतियों का कालक्रम

३

कृतियों का काल-क्रम

रचना-क्रम

१ कवि की कृतियों के कालक्रम पर सर्वप्रथम विचार करने का श्रेय डा० दीनदयालु गुप्त जी को है। गुप्त जी के अनुसार कवि ने सर्वप्रथम रसमंजरी की रचना की। उनका यह मत रसमंजरी के उस कथन पर आधारित है जिसमें कवि ने कहा है, "कि संसार में जो रूप प्रेम और आनन्द रस विद्यमान है, वह सब श्रीकृष्ण से प्रसूत है और प्रेमतत्व को मनुष्य तब तक नहीं समझ सकता जब तक कि वह प्रेम के भेदों को नहीं जानता। प्रेम-तत्व को जाने बिना प्रेम का अनुभव नहीं हो सकता, इसलिए हे मित्र! तुम्हें रस-मंजरी सुनाता हूँ।"[1]

२ इस सम्बन्ध में यह कहना द्रष्टव्य है कि गुप्त जी के अनुसार अनेकार्थ भाषा और नाममाला रसमंजरी के उपरान्त की रचनाएं हैं,[2] किन्तु ये कोश ग्रन्थ हैं और इनमें स्वभावतया कवि द्वारा अभीष्ट वह रूप, प्रेम और आनन्दरस दृष्टिगत नहीं होता है जो इन रसों से युक्त रसमंजरी के उपरान्त की रचनाएं होने में मिलता है। अत: इस दृष्टि से रसमंजरी कवि की प्रथम रचना नहीं जान पड़ती है। उल्लेखनीय है कि रूप-मंजरी ग्रन्थ के आरम्भ में भी इस प्रकार का कथन मिलता है जिसके आधार पर रसमंजरी की भांति ही इसे भी कवि की प्रथम रचना कहा जा सकता है। रूप मंजरी में कवि का कथन है, "कि सर्व प्रथम उस परम ज्योति की वन्दना करता हूं जो रूपनिधि और पवित्र है।"[3] साथ ही रूपमंजरी में वह यह भी कहता है, "कि रसमय सरस्वती की वन्दना करता हूं और वर मांगता हूं कि वह मुझे अत्यन्त सुन्दर, कोमल, सरस और मधुर वाणी दे तथा मेरी कविता को कोई नीरस व्यक्ति न सुने।"[4] किन्तु विषय-निर्वाह और शैली की दृष्टि से रूप मंजरी कवि की प्रथम रचना नहीं ज्ञात होती है। तब

१- अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय : डा० दीनदयालु गुप्त जी, पृ० २७८

२- वही, पृ० २७८-७९

३- रू० मं०, पृ० ११६।

४- वही, पृ० ११७।

केवल उक्त कथन के आधार पर ही रसमंजरी को प्रथम रचना मानना कदाचित असंगत होगा ।

३ तदनन्तर रचना शैली, भावगाम्भीर्य और भाषा विचार के आधार पर गुप्त जी ने कवि की कृतियों को ~~रचनाक्रम~~ रचनाकाल की दृष्टि से निम्नलिखित क्रम में रखा है :[१]

(१) रसमंजरी, (२) अनेकार्थमंजरी, (३) मानमंजरी,
(४) दशमस्कंध,* (५) श्यामसगाई, (६) गोवर्धनलीला*,
(७) सुदामा चरित,* (८) विरहमंजरी, (९) रूपमंजरी,
(१०) रुक्मिणीमंगल, (११) रासपंचाध्यायी, (१२) भंवरगीत और
(१३) सिद्धान्त पंचाध्यायी ।

४ कवि के ग्रन्थों का उपर्युक्त कालक्रमानुसार वर्गीकरण किस सीमा तक संगत है, यह प्रस्तुत प्रकरण के अन्त में ही स्पष्ट होगा, यहां उल्लेखनीय है कि कवि ने अपनी किसी भी कृति में रचना तिथि का निर्देश नहीं किया है और न किसी रचना में ऐसे उल्लेख ही मिलते हैं जो उसके काल-निर्धारण में सहायक हो सकें । यही नहीं समकालीन अथवा परवर्ती साधनों के रूप में भी रचना तिथियों का कोई आधार उपलब्ध नहीं रूप होता है । ऐसी दशा में कवि की कृतियों पर भाव, भाषा, छन्द, विषय-प्रतिपादन शैली आदि की दृष्टि से विचार ही रचना के काल-क्रम निर्धारण का एक मात्र साधन रह जाता है । आगामी परिच्छेदों में उक्त दृष्टियों से ही कवि की कृतियों के काल-क्रम-निर्धारण का प्रयास किया गया है ।

५ नन्ददास ग्रन्थावली का अवलोकन करते समय अनेकार्थ भाषा में दिए हुए निम्न-लिखित दोहे पर सहसा दृष्टि जम जाती है :

जो प्रभु जोति जगतमय कारन करन अभेव ।
विघन हरन सब सुभ करन नमोनमो ता देव ।।[२]

१- अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय : डा० गुप्त जी, पृ० २७७

२- नं० ग्रं०, पृ० ५५ ।

* प्रस्तुत सम्पादक के मत में ये कृतियाँ कवि की नहीं ठहरतीं हैं । दे० ऊपर पृ० ८६ ।

प्रकट है कि उक्त दोहे में कवि इस प्रकार वन्दना करता है जैसे वह किसी कार्य का आरम्भ करता हो और उस कार्य के निर्वाह काल में आने वाले विघ्नों को दूर करने तथा सफलता प्रदान करने के लिए प्रार्थना करता हो ।

६ किसी कार्य को आरम्भ करते समय ईश्वर का स्मरण करने की प्रथा सर्वत्र पाई जाती है जिससे वह निर्विघ्न रूप में पूर्ण हो । अत: उक्त दोहे के प्रकाश में, नन्ददास द्वारा भी अपनी काव्य रचना के कार्यारम्भ में ऐसा किया जाना सर्वथा सम्भव प्रतीत होता है । कवि ने अपने अन्य ग्रन्थों में भी आरम्भ में वन्दना की है,[१] किन्तु उक्त प्रकार के भावों का समावेश किसी में नहीं मिलता है । अत: उक्त दोहे में `विघन हरन' और `सुभ करन' के कथनों से कवि का यही अभिप्राय जान पड़ता है कि ईश्वर उसके उस काव्य प्रणयन के कार्य में जिसको वह आरम्भ करता है, जो भी विघ्न आयें, उन्हें दूर करके सफलता प्रदान करे । इस प्रकार अनेकार्थ भाषा कवि की सर्वप्रथम रचना ज्ञात होती है । इसके अतिरिक्त स्मरणीय है कि अनेकार्थ भाषा कोष ग्रन्थ है और उसमें साहित्यिकता का समावेश नहीं मिलता है । नाममाला भी यद्यपि कोषग्रन्थ है तथापि उसमें राधा के मान की कथा का रोचक प्रवाह मिलता है और वह जैसा कि नीचे प्रकट

१-- तन्नमामि पद परम गुरु, कृष्ण कमल दल नैन ।
जग कारन करुनायतन, गोकुल जाको ऐन ।।
--नाममाला

नमो नमो आनन्दघन, सुंदर नन्द कुमार ।
रस-मय, रस-कारन, रसिक जन जाके आधार ।।
-- रसमंजरी

प्रथमहिं प्रनउं, प्रेम मय परम जोति जो आहि ।
रूपउ पावन रूपनिधि नित्य कहत कवि ताहि ।।
-- रूपमंजरी

वन्दन करौं कृपा निधान श्री सुक [illegible]री ।
सुद्ध जोतिमय रूप सदा सुंदर [illegible] ।।
--रासपंचाध्यायी ।

होगा, साहित्यिकता से नितान्त विहीन नहीं है ।

६-अनेकार्थ

७ अनेकार्थ भाषा के अतिरिक्त कवि की कृतियों में से श्याम सगाई ही ऐसी रचना दृष्टिगत होती है जिसमें अलंकारविहीन भाषा का प्रयोग हुआ है । उसमें शब्द भी ग्रामीण रूप में ही प्रयुक्त हुए हैं । यथा :

'इक दिन राधे कुंवरि स्याम घर खेलनि आई ।'[१]

इसी पंक्ति से श्याम सगाई का आरम्भ होता है जिसमें अत्यन्त साधारण शब्दावलि है और ग्रामीण बोलचाल का सा वातावरण है । इसी प्रकार 'तुरत भली करि जाइ, तत्छिन पहुंचे जाइ, तब रानी उठि दौरि, देखि दोउन की प्रेम, नाचत गावत चले' आदि में 'तुरत', 'तत्छिन पहुंचे', 'दौरि', 'दोउन', 'नाचत गावत' आदि पद योजना पर विचार करने से इसके नन्ददास की भाषा होने में सन्देह होता है, किन्तु रचना के अन्त में नन्ददास की स्पष्ट छाप होने से इसे अनेकार्थ भाषा के उपरान्त कवि की आरम्भिक रचना मानने में कोई असंगति नहीं जान पड़ती है ।

८ विषय की दृष्टि से अनेकार्थ भाषा और नाममाला में प्रायः समानता है, जैसा कि कवि ने स्वयं संकेत किया है :

उचरि सकत नहिं संस्कृत जान असमर्थ ।
तिनहित नंद सुमति जथा भाषा कियौ सुअर्थ ।।

-- अनेकार्थ भाषा ।[२]

उचरि सकत नहिं संस्कृत जान्यौ चाहत नाम ।
तिन हित नंद सुमति जथा रचत नाम के दाम ।

--नाममाला[३]

ऊपर कहा जा चुका है कि दोनों कोष ग्रन्थ हैं । दोनों को कवि ने संस्कृत न जानने वालों के लिए लिखा है । अन्तर केवल इतना है कि नाममाला में राधा के

१- न० ग्र० । पृ० १८१ । २- वही, पृ० ५७ ।

३- वही, पृ० ७६ ।

मान की कथा के निर्वाह में साहित्यिकता का समावेश हो गया है और फलस्वरूप उसमें कवि की अलंकृत शैली की फलक मिलने लगती है। यथा :

(शरीर) तुव तन सम सरि करन हित कनक आगि फपि लेइ।
कोमल सरस सुगंध नहिं को कवि उपमा देइ ॥[1]

और

(कंठ) रटत विलंम रंग भरे, कोमल कंठ सुजात।
तुव आगम आनन्द जनु, करत परस्पर बात ॥[2]

इस प्रकार की शैली अनेकार्थ भाषा में तो नहीं ही मिलती है, श्याम सगाई में भी इसके दर्शन नहीं होते हैं।

अत: विषय निर्वाह और भाषा शैली की दृष्टि से नाममाला की रचना, अनेकार्थ भाषा और श्याम सगाई के उपरान्त होने में कोई असम्भावना नहीं दिखाई देती है।

६ नाममाला के उपरान्त रसमंजरी के उस उल्लेख की ओर दृष्टि जाती है, जिसमें कवि का कथन है, कि जग में जो कुछ भी रूप, प्रेम और आनन्द रस है, वह सब श्री कृष्ण का ही है और वह उसका निसंकोच वर्णन करता है।[3] रस मंजरी से पूर्व कवि ने अनेकार्थ भाषा, श्याम सगाई और नाममाला की रचना कर ली थी किन्तु उनमें रसमंजरी में इंगित रूप, प्रेम और आनन्द रस का समावेश नहीं होने पाया है तथा इन ग्रन्थों के अतिरिक्त अन्य सभी ग्रन्थों में उक्त रसों से ओत-प्रोत वर्णन मिलता है। इसके अतिरिक्त रसमंजरी का विषय नायक नायिका भेद है और उसमें किसी सम्बद्ध कथा का [illegible] नहीं हुआ है। अनेकार्थ भाषा और नाममाला की रचना जिस प्रकार संस्कृत न जानने वालों के लिए की गई है उसी प्रकार रसमंजरी की रचना भी संस्कृत न जानने वाले एक मित्र के लिए किए जाने का उल्लेख मिलता है।[4] इसमें कवि की भाषा शैली तो अपने प्रौढ़ रूप में नहीं ही प्रयुक्त हुई है, दोहा-चौपाई-छन्द शैली का भी श्री

१- न० ग्रं०, पृ० ८८ । २- वही, पृ० १०२

३-४- वही, पृ० १४४ -

आरम्भिक रूप ही मिलता है । अत: इससे प्रकट होता है कि अनेकार्थ भाषा, श्याम सगाई और नाममाला के उपरान्त अन्य ग्रन्थों में से रस मंजरी की रचना कवि ने सर्व प्रथम की होगी ।

१० रस मंजरी में कवि मित्र द्वारा यह प्रकट करता है कि जब तक नायिका भेद, हाव, भाव, हेला और रति के लक्षणों से परिचय नहीं होगा तब तक प्रेम तत्व को नहीं जाना जा सकता ।[१] इससे यह ज्ञात होता है कि कवि प्रेम और तत्व का वर्णन करना चाहता है, किन्तु वह प्रेम तत्व को समझने के लिए नायिका भेद जानना आवश्यक समझता है और इसीलिए इन भेदों का रसमंजरी में वर्णन करता है । रसमंजरी में प्रेम तत्व की ओर संकेत तो है[२] किन्तु इनका वर्णन इसमें नहीं है । प्रेम का वर्णन कवि रूप मंजरी में करता है तथा उसमें रसमंजरी के उक्त कथन के अगले चरण के रूप में कहता है :

> परम प्रेम पद्धति इक आही , नन्द जथामति बरनत ताही ।
> जाके सुनत गुनत मन सरस, सरस होय रस वस्तुहिं परसै ।
> रस परसै बिन तत्व न जानै, अलि बिन कंवलहिं को पहिचानै ।[३]

जिस प्रेम तत्व को समझाने की अभिलाषा बीज रूप में रसमंजरी में दृष्टिगत होती है वही अंकुरित होकर उक्त रूप में रूपमंजरी में प्रकट करती है कि कवि ने रूपमंजरी से पूर्व रसमंजरी की रचना प्रेम-तत्व को समझाने के लिए ही की । रूपमंजरी में कवि ने रस वस्तु और तत्व की ओर संकेत किया है, किन्तु रस वस्तु तथा तत्व का अनुभव प्राप्त करने के लिए वर्णन प्रेम का ही किया गया है और कवि के इस कथन से कि रस का अनुभव किए बिना तत्व को नहीं जाना जा सकता, यह प्रकट होता है कि वह तत्व को समझाने से पूर्व रस का अनुभव कराने के लिए रूप मंजरी की रचना करता है और तत्व का वर्णन इसमें नहीं करता । तत्व का विवेचन वह अगली रचना विरह मंजरी में करता है क्योंकि वह कहता है :

> इहि परकार बिरहमंजरी । निरवधि परम प्रेम रस भरी ।।
> जो इहि सुनै गुनै चित लावै । सो सिद्धान्त तत्व को पावै ।।[४]

१,२- वही, पृ० [illegible] । ३- वही, पृ० १२६ ।

रस मंजरी में नायिका भेद लिखते समय कवि ने जो -- `तब लग प्रेम न तत्व पिछाने` की बात कही है, उससे प्रकट होता है कि उक्त ग्रन्थ में प्रेम तत्व की ओर संकेत करते समय कवि का विचार, रसमंजरी के उपरान्त प्रेम तत्व का विवेचन करने का रहा होगा और तदनुसार ही रूप मंजरी में प्रेम का वर्णन किया तथा उसके उपरान्त विरह मंजरी में तत्व का उद्घाटन किया । अत: रसमंजरी और रूपमंजरी में इंगित तत्व से कवि का प्रयोजन विरहमंजरी में उद्घाटित उक्त सिद्धान्त तत्व से ही था जिसको कवि के अनुसार विरहमंजरी पढ़ने के उपरान्त प्राप्त किया जा सकता है । अत: उद्देश्य निर्वाह की दृष्टि से तीनों मंजरी ग्रन्थों की रचना का काल-क्रम क्रमश: रसमंजरी, रूपमंजरी और विरहमंजरी के रूप में प्रकट होता है ।

११ तीनों मंजरी ग्रन्थों की रचना दोहा-चौपाई-छन्द शैली में की गई है । रूप मंजरी और विरह मंजरी के अवलोकन से विदित होता है कि इनमें प्रत्येक प्रकार के वर्णन का अन्त दोहे में किया गया है और इस प्रकार वर्णन के अन्त में दोहा देने की शैली का इन ग्रन्थों में आद्योपान्त निर्वाह मिलता है । विरह मंजरी में दोहा और चौपाई छन्द के साथ साथ सोरठा छन्द का भी निश्चित क्रम से प्रयोग हुआ है । यहां कवि ने प्रत्येक मासारम्भ की सूचना सोरठे में दी है :

(वैशाख)

आवहु बलि बैशाख दुख निदरन सुख करन पिय,
उपज्यौ मन अभिलाख वन विहरन गिरिधरन कौं ।।[1]

और चौपाई में उस माह का विरह वर्णन करके दोहे में उपसंहार किया है :

इहि विधि बलि बैसाख कह, बीत्यौ दुख सुख लागि ।
संडुसी भई लुहार की, छिन पानी छिन आगि ।।[2]

अन्य किसी भी प्राप्त ग्रन्थ में कवि ने सोरठों का प्रयोग नहीं किया है । सोरठे, चौपाई और दोहे के उक्त प्रकार के क्रमिक प्रयोग से विरहमंजरी के वर्णनों में निर्वाह सौन्दर्य कुछ आ गया है जो दोहा चौपाई वाले अन्य ग्रन्थों में अलभ्य है । अत: दोहा चौपाई ग्रन्थों में विरह मंजरी की रचना अन्त में की गई ज्ञात होती है ।

१-२. न० ग्रं०, पृ० १६६ ।

इस मंजरी में भी जैसा कि ऊपर कहा गया है, एक प्रकार का वर्णन चौपाई में करके उसके अन्त में दोहे का प्रयोग किया गया है और दोहे-चौपाई के इस प्रकार के प्रयोग में इस मंजरी में कहीं भी त्रुटि नहीं होने पाई है। रस मंजरी में भी दोहा-चौपाई छन्दों के प्रयोग का उपक्रम दृष्टिगत होता है, किन्तु उसमें उस क्रम का निर्वाह सर्वत्र नहीं होने पाया है और फलस्वरूप छन्दशैली की दृष्टि से उसके वर्णनों में वह लालित्य नहीं आने पाया है जो रूपमंजरी और विरहमंजरी में मिलता है। इससे प्रकट होगा कि दोहा-चौपाई छन्दों में लिखे गये ग्रन्थों की रचना रस मंजरी, रूपमंजरी और विरहमंजरी के क्रम से हुई है।

१२ इसके अतिरिक्त उक्त ग्रन्थों में अनेक स्थलों पर प्रसंगों की समानता दृष्टिगत होती है। यथा :

रस मंजरी में कवि ने भाव, हाव, हेला और रति का वर्णन किया है :

(भाव) प्रेम की प्रथम अवस्था आहि, कवि जन भाव कहत हैं ताही।१

(हाव) नैन बैन जब प्रकटै भाव, तै भल सुकवि कहत हैं हाव।२

(हेला) तन मन बान बनायो करै, बार बार कर दरपन धरै।
अति सिंगार मगन मन रहै, ताकहुं कवि हैला छवि कहै।३

(रति) जाके हिय में रति संचरै, निरस वस्तु सब रसमय करै।
जैसे निंबादिक रस फिकी, मधुर होंहि मधु में मिलितिकी।

— — —

तन बिबरन हिय कंप जनावै, बोच बोच मुरझाई आवै।
इहि परकार जाको तन लहिए, सो वह रंग भरो रति कहिए।४

उक्त भाव,[५] हाव,[६] हेला[७] और रति[८] के लक्षण रूप मंजरी ग्रन्थ में रूप मंजरी नायिका के वर्णन में भी दृष्टिगत होते हैं, जिनके अवलोकन से ज्ञात होगा कि इन

१,२- र० मं०, पृ० १६० । ३,४- वही, पृ० १६१ ।
५- वही, पृ० १३० । ६,७ और ८- वही, पृ० १३१ ।

लक्षणों को प्रकट करने वाली पंक्तियां यदि रूप मंजरी में न भी होतीं तो उसके वर्णन की रोचकता में कोई त्रुटि नहीं आती, किन्तु रसमंजरी में भाव, हाव, हेला और रति ग्रन्थ के वर्ण्य विषय हैं जिसको ओर कवि ने ग्रन्थारम्भ में ही संकेत कर दिया :

हाव भाव हैलादिक जिते, रति समेत समभावहु तिते ।[१]

अतः इन लक्षणों का उल्लेख रसमंजरी में ही सर्व प्रथम हुआ होगा और रसमंजरी से ही रूप मंजरी ग्रन्थ में, रूपमंजरी नायिका की सम्बन्धित अवस्थाओं को प्रकट करने के लिए वाक्य विन्यास सहित ज्यों का त्यों लिया गया होगा ।

इसी प्रकार रसमंजरी में वर्णित अज्ञातयौवना,[२] नवऊढ़ाबाला[३] तथा प्रोषित-पतिका[४] के लक्षण, रूपमंजरी ग्रन्थ में रूपमंजरी नायिका की अज्ञातयौवना,[५] नवऊढ़ बाला[६] और प्रोषित पतिका[७] के रूप में दिखाने के लिए ग्रहण किए गए ज्ञात होते हैं । इससे प्रकट होता है कि रूपमंजरी, रसमंजरी के उपरान्त की रचना है ।

१३ रूपमंजरी में वर्णित षट्ऋतु विरह, विरहमंजरी के बारह मासा विरह से अनेक स्थलों पर समानता रखता है और इन स्थलों को देखने से यह सहज ही विदित होता है कि रूपमंजरी से ही ये समान स्थल विरह मंजरी में लिए गए होंगे । इससे भी प्रकट है कि कवि ने क्रमशः रूप मंजरी तथा विरहमंजरी की रचना की है ।

१४ उपर्युक्त ग्रन्थों की रचना के कालक्रम से परिचय प्राप्त करने के अनन्तर रोला छन्द में लिखी गई रुक्मिणी मंगल, रास पंचाध्यायी और सिद्धान्त पंचाध्यायी एवं रोला-दोहा वाले मिश्रित छन्द में वर्णित भंवरगीत की रचनाएं सम्मुख आती हैं । रोला छन्द में लिखी गई कृतियों में, भाव, भाषा, लालित्य, माधुर्य इत्यादि की दृष्टि से रासपंचाध्यायी की प्रौढ़ता निर्विवाद है । भाषा शैली एवं भाव गाम्भीर्य की दृष्टि से यह भी सहज ही प्रकट हो जाता है कि रुक्मिणी मंगल, रास पंचाध्यायी के पश्चात की रचना नहीं हो सकती । रासपंचाध्यायी की सैद्धान्तिक व्याख्या होने से

१- न०ग्र०, पृ० १४४ । २- वही, पृ० १४६ । ३- वही, पृ० १४५ ।
४- वही, पृ० १४८-१५० ५- वही, पृ० १२२ । ६- वही, पृ० १४२, पं०-५०५-८ ।
७- वही, पृ० १३६-१४२, पं० २८७-३०२ ।

सिद्धान्तपंचाध्यायी की रचना का आधार रासपंचाध्यायी ही ज्ञात होती है । अत: सिद्धान्तपंचाध्यायी की रचना स्पष्टत: रासपंचाध्यायी के उपरान्त की गई होगी ।

१५ ऊपर लिखा जा चुका है कि अनेकार्थ भाषा, श्यामसगाई और नाममाला के अतिरिक्त कवि की सभी कृतियों में से रसमंजरी की रचना सर्व प्रथम हुई है । अत: इस दृष्टि से रुक्मिणीमंगल की रचना, रसमंजरी के उपरान्त की ठहरती है । गत परिच्छेदों में यह भी संकेत किया जा चुका है कि रसमंजरी, रूप मंजरी और विरह मंजरी की रचनायें छन्द, भाषा, भाव, विषयवस्तु और रचना के उद्देश्य की दृष्टि से परस्पर घनिष्ठ रूप में सम्बद्ध हैं । अत: रस मंजरी या रूप मंजरी के उपरान्त बिना रूप मंजरी या विरहमंजरी की रचना किए रुक्मिणीमंगल जैसे भिन्न विषय वाले ग्रंथ की रचना किये जाने की बात की कोई सम्भावना नहीं जान पड़ती है । भाषा-शैली की दृष्टि से देखने पर भी प्रकट होता है कि रुक्मिणीमंगल में शब्द योजना और भाव साम्य का नितान्त ध्यान रक्खा गया है और फलत: रुक्मिणीमंगल की भाषा शैली विरहमंजरी की शैली से कहीं अधिक मंजी हुई दृष्टिगत होती है । यही नहीं, कहीं कहीं तो वह रासपंचाध्यायी की शैली से टक्कर लेती हुई दृष्टिगत होती है :

टप-टप-टप, टपकि नैंन सौं अंसुवा ढरहीं ।
मनु नव नील कमल दल तैं, मल मुतिया भरहीं ।।[१]

० ० ०

ललित लतनि की फलनि,फूलनि अति छवि छाजै ।
जिनपर अलिवर राजैं, मधुरै बम से बाजै ।।[२]

० ० ०

किधौं कमल-मंडल में अमल दिनेस बिराजै ।
कंकन किंकिनि कुंडल करन महाछवि छाजै ।।[३] आदि

अत: भाषा और अलंकार प्रयोग की दृष्टि से भी रुक्मिणीमंगल, विरहमंजरी के उपरान्त की रचना ठहरती है ।

१- न०ग्र०, पृ० २०१ । २- वही, पृ० २०२ । ३- वही, पृ० २०४ ।

१६   कवि की कृतियों में विरह वर्णन प्राय: सर्वत्र मिलता है । उसने विरह के महत्व की ओर संकेत भी किया है :

> हौं जानौं पिय मिलन तें, विरह अधिक सुख होय ।
> मिलते मिलियै एक सौं, बिछुरै सबसों सोय ।।
>
> --रूपमंजरी ।[१]

रासपंचाध्यायी और भंवरगीत में भी विरह का समावेश है और यहां वह प्रौढ़ रूप में दिखाई देता है । रास पंचाध्यायी में विरह का चरम बिन्दु गोपियों के गर्व हरण की दृष्टि से छिपे हुए श्री कृष्ण के पुन: प्रकट होने के नितान्त पूर्व दृष्टिगत होता है :

> इहि विधि प्रेम सुधानिधि में अति बढ़ी कलोलें ।
> डूबि गईं विह्वल बाल लाल सों अनबल बोलें ।।[२]

रासपंचाध्यायी में विरह विह्वलता की जो अन्तिम सीमा है वही भंवरगीत में गोपियों के विरह का प्रारम्भ ज्ञात होता है जबकि उसमें मोहन के सन्देश से ही गोपियों को उनके रूप का स्मरण हो आता है और विरह से व्याकुल होकर वे अचेत हो जाती हैं।[३] इस प्रकार भंवरगीत में विरह, विह्वलता की अवस्था से भी परे मूर्च्छा से आरम्भ होता है । उसमें विरह की अन्तिम अवस्था--मृत्यु का दृश्य सम्मुख आता है :

> ता पाछैं इक बारही रोईं सकल ब्रज नारि ।
> हा करुनामय नाथ हो, केसौ कृष्ण मुरारि ।
>
> फाटि हिय दुग चल्यौ ।।[४]

इस प्रकार विरह वर्णन के विकास की दृष्टि से भंवरगीत में विरह का मृत्यु अवस्था पर्यन्त पूर्ण चित्रण तो है ही, उसमें विरह प्रौढ़ रूप में भी है और उसमें यह शक्ति भी है कि अपने प्रवाह में उद्धव जैसे ज्ञानियों को भी बहा ले जाय ।[५] साथ ही, भंवरगीत

१- न० ग्रं०, पृ० १३९ । २- वही, पृ० १९ ।

३- वही, पृ० १८८, छन्द ६ ।

४- वही, पृ० १८९ । ५- वही, पृ० १८६, छन्द ६१ ।

का विरह वर्णन, रास पंचाध्यायी के विरह वर्णन की अपेक्षा अधिक साम्य है और उसमें किसी भी दृष्टि से, रास पंचाध्यायी के समान अश्लीलता ढूंढने वालों को सर्वथा निराशा ही हाथ लगती है। रास पंचाध्यायी में वर्णित विरह की जो अन्तिम सीमा है,[1] उसमें वह गाम्भीर्य नहीं है जो भंवरगीत में वर्णित विरह की अन्तिम अवस्था से प्रकट होती है जिसमें 'हा करुनामय नाथ हो केसौ कृष्ण मुरारि' के कथन से वृत्तियां अन्तर्मुखी होकर अतीव दीनता प्रकट करती हैं।

१७ अपने प्रेम के पक्ष में, रास पंचाध्यायी में गोपियों द्वारा तर्क--वितर्कों का समावेश हुआ है, जबकि गोपियां श्री कृष्ण के मुख से कर्तव्य की ओर संकेत पाते हुए घर लौटने की बात सुनती हैं तो उत्तर देती हैं, 'बिना रूखे हो इन बातों को कह कर हृदय क्यों दुखाते हो? धर्म, नियम आदि सुफल प्राप्ति के लिए किए जाते हैं और यह तो कहीं नहीं सुना गया कि जप, तप, धर्म, नियम आदि की प्राप्ति के लिए सुफल किया जाय।'[2] सिद्धान्तपंचाध्यायी में भी इसी प्रकार के तर्क गोपियां श्रीकृष्ण के सम्मुख उपस्थित करती हैं :

धर्म कह्यौ दृढ़ता कौं जो धर्मंहि रत होई।

o o o

तिन कहुं हौ तुम प्रान मान फिरि धर्म सिखावहु।
समुझि कहौ पिय बात चतुर सिर मौर कहावहु।।[3]

कहना न होगा कि कवि की इस तर्क शैली का जितना विकसित एवं मंजा हुआ रूप भंवरगीत में व्यक्त हुआ है, उतना उनकी अन्य किसी रचना में तो नहीं ही है, किं- हिन्दी के किसी अन्य कवि की किसी कृति में भी कदाचित् ही मिले। भंवरगीत में उद्धव के यह कहने पर कि श्रीकृष्ण निराकार ब्रह्म हैं और उनके हाथ, पांव, नासिका आदि कुछ भी नहीं है,[4] गोपियां उत्तर देती हैं :

'यदि उनका मुख नहीं था तो खाओ मक्खन किसने खाया? पैर नहीं थे तो वन में गायों के साथ कौन गया? हम जानती हैं कि उन्होंने आंखों में अंजन लगाया था,

---

१- न० ग्रं०, पृ० [illegible] १८ छन्द १। २- वही, पृ० १९, छन्द ८०-८१।
३- वही, पृ० ११। ४- वही, पृ० २०५, छन्द ६।

हाथों में गोवर्धन उठाया था, वे नन्द यशोदा के पुत्र हैं और ब्रज के स्वामी हैं।'[1]
पुन: उद्धव के यह कहने पर कि श्री कृष्ण ~~निराकार ब्रह्म है और उनके हाथ, पांव, नासिका आदि कुछ भी नहीं है,~~ सगुण होते तो वेद 'नेति' क्यों कहते, वेद पुराणों में तो उनका एक भी गुण नहीं मिलता [2] तो गोपियां उत्तर देती हैं, "कि यदि उनके गुण नहीं है तो और गुण कहां से आ गये ? हमें यह बताओ कि बीज के बिना भी कहां वृक्ष उगता है ?[3]

१८ गोपियों के तर्कों का परिणाम भी उक्त तीनों ग्रन्थों में मिलता है। पंचाध्यायी ग्रन्थों में विरहाग्नि के ताप से तपे हुए गोपियों के वचन सुनकर श्रीकृष्ण का माखन सा स्निग्ध हृदय सहज ही द्रवित हो जाता है।[4] यहां तो हृदय ही पिघलता है, किन्तु भंवरगीत में गोपियों के तर्कों का ऐसा प्रभाव होता है कि उनके प्रेम प्रवाह में उद्धव भी बह जाते हैं :

> ताही प्रेम प्रवाह में ऊधौ चले बहाय
> भले ज्ञान को मेड़ हो, ब्रज में प्रगट्यो आय।
> भूल के तून भये।[5]

इस प्रकार भंवर गीत के तर्कों का परिणाम पंचाध्यायी ग्रन्थों की अपेक्षा गम्भीर है और जैसा कि ऊपर कहा गया है, उक्त तर्क शैली का पूर्व रूप पंचाध्यायी ग्रन्थों में भांकता हुआ दृष्टिगत होता है। अत: इस दृष्टि से भंवरगीत रास-पंचाध्यायी और सिद्धान्त पंचाध्यायी के उपरान्त की रचना ठहरती है।

१९ पंचाध्यायी ग्रन्थों एवं भंवरगीत में कहीं कहीं शब्द और भावों की समानता दृष्टिगत होती है। रास पंचाध्यायी में विरहाकुल गोपियों श्री कृष्ण से कहती हैं:

> विष तें जल तें व्याल अनल तें दामिनी भर तें।
> क्यों राखी नहिं मरन दई नागर नागर तें।।[6]

१- व० ग्र०, पृ० १७५, छन्द १० । २- वही, पृ० १७७, छन्द १६ ।
३- वही, पृ० १७७, छन्द ३० । ४- वही, पृ० ८५, छन्द ८५ ।
५- वही, पृ० १८६ ।

इसी बात को गोपियां भंवरगीत में भी कहती हैं :

> व्याल अनल विष ज्वाल तैं राखि लई सब ठौर,
> विरह अनल अब दहिहौं हंसि हंसि नन्द किशोर ।
> चोर चित लै गये ।[१]

प्रकट है कि भंवर के उक्त कथन में रासपंचाध्यायी के कथन का अपेक्षा शब्द-योजना तो प्रौढ़ है ही, शब्दों की भाव-वहन शक्ति भी अधिक है -- कम शब्दों में अधिक कहने की विशेषता का समावेश है ।

रास पंचाध्यायी में श्रीकृष्ण की शोभा का वर्णन करते समय कवि कहता है :

> मोहन अद्भुत रूप कहि न आवत छवि ताकी ।
> अखिल अंडव्यापी जु ब्रह्म आभा है जाकी ।।[२]

इसी भाव को कवि ने भंवरगीत में उद्धव के मुख से मानो अधिक स्पष्ट कर दिया है :

> जाहि कहौ तुम कान्ह ताहि कोउ पितु नहिं माता ।
> अखिल अंड ब्रह्मंड विश्व उनहीं में जाता ।।[३]

इससे भंवरगीत, रासपंचाध्यायी के उपरान्त की रचना जान पड़ती है ।

२० पंचाध्यायी ग्रन्थों में यह भी उल्लेखनीय है कि कवि ने किसी वर्णन को प्रकट करने में असमर्थता का भाव व्यक्त किया है :

> (१)मोहन अद्भुत रूप नहिं कहि आवत छवि ताकी ।
> --रासपंचाध्यायी ।[४]
>
> (२) यह अद्भुत रस रास कहत कछु नहिं कहि आवै ।
> --रास पंचाध्यायी।[५]
>
> (३) वनिता अंग सत कोटि कोटि कछु नहिं कहि आवै ।
> --सिद्धान्त पंचाध्यायी ।[६]
>
> (४) अद्भुत रस रह्यो रास कहत कछु नहिं कहि आवै ।
> --सिद्धान्त पंचाध्यायी ।[७]

१- भं० गी०, पृ० ६८० । २- वही, पृ० ६ । ३- वही, पृ० १७५ ।
४- वही, पृ० ६, ७, ५- वही, पृ० २२ । ६- वही, पृ० ४७ । ७- वही, पृ० ५८ ।

उक्त प्रकार का भाव पंचाध्यायी ग्रन्थों के अतिरिक्त रूपमंजरी[1] विरहमंजरी[2] और रुक्मिणीमंगल[3] में भी मिलता है और रूपमंजरी के पूर्व के ग्रन्थों -- अनेकार्थ भाषा, श्याम सगाई, नाममाला तथा रसमंजरी में नहीं मिलता है एवं न भंवरगीत में ही मिलता है । ऊपर लिखा जा चुका है कि रूप मंजरी, विरहमंजरी, और रुक्मिणी मंगल की रचना क्रमश: एक एक के उपरान्त हुई है । तब यह असम्भव नहीं कि उक्त प्रकार के कथनयुक्त रासपंचाध्यायी और सिद्धान्त पंचाध्यायी की रचना उक्त ग्रन्थों के उपरान्त क्रमश: उसी काल में हुई हो जिस काल विशेष में कवि की प्रवृत्ति उक्त प्रकार के कथन देने की ओर थी । ऐसी अवस्था में भंवरगीत की रचना रूपमंजरी के पूर्व की या सिद्धान्त पंचाध्यायी के उपरान्त की होनी चाहिए । ऊपर प्रकट हो चुका है कि रूपमंजरी के नितान्त पूर्व की रचना रस मंजरी है । अत: भंवरगीत की रचना सिद्धान्त पंचाध्यायी के उपरान्त की ही ठहरती है । दूसरे, यदि भंवर गीत की रचना रासपंचाध्यायी या सिद्धान्त पंचाध्यायी में से किसी के भी पूर्व होती तो उक्त प्रकार के आत्म कथन किसी न किसी रूप में उसमें भी मिलते, किन्तु ऐसा नहीं है । इसका कारण भंवरगीत की रचना का सिद्धान्त पंचाध्यायी के उपरान्त की होना और उसके रचना काल तक कवि की वर्णन शैली में परिवर्तन होना ज्ञात होता है । अत: कवि ने भंवरगीत की रचना उक्त प्रकार के कथन संयुक्त ग्रन्थ श्रृंखला के उपरान्त ही की होगी ।

रचना-काल

२१ जैसा कि ऊपर लिखा जा चुका है, कवि ने अपनी किसी भी कृति में रचना-तिथि का उल्लेख नहीं किया है । नागरी प्रचारिणी सभा की सन् १९०३ की खोज रिपोर्ट में नन्ददास कृत `अनेकार्थ नाममाला `का रचना काल १५६७ ई० (संवत् १६२४ वि०) दिया है, किन्तु खोज रिपोर्ट में उक्त तिथि के किसी आधार की ओर संकेत नहीं किया गया है, जिस पर विचार किया जा सके । यह नि:संदेह है कि उक्त संवत् नन्ददास के काव्य-काल में पड़ता है । अत: अनेकार्थ और नाममाला की रचना का यही संवत् हो तो असम्भव नहीं ।

१-न० ग्र०, पृ० १२८, पं० १५० । २- वही, पृ० १७२, पं० १०२ ।

२२ स्मरणीय है कि नन्ददास के कविता-काल की दो सीमायें ज्ञात होती हैं। प्रथम संवत् १६२३ जो कवि की पुष्टिसम्प्रदाय में दीक्षा का संवत् है[१] और जिसके उपरान्त ही उसके ग्रन्थों की रचना आरम्भ होती है। दूसरा, संवत् १६४१ जो कवि का निर्वाण संवत् है[२] और जब उसका रचनाकाल समाप्त होता है। इस प्रकार कवि की कृतियों का रचना काल संवत् १६२३ से संवत् १६४१ तक उतरता है।

२३ अनेकार्थ भाषा और नाममाला, दोनों में एक ही छन्द-- दोहे का प्रयोग है तथा दोनों का विषय भी एक ही--`शब्द-कोष` है। भाषा में कोई विशेष उल्लेखनीय अन्तर नहीं है। शैली नाममाला में अवश्य कुछ सुधर ही गई है और उसमें एक विकास की गति का पूर्व बिन्दु से कुछ आगे के बिन्दु की ओर गमन स्पष्ट परिलक्षित होता है। अनेकार्थ भाषा और नाममाला की रचनाओं में जहां एक और विषय की दृष्टि से समानता है, वहीं दूसरी ओर श्याम सगाई अत्यन्त छोटी और सामान्य सी रचना है। अत: यह असम्भव नहीं कि उक्त तीनों कृतियों की रचना एक ही संवत् में की गई हो। पीछे इस सम्भावना की ओर भी संकेत किया जा चुका है कि अनेकार्थ भाषा की रचना, कवि के, पुष्टि सम्प्रदाय में प्रविष्ट होने के लगभग एक वर्ष उपरान्त की गई होगी। नन्ददास संवत् १६२३ में पुष्टि सम्प्रदाय में प्रविष्ट हुए थे।[३] अत: अनेकार्थ भाषा, श्याम सगाई और नाममाला की रचना संवत् १६२४ के लगभग की गई होगी।

२४ इस सम्बन्ध में नाममाला का आरम्भ वाला दोहा द्रष्टव्य है जिसमें कवि ने `तन्नमामि पद परम गुरु` कह कर वन्दना का आरम्भ संस्कृत में किया है। अन्य किसी भी रचना में वन्दना इस प्रकार संस्कृत में नहीं लिखी गई है। यदि यह कवि की सहज प्रवृत्ति होती तो अन्य कृतियों की वन्दनाओं में कहीं तो यह प्रयोग होता। इससे जान पड़ता है कि नाममाला की रचना के समय नन्ददास संस्कृत के उक्त प्रकार के प्रयोग की ओर झुके हुए थे। उनका एक पद भी ऐसा मिलता है, जिसमें वन्दना का आरम्भ संस्कृत में ही किया गया है :

जयति रुक्मिणीनाथ पद्मावती
प्राणपति विप्रकुल छत्र आनन्दकारी।[४]

१- दे० ऊपर पृ० ५६ । २- दे० ऊपर पृ० ५८ ।
३- दो० वा०, पृ० ३६, वार्ता १ । ४- वही, पृ० ३२५ ।

यहाँ संस्कृत बहुल शब्दावली तो है ही, साथ ही इसको देखते ही नाममाला के उक्त [illegible] पद परम गुरुम वाले चरण का स्मरण हो आता है । इस प्रकार से किया गया स्तुति गान प्राप्त पदों भी अन्यत्र नहीं मिलता है । दोनों में वन्दना भी एक ही व्यक्ति सम्प्रदाय गुरु विट्ठलनाथ जी की है, यद्यपि नाममाला में गुरु के साथ श्री कृष्ण का भी उल्लेख है । अत: दोनों के रचना कालों में अधिक अन्तर की सम्भावना नहीं ज्ञात होती है । यह अन्तर अधिक से अधिक एक वर्ष तक का हो सकता है । पीछे हम कह आए हैं कि उक्त पद की रचना संवत् १६२३ में हुई होगी ।[१] अत: इस दृष्टि से भी अनेकार्थ भाषा, श्याम सगाई और नाममाला का रचना काल संवत् १६२४ के ही लगभग ठहरता है ।

२५ रस-मंजरी, रूप मंजरी और विरहमंजरी में छन्द की दृष्टि से समानता है । तीनों की रचना प्रमुख रूप से चौपाई छन्द में की गई है, बीच बीच में दोहों का भी प्रयोग है । विरह-मंजरी में सोरठा छन्द भी प्रयुक्त है । विषय की दृष्टि से भिन्नता होते हुए भी अनेक स्थलों पर समानता है । शैली का रूप, रस मंजरी, रूपमंजरी और विरह मंजरी में क्रमश: विकास को प्राप्त हुआ है । वर्णन-साम्य और उपर्युक्त तथ्यों को दृष्टिगत रखते हुए इनके रचना कालों में अधिक अन्तर की सम्भावना नहीं ज्ञात होती है । विषय और छन्द निर्वाह की दृष्टि से रस मंजरी और रूप मंजरी में जो असमानता है उसके आधार पर कहा जा सकता है कि रसमंजरी और रूपमंजरी के रचना-कालों में रूपमंजरी और विरहमंजरी के रचना कालों की अपेक्षा अधिक अन्तर रहा होगा । इसी प्रकार जहाँ एक ओर विरहमंजरी और रुक्मिणीमंगल में परस्पर विषय, छन्द एवं भावों की असमानता से यह सम्भावना प्रकट होती है कि इनके रचना कालों में उल्लेखनीय अन्तर रहा होगा, वहीं दूसरी ओर रुक्मिणी मंगल और पंचाध्यायी ग्रन्थों में छन्द, भाषा तथा भावों की समानता के पुट को देखते हुए प्रतीत होगा कि इनके रचना कालों में कोई विशेष अन्तर नहीं रहा होगा । भंवरगीत में पंचाध्यायी ग्रन्थों की अपेक्षा भावना की गम्भीरता एवं सौम्यता तथा भाषा की प्रौढ़ता अधिक देखने को मिलती है, साथ ही उसमें कवि के [illegible] में परिवर्तन का भी आभास मिलता है । अत: यह कहना असंगत नहीं होगा कि पंचाध्यायी ग्रन्थों और [illegible] के रचनाकालों में भी [illegible] अन्तर रहा होगा तथा भंवरगीत की रचना

[illegible]

कवि के अवसान काल के कुछ ही पूर्व हुई होगी ।

२६ इस प्रकार कवि द्वारा रचना काल का और कोई संकेत न किए जाने और किसी वाह्य साक्ष्य से भी प्रमाणित न होने के कारण, अनेकार्थ भाषा, श्यामसगाई और नाममाला को छोड़ कर जिनकी रचना संवत् १६२४ के आस पास होना प्राय: निश्चित सा जान पड़ता है, कवि की कृतियों का रचनाकाल निश्चित रूप से नहीं जाना जा सकता । अत: इनकी रचना तिथियों के विषय में इसी पर सन्तोष करना पड़ता है कि कवि ने संवत् १६२५ के आस पास ग्रन्थ रचना आरम्भ की और वह अपने अवसान काल संवत् १६५१ के कुछ समय पूर्व तक काव्य प्रणयन करता रहा ।

निष्कर्ष

२७ इस प्रकार उपर्युक्त विवेचन से निश्चित होता कि नन्ददास ने संवत् १६२४ के आसपास अपनी आरम्भिक रचनाओं-- अनेकार्थ भाषा, श्याम सगाई और नाममाला का प्रणयन किया । इन कृतियों के अतिरिक्त कवि के अन्य ग्रन्थों को देखने से ज्ञात होता है कि उनमें से रसमंजरी की रचना सर्वप्रथम की गई, क्योंकि रसमंजरी के आरंभ में कवि ने स्वयं इस तथ्य का उद्घाटन करते हुए कहा है कि संसार में जो कुछ रूप,प्रेम और आनन्द रस है उसका वह निस्संकोच वर्णन करता है । बात भी ऐसी ही ज्ञात होती है । रस मंजरी के पूर्व की रचनाएं--अनेकार्थ भाषा, श्याम सगाई और नाममाला का साहित्यिक दृष्टि से कोई महत्व नहीं था । अनेकार्थ भाषा और नाममाला कोष ग्रन्थ ही थे तथा श्याम सगाई अत्यन्त शिथिल शैली में लिखी गई छोटी सी रचना थी । अत: रसमंजरी और उसके उपरान्त की रचनाएं ही कवि के उक्त कथन के अनुरूप सम्मुख आती हैं । रसमंजरी, रूपमंजरी और विरहमंजरी, छन्द की दृष्टि से तो क्रमश: रचनाएं ज्ञात होती ही हैं, रचना के उद्देश्य की दृष्टि से परस्पर अत्यन्त सम्बद्ध होने के कारण यह भी ज्ञात होता है कि रस मंजरी या रूपमंजरी की रचना के उपरान्त, रूपमंजरी या विरहमंजरी के अतिरिक्त अन्य किसी ग्रन्थ की रचना नहीं की गई होगी। उक्त ग्रन्थों के उपरान्त रुक्मिणी मंगल, रासपंचाध्यायी, सिद्धान्त पंचाध्यायी और भंवरगीत की रचनाओं का प्रणयन हुआ । रोला छन्द में लिखे गए ग्रन्थों में रासपंचा-ध्यायी प्रौढ़ रचना है और इसकी अभिव्यक्ति शब्द योजना, माधुर्य और ललित वाक्यां

को दृष्टिगत रखते हुए कहा जा सकता है कि उक्त ग्रन्थ में लिखा गया रुक्मिणी मंगल की रचना रासपंचाध्यायी से पूर्व की होगी । रासपंचाध्यायी की ही सैद्धान्तिक व्याख्या होने से सिद्धान्तपंचाध्यायी का रासपंचाध्यायी के उपरान्त की रचना होना नि:सन्देह ज्ञात पड़ता है । रासपंचाध्यायी, सिद्धान्त पंचाध्यायी, भंवरगीत आदि तीनों ग्रन्थों की शैली, विरह वर्णन की गाम्भीर्य तथा प्रसंगों के पूर्वापर प्रयोग की दृष्टि से भंवरगीत की रचना अन्तिम ठहरती है । इस प्रकार उपर्युक्त विवेचन के आधार पर नन्ददास की कृतियों का काल क्रम निम्नलिखित प्रकार से निर्धारित होता है :

(१) अनेकार्थ भाषा	(६) विरहमंजरी
(२) श्याम सगाई	(७) रुक्मिणी मंगल
(३) नाम माला	(८) रासपंचाध्यायी
(४) रस मंजरी	(९) सिद्धान्त पंचाध्यायी
(५) रूप मंजरी	(१०) भंवरगीत

संख्या (१) से (३) तक की कृतियां कवि के काव्यमय जीवन के आरम्भिक काल की रचनाएं ज्ञात होती हैं । संख्या (४) से (६) तक की कृतियां मध्यकाल की, संख्या (७) से (९) तक की कृतियां उत्तरकाल की एवं भंवरगीत अन्तिम काल की रचना विदित होती है ।

अध्याय ४

कथावस्तु और आधार

४

कथा वस्तु और आधार

१- कवि की कृति का अस्तित्व वस्तुत: उसकी कथा वस्तु के ही कारण होता है और कृति की कथा वस्तु द्वारा कवि के व्यक्तित्व को जितने निकट से अनुभव किया जा सकता है उतना अन्य किसी साधन से नहीं । अत: कृतियों की कथा-वस्तु का अध्ययन अन्य किसी भी दिशा में किये जाने वाले अध्ययन से कम महत्वपूर्ण नहीं ठहरता । आलोच्य कवि के विषय में भी यही बात कही जा सकती है, क्योंकि उसकी कृतियों की प्रत्येक भाव सरणि का क्रमबद्ध परिचय देकर उसके प्रमुख आधार को स्वतंत्र रूप से प्रकाश में लाने की आवश्यकता अपने मूल रूप में बनी हुई है । इसी आवश्यकता को दृष्टिगत रखते हुए उसकी कृतियों की कथा वस्तु और आधार पर यहां विचार किया जाता है ।

अनेकार्थ भाषा

२ ग्रन्थ के आरम्भ में कवि ईश्वर की वन्दना करता है । इसमें वह ईश्वर को जगतमय, कारण-करण, विघ्न नाशक और शुभ फलदायक बताता है[१] । उसका कहना है कि एक ही वस्तु अनेक होकर संसार में जगमगाती है । स्वर्ण एक ही वस्तु है किन्तु कंकण, किंकिणी, कुण्डल आदि अनेक नामों से उसका बोध होता है ।[२] कवि का कथन है कि उसने इस ग्रन्थ की रचना संस्कृत न जानने वालों के लिए की है, इसमें उसका उद्देश्य किसी कथा को प्रस्तुत करना न होकर शब्दों के अर्थ लिखना है[३] । तदनुसार ही ग्रन्थ में उसने ११७ दोहों में ११३ शब्दों के अनेकार्थ लिखे हैं । अर्थ देने के लिए गृहीत शब्दों का अकारादि जैसा कोई क्रम नहीं रखा गया है और "गो" शब्द से आरम्भ तथा "स्नेह" शब्द से ग्रन्थ का अन्त किया गया है ।

१- नं० ग्रं०, पृ० ८८, दोहा १

२- वही, दोहा २

३- वही, दोहा ३ ।

३- अमर कोष के नानात्व वर्ग में भी शब्दों के अनेक अर्थ दिये गये हैं । इन अनेक अर्थों के साथ अनेकार्थ भाषा के शब्दार्थों का अवलोकन करने से अनेक समानताएं दृष्टिगत होती हैं :

(१)(धात्री) धात्री कहिये आंवरौ धात्रा धाय बखान ।
धात्री धरती सेस सिर सोहै तिल परमान ।।
— अनेकार्थ भाषा, दोहा ६४ ।

"धात्री स्यादुपमातापि क्षितिरप्यामलक्यपि"
— अमर कोष नानात्व वर्ग, श्लोक १७६ ।

(२)(पत्र) पत्र परन और पत्र सर, वाहन पत्र सुचित्त ।
पत्र पंख विधि ना दिये जिनि उड़ि मिलवै मित्त ।।
—अनेकार्थ भाषा, दोहा ११ ।

"पत्रम्वाहन पक्षयोः"
—अमर कोष, नानात्व वर्ग, श्लोक १७८ ।

(३)(व्याल) व्याल कहत हैं क्रूर नर, दुष्ट स्वपद गज व्याल ।
व्याल सर्प सिर चढ़ि नचै, नटवर वपु नंदलाल ।।
— अनेकार्थ भाषा, दोहा ५० ।

"[illegible] व्यालः पुं[illegible]"
—अमर कोष नानात्व वर्ग, श्लोक १९५ ।

इसी प्रकार 'अम्बर', 'अवि', 'क', 'पतंग', 'द्विज', 'हरिणी' आदि अनेकार्थ भाषा में आये हुए आधे से अधिक शब्द अमर कोष के उक्त वर्ग में मिलते हैं । यद्यपि कवि ने अनेकार्थ भाषा में रचना के आधार का कोई संकेत नहीं दिया है, जैसा कि नाम माला में किया है[१] तथापि अमर कोष के साथ उक्त प्रकार के साम्य से प्रकट होता है कि इसने नाम माला की भांति अनेकार्थ भाषा की रचना के लिए भी अमर कोष का आश्रय लिया होगा ।

१- सुमति [illegible] नाम के अमर कोष के भाव ।
[illegible] के ग्रन्थ पढ़ मिलि अर्थ सब जाय ।।
— [illegible] पृ० ७६ ।

जैसा कि नीचे प्रकट होगा, कवि ने नाम माला की रचना अमर कोष को सामने रखकर नहीं की, वरन् कंठस्थ श्लोकों के आश्रय से ही शब्दों के नाम लिखे; अनेकार्थ भाषा के विषय में भी यही बात कही जा सकती है। किंतु अनेकार्थ भाषा की रचना के लिए कवि पूरे अमर कोष का ऋणी नहीं है, वरन् अनेकार्थों को लिखने के लिए उसके नानार्थ वर्ग से ही उसे प्रेरणा मिली है क्योंकि अन्य किसी भी वर्ग में शब्दों के अनेकार्थ नहीं दिये गये हैं।

४- अमर कोष के साथ-साथ, शाश्वत कृत अनेकार्थ समुच्चय भी उल्लेखनीय है। अनेकार्थ समुच्चय में 'गोत्र' शब्द के अर्थ इस प्रकार दिये हैं :

नाम गोत्रं कुलं गोत्रं गोत्रश्च धरणीधरः[१]

जबकि अमर कोष में लिखा है :

'गोत्रन्तु नाम्नि च'[२]

अनेकार्थ भाषा में इसी शब्द के अर्थ निम्न प्रकार दिये हैं :

गोत्र नाम को कहत कवि, गोत्र खेत सुनियंत ।
गोत्र बन्धु सौं धन्य कहं [illegible][३] ।।

इसी प्रकार 'अर्जुन' शब्द के अर्थ द्रष्टव्य हैं :

.... अर्जुन तृण शुक्लयोः ।
अर्जुनो कुन्ता भेदे च तथा मध्यम पाण्डवे ।।

— अनेकार्थ समुच्चय, श्लोक १२४

अमरकोष के नानार्थ वर्ग में 'अर्जुन' शब्द का कोई उल्लेख नहीं है, किन्तु नन्ददास ने इसके अर्थ लिखे हैं :

अर्जुन द्रुम कंचन, धवल, सहसार्जुन [illegible], वस्त्र ।
अर्जुन भेदी पाण्डु सुत हरि [illegible] वेदि [illegible][४] ।।

१-अनेकार्थ [illegible] : शाश्वत, श्लोक १० । २-अमर कोष, [illegible] वर्ग, श्लोक १८०
३-[illegible], पृष्ठ [illegible] ।
४-[illegible], पृष्ठ [illegible] ।

'कौशिक' शब्द के तो जो अर्थ कवि ने लिखे हैं, वे अनेकार्थ समुच्चय के अनुसार तो हैं ही, अमर कोष में दिये गये इस शब्द के अर्थों के भी समान हैं :

(कौसिक) कौसिक गुग्गुल इन्द्र पुनि, कौसिक घुग्घू नाम ।
कौसिक [illegible] हैं, जिन जाचे श्री राम ।।
- अनेकार्थ भाषा दोहा ७३ ।

' गुग्गुलूलूकाहि तुण्डिकेषु च कौशिक: '
- अनेकार्थ समुच्चय, श्लोक १८३ ।

' महेन्द्र गुग्गुलूलूक व्याल ग्राहिषु कौशिक: '
- अमर कोष, नानार्थ वर्ग, श्लोक १० ।

इससे ज्ञात होता है कि शब्दार्थों को लिखने के लिए नन्ददास ने अमर कोष के साथ साथ अनेकार्थ समुच्चय का भी आश्रय ग्रहण किया है ।

५ जैसा कि अनेकार्थ भाषा के उपर्युक्त दोहों से प्रकट है, कवि ने दोहे की प्रथम पंक्ति में शब्द के [illegible] अर्थ दिये हैं और द्वितीय पंक्ति में शेष अर्थों को देते हुए उस शब्द को अपने आराध्य देव श्री कृष्ण के नाम, गुण या प्रभाव के साथ इस प्रकार सम्बद्ध किया है मानों उनके नाम गुण या प्रभाव युक्त वाक्य में प्रयोग करके शब्द को समझाने की चेष्टा की हो । शैली की इस प्रकार की योजना के कारण रचना में उतनी नीरसता नहीं आने पाई है जितनी कोष ग्रन्थ होने के कारण इसकी अनुपस्थिति में आती और इस योजना के आधन्त निर्वाह का श्रेय नन्ददास के रसिक भक्त हृदय को ही है जो ग्रन्थ में आये हुए दोहों में कभी श्री कृष्ण का गुणगान करता हुआ, कभी कृष्ण नाम की महिमा गाता हुआ, कभी आत्मा-परमात्मा का सम्बन्ध बताता हुआ, कभी भक्ति का उपदेश देता हुआ और कभी दीनता पूर्वक अपने उद्धार तथा भगवत्प्रेम की कामना करता हुआ दृष्टिगत होता है ।

६ इस प्रकार [illegible] की स्वतन्त्र शैली को दृ[illegible] रखते हुए यह भी असम्भव नहीं प्रतीत होता है कि कवि ने अनेकार्थ भाषा की रचना किसी एक ग्रन्थ के आधार पर न की हो और कोष विषयक अनेक ग्रन्थों के अध्ययन के उपरान्त

स्वतन्त्र रूप से रचना की हो । इस दृष्टि से शब्दों के अर्थ देने में जो कुछ भी समानता ऊपर देखने में आती है, वह संयोगवश ही हो सकती है, अनुकरणवश नहीं । क्योंकि किसी भी गृहीत शब्द के जितने अर्थ उस समय प्रचलित रहे होंगे, उन्हें लिखने का यत्न कवि ने किया होगा। ऐसा करने में यह स्वाभाविक है कि गृहीत शब्द के अर्थ किसी भी पूर्व कोषकार के उसी शब्द के अर्थों के समान ठहरें । यह और बात है कि कवि छन्द के आग्रह अथवा अपनी स्वतन्त्र प्रवृत्ति के अनुसार किसी शब्द के सभी ज्ञात अर्थों को स्थान दें या उनमें से कुछ को ही । वस्तुत: अनुकरण मूलक प्रवृत्ति तो, शब्दों के अर्थ प्रतिपादन की शैली से विदित होती है और अनेकार्थ भाषा में यह शैली कवि की अपनी ही है । इसके अतिरिक्त यह तो ज्ञात होता ही है कि कवि का उद्देश्य [illegible] के लिए शब्दार्थों को प्रस्तुत करना रहा है[1], साथ ही प्रत्येक दोहे की द्वितीय पंक्ति से यह भी अप्रकट नहीं रह जाता है कि भक्ति के ज्ञान से विरत अथवा उससे अपरिचित व्यक्तियों को शब्द कोष ज्ञान के मिस भक्ति की महिमा से परिचित कराना भी उसको अभीष्ट था । इस प्रकार शब्द कोष ज्ञान और हरि-भक्ति की धाराओं के संगम में संस्कृत न जानने वाले व्यक्तियों को अवगाहन कराने का पुनीत प्रयोजन ही ग्रन्थ-रचना के मूल में दृष्टिगोचर होता है ।

श्याम सगाई

७ श्याम सगाई रोला-दोहा से युक्त मिश्रित छन्दों में लिखी गई एक छोटी सी रचना है । इसमें राधा कृष्ण की सगाई का उल्लेख है, जिसमें कहा गया है कि एक दिन राधे कुँवरि श्रीकृष्ण के घर खेलने के लिए आई । उसे रूप राशि से युक्त देख कर यशोदा के मन में उसके साथ श्रीकृष्ण की सगाई करने की अभिलाषा जाग उठी । उसने एक दूती के हाथ वृषभानु के पास सगाई का सन्देश भेजा[2] । किन्तु कीर्ति ने [illegible] की चपलता को देखते हुए यह सम्बन्ध करना अस्वीकार कर

१- [illegible], दोहा २ ।

२- [illegible], छन्द १-३ ।

दिया । यह सुनकर यशोदा चिन्ता मग्न थी ही कि श्रीकृष्ण आ गये और माता के मुख से चिन्ता का कारण जानकर मोर चन्द्रिका युक्त वेश में सखाओं के साथ बरसाने के बाग में जा बैठे । सखियों के साथ राधा ने उन्हें वहां देखा, श्रीकृष्ण ने भी राधा को देखा[1] और उसका मन हर लिया । राधा का तन शिथिल देख कर सखियां वास्तविकता को समझ गईं और उसे धैर्य प्रदान करने के लिए उपाय सोचने लगीं । बहुत समय उपरान्त जब राधा को कुछ सुधि आई तो वह "श्याम" "श्याम" ही रटने लगी । तब सखियां उसे घर ले आईं और उसी के मुख से कीर्ति से कहलाया कि उसे सांप ने काटा है । यह सुनते ही कीर्ति शोकाकुल हो उठी[2] और सखी ने उससे श्रीकृष्ण के गारुड़ी होने और राधा के विष दूर करने के लिए उन्हें बुलाने की बात कही । कीर्ति के अनुनय विनय पर श्रीकृष्ण इस शर्त पर आये कि विष दूर करके वे कुंवरि को भी साथ ले जायेंगे । उन्होंने "दरश-फूंक" द्वारा राधा का विष दूर किया, और उन्हें देखते ही राधा पुलकित हो उठी । दोनों की प्रीति देख कर कीर्ति ने सगाई कर दी[3] ।

८ राधा को सांप द्वारा डसे जाने और श्रीकृष्ण द्वारा उसके विष हरण का प्रसंग सूर सागर में भी उपलब्ध होता है । श्याम सगाई और सूर सागर के उक्त विषहरण प्रसंगों में अनेक स्थलों पर समानता दृष्टिगोचर होती है । यथा :

(१) " इक दिन राधे कुंवरि श्याम घर खेलनि आई" । - श्याम सगाई छन्द १ ।

" खेलन कैं मिस कुंवरि राधिका नंद महरि कैं आई" । - सूरसागर पद १३१८

(२) "मन हर लीनो श्याम परी राधे मुरझाई" । - श्याम सगाई, छन्द १

" फिरि चितवत हरि हसे निरखि मुख मोहन मोहनि डारी

यह सुनि कै चकित भई प्यारी धरनि परी मुरझाई" ।। -

- सूरसागर, पद १३५८

१- सं० ग्रं०, पृष्ठ ८८५, छन्द ५-६ ।

२- वही, पृष्ठ ८८६, छन्द १०-११ ।

३- वही, पृष्ठ [illegible], छन्द १५-२० ।

(३) 'बड़ौ गारुड़ी नंद कौ तुरत भली करि जाइ । - श्याम सगाई, छन्द १५ ।

'सुप्रभु कौं वैगि ल्यावहु बड़ौ गारुड़ी राइ' । - सू०सा०, पद १३६३ ।

इसी प्रकार श्रीकृष्ण की चपलता, कीर्ति के प्रति यशोदा की अनुनय-विनय, राधा द्वारा मूर्छि आने पर नेत्र खोलने आदि के उल्लेख भी दोनों में समानता लिए हुए दृष्टिगत होते हैं ।

इससे प्रतीत होता है कि नन्ददास ने श्याम सगाई की रचना के आधार सूत्रों को सूरसागर से ही ग्रहण किया है ।

६ सूर सागर के अनुसार राधा सिर पर दोहनी लेकर आती है और श्रीकृष्ण उसे देखते ही उसका चित्त चुरा कर व्रज को चले जाते हैं । इधर राधिका मूर्छित होकर गिर पड़ती है ।[१] सखियों के पूछने पर वह कहती है कि उसे काले नाग ने काट खाया है ।[२] सखियाँ उसे घर लाती हैं और काले नाग द्वारा डसे जाने की बात कीर्ति से कहती हैं ।[३] जब नगर के सभी गारुड़ी राधा का विष दूर करने में असफल हो जाते हैं तो श्रीकृष्ण को बुलाने की बात उठाई जाती है, क्योंकि वे एक ही मंत्र से राधा को जीवित कर सकते हैं ।[४] यशोदा के कहने पर श्रीकृष्ण आते हैं और कीर्ति के अनुनय-विनय करने पर राधा का अंग स्पर्श करके उसका विष दूर कर देते हैं ।[५] इस पर कीर्ति श्रीकृष्ण को बार बार गले लगाती है और राधा तथा श्रीकृष्ण के बारे में मन ही मन सोचती है कि विधाता ने बड़ी अच्छी जोड़ी बनाई है ।[६] सूरदास ने इस प्रसंग में राधा और श्याम की सगाई का कोई उल्लेख नहीं किया है । सगाई की दिशा में कीर्ति द्वारा केवल अनुमान प्रकट किया गया है :

मन ही मन अनुमान कियौ यह, विधना जोरी भली बनाई ।[७]

१- सूरसागर, पद १३५८ ।

२- वही, पद १३५८ ।

३- वही, पद १३६१ ।

४- वही, पद १३६३-६४ ।

५- वही, पद १३७० ।

१० राधा कृष्ण के विवाह का वर्णन सूरसागर में मिलता है तो है किन्तु वह रास वर्णन के नितान्त पूर्व उपलब्ध होता है[१] और यह श्याम सगाई की कथा से मेल नहीं खाता है क्योंकि श्याम सगाई में कृष्ण द्वारा राधा का विष दूर करके उसे जीवित करने के फलस्वरूप ही राधा कृष्ण की सगाई हो जाती है; जब कि सूर सागर के उसी प्रसंग में यह बात नहीं दिखाई देती है।

११ अत: उपर्युक्त विश्लेषण से ज्ञात होता है कि श्याम सगाई में सगाई का प्रस्ताव कीर्ति के पास ले जाने के लिए दूती की योजना, श्रीकृष्ण की चपलता देख कर कीर्ति द्वारा प्रस्ताव को अस्वीकार करना, राधा से ही विवाह करने की दृष्टि से श्रीकृष्ण द्वारा राधा का चित्त चुराया जाना, प्रेम विह्वल हो जाने पर सखियों के कहने से राधा का नाग द्वारा डसे जाने की बात कहना, कृष्ण को विषहरण के लिए बुलाया जाना और श्रीकृष्ण राधा की प्रीति देख कर कीर्ति द्वारा उनकी सगाई कर देने के उल्लेख जो श्याम सगाई की कथा की कड़ियां हैं, नन्ददास द्वारा सूरसागर की प्रेरणा से स्वतन्त्र रूप में संजोई गई हैं। यद्यपि नाग द्वारा डसे जाने का प्रसंग सूरसागर का है तथापि नन्ददास ने उसे अपनी मौलिकता के सांचे में ढाल कर ही प्रस्तुत किया है। सूरदास की राधा, श्रीकृष्ण द्वारा मोहित कर लिए जाने पर काले नाग द्वारा खाये जाने की बात सखियों से स्वयं कहती है[२] किन्तु नन्ददास की राधा पागल की भांति "श्याम श्याम" रटती है और उसे मुक्ति का कोई उपाय नहीं सूझता है। सखियां ही उसे उपाय बताती हैं कि कीर्ति के पूछने पर वह नाग द्वारा डसे जाने की बात कह दे, जिससे श्रीकृष्ण को गारुड़ी के रूप में शीघ्र बुलाया जा सके।[३]

१२ इस प्रकार विदित होता है कि कवि ने जहां एक ओर इस रचना के लिए सूरसागर से प्रेरणा ली, वहीं दूसरी ओर छोटे से कथा सूत्र को लेकर अपनी स्वतन्त्र सूझ द्वारा उसे क्रमबद्ध और नवीन रूप में प्रस्तुत किया। इससे प्रकट होता है कि

१- दे० सूरसागर, पद १६८० २- वही, पद १३५८।

३- न० ग्रं०, पृ० १८६, छन्द १२।

नन्ददास कथा की सम्बद्धता की योजना करने में पटु हैं । कथा का प्रसंग और उसका प्रतिपादन जितना साधारण और स्वाभाविक है,कवि ने उतनी ही सरल और अकृत्रिम भाषा-शैली को भी अपनाया है । इसमें कवि की उस कला को तो स्थान नहीं ही मिला है जिसके कारण वह जड़िया कहलाता है, साथ ही उसमें श्रीकृष्ण की ही लीला-कथा का समावेश होने पर भी भक्ति की वह धारा प्रकट क नहीं होने पाई है जो उसकी अन्य सभी रचनाओं में प्रकट रूप में निरन्तर भासमान होती है । इसका कारण यह था कि श्याम सगाई उस समय की रचना है, जब कवि की काव्य कला शैशवावस्था में ही थी और हृदय में भक्ति का स्वरूप भी कदाचित् स्थिर नहीं हुआ था । पुष्टि सम्प्रदाय में राधा को स्वकीया माना गया है और श्याम सगाई की रचना भी इसी भावना के परिणाम स्वरूप हुई है ।

नाममाला

१३ अनेकार्थ भाषा की भाँति ही, नाममाला भी कोष ग्रन्थ है । इसके आरम्भ में गुरु और श्रीकृष्ण की वन्दना करने के उपरान्त कवि संस्कृत न जानने वालों के लिए अमर कोष के आधार पर ग्रन्थ रचना करने की ओर संकेत करता है । उसका कथन है कि नाम रूप और गुणों के भेद से श्रीकृष्ण ही सर्वत्र प्रकट हैं और उनसे रहित कोई तत्व नहीं है ।[1] तदनन्तर दोहों में एक एक शब्द के अनेक पर्याय दिये हैं और साथ ही उस शब्द या उसके पर्याय को अन्तिम दोहे या दोहे की दूसरी पंक्ति में इस प्रकार संजोया है कि राधा के मान की कथा क्रमशः आगे बढ़ती है और गृहीत शब्द के अर्थ भी उससे स्पष्ट होते जाते हैं । यथा:

(मान) शब्द: अहंकार मद दर्प पुनि गर्व स्मय अभिमान ।
मान राधिका कुँवरि कौ सबको करु कल्यान ।।[2]

१४ रचना में 'भेद'[3], 'अनुप'[4] और 'रम्भा'[5] शब्द ही ऐसे हैं जिनके केवल नाम ही दिये हैं और उनका उक्त कथा से कोई सम्बन्ध नहीं जान पड़ता है ।

१- न०ग्र०, पृ० ७६, दोहा १-४ । २- वही, दोहा ५ ।
३- वही, पृ० ८८, दोहा १०३ । ४,५- वही, पृ० ८८, दोहा १०८ ।

१४ पूरे ग्रन्थ में २६० दोहों में २०७ शब्दों के पर्याय दिये गये हैं। सर्वप्रथम "मान" शब्द को लिया गया है और अन्त में "जुगल" शब्द को, ये दोनों ही शब्द राधा के मान की कथा के भी क्रमश: आदि और अन्त हैं। कथा का आरम्भ राधा के मान की अवस्था से होता है और अन्त तब होता है जब वह मान त्याग कर श्री कृष्ण के साथ "जुगल रूप" बनाती है। शब्दों के पर्याय देते समय उनका क्रम बड़े कौशल से मान की कथा के अनुकूल ही रक्खा गया है और उनमें [illegible] जैसा कोई क्रम नहीं दिखाई देता है।

१५ जैसा कि कवि ने स्वयं संकेत किया है, ग्रन्थ का प्रमुख उद्देश्य विभिन्न शब्दों के नामों का प्रकाशन करना है और उसकी रचना का आधार संस्कृत ग्रन्थ अमर कोष है। यह बात अमर कोष के साथ नाम माला का अवलोकन करने से भी प्रकट होती है।

१६ अमर कोष में तीन काण्ड हैं। प्रथम और द्वितीय काण्डों में प्रत्येक में दस दस वर्ग हैं तथा तृतीय काण्ड में छ: वर्ग हैं। नन्ददास ने नाम माला के लिए प्रथम और द्वितीय काण्डों का ही आश्रय लिया है और तृतीय काण्ड में उल्लिखित सूत्रों को छोड़ दिया है। प्रथम और द्वितीय काण्डों की सामग्री को ग्रहण करने में भी कवि से त्रुटियां हो गई हैं। यथा:

कवि ने "पाडर" शब्द के नाम दिये हैं:

> थाली, पाटलि, फलरुहा, स्यामा बामा नाम।
> अंबु-बसा, मधु दूति यह पाडर कहति [illegible]।[1]

किन्तु स्यामा और बामा पाडर के नाम नहीं हैं, वरन् प्रियंगुलता के नाम हैं। यह त्रुटि कदाचित् इसलिए आई है कि उक्त सभी नामों का उल्लेख अमर कोष में एक ही श्लोक में हुआ है:

> पाटलि: पाटला मोघा काच स्थाली फलेरुहा ॥
> कृष्णवृन्ता [illegible]राक्षी श्यामा तु [illegible] ह्वया।
> लता गो[illegible]न्दिनी गुन्द्रा प्रियंगु:फलिनी फली ॥[2]

यही बात 'लवंग' शब्द के लिए भी कही जा सकती है। कवि ने लवंग के नाम दिये हैं :

देव कुसुम, श्री संग्य पुनि जायक भाखौ राउ।
ललित लवंगलता इतहि पगनि परति बलि जाऊं ॥[१]

इसमें 'जायक', 'लवंग' शब्द का नाम न होकर 'पीत-चन्दन' का नाम है। अमर कोष में इनका भी एक ही श्लोक में उल्लेख हुआ है :

लवङ्गं देवकुसुमं श्रीसंज्ञमथ जायकम्।[२]

इससे प्रकट होता है कि कवि ने नाममाला की रचना अमर कोष को सामने रख कर नहीं की होगी अपितु कंठस्थ श्लोकों के आधार पर ही शब्दों के नाम लिखे होंगे। यही कारण है कि उसने कहीं तो शब्दों के पर्याय अमर कोष के अनुसार ही दिये हैं, कहीं अमर कोष की अपेक्षा कम दिये हैं और कहीं अधिक दिये हैं। यथा:

(१) 'सोंठि' शब्द: विश्वा, नागर, जग भिषक, महाऔषधी नाउं।
यह सौंठी लुठि पगन पर कहत कि बलि बलि जाउं ॥
- नाममाला दोहा २३६।

कुस्तुम्बरु च धान्याकमथ शुण्ठी महौषधम्।
स्त्रीनपुंसकयोर्विश्वं [illegible] भेषजम् ॥
- अमर कोष, वैश्यवर्ग, श्लोक ३८।

कुस्तुम्बरु और धान्याक, धनियां के नाम हैं, जिन्हें कवि ने बड़ी सावधानी से छोड़ दिया है।

(२) 'ब्रह्मा' शब्द: अज कमलज, विधि, जगपिता, धाता, सत धृत होइ।
सृष्टा, चतुरानन, विरंचि, द्रुहिण, स्वयंभू सोइ ॥

१- ना० मा०, पृ० १०४।
२- अमर कोष, द्वि० का०, मनुष्य वर्ग, श्लोक १२६।

लै लै संत सब कविन की, जिती कृती जग मांफ ।
तौकि रची विधिना निपुन, बहुरूयी ह्वै गयी लांफ ।।
- नाम माला, दोहा ८५-८६ ।

ब्रह्मात्मभूस्सुर ज्येष्ठ: परमेष्ठी पितामह:
हिरण्यगर्भो लोकेशस्स्वयम्भूश्चतुराननः ।।
धाताब्जयोनिर्द्रुहिणो विरञ्चि: कमलासन:
स्रष्टा प्रजापति र्वेधा विधाता विश्वसृड्विधि: ।।
- अमर कोष, स्वर्ग वर्ग, श्लोक ३, ४ ।

इस प्रकार अमर कोष में ब्रह्मा शब्द के २० नाम दिये गये हैं और कवि ने केवल १२ ही नामों का उल्लेख किया है ।

(३) 'अर्द्धरात्रि' शब्द: निशि, निशीथ अरु महानिशि, हौंन लगी अधरात
कौन बलि सखि सोह रहु, ओह उनि परभात ।।
- नाम माला, दोहा २०८ ।

किन्तु अमर कोष में अर्द्धरात्रि के केवल दो ही नाम दिये गये हैं :

'अर्द्धरात्र निशीथौ' - काल वर्ग, श्लोक ६ ।

इसके अतिरिक्त कवि ने नाम माला में ऐसे शब्दों के नाम भी दिये हैं जिनका समावेश अमर कोष में नहीं हुआ है । यथा: बेटी[1], टेढा[2], धौरा[3], जुगल[4], अन्तर्ध्यान[5] आदि शब्द ।

अमर कोष की सीमा से बाहर के इस प्रकार के शब्दों के नाम कवि ने कदाचित् कथा-प्रवाह के आग्रह से स्वतंत्र रूप से दिये हैं ।

१- न० ग्रं०, पृ० ८१ ।
२- वही, पृ० ८५ ।
३- वही, पृ० १०० ।
४- वही, पृ० १०७ ।
५- वही, पृ० ८३ ।

१७ ऊपर लिखा जा चुका है कि कवि ने छन्दों के नाम - प्रकाशन के साथ साथ ग्रन्थ में राधा के मान की कथा भी दी है। कवि का कहना है कि राधा का मान सबका कल्याण करने वाला है।[१] राधा मान किये हुए वृषभानु के महलों में बैठी हैं। उसे मनाने के लिए एक चतुर सखी जाती है और वृषभानु के महलों में पहुंच कर वह आंखों में लोपांजन लगाती है जिससे वह किसी को न दिखाई दे। कवि ने वृषभानु के महलों के सौन्दर्य और ऐश्वर्य का सुन्दर वर्णन किया है।[२] राधा के पास पहुंच कर सखी लोपांजन हटाती है और उसकी चरण वन्दना करती है। कुछ समय पश्चात राधा उससे कुशल पूछती है। सखी उसके दर्शन से ही सब कार्य पूर्ण होने की बात कह कर उसका गुण-गान करती है। वह उसके सम्मुख कृष्ण का भी गुण गान करती है और कृष्ण के साथ उसका चन्द्र तथा चन्द्रिका का सा सम्बन्ध प्रकट करती है। वह उसे श्रीकृष्ण के ईश्वरत्व की सुधि दिलाती है और अकारण मान न करने की दुहाई देती है। राधा उसकी बातों से अधिक क्षुब्ध हो उठती है और कृष्ण को कपटी कहती है। वह कहती है कि वचन की चोट कभी नहीं मिटती।[३] सखी द्वारा कृष्ण की निर्दोषिता और उसकी प्रतीक्षा जन्य आकुलता की ओर बार बार संकेत किये जाने पर राधा अपना मान त्याग देती है और मुस्काते हुए कहती है, कि, "अब अर्द्धरात्रि हो गई है, सोये रहें, प्रात: उठ कर जायेंगे। किन्तु सखी के अनुरोध पर वह उसी समय उसके साथ चल देती है और वेत्र कुंज में प्रतीक्षा करते हुए कृष्ण से मिलती है जहां राधा कृष्ण दोनों परम प्रेम मय होकर आनन्द में निमग्न हो जाते हैं।[४] कथा यहीं पर समाप्त हो जाती है। आगे तीन दोहे और दिये हैं, जिनमें से एक में ग्रन्थ का माहात्म्य, दूसरे में कवि द्वारा अपने हृदय में युगल किशोर की स्थिति की कामना का उल्लेख है और अन्तिम दोहे में बताया गया है कि बिना श्रीकृष्ण को जाने आवागमन से छुटकारा नहीं मिल सकता है, इसलिए हरि, गुरु और [illegible] का मन लगा कर भजन करना चाहिए।[५]

१- छं० प्र०, पृष्ठ ७६।
२- वही, पृ० ७७-८२।
३- वही, पृ० ८८-९३।
४- वही, पृष्ठ ९५-१००।
५- वही, पृ० १००।

१८ राधा के मान का वर्णन सूरसागर में भी मिलता है। यहाँ यह मान तीन प्रकार से उपलब्ध होता है। एक 'मान-लीला तथा दंपति विहार'[१] के रूप में, दूसरा 'मध्यम मान'[२] के रूप में और तीसरा 'बड़ी मानलीला'[३] के रूप में मिलता है। इनमें से 'मध्यम मान' उल्लेखनीय है।

सूरसागर में उक्त मध्यम मान के अन्तर्गत राधा कहती है कि कृष्ण रात भर तो किसी और के पास रहते हैं और प्रात: उसके पास चले जाते हैं, यह कह कर राधा घर में आकर मान करती है। युवतियों के मुख से कृष्ण उसके मान के विषय में सुनते हैं तो वे व्याकुल हो जाते हैं और राधा को मनाने के लिए दूती भेजते हैं।[४] दूती राधा के पास जाकर उससे कहती है, 'कि कृष्ण अब घर से बाहर न जाने की शपथ लेते हैं। तू तो उन्हें अत्यन्त प्रिय है। इसलिए तेरे विरह में वे बहुत दुखी हैं। मान करने से कुछ नहीं होगा। कृष्ण तुझे बार बार स्मरण करते हैं। उनको तू पत्र ही क्यों नहीं भेज देती जिससे उन्हें कुछ तो सुख मिले। वे कुंज में ही हैं। उनका मन अब अन्यत्र नहीं भटकता है। उनकी मुरली की ध्वनि सुर नर सबको मोहित करती है और शिव तथा ब्रह्मा भी उनका पार नहीं पाते हैं, वही तुमसे मिलने के लिए लालायित हैं।[५] वह कहती है कि यौवन वर्षा की नदी की भाँति थोड़े समय का होता है। इसलिए कुछ तो समझ और अभिमान तथा हठ त्याग कर प्रियतम के पास चल। वे तेरे विरह में तड़प रहे हैं, तेरी और उनकी पीड़ा अलग नहीं है।[६] इस पर राधा कहती है, 'तू व्यर्थ क्यों बकती है? मेरे घर आकर वाक् बाणों से क्यों बींध रही है'।[७] दूती पुन: कहती है, 'कि ज्यों ज्यों बोलती हूँ, क्रोधित होती है। तेरे प्रिय के लिए तुझ जैसी प्रिया और कोई नहीं है। इसलिए तू हठ छोड़ दे। वे तेरी प्रतीक्षा कर रहे हैं।[८] तू तो मूर्ख है। हँसी में हरि ने कुछ कह दिया तो तू अब कहना भी नहीं मानती है।[९] तेरे

१- सूरसागर, पद ३०२६-३०६२। २- वही, पद ३१८२-३२५८।

३- वही, पद ३३५३-३३९६। ४- वही, पद ३१८२-३१८४।

५- वही, पद ३२०० । ६- वही, पद ३२०९-११।

७- वही, पद ३२१२४ ८- वही, पद ३२१३।

पूर्व जन्म के पुण्य है कि तुझे श्रीकृष्ण प्राप्त हुए, उनके रूप को देखकर तृप्त क्यों नहीं होती ?[1] राधिका, तेरे इस झूठे अभिमान से कोई कार्य नहीं सधेगा। जो सर्व गुण निधान हैं और लक्ष्मी जिनके चरणों की नित्य सेवा करती रहती है, उनके वचनों को तू नहीं सुन रही है।[2] इस प्रकार कृष्ण प्रेम में ही उसकी सार्थकता बताने और मान का अनौचित्य दिखाने पर भी राधा नहीं मानती है। उसका मान तभी जाता है जब स्वयं कृष्ण विरह व्यथा का अनुभव करने के बाद अपना अपराध स्वीकार करके क्षमा माँगने के लिए आते हैं।[3]

१९ इस प्रकार नाम माला में आई हुई मान की कथा और सूरसागर के उक्त प्रसंग के अवलोकन से इनमें अनेक समानतायें दृष्टिगत होती हैं। दोनों में दूती ही मनाने के लिए जाती है। यह आशय सूरसागर में दूती स्वयं प्रकट करती है[4] और नाम माला में कवि ने संकेत किया है।[5] दोनों में कृष्ण राधा की प्रतीक्षा करते हुए उसके नाम की रट लगाते हैं और ~~यह प्रतीक्षा करते हुए उसके नाम की रट लगाते हैं और~~ यह प्रतीक्षा दोनों स्थलों पर कुंज में की जाती है। दोनों स्थलों पर राधा घर में बैठ कर मान करती है। मान त्याग करने के लिए दूती द्वारा अपनाये गए भाँति भाँति के उपाय भी दोनों स्थलों पर मिलते जुलते हैं। इसके अतिरिक्त दूती द्वारा राधा के मान को झूठा कहा जाना, श्रीकृष्ण के लिए राधा के समान और किसी प्रिया का न होना, श्रीकृष्ण को रूपगुण निधान कहना, श्रीकृष्ण राधा के मिलन के उल्लेख आदि भी दोनों ग्रन्थों में मिलते जुलते हैं।

२० उक्त प्रकार के साम्य को दृष्टिगत रखते हुए कहा जा सकता है कि नाम माला में [illegible] मान की कथा के आधार सूत्रों को कवि ने सूरसागर में दिये गये राधा के मध्यम मान के प्रसंग से ही एकत्र किया है और अपनी स्वतन्त्र कल्पना के आश्रय से उन्हें संवाँ कर नाम माला में प्रस्तुत किया है। ~~यहाँ-से-क्रम~~

१- सूरसागर, पद ३३९६।
२- वही, पद ३३९७।
३- वही, पद ३३९८।
४- वही, पद ३९८५।
५- नाम मा० प्र०, पृ० ७४।

नाम माला में कवि ने अनेक ऐसे कलात्मक और सजीव चित्रण प्रस्तुत किये हैं जिनसे कथा की रोचकता में तो वृद्धि हुई ही, उनका समावेश सूरदास के प्रसंगों में भी नहीं मिलता है। यथा, वृषभानु के भवन के सौन्दर्य और उनके ऐश्वर्य का वर्णन[1] और दूती के लिए लोपांजन की योजना[2] जिससे भवन के अन्दर राधा के पास जाते हुए उसे कोई न देख पाये, कवि की अपनी ही सूझें हैं। दूती के मुख से कृष्ण की महिमा सुनकर राधा द्वारा उन्हें कपटी कहे जाने और संध्या होने पर उसके द्वारा श्रीकृष्ण के पास प्रातः चलने के लिए कहने की बातें भी बड़ी स्वाभाविक और रोचक हुई हैं। इस प्रकार की पहुँच सूर की कथा में अप्राप्य है। सूर ने राधा द्वारा भवन से बाहर आने का कोई उल्लेख नहीं किया है किन्तु नन्ददास ने इस अवसर का लाभ उठाते हुए कहा है कि राधा का महल से उतरना ऐसा लग रहा है मानों चन्द्रमा पृथ्वी पर उतर रहा हो।[3] राधा मान त्याग कर जब कृष्ण के पास जाती है, कवि ने उस समय मार्ग के वृक्ष-लताओं और फल-फूलों की स्थिति तथा उनकी प्रतिक्रिया का वर्णन भी किया है। मार्ग में पक्षी इस प्रकार बोल रहे थे मानों उसके आगमन के समाचार से आनन्दित होकर परस्पर बात कर रहे हों।[4] इसके विपरीत सूरदास के श्रीकृष्ण स्वयं ही राधा के पास जाते हैं।[5] इस प्रकार नाम माला की कथात्मक पंक्तियाँ कला प्रिय नन्ददास के सौन्दर्य पूर्ण कवि हृदय की झलक देने में पूर्ण समर्थ हुई हैं।

२१ इससे विदित होता है कि कोष ग्रन्थ होते हुए भी नन्ददास उसमें कथा की उस सम्बद्धता और रोचकता का समावेश करने में सफल रहे हैं जो सूरसागर की कथा में भी नहीं मिलती है। वस्तुतः शब्दों के पर्याय-कानन जैसे शुष्क पथ पर कवि ने लालित्य और रमणीयता की जिस भाव धारा को प्रवाहित किया वह उसकी कला कुशलता और कवित्व शक्ति की तो द्योतक है ही, ज्ञान और कला की उसकी समन्वयात्मक प्रवृत्ति की भी प्रतीक है।

१- न० ग्र०, पृ० ७७-८९। २- वही, पृ० ८०, दोहा ३० ।
३- वही, पृ० १०१, दोहा २९२। ४- वही, पृ० १०२, दोहा २९८ ।

रसमंजरी

२२ रस मंजरी की रचना कवि ने किसी मित्र के कहने पर संस्कृत रसमंजरी के अनुसार की है । इसके आरम्भ में वह श्रीकृष्ण की वन्दना करते हुए उन्हें "रसमय", रसकारण और रसिक कह कर उनका परिचय देता है । संसार में जो कुछ भी रूप, प्रेम और आनन्द रस हैं वह सब श्रीकृष्ण का ही है और वह इनका वर्णन करता है ।[१]

२३ ग्रन्थ में कवि ने सर्वप्रथम युवतियां तीन प्रकार की बताई हैं: स्वकीया, परकीया और सामान्या । इनमें से प्रत्येक के भी तीन तीन प्रकार कहे गए हैं: मुग्धा, मध्या और प्रौढा। मुग्धा के मुग्ध नवोढा और विश्रब्ध नवोढा पुन: दो भेद दिये हैं । अज्ञात यौवना और ज्ञात यौवना का भी उल्लेख है । अन्य भेदों के अन्तर्गत मध्या धीरा, मध्या अधीरा, मध्या धीराधीरा, प्रौढा धीरा, प्रौढा अधीरा, प्रौढा धीराधीरा, सुरतिगोपना, परकीया वाग्विदग्धा और लक्षिता परकीया का लक्षणों सहित उल्लेख किया है ।[२] तदनन्तर नायिकाओं के नौ भेदों का उल्लेख करते हुए प्रत्येक के मुग्धा, मध्या, प्रौढा और परकीया के रूप में चार चार उपभेदों के वर्णन और उनके लक्षण दिये हैं ।[३] नौ भेद इस प्रकार है : प्रोषित पतिका, खंडिता, कलहंतरिता, उत्कंठिता, विप्रलब्धा, वासक सज्जा, अभिसारिका, स्वाधीन वल्लभा और प्रीतम गमनी,। अन्त में नायक के धृष्ठ, शठ, दक्षिण और अनुकूल, चार भेदों को लक्षण सहित प्रकट करते हुए कवि ने हाव, भाव, हेला और रति के लक्षणों का वर्णन किया है ।[४] ग्रन्थ के माहात्म्य के रूप में कवि का कथन है कि इसे पढने सुनने से रस की वृद्धि होती है क्योंकि यह अत्यन्त सरस है ।

२४ इस प्रकार ज्ञात होता है कि रस मंजरी में नायक-नायिका भेद का वर्णन किया गया है । कवि ने इस बात की ओर स्पष्ट संकेत किया है कि वह उक्त भेद

१- न० ग्रं०, पृ० १४४ । २- वही, पृ० १४५-१५८ ।
३- वही, पृ० १५८-१८० । ४- वही, पृ० १८०-८१ ।

का वर्णन रसमंजरी के अनुसार करता है। नन्ददास के रचना काल से पूर्व की नायक-नायिका-भेद युक्त 'रसमंजरी' नाम की रचना केवल एक ही उपलब्ध होती है और वह भानुदत्त मिश्र द्वारा संस्कृत में लिखी गई है। अतः इस में सन्देह नहीं है कि भानुदत्त मिश्र ही की रसमंजरी से आधार सूत्रों को ग्रहण करके कवि ने नायिका भेद का वर्णन किया है।

२५ भानुदत्त की उक्त रस मंजरी में सर्वप्रथम धर्म के अनुसार नायिका के स्वीया, परकीया, और सामान्या तीन भेद दिये गए हैं। वयः क्रम के अनुसार स्वीया के तीन भेद-मुग्धा, मध्या और प्रगल्भा दिये हैं। मुग्धा के दो दो भेद - अज्ञात यौवना और ज्ञात यौवना तथा ज्ञात यौवना के दो प्रभेद - नवोढा और विश्रब्ध नवोढा दिये हैं। प्रगल्भा के चेष्टा भेद से दो भेद रति प्रीतिमती और आनन्द सम्मोहवती तथा मध्या और प्रगल्भा के धीरादिक छः भेदों का उल्लेख किया है: मध्या धीरा, मध्या अधीरा, मध्या धीराधीरा, प्रौढा धीरा, प्रौढा अधीरा और प्रौढा धीरा धीरा। स्वीया नायिकाओं से मध्या और प्रगल्भा के समान धीरादिक छः भेद और प्रेम के अधिक अथवा न्यून भाव से प्रत्येक को पुनः ज्येष्ठा और कनिष्ठा, दो दो भेदों में विभक्त किया है। इस प्रकार मध्या और प्रगल्भा के अन्तर्गत धीरा, अधीरा और धीरा धीरा नायिकाएं ज्येष्ठा और कनिष्ठा होकर बारह हो जाती हैं। परकीया के दो भेद - परोढा और कन्यका दिये हैं। परोढा के अन्तर्गत गुप्ता, विदग्धा, लक्षिता, कुलटा, अनुशयाना मुदिता आदि भेद माने हैं। गुप्ता के तीन भेद - वृत्त सुरत गोपना, वर्तिष्यमाण सुरत गोपना और वृत्तवर्तिष्यमाण सुरत गोपना दिये हैं। विदग्धा के दो भेद - वाग्विदग्धा और क्रिया विदग्धा बताये हैं। मुग्धा के अतिरिक्त पूर्वोक्त नायिकाओं के तीन तीन भेद किये हैं - अन्य सम्भोग दुःखिता, वक्रोक्ति-गर्विता और मानवती, वक्रोक्तिगर्विता के पुनः दो उपभेद किये हैं - प्रेम गर्विता और सौन्दर्य गर्विता। प्रोषित पतिका, प्रवत्स्यत्पतिका और प्रवत्स्यत्पतिका। इसके उपरान्त, अवस्थानुसार नौ प्रकार की नायिकाओं - प्रोषित भर्तृका, खण्डिता, कलहान्तरिता, विप्रलब्धा, उत्का, वासकसज्जा, स्वाधीन पतिका, अभिसारिका और प्रवत्स्यत्पतिका का वर्णन करके प्रत्येक के उपभेद - मुग्धा, मध्या, प्रौढा, परकीया

और सामान्य वनिता के उदाहरण दिये हैं। इनमें अभिसारिका के तीन अधिक भेद दिये हैं - ज्योत्स्नाभिसारिका, तमिस्राभिसारिका और दिवसाभिसारिका। वासक सज्जा के अन्तर्गत, मुग्धा, मध्या, प्रगल्भा, परकीया और सामान्यवनिता के रूप में उदाहरण प्रस्तुत किये हैं। वासक सज्जा की एक चेष्टा मनोरथों को माना है।

भानुदत्त ने नायकों के तीन भेद किये हैं: पति, उपपति और वैशिक। पति और उपपति प्रत्येक को पुन: अनुकूल, दक्षिण, धृष्ठ और शठ, इन चार भागों में विभक्त किया है। वैशिक नायकों को भी तीन प्रकार का बताया है: उत्तम, मध्यम और अधम। प्रोषितावस्था में उक्त तीन प्रकार के नायकों को क्रमश: प्रोषित पति, प्रोषित उपपति और प्रोषित वैशिक के नामों से अभिहित किया है।[१]

२६ नन्ददास और भानुदत्त मिश्र द्वारा प्रणीत रसमंजरियों के नायक भेदों के उक्त विश्लेषणों से निम्नलिखित तथ्य प्रकाश में आते हैं:

(१) कवि आलोच्य कवि ने मध्या और प्रौढा के धीरादिक तीन तीन भेद तो किये हैं किन्तु प्रत्येक को पुन: ज्येष्ठा और कनिष्ठा में विभाजित नहीं किया है। इस प्रकार मध्या और प्रौढा के नन्ददास के अनुसार छ: भेद हुए जब कि भानुदत्त के अनुसार १२ भेद हो जाते हैं। भानुदत्त ने चेष्टा के अनुसार प्रौढा के रति प्रीति मती और आनन्द सम्मोहवती दो भेद किये हैं किन्तु नन्ददास ने इसको छोड़ दिया है। भानुदत्त ने परकीया के दो भेद परोढा और कन्यका करके परोढा के पुन: छ: उपभेद किये हैं, इन उपभेदों में से गुप्ता और विदग्धा के क्रमश: तीन और दो प्रति उपभेदों का वर्णन किया है किन्तु नन्ददास ने कुल मिला कर परकीया के केवल छ: भेदों का ही वर्णन किया है। नन्ददास ने अवस्थानुसार नायिकाओं के नौ भेद संस्कृत रसमंजरी के अनुसार ही किये हैं किन्तु इन नौ भेदों में प्रत्येक के मुग्धा, मध्या, प्रौढा और परकीया, ये चार चार ही उपभेद किये हैं, जब कि भानुदत्त ने इनके अतिरिक्त प्रत्येक के अन्तर्गत एक और भेद सा[illegible] का उल्लेख

१- रसमंजरी: [illegible] मिश्र।

किया है । प्रोषित भर्तृका के मुग्धा, मध्या, प्रौढ़ा, परकीया और सामान्य-वनिता के रूप में उदाहरण तो भानुदत्त ने दिये ही हैं, प्रोषित भर्तृका के तीन भेदों - प्रोषित पतिका, प्रवत्स्यत्पतिका और प्रात्स्यपतिका की ओर भी संकेत करके उनके उदाहरण दिये हैं किन्तु नन्ददास ने प्रोषित भर्तृका के स्थान पर उसके भेद प्रोषित पतिका का ही वर्णन किया है और इसी के मुग्धा, मध्या, प्रौढ़ा तथा परकीया चार भेद किये हैं । अभिसारिका के भेदों को भी संक्षेप में दिया है । भानुदत्त ने दशानुसार भी नायिकाओं के भेदों का वर्णन किया है और नन्ददास ने इस दिशा की ओर कोई संकेत नहीं किया है । नायकों के भेदों को भी अति संक्षेप में देते हुए नन्ददास ने उनके चार प्रकार बताये हैं - धृष्ट, शठ, दक्षिण और अनुकूल । अतः ज्ञात होता है कि संस्कृत रस मंजरी में नायक-नायिका भेद विस्तार पूर्वक दिया गया है किन्तु नन्ददास ने अपनी रस मंजरी में इन भेदों को संक्षेप में देने की चेष्टा की है ।

(२) संस्कृत रसमंजरी में स्वकीया के अन्तर्गत मुग्धा के दो भेद अज्ञात यौवना और ज्ञात यौवना देते हुए ज्ञात यौवना के पुनः नवोढ़ा और विश्रब्ध नवोढ़ा दो उपभेद दिये हैं किन्तु नन्ददास ने इसी मुग्धा के मुग्ध नवोढ़ा और विश्रब्ध नवोढ़ा, दो भेद करके मुग्ध नवोढ़ा के दो उपभेद अज्ञात यौवना और ज्ञात यौवना किये हैं । इस प्रकार नन्ददास ने ज्ञात यौवना को मुग्धा का भेद न मान कर मुग्ध नवोढ़ा के भेद के रूप में उपभेद माना है । संस्कृत रस मंजरी में परकीया के दो भेद परोढ़ा और कन्यका दिये हैं और नन्ददास ने इसके विपरीत परकीया के स्वीक स्वकीया की भाँति मुग्धा, मध्या और प्रौढ़ा तीन भेद किये हैं । इसके अतिरिक्त भानुकवि ने सामान्या नायिका के कोई उपभेद नहीं दिये हैं किन्तु नन्ददास की रस मंजरी में सामान्या नायिकाओं के भी मुग्धा, मध्या और प्रौढ़ा - तीनों भेदों का उल्लेख मिलता है । इससे प्रकट होता है कि नन्ददास ने भानुकवि द्वारा उल्लिखित भेदों को उसी रूप में ग्रहण न करके कुछ परिवर्तन के साथ नवीन रूप में ग्रहण करने की भी चेष्टा की है ।

(३) नन्ददास ने मुग्धा नायिका के दो भेदों - मुग्ध नवोढ़ा और विश्रब्ध नवोढ़ा की ओर संकेत करते हुए[1] इन भेदों के लक्षणों का वर्णन किया है और तब उसी क्रम में अज्ञात यौवना तथा ज्ञात यौवना के लक्षण दिये हैं किन्तु कवि के इस वर्णन से यह स्पष्ट नहीं हो पाता है कि अज्ञात यौवना और ज्ञात यौवना को किस मुख्य भेद के उपभेदों के रूप में बता रहा है। इसी प्रकार कवि ने यह तो कहा है कि मध्या और प्रौढ़ा के धीरादिक लक्षण होते हैं[2] और तदनुसार इन लक्षणों का वर्णन भी किया है किन्तु इसके आगे सुरति गोपना परकीया वाग्विदग्धा और लक्षिता परकीया के जो लक्षण दिये हैं उनसे यह तो ज्ञात होता है कि ये परकीया के अन्तर्गत हैं किन्तु यह स्पष्ट नहीं होता है कि ये परकीया के तीन भेदों - मुग्धा, मध्या, प्रौढ़ा[3] में से किसी के उपभेद हैं अथवा मुग्धा, मध्या, प्रौढ़ा के अतिरिक्त परकीया के ही भेद हैं। इस प्रकार नन्ददास की इस रसमंजरी में नायिका भेद का वर्णन कहीं कहीं अस्पष्ट ही रह गया है।

(४) भानुदत्त ने नायिकाओं के भेदों को लक्षण और उदाहरणों द्वारा विस्तार में स्पष्ट किया है जिससे ज्ञात होता है कि उसका ग्रन्थ-रचना का उद्देश्य ही नायक-नायिका भेद लिखना था। नन्ददास ने इन विस्तारों को छोड़ दिया है। उसने स्वकीया, परकीया और सामान्या के अलग से कोई वर्णन नहीं किये हैं, उनके उपभेदों को ही लक्षण लिख कर इस प्रकार समझाया है कि भानुदत्त की भाँति लक्षण और उदाहरण अलग अलग देने की आवश्यकता ही नहीं रह गई। यथा, मध्या अधीरा नायिका का वर्णन दृष्टव्य है :

> जागे तुम निसि प्रान पियारे। अरुन भये ये नैन हमारे।
>
> ---- ---- ---
>
> मन में श्रीफल बन गये तुमकों। काम क्रूर मारत है हमकों।।
>
> बचन अर्विगि कहे रिस भोय। है अधीर मध्या तिय सोय।।[4]

1- न० ग्रं०, पृ० १५५-५६। 2- वही, पृ० १५७।

3- वही, पृ० १५६। 4- वही, पृ० १५७।

कवि ने अवस्थानुसार नायिकाओं के भेदों और उपभेदों - दोनों के लक्षण दिये हैं। कवि इस प्रकार लक्षणों का वर्णन करता है जैसे वह नायिकाओं की परिभाषा लिखता न रहा हो। यथा, खंडिता नायिका के विषय में उसने लिखा है :

> प्रीतम अनत रैनि सब जागे। अंग अंग रति-रस चिह्नन पागे।
> भोर भये जाके गृह आवै। सो वनिता खंडिता कहावै।[1]

इस प्रकार कवि ने अपनी उर्वरा कल्पना शक्ति के सहारे विषय को स्वतन्त्र रूप से प्रस्तुत करने का प्रयास किया है।

२७ ऊपर लिखा जा चुका है कि कवि ने ग्रन्थ के आरम्भ में इस जगत में प्रच्छन्न रूप, प्रेम और आनन्द रस का श्रीकृष्ण से प्रसूत होने की बात लिखी है। कवि के ये श्रीकृष्ण रसमय तथा रसिक हैं।[2] उन्हें प्रेम के द्वारा ही जाना जा सकता है। प्रेम को जानने के लिए नायक नायिका भेद - ज्ञान आवश्यक है।[3] इसीलिए कवि रसमंजरी में नायिका भेद का वर्णन करता है। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि कवि का उद्देश्य संस्कृत रसमंजरी की भांति नायक-नायिका भेद का वर्णन करना मात्र नहीं है, प्रत्युत प्रेम-तत्व का परिचय देना ही उसको अभीष्ट है। अतः नायक-नायिका भेद-वर्णन कवि का साध्य नहीं, साधन है। यही कारण है कि नन्ददास ने अपने उद्देश्य के अनुसार ही आधार ग्रन्थ संस्कृत रसमंजरी में उल्लिखित विस्तारों को कहीं तो छोड़ दिया है, कहीं संक्षिप्त रूप देकर अपनाया है, कहीं भेदों को कुछ परिवर्तन के साथ ग्रहण किया है और कहीं स्वतंत्र भेदों का समावेश किया है। ऐसा करने में वह कहीं नायिका भेदों के वर्णन को स्पष्ट करना भी भूल गया है। उसका मन रसिक श्रीकृष्ण के प्रेम प्रति प्रेम के वर्णन की ओर ही आसक्त लगा हुआ दृष्टिगत होता है और इसीलिए वह सभी प्रकार की नायिकाओं के प्रेम का आलम्बन विभाव श्रीकृष्ण को ही मानता हुआ प्रतीत होता है। अनेक स्थलों पर तो आलम्बन विभाव के रूप में श्रीकृष्ण को, उनका नाम देकर ही स्पष्ट कर दिया है :

१- न० ग्रं०, पृ० १६० ।

२, ३- वही, पृ० १४४ ।

(१) मध्याधीरा : सापराधपियकों लख लहै। विंगि कोप के वचमनि कहै।
सगत निकुंज पुंज में मोहन। तुम लखि कुमित भये पिय सोहन[1]

(२) प्रौढाधीरा : सागस जानि गांवरे पिया। गूढ मान करि कैठी तिया।[2]

(३) प्रौढा खंडिता: भोर ही आये मोहनलाल। तिय पद जावक अंकित माल।[3]

इसी प्रकार प्रौढा उत्कंठिता[4], परकीया उत्कंठिता[5], प्रौढा-विप्रलब्धा[6], परकीया विप्रलब्धा[7], आदि के लक्षणों के वर्णनों के अन्तर्गत 'मोहन पिय' का ही उल्लेख किया गया है।

शेष स्थलों का श्रीकृष्ण के प्रेम भाव से ओत प्रोत होने का प्रमाण भी कवि की अन्य रचना रूपमंजरी में मिल जाता है जिसमें रस मंजरी की नायिकाओं के लक्षणों को अविकल रूप में उद्धृत करके नायक रूप श्रीकृष्ण के हेतु दिखाया गया है। इस मंजरी में उल्लिखित हाव, भाव, हेला और रति के वर्णन भी रूपमंजरी में दिये हैं इनकी परिणति भी कृष्णोन्मुख है।

२८ रसमंजरी की कथावस्तु और उसके आधार के उपर्युक्त विवेचन से प्रकट होता है कि कवि ने प्रेम-तत्व को जानने के लिए ही नायक-नायिका भेद लिखा। प्रेम से कवि का तात्पर्य श्री कृष्ण - प्रेम से है। निकट होने पर भी श्रीकृष्ण को बिना प्रेम के नहीं जाना जा सकता है। कवि कहता है कि कोई वस्तु, ज्ञान न होने से निकट होते हुए भी दूर प्रतीत होती है।[10] अतः दूसरे शब्दों में, निकट की वस्तु के दूर होने की प्रतीति को दूर करना ही कवि को अभीष्ट है। कवि ने यह संकेत

१- न० ग्रं०, पृ० १५७। २- वही, पृ० १५८।
३- वही, पृ० १५१। ४, ५- वही, पृ० १५३।
६,७- वही, पृ० १५४।
८- वही, पृ० १४६ (अज्ञात यौवना), पृ० १५० (परकीया प्रोषित पतिका) और पृ० १२९ तथा पृ० १३२ (रूपमंजरी)।
९- वही, पृ० १४८-४९ और पृ० १३०-३१।
१०- वही, पृ० १४४।

दिया है कि रस मंजरी में परम प्रेम रस से भरा हुआ नख शिख वर्णन है ।[१] "परम प्रेम" कहने से भी तात्पर्य श्रीकृष्ण के प्रति प्रेम से ही है । यह बात ग्रन्थ में स्थल स्थल पर नायिकाओं के आलम्बन विभाव के रूप में श्रीकृष्ण के उल्लेखों से स्पष्ट हो जाती है । नायिकाओं के [illegible]भेदों के वर्णन की योजना संक्षेप में इस पटुता के साथ की गई है कि उनका चित्र तो सामने आ ही जाता है, यह भी भान होने लगता है कि ग्रन्थ में उल्लिखित नायिकाओं की रति के आधार श्रीकृष्ण ही हैं । इसके साथ ही कवि का भक्त हृदय भी प्रत्येक वर्णन में झांकता हुआ दृष्टिगोचर होता है और रसमंजरी को आद्यन्त पढ़ने के उपरान्त किसी भी भक्त के हृदय में श्रीकृष्ण के प्रति प्रीति की वृद्धि होना स्वाभाविक जान पड़ता है क्योंकि कवि ने स्वयं कहा है :

> इहि विधि यह रस मंजरी, कही जथामति नंद ।
> पढ़त बढ़त अति चोप चित, रसमय सुख कौ कंद ।।[२]

यहाँ "रस मय सुख" से कवि का तात्पर्य उस नन्दकुमार श्रीकृष्ण के अनुभव सुख से है जिसका परिचय ग्रन्थ के आरम्भ में दिया गया है ।[३] इस प्रकार कवि ने ग्रन्थ के आरम्भ में श्रोता या पाठक को [illegible] रसमय नन्दकुमार का परिचय दिया, अन्त में उसी रसमय नन्दकुमार से प्रसूत, सुखानुभूति की अवस्था तक उसे पहुँचाने का प्रयत्न किया । इसके अतिरिक्त कवि कृत रसमंजरी का महत्त्व उसके द्वारा इंगित प्रेम की दृष्टि से तो है ही, हिन्दी में नायक-[illegible] भेद की आरम्भिक रचनाओं में होने के कारण भी यह उ[illegible] है । नन्ददास की रसमंजरी से पूर्व हिन्दी के नायक-नायिका-भेद-ग्रन्थों में संवत १५९८ में लिखी गई कृपाराम की हित तरंगिणी उल्लेखनीय है । साहित्य लहरी में भी नायक-नायिका भेद वर्णन है किन्तु जैसा कि पीछे लिखा जा चुका है इसे सूर की प्रामाणिक कृति नहीं माना जाने लगा है ।[४]

इस प्रकार भक्ति और रीति भावनाओं का इस ग्रन्थ में सराहनीय समन्वय

१- न० ग्र०, पृ० १६१ ।   २- वही, पृ० १६१ ।
३- वही, पृ० १४४ ।   ४- दे० उ० पृ०

दृष्टिगत होता है और इसमें लोकानुरक्त व्यक्तियों के लिए जितनी ही मनोरंजन की सामग्री निहित है, भक्त जनों के लिए वह उतनी ही ईश्वर-प्रेमानुभूति प्रद ज्ञात होती है ।

रूपमंजरी

३० ग्रन्थ के आरम्भ में कवि ने ईश्वर की वन्दना की है और ईश्वर के सर्व व्यापकत्व की ओर संकेत करते हुए प्रेम पद्धति का उल्लेख किया है जिसका वह वर्णन करता है ।[१] अपनी कविता में माधुर्य गुण के समावेश के लिए वह सरस्वती की भी वन्दना करता है और ग्रन्थ में ईश्वर का यश गान ही होने की बात कहता है ।[२] पश्चात् अपने "उर-अन्तर" की वस्तु प्रकट करते हुए कवि कहता है कि पृथ्वी पर निर्भय पुर नाम का एक नगर था ।[३] उस नगर के राजा का नाम धर्म धीर था जो धर्म रक्षार्थ प्रकट हुआ था । उसकी रूपमंजरी नामक एक अत्यन्त रूपवती कन्या थी । रूपमंजरी जब विवाह योग्य हुई तो उसके माता पिता ने किसी रूप गुण युक्त राजकुमार से उसका विवाह करना चाहा और एक ब्राह्मण को बुलाकर उससे अपनी इच्छा व्यक्त की । किन्तु ब्राह्मण कृपण था और उसने लोभ वश एक निर्दयी और कुरूप कुमार से रूपमंजरी का विवाह करा दिया ।[४]

३१ रूपमंजरी का सौन्दर्य चन्द्र कला की भाँति बढ़ने लगा । कवि उसके रूप और सहज शृंगार का चित्रण करने में अपने को असमर्थ पाता है और इस रूप को निष्फल न होने देने के लिए उपपति रस की योजना करता है ।[५] इन्दुमती रूपमंजरी की सखी है । ज्ञात पड़ता है कि यह इन्दुमती स्वयं कवि ही है ।[६] उसके अनुसार श्रीकृष्ण ही रूपमंजरी के योग्य प्रियतम हैं । वह सोचती है कि श्रीकृष्ण तो शिव, वेद और योगियों के लिए भी अगम हैं । फिर भी वह एक दिन गोवर्द्धन में जाकर उनकी प्रतिमा देख आती है और अपने हृदय में उनके स्वरूप को धारण करके भवसागर से उद्धार पाने के लिए निशि दिन प्रार्थना करने लगती है ।[७]

१- न० ग्रं०, पृ० १९७ ।
२- वही, पृ० १९८ ।
३- वही, पृ० १९९ ।
४- वही, पृ० १९९-२१ ।
५- वही, पृ० १२७ ।
६- दे० अपार, पृ० ८ ।
७- [illegible]

३२ एक दिन राजकुमारि सखी के साथ चित्रशाला में सोई हुई थी कि स्वप्न में उसे अत्यन्त सुन्दर किशोर नायक के रूप में श्रीकृष्ण का संयोग प्राप्त होता है और वह स्वप्न में ही उनके अनुराग में रंग कर बेसुध हो जाती है। प्रात: अत्यन्त संकोच के साथ उठने पर वह सखी के आग्रह पर अपने स्वप्न का वर्णन करती है। वह अत्यन्त लज्जापूर्वक गिरिधर लाल की अनुपम शोभा का भी वर्णन करती है[१]। उसके भाग्य को देख कर सखी मूर्च्छित हो जाती है और सुधि आने पर कहती है कि अनेक जन्मों तक तप करने पर भी जो भगवान प्राप्त नहीं हो पाते, उन्हीं से रूपमंजरी मिल आई है। वह रूप मंजरी से कहती है कि उसके रूप को व्यर्थ होते देखकर जिस देव का आह्वान उसने किया था उसी ने स्वप्न में आकर दर्शन दिये। रूपमंजरी के पूछने पर सखी बताती है कि वह देव गोकुल में रहता है और नंद-यशोदा का पुत्र है। तब रूपमंजरी के हृदय में गिरिधर निवास करने लगते हैं और इन्दुमती उसी में उनकी आराधना करने लगती है।[२]

३३ प्रियतम गिरिधर का परिचय जान लेने पर रूपमंजरी उनसे प्रत्यक्ष में मिलने के लिए व्याकुल होने लगती है[३] और उसे पावस, शरद, हिम तथा शीत ऋतुओं के दारुण विरह की दु:खानुभूति का सामना करना पड़ता है।[४] बीच बीच में उसकी सखी उसे धैर्य प्रदान करती रहती है। बसन्त ऋतु में जीवित रहना दूभर हो जाता है क्योंकि बसन्त के सम्पर्क से मदन वैसे ही प्रबल हो उठता है जैसे अग्नि वायु के सम्पर्क से।[५] बसन्त में फाग गाती हुई कुछ स्त्रियां उसे गिरिधर लाल का पता बता देती हैं।[६] प्रियतम की चर्चा सुनकर वह मूर्च्छित हो जाती है। उसे सुधि तभी आती है जब उसकी सखी उसके कान में गिरिधर के आने की बात कहती है। तब उसकी माता भी समझने लगती है कि उसकी पुत्री का रूप गिरिधर लाल के ही योग्य है।[७] यहां कवि कहता है कि मिलन से विरह अधिक सुखदायक होता है क्योंकि मिलने पर तो

१- न० ग्रं०, पृ० १२७-२८।
२- वही, पृ० १२८-३०।
३- वही, पृ० १३१।
४- वही, पृ० १३२-१३६।
५- वही, पृ० १३६।
६- वही, पृ० १३७।
७- वही, पृ० १३८।

एक ही स्थान पर दर्शन होते हैं किन्तु वियोग में सर्वत्र ही दर्शन होते हैं।[१] ग्रीष्म ऋतु होते होते रूपमंजरी को ज्ञान पड़ता है कि वह प्रियतम के बिना जी नहीं जी सकती है। उसकी करुण अवस्था देखकर सखी फूट फूट कर रोने लगती है और गिरिधर लाल से दीनतापूर्वक कहती है, "कि तुम्हारा यह कथन कि जिस जिस भाव से मुझे स्मरण किया जाता है मैं उसी भांति प्राप्त होता हूं, सब को ज्ञात है।" इतने में ही रूपमंजरी सो जाती है और स्वप्न में यमुना पुलिन पर उसका प्रियतम श्रीकृष्ण से संयोग होता है।[२] कवि इस स्थल पर नवोढा नायिका के साथ ऋतु विहार का मनोहर चित्र प्रस्तुत करता है। प्रात: रूपमंजरी के जागने पर उसके अलसाये अंगों और रतिचिन्हों से इन्दुमती जान लेती है कि राजकुमारी की [illegible] पूर्ण हो गई है। यहां पर कवि ने ऐसा वर्णन किया है मानो सब कुछ जाग्रतावस्था में ही हुआ हो। उसने दिखाया है कि जो फूल माला प्रियतम से प्राप्त हुई थी, वह जागने पर भी रूपमंजरी के गले में ही रह गई।[३]

३४ इसके अनन्तर कवि ने लिखा है कि भगवान तीनों युगों में प्रकट है किन्तु कलियुग में प्रकट नहीं है। इसलिए स्वप्न की ओट में उनके दर्शन किये गये। रूपमंजरी तो प्रियतम गिरिधर के साथ गई ही, उसके सम्पर्क से सखी इन्दुमती का भी उद्धार हो गया। कवि ने अन्त में कहा है कि उसने इस रसभरी लीला की योजना "निजहित" ही की है, इसके श्रवण और कथन से प्रेमपद की प्राप्ति होती है तथा यद्यपि वेद भगवान को अगमातिगम कहते हैं तथापि इस प्रेम द्वारा उनका सान्निध्य प्राप्त हो सकता है।[४]

३४अ. उपर्युक्त विश्लेषण से प्रकट है कि रूपमंजरी ग्रन्थ में ईश्वरोन्मुख प्रेम का वर्णन किया गया है और इस प्रेम का आधार रूपमंजरी का अद्भुत रूप है जो सांसारिक पापों का नाश करने वाला है।[५] इसी रूप को [illegible] होने से बचाने के लिए ही उक्त प्रेम की योजना की गई है।[६] [illegible] है कि रचना के आधार के रूप में रूपमंजरी ग्रन्थ में कवि का उसी प्रकार का उल्लेख उपलब्ध होता है जैसा नाममाला और

१- रू० मं०, पृ० १३८ ।   २- वही, पृ० १४२ ।
३- वही, पृ० १४३ ।   ४- वही, पृ० १४३ ।
५- वही, पृ० १३१ ।   ६- वही, पृ० १३४ ।

रसमंजरी में दिया गया है :

जब हौं बरनि सुनाऊं ताही । जो कछु मौ उर अंतर आही ।।[1]

यहां "जो कुछ मौ उर अंतर आही" के कथन से कवि का वही प्रयोजन जान पड़ता है जो नाममाला में "अमर कोष के माय" और रसमंजरी में "रसमंजरि अनुसार" के कथन से है। अन्तर केवल इतना है कि नाममाला और रसमंजरी में रचना के आधार के रूप में एक एक ग्रन्थ का उल्लेख किया गया है और रूपमंजरी में "उर अंतर" की ही वस्तु उसकी रचना का आधार कही गई है। श्रीकृष्ण का स्वरूप ही कवि के "उर-अन्तर" की वस्तु है :

सखि इक दिन गिरि गोधन जाई, गिरिधर पिय प्रतिमा दिख आई
तब तैं यौं उर-अंतर राखी, ज्यौं गुरु देव दया कर भाखी ।।[2]

अत: कहा जा सकता है कि रूपमंजरी में कवि को श्रीकृष्ण के ही स्वरूप और उनकी महिमा का वर्णन करना अभीष्ट है। इस बात की पुष्टि निम्न कथन से भी होती है :

इहि प्रसंग हौं जु कछु बखानौं । प्रभु तुम अपनौ जस कै जानौ ।।[3]

३५आ. रूपमंजरी में श्रीकृष्ण के उक्त यश का वर्णन, एक कथा के माध्यम से करने का प्रयास किया गया ज्ञात होता है। इस कथा का कोई ऐतिहासिक अथवा साहित्यिक आधार उपलब्ध नहीं होता है और श्रीकृष्ण को छोड़कर प्रमुख पात्रों के नाम भी वास्तविक नहीं जान पड़ते हैं।

इन्दुमती नाम का प्रयोग कवि ने स्वयं अपने लिए किया है।[4] ग्रन्थ के विषय के अनुसार ही नायिका का नाम भी रूपमंजरी रक्खा गया प्रतीत होता है।[5]

१- नं० ग्रं०, पृ० ११६।　　२- वही, पृ० १२५।
३- वही, पृ० ११८।
४- दे० ऊपर, पृ० १०१।

रूपमंजरी और इन्दुमती का सहचरीपन भी अकल्पित नहीं जान पड़ता है।[1] उधर श्रीकृष्ण अलौकिक पात्र है क्योंकि उनके लिए शिव जी समाधि लगाते हैं, योगी ध्यान द्वारा भी उन्हें प्राप्त नहीं कर पाते और वे निगमों के लिए भी अगम हैं।

३६ कथा में रूपमंजरी प्रमुख पात्र है। वह नायिका है और अद्भुत रूपवती है[2] किन्तु उसका विवाह एक क्रूर और कुरूप युवक से कर दिया गया। रूपमंजरी के इस पति का इसके अतिरिक्त कि वह क्रूर और कुरूप था, कवि ने अन्य कोई विवरण नहीं दिया है। यह भी अस्वाभाविक सा लगता है कि अद्भुत रूपवती राजकुमारी रूपमंजरी के लिए जो माता पिता रूप, गुण, शील, उदारता और कीर्ति से युक्त राजकुमार को पति रूप में देखने की कामना करते हैं,[3] वे इतनी असावधानी बरतें कि रूपमंजरी का विवाह क्रूर और कुरूप युवक से हो जाय। कवि यह भी कहता है कि सुरबर, नरबर आदि सभी देखने के ही अच्छे होते हैं किन्तु उनसे प्रयोजन की सिद्धि उसी प्रकार नहीं हो सकती है जैसे वनफलों से हार नहीं बन सकता है।[4] इससे प्रतीत होता है कि कवि बाह्य सौन्दर्य को महत्त्व नहीं देता है। अतः रूपमंजरी के पति को कुरूप कहने से कवि का प्रयोजन कायिक रूप से रहित होने मात्र से नहीं जान पड़ता है। क्योंकि सब प्रकार से योग्य तो रूप निधि कुंवर गिरिधर ही हैं,[5] इतर व्यक्ति उनके रूप के सम्मुख कुरूप ही तो हैं। रूपमंजरी के पति के क्रूर कहने की बात भी स्पष्ट नहीं हो पाई है क्योंकि कौन से व्यवहार के कारण उसका क्रूर होना प्रकट हुआ, कवि ने इस ओर कोई संकेत नहीं दिया है। रूपमंजरी के माता पिता का भी केवल उल्लेख मात्र ही किया गया है। उषा, अनिरुद्ध और चित्रलेखा का उल्लेख उदाहरण रूप में किया गया है,[6] कथा से उनका कोई प्रयोजन नहीं है। ग्रन्थ में बीच बीच में कवि कथा प्रवाह की परवाह न करके कभी रीति शास्त्र की व्याख्या करता हुआ[7] और कभी रसमंजरी में उल्लिखित नायिकाओं की अवस्थाओं का रूपमंजरी में आरोप करता हुआ [illegible] होता है।[8] इस प्रकार कथानक की

१- दे० ऊपर, पृ० 92।
२- न० ग्रं०, पृ० १२४।
३- वही, पृ० १२६।
४- वही, पृ० १२५।
५- वही, पृ० १३७, पं० १४० [illegible]।
६- वही, पृ० १३८।
७- वही, पृ० १३७, पं० १३७-१३८।
८- वही, पृ० १४६ और १५० (रसमंजरी) तथा पृ० १२२-१३२ (रूपमंजरी)

दृष्टि से ग्रन्थ में कथा का प्रवाह महत्त्वपूर्ण नहीं है, उसमें न तो पात्रों का चारित्रिक विकास ही हो पाया है और न घटनाओं का आवश्यक विस्तार ही उपलब्ध होता है।

३७ इससे यह सम्भावना प्रकट होती है कि ग्रन्थ में कवि का उद्देश्य किसी कथा को लिखने का नहीं था प्रत्युत "प्रेम-पद्धति" का अपनी बुद्धि के अनुसार वर्णन करने का था जिसको सुनने से मन सरस होकर रस वस्तु का अनुभव करता है और तब तत्व का ज्ञान होता है[१]। तत्व से तात्पर्य सिद्धान्त तत्व से है जिससे परमात्म-तत्व की प्राप्ति होती है। जिस प्रकार जल से भरे हुए अनेक बर्तनों में अनेक चन्द्रमा जान पड़ते हैं किन्तु वे सभी एक ही चन्द्रमा के बिम्ब होते हैं, उसी प्रकार समस्त हृदयों में निवास करने वाला परमात्मा एक ही है किन्तु वस्तु भेद के अनुसार उसके परिणाम भिन्न भिन्न होते हैं।[२] ,उस परमात्मा का सान्निध्य प्राप्त करने के लिए एक सूक्ष्म मार्ग को बताने की ओर कवि संकेत करता है।[३] यह मार्ग रूप प्रेम का मार्ग है जो अत्यन्त कठिन है, क्योंकि इस मार्ग में अमृत और विष साथ साथ मिलते हैं। दोनों को अलग अलग करके ग्रहण करना निश्चय ही दुस्तर कार्य है।[३] रूप के मार्ग में वासना और परमात्म-तत्व ही क्रमशः विष और अमृत रूप हैं। अतः क्षीर नीर विवेक द्वारा परमात्म-दर्शन को ही लक्ष्य बना कर जो इस मार्ग का अनुसरण करता है उसी को परमात्म-तत्व की प्राप्ति होती है।[४] भगवान को प्राप्त करने के लिए कवि उक्त रूप-मार्ग में उपपति रस के आश्रय से अग्रसर होता है।[५] उसने नाद मार्ग की ओर भी रूपमंजरी में संकेत किया है,[६] किन्तु इस ग्रन्थ में उसका प्रतिपादन नहीं मिलता है। नाद मार्ग का वर्णन आगे चल कर रास पंचाध्यायी में किया गया है, उसको भी कवि ने अत्यन्त सूक्ष्म कहा है।[७]

३८ पीछे दी हुई ग्रन्थ की कथा-वस्तु से ज्ञात होगा कि उसमें उपपति भाव के समावेश द्वारा रूपमंजरी को परकीया भक्त के रूप में दिखाया गया है। कवि द्वारा

१,२- न० ग्रं०, पृ० ११७। ३,४- वही, पृ० ११८।

५- वही, पृ० १२४। ६- वही, पृ० ११८।

७- वही, पृ० ८।

इस ग्रन्थ में नियोजित यह भावना परकीया माधुर्य भक्ति के सर्वथा अनुकूल प्रतीत होती है और कवि ने इन्दुमती नाम की ओट में उक्त भावना का निर्देश किया है। इन्दुमती सर्वप्रथम, संसार की प्रियतम वस्तु "पति" को रूप तथा श्रीकृष्ण को रूपनिधि और एक मात्र योग्य नायक बताकर रूपमंजरी का ध्यान भगवान की ओर आकर्षित करती है। तदनन्तर बीच बीच में उसके सन्देहों का समाधान करती जाती है और श्रीकृष्ण के विरह की अवस्था में जब जब भी रूपमंजरी का धैर्य छूटने को होता है, वह उसके हृदय में आशा का संचार करने का प्रयास करती है।[1] ऐसे करते करते वह रूपमंजरी को ऐसी स्थिति में पहुंचा देती है कि उसे गिरिधर प्रिय के अतिरिक्त अन्य कोई पुरुष ही नहीं दिखाई देता है।[2] स्वप्न में श्रीकृष्ण के साथ संसर्ग और उनके साथ समागम का अवसर भी रूपमंजरी को इन्दुमती की कृपा से ही प्राप्त होता है। रूप मंजरी, इन्दुमती से कहती है :

कव मोचति सखि तू बड़ जाता। तू जस आहि अस न पितु माता।।[3]

स्पष्ट है कि माता-पिता के उपरान्त गुरु का ही नाम आता है। अतः इन्दुमती रूपमंजरी की गुरु के रूप में दृष्टिगत होती है। इससे नन्ददास की गुरु-कृपा के प्रति पूर्ण आस्था प्रकट होती है।

३६ यद्यपि कवि रूपमंजरी को ही भक्त रूप में चित्रित करता हुआ जान पड़ता है तथापि ग्रन्थ के किसी भी प्रसंग में उसका भक्त हृदय ओझल नहीं होने पाया है कवि का तो ग्रन्थारम्भ में ही कहना है कि, "भगवान का यशगान जिस वर्णन में नहीं है वह निरर्थक है"।[4] वस्तुतः नन्ददास ने जो कुछ कहा है, वही किया है क्योंकि वे इस बात को हृदयंगम किये हुए थे कि फल की प्राप्ति, कहने मात्र से नहीं वरन् प्रयत्न करने से होती है।[5] इसीलिए इन्दुमती ने रूपमंजरी को श्रीकृष्ण के संयोग कराने का कार्य अपने उसी कथन के अनुरूप किया है जिसमें उसने कहा है कि व

१- न० ग्रं०, पृ० १२८, पृ० १३३ आदि।
२- वही, पृ० १३६।
३- वही, पृ० १४०।
४- वही, पृ० ११८।
५- वही, पृ० १२३।

जब श्रीकृष्ण से भेंट करायेगी तभी उसका 'इन्दुमती' नाम सार्थक होगा।[१] किम्बहुना, जिस प्रकार भी हो श्रीकृष्ण का संयोग प्राप्त करना ही कवि का मनोरथ था। यह मनोरथ श्रीकृष्ण का अनुसरण करने वाली रूपमंजरी के साथ भावात्मक संगति से पूर्ण हुआ। इन्दुमती के रूप में उसका भक्तरूपिणी रूपमंजरी से प्रगाढ़ प्रेम जान पड़ता है और जब उसने देखा कि चन्द्रकान्त मणि में चन्द्रमा की झलक की भाँति रूपमंजरी के हृदय में गिरिधर झलकने लगे हैं तो उसी के हृदय में वह भगवान की आराधना करने लगती है।[२] इससे प्रकट है कि नन्ददास भगवत्प्राप्ति के लिए गुरुकृपा की भाँति ही सत्संगति को तो महत्त्वपूर्ण समझते ही हैं जिसके समर्थन में उन्होंने यह भी कहा है कि "पीतल भी पारस की संगति से स्वर्ण हो जाता है",[३] साथ ही वे भक्त के रूप में भगवान के दर्शन करने की बात के भी समर्थक हैं।

१० ऊपर से देखने में तो रूपमंजरी ग्रन्थ में लौकिक शृंगार के प्रवाह की प्रतीति होती है किन्तु थोड़ी सी भी गहनता से विचार करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि उसमें आद्यन्त अलौकिक प्रेम की भाव धारा ही प्रवाहित हो रही है। रूपमंजरी के रूपवर्णन और उसके विरह वर्णन में लौकिक शृंगार रस का वर्णन हुआ अवश्य है किन्तु यह भी उल्लेखनीय है कि रूपमंजरी का वह रूप श्रीकृष्ण के लिए ही है और उसका विरह भी श्रीकृष्ण से विमुख नहीं जान पड़ता है तथा इस रूप और विरह के कारण ही रूपमंजरी को भगवान के साथ संयोग सुख का लाभ प्राप्त हुआ।

११ उपर्युक्त विवेचन के आधार पर कहा जा सकता है कि रूपमंजरी नंददास की स्वतंत्र रचना है। इसमें कवि ने एक कथा की ओट में जिसे रूपक कहा जा सकता है, अपने सिद्धान्तों का [illegible] करने का यत्न किया है। रूपमंजरी ग्रंथ में श्रीकृष्ण ही परमात्म तत्व हैं। रूप प्रेम का मार्ग ही उनके निकट तक पहुंचने का मार्ग है। रूपमंजरी इस मार्ग की पथिक है और इन्दुमती मार्गदर्शक है। ईश्वर श्रीकृष्ण को प्राप्त करना ही उस मार्ग पर चलने का लक्ष्य है। उस मार्ग में प्रवेश करने के लिए सांसारिक आकर्षण रूप लौकिक पति ही सबसे बड़ी बाधा है जिसे पार करने

१- न० ग्रं०, पृ० १३८। २- वही, पृ० १३० ।
३- वही, पृ० १२३ ।

के लिए उपपति रस की योजना की गई है। दूसरे शब्दों में, रूपमंजरी भक्त है और इन्दुमती गुरु। श्रीकृष्ण ईश्वर हैं। गुरु इन्दुमती की कृपा से भक्त रूप रूपमंजरी का चित्त क्रमशः भगवान की ओर उसी प्रकार आकर्षित होता है जिस प्रकार प्रेमिका का चित्त उपपति के प्रति आकर्षित होता है। स्वप्न में उनसे साक्षात्कार होने के उपरान्त उसे भगवान के विरह की अनुभूति होती है और विरह की अन्तिम अवस्था में वह भगवान के स्वरूप में तन्मय हो जाती है। उसी समय उसका भगवान के साथ भावात्मक संयोग हो जाता है। इस प्रकार कवि ने दिखाया है कि कलियुग में भगवान के प्रत्यक्ष दर्शन तो नहीं हो सकते हैं किन्तु उनके साथ प्रेम द्वारा भावात्मक संयोग प्राप्त किया जा सकता है। गुरु द्वारा सतत प्रयत्न किये जाने पर भी भगवान स्वयं अपने अनुग्रह द्वारा ही प्राप्त हो सकते हैं। रूपमंजरी में इस अनुग्रह की ओर स्पष्ट संकेत करते हुए कहा गया है कि भगवान रूपी फल की प्राप्ति तभी हो सकती है जब वह स्वयं आने की कृपा करें।[1] इसके अतिरिक्त रूपमंजरी को लौकिक विषयों का परित्याग और अपने सम्पूर्ण रूप वैभव को कृष्णार्पण करने के उपरान्त विरहावस्था में उनकी लीला के श्रवण मात्र से संयोग सुख की अनुभूति की अवस्था भी भगवान श्रीकृष्ण के अनुग्रह के फलस्वरूप ही प्राप्त हुई है। यह भावना पुष्टि मार्ग के अनुकूल है। इस प्रकार भगवदनुग्रह प्राप्त करने के लिए जो उपकरण अपेक्षित होते हैं, उनको रूपमंजरी के वर्णन-सूत्रों में पिरोने का प्रयास नंददास ने किया है। इस प्रयास में कवि ने [illegible] शृंगार-वर्णनों के मूल में अलौकिक भावधारा को बड़ी पटुता से प्रवाहित किया है जिससे लौकिक शृंगार रस के होते हुए भी उसके आश्रय के रूप में सर्वत्र अलौकिक तत्व ही दृष्टिगत होता है। कवि का श्रीकृष्ण के प्रति भक्ति का उद्रेक इतना तीव्र और प्रत्यक्ष है कि जब जब भी वह श्रीकृष्ण के स्वरूप के सम्मुख कृपार्थ दीनतापूर्वक विनय करता है, उसकी कामना की पूर्ति होकर ही रहती है। इन्दुमती रूपमंजरी के लिए दो बार श्रीकृष्ण को करुण स्वरों में सम्बोधित करती है और दोनों समय उसे भगवान का नैकट्य प्राप्त करने में सफलता मिलती है। यही इसमें रहस्य है, यही प्रेममार्ग पर चलने का परिणाम है और यहीं पर गुरु-कृपा, स[illegible] तथा भगवदनुग्रह - तीनों कृपा धाराओं की [illegible] है जिसमें भक्त रूप रूपमंजरी को जब चाहे अवगाहन करने अवसर प्राप्त होता है।

१- रूपमंजरी पंक्ति १६३-१६६ ।

विरह मंजरी

४२ ग्रन्थ में कवि ने सर्व प्रथम ब्रज बाला के मिस से श्रीकृष्ण के विरह की अवस्था में चित्रित किया है, जिससे यह स्वाभाविक सा प्रश्न उठता है कि श्रीकृष्ण और ब्रज बाला का विरह कैसा ? क्योंकि कृष्ण तो नित्य वृन्दावन में व्रजबालाओं के निकट ही रहते हैं। प्रश्न का समाधान करते हुए कवि ब्रज के विरह को चार प्रकार का बताता है : प्रत्यक्ष, पलकांतर, वनांतर और देशान्तर; देशान्तर विरह के विषय में कवि का कथन है :

> सुनि देसांतर विरह विनोद । रसिक जनन मन बढ़वन मोद ।
> नंद सुवन की लीला जिती । मथुरा द्वारावति बहु भंती ।।
> सुमिरत तदाकार ह्वै जाहीं । इहि वियोग इहि विधि ब्रज मांही ।।[1]

इससे प्रकट है कि द्वारावती और मथुरा में की गई श्रीकृष्ण की लीला का स्मरण करने से ही ब्रज में देशान्तर विरह की अनुभूति होती है। इसीलिए रात्रि के समाप्त होने से कुछ पूर्व जागने पर ब्रज बाला को जब द्वारावती की लीला का स्मरण होता है तो वह विरह से इस प्रकार विकल हो जाती है कि चेतन और अचेतन का विचार न करके चन्द्रमा को सम्मुख देखकर उसी से श्रीकृष्ण के लिए सन्देश कहने लगती है और इस सन्देश को कहते कहते वह क्षण भर में ही द्वादश-मास के विरह-दुख का वर्णन कर डालती है।[2] वह कहती है, "कि हे प्रियतम ! चैत में कहीं न जाओ। बसन्त में मदन प्रबल हो जाता है, फिर भी तुम चले जाते हो। जो कामदेव तुम्हारे साथ होने पर सुख देता है, वही तुम्हारे चले जाने पर शत्रु हो गया है। नये पुष्पों के धनुष और पंचबाणों के द्वारा उसने हृदय में हलचल पैदा कर दी है।[3] इसी प्रकार वह बैशाख से फागुन मास तक की अवधि में हुई विरहानुभूति को भी क्रमशः प्रकट करती है।[4] अन्त में वह कहती है, "कि हे चन्द्र मुझे मोहन के ही पास ले चलो। मुझे वहाँ जाने में कोई लज्जा नहीं। "[illegible] में [illegible] जाने में लज्जा नहीं देखी जाती।[5] इस प्रकार स्मृति में ही एकाकार हो कर महाविरह की अनुभूति निराले

१- विरहमंजरी, पंक्ति १४६

२- वही, पृ० १६४ ।

३- वही, पृ० १६२-६४ ।

४- वही, पृ० १६५-७१ ।

५- वही, पृ० [illegible] ।

ही प्रेम को प्रकट करती है जो केवल अनुभूति गम्य है, वाणी या बुद्धि गम्य नहीं और ब्रज बाला को यह अनुभूति सूर्योदय से पूर्व बेला में कुछ ही समय तक होती है। कदाचित् यह बेला एक घड़ी की ही रही हो, जैसा कि कवि का कथन है।

इहि विधि घड़ि इक रही चटपटी, जान प्रेम की निपट अटपटी ।।[1]

इतने में उसे व्रजलीला का स्मरण हो आता है और उसे अनुभव होने लगता है कि श्रीकृष्ण तो उसके निकट ही हैं। और होते ही उसे श्रीकृष्ण का संसर्ग प्राप्त होता है और इस प्रकार महा विरह की दुखानुभूति से उसे मुक्ति मिल जाती है। अन्त में कवि कहता है कि विरह मंजरी नित्य प्रेम रस से भरी हुई है और इसका श्रवण और वर्णन करने से सिद्धान्त तत्व की प्राप्ति होती है।[2]

४३ स्मृति में ही महाविरहानुभूति जन्य दुख के संदेश के रूप में बारह मासा का इस प्रकार का वर्णन अन्यत्र नहीं मिलता है, अत: यह नन्ददास की कल्पना से ही स्वतन्त्र रूप में उद्भूत हुआ जान पड़ता है।

४४ उल्लेखनीय है कि यहाँ जो बारहमासा विरह वर्णित है, वह देशान्तर विरह के अन्तर्गत है जिसका वर्णन कवि ने रसिक जनों के प्रमोद के लिए किया है।[3] इस वर्णन में रूप मंजरी ग्रन्थ के षट्ऋतु वर्णन का प्रभूत प्रभाव दिखाई देता है; अनेक कथनों को कवि ने रूपमंजरी से ज्यों का त्यों विरह मंजरी में ले लिया है।[4] यही नहीं जिस तत्व का उल्लेख रस मंजरी से[5] रूप मंजरी में आया था,[6] वही तत्व विरह मंजरी में आकर पूर्णता को प्राप्त होता है। विरह मंजरी में यह तत्व "सिद्धान्त तत्व" के नाम से अभिहित किया गया है; जिस तत्व के द्वारा भगवान का सान्निध्य सुलभ होता है, कवि की दृष्टि में, वही सिद्धान्त तत्व प्रतीत होता है। इसीलिए व्रज बाला का श्रीकृष्ण से संयोग कराने के उपरान्त कवि कहता है :

जो इह सुनै गुनै हित लावै। सो सिद्धान्त तत्व को पावै ।।[7]

१,२- नं० ग्रं०, पृ० १०२। ३- वही, पृ० १६३।
४- [illegible] का षट्ऋतु वर्णन और विरह मंजरी का बारहमासा वर्णन, नं० ग्रं०, पृ० १३२-८२ और १६४-७०।
५- नं० ग्रं०, पृ० [illegible]। ६- वही, पृ० १२०।
७- वही, पृ० १०२।

४५ वस्तुत: विरह मंजरी के अवलोकन से विदित होता है कि उसमें कवि ने अपने प्रेम के सिद्धान्त का प्रतिपादन करने का प्रयास किया है। नन्ददास रसिक भक्त हैं और प्रेम द्वारा ही भगवान के नैकट्य की अनुभूति प्राप्त करने की ओर ही उनकी अनुरक्ति है। विरह द्वारा प्रेम की वृद्धि होती है और विरहाग्नि से प्रेम शुद्ध और निर्मल होता है। इसीलिए विरह मंजरी में भेद और उदाहरण सहित विरह पर ही प्रकाश डाला गया है। कवि द्वारा निर्दिष्ट विरह के उक्त चार प्रकारों में देशान्तर विरह वास्तविक विरह है। कवि ने जो बारह मासा विरह वर्णन किया है, वह देशान्तर विरह का ही उदाहरण प्रतीत होता है। विरह की अवस्था की दृष्टि से यद्यपि देशान्तर विरह वास्तविक विरह है तथापि कवि ने जिस देशान्तर विरह का वर्णन किया है वह [illegible] न होकर काल्पनिक ही है, जो कवि के निम्न कथन से प्रकट है :

> बहुर्यो ब्रज लीला सुधि आई। जामें नित्य किसोर कन्हाई ।।
> सपने कोउ दुख पावत जैसे। जागि परें सुख पावत तैसे ।।[१]

ब्रज में श्रीकृष्ण-विरह केवल उक्त प्रकार से विरह-साधना द्वारा भावना में ही सम्भव है, अत: उसकी अनुभूति का कृष्ण प्रेमानुरक्त कवि को अन्य कोई विकल्प ही नहीं मिला :

> अवर भाँति ब्रज को विरह, बनै न क्यों हू नंद।
> जिनके मित्र विचित्र हरि, पूरन परमानंद ।।[२]

४६ इस रचना में ब्रज बाला के श्रीकृष्ण-विरह की झलक तो मिलती ही है, साथ ही ऐसे स्थलों की भी कमी नहीं है जो कवि की भगवत्प्रेम विषयक स्वानुभूति के द्योतक हैं। कवि कहता है कि भूतावेश होने, मदिरा का प्रभाव होने आदि के उपरा भी सुधि रह सकती है किन्तु जिसने भगवत्प्रेमामृत-रस का पान किया है उसे कोई सुधि नहीं रहती है।[३] रहे भी कैसे, भक्त के तो चक्षु, श्रवण और वाणी सहित [illegible] [illegible] के ही पास रहता है और "फिर आवन की आस" से जीवित रहने मात्र

---

१. [illegible] ।
२. [illegible] ।

के लिए "तनक प्राण" शरीर में रहते हैं।[1] ब्रज के प्रेम विरह को भुक्त भोगी ही समझ सकता है तथा अन्य चाहे जितने ही ज्ञानी हों उसे नहीं समझ सकते, वरन् उसमें उलझते ही जाते हैं[2]।

५७ कवि पुनः कहता है कि मित्र, मित्र के अवगुणों की ओर उसी प्रकार ध्यान नहीं देता है जिस प्रकार "केतकि रस बस" मधुप उसके कष्ट प्रद कांटों की परवाह नहीं करता है।[3] इसके अतिरिक्त, मित्र को अपने मित्र के अवगुणों को किसी से नहीं कहना चाहिए और अपने ही हृदय में इस प्रकार रखना चाहिए जैसे कुंआ अपनी छाया को अपने ही भीतर रखता है।[4] फिर, स्थल पर की आग पानी से बुझाई जा सकती है किन्तु यदि पानी में ही आग लग जाय तो बुझाने का कोई उपाय ही कवि को नहीं सूझता है। उसका तात्पर्य है कि यदि लौकिक प्रेम जन्य विरह ताप हो तो अलौकिक श्रीकृष्ण-प्रेम द्वारा उसे शान्त किया जा सकता है किन्तु श्रीकृष्ण के ही विरह की आग फैल गई हो तो वह उनके संयोग-जल द्वारा ही बुझ सकती है, अन्य उपाय द्वारा नहीं।[5]

५८ उपर्युक्त विश्लेषण और विवेचन को दृष्टिगत रखते हुए कहा जा सकता है कि कवि ने एक गोपी के श्रीकृष्ण-विरह का वर्णन किया है। इसके लिए उसने देशान्तर विरहान्तर्गत बारह मासा विरह वर्णन का आश्रय लिया है। जैसा कि ऊपर कहा गया है, गोपी का विरह वास्तविक विरह नहीं था प्रत्युत भावात्मक था। यह विरह वर्णन नन्ददास की भक्ति भावना के ही अनुकूल हुआ है। भगवदर्शन हेतु भक्त के हृदय में विशुद्ध प्रेम होना आवश्यक है और विशुद्ध प्रेम-प्राप्त्यर्थ विरहावस्था ही प्रधान साधन है। इस साधन में विह्वलता इतनी बढ़ जाती है कि भक्त को प्रभु के अतिरिक्त अन्य किसी की सुधि ही नहीं रह जाती है। तभी भगवान् की कृपा द्वारा उनका नैकट्य सुलभ होता है। अतः भक्त के लिए उक्त विरह वास्तविक ही है। इस प्रकार नन्ददास ने अपने सिद्धान्त तत्व का प्रतिपादन किया है। यही उनका अभीष्ट था। इसके साथ ही विरह मंजरी में विरह के चार भेद बताये गये हैं जो रीतिशास्त्र के परम्परागत भेदों से भिन्न हैं और कवि की स्वतन्त्र

१- [illegible] पृ०, पृ० १६[illegible]।

२- वही, पृ० १६१।

३- वही, पृ० [illegible]।

४- वही, पृ० १७०।

सूझ की उपज जान पड़ते हैं। कवि ने बीच बीच में भगवत्प्रेम विषयक अपनी अनुभूतियों को पिरो कर विरह के प्रभाव को अधिक व्यापक बनाने की चेष्टा की है।

रुक्मिणी मंगल

५८ रचना के आरम्भ में वन्दना के उपरान्त कवि ग्रन्थ के माहात्म्य की ओर संकेत करता है। तदनन्तर रुक्मिणी हरण की कथा आरम्भ होती है। रुक्मिणी, शिशुपाल से विवाह किये जाने की बात सुनते ही अत्यन्त दुखी होती है। वह मन में सोचती है कि गोपियों की भांति लोक लाज का त्याग करके, माता, पिता, भाई-बन्धु आदि सम्बन्धियों की परवाह किये बिना जिस प्रकार भी श्रीकृष्ण प्राप्त हों, वह उपाय किया जाय। वह श्रीकृष्ण के लिए एक पत्र लिखती है और एक ब्राह्मण के हाथ उस पत्र को श्रीकृष्ण के पास भेजती है। ब्राह्मण शीघ्रतापूर्वक द्वारका पहुंचता है और श्रीकृष्ण के वैभव को देख कर उसे अत्यन्त सुख का अनुभव होता है। इस स्थल पर कवि ने द्वारिका के ऐश्वर्य और श्रीकृष्ण की महिमा का रुचिर चित्रण प्रस्तुत किया है।[१]

ब्राह्मण को देखते ही श्रीकृष्ण उसकी पद वन्दना करते हैं और यथोचित सम्मान देने के उपरान्त उससे पूछते हैं: "कहिए, कहां से आये?" इस पर ब्राह्मण रुक्मिणी का पत्र उन्हें दे देता है। पत्र में अंकित प्रेम रस से सने हुए अक्षर श्रीकृष्ण से पहले तो वैसे ही नहीं पढ़े जा सकते, फिर आंखों में प्रेमाश्रुओं के भर जाने से पढ़ना और भी कठिन हो जाता है। तब ब्राह्मण पत्र पढ़ कर सुनाता है। पत्र में प्रमुख सन्देश यह था कि वे शिशुपाल के फन्दों से उसे मुक्त करके शीघ्र ले जायें, अन्यथा वह तिनके के समान अग्नि में भस्म हो जायेगी। पत्र सुनते ही श्रीकृष्ण शीघ्र कुण्डनपुर जा पहुंचते हैं। इधर रुक्मिणी उनके विरह में थोड़े जल में मछली की भांति तड़पती है। तभी उसकी बाईं भुजा फड़कती है। इतने में ही ब्राह्मण लौट आता है और श्रीकृष्ण के आने का समाचार देता है, रुक्मिणी के शरीर में जैसे इससे पुनः प्राणों का संचार हो जाता है।[२]

१- [illegible] । २- वही, पृ० २०१-२०७ ।

उनके पांच पुत्र और एक पुत्री रुक्मिणी थी । सबसे बड़ा पुत्र रुक्मी था । वह श्रीकृष्ण से द्वेष भाव रखता था । इसीलिए उसने उनके साथ होने वाले रुक्मिणी के विवाह को रोक दिया और शिशुपाल को अपनी बहिन के योग्य वर समझा ।[1]

रुक्मिणी को जब ज्ञात होता है कि उसका विवाह शिशुपाल के साथ किया जा रहा है, तो वह बहुत दुःखी होती है । वह सोच विचार कर एक विश्वास पात्र ब्राह्मण को कृष्ण के पास भेजती है । ब्राह्मण शीघ्र ही द्वारकापुरी में श्रीकृष्ण के पास पहुंचता है । आदर-सत्कार, कुशल-प्रश्न के अनन्तर कृष्ण ब्राह्मण से उसके आने का कारण पूछते हैं । उत्तर में ब्राह्मण रुक्मिणी का सन्देश सुनाते हुए कहता है : "रुक्मिणी ने कहा है कि आपके गुणों को सुनकर तथा रूप सौन्दर्य को जान कर मेरा चित्त लज्जा से रहित होकर आप में ही प्रवेश कर रहा है और मैंने आपको पति रूप में वरण कर लिया है । इसलिए आप आकर मुझे पत्नीरूप में बरबस-कर स्वीकार कीजिए । मुझे लेने के लिए आपको अन्तःपुर में नहीं आना पड़ेगा । कुलदेवी के दर्शन करते समय आप मुझे बाहर से ही लपना लें । यदि मैं आपके चरण रज को न पा सकी तो व्रत द्वारा शरीर को सुखा कर प्राण छोड़ दूंगी ।[2] यह सुनते ही श्रीकृष्ण ब्राह्मण से कहते हैं कि वे नामधारी कुल-कलंकों को तहस नहस करके रुक्मिणी को अवश्य लायेंगे ।[3]

जब श्रीकृष्ण यह जानते हैं कि रुक्मिणी के विवाह की लग्न परसों है तो वे ब्राह्मण सहित रथ द्वारा कुंडिनपुर आ पहुंचते हैं । इधर रुक्मिणी के बायें अंग फड़कने लगते हैं । इतने में ही श्रीकृष्ण के भेजे हुए ब्राह्मण देवता आ पहुंचते हैं । उनके मुख से श्रीकृष्ण का समाचार पाकर रुक्मिणी आनन्दातिरेक से भर जाती है । विवाहोत्सव में सम्मिलित होने के लिए बलराम के साथ उनके आने के समाचार को पाकर राजा भीष्मक बाजों के साथ उनकी अगवानी करते हैं और विधिपूर्वक उनकी पूजा करते हैं । विदर्भ देश के [illegible] भी [illegible] के आगमन की सूचना पाते ही उनके निवास स्थान पर आते हैं और उनकी शोभा को निहार कर परम प्रसन्न होते हैं । वे कहते हैं कि वे ही रुक्मिणी के योग्य पति हैं । इतने में ही रुक्मिणी

१- [illegible] ५२, श्लोक २१-२५ ।

२- वही, श्लोक ३७-४३ ।   ३- वही, अध्याय ५३, श्लोक १-३ ।

अन्तःपुर से निकल कर देवी जी के मन्दिर की ओर चलती है। देवी के समक्ष जाकर रुक्मिणी श्रीकृष्ण को पति रूप में प्राप्त करने के लिए आशीर्वाद देने की प्रार्थना करती है। तब वह पूजा-अर्चना की विधि समाप्त हो जाने पर मन्दिर से बाहर निकलती है और रथ पर चढ़ना ही चाहती है कि श्रीकृष्ण समस्त शत्रुओं के देखते देखते ही रुक्मिणी को उठा कर अपने रथ पर बिठा लेते हैं तथा बलराम जी आदि यदुवंशियों के साथ वहाँ से चल पड़ते हैं। इस पर जरासन्ध के वशवर्ती सभी राजा आग बबूला हो उठते हैं[१] और कवच धारण करके यदुवंशी सेनापतियों से भिड़ जाते हैं। श्रीकृष्ण उनकी सेना को सहज ही तहस नहस कर देते हैं। इधर शिशुपाल भावी पत्नी के छिन जाने पर मरणासन्न सा हो जाता है, जरासन्ध उसे प्रारब्ध वश सब कुछ होने का उपदेश देता है।[२]

इसी समय रुक्मी कवच पहन कर सबके सम्मुख श्रीकृष्ण को मार कर रुक्मिणी को वापस लाने की प्रतिज्ञा करता है और एक बड़ी सेना लेकर श्रीकृष्ण का पीछा करता है। कृष्ण उसके अस्त्र शस्त्रों को प्रहार करने से पूर्व ही काट देते हैं। इस पर रुक्मी हाथ में तलवार लेकर ही उन्हें मार डालने की इच्छा से इस प्रकार झपटता है जैसे पतंगा आग पर। कृष्ण उसकी तलवार भी काट देते हैं और उसे मारने के लिए ज्योंही तीर की तलवार निकालते हैं, रुक्मिणी करुणापूर्ण होकर कहती है कि उसके भाई को मारना उनके योग्य कार्य नहीं है। तब श्रीकृष्ण उसे मारते नहीं हैं; उसकी दाढ़ी-मूंछ आदि मुड़ा, उसी के दुपट्टे से बांध देते हैं। उसकी दशा देखकर बलराम जी का हृदय दया से भर जाता है और वे उसका बन्धन खोल देते हैं। पश्चात्, श्रीकृष्ण रुक्मिणी को द्वारका ले जाते हैं और उससे विधि पूर्वक विवाह कर लेते हैं।[३]

५१- इस प्रकार रुक्मिणी मंगल की कथावस्तु और भागवत् के उक्त अध्यायों के कथा-प्रसंगों के [illegible] से ज्ञात होता है कि कवि ने भागवत के कथासूत्रों को तो संक्षेप में लिया ही है, उसकी अनेक उक्तियों को भी ज्यों का त्यों अपने मंगल में स्थान दिया

१- दशम स्कन्ध, अध्याय ५३, श्लोक ५-५७ ।

२- वही, [illegible] ५३, श्लोक १-२० ।

३- वही, [illegible]

है। यथा :

(१) रुक्मिणी का संदेश पाकर श्रीकृष्ण ब्राह्मण से कहते हैं :

तामानयिष्य उन्मथ्य राजन्यापसदान् मृधे ।
मत्परामनवद्यांगीं एधसोऽग्निशिखामिव ।।
- दशमस्कन्ध, अध्याय ५३, श्लोक ३ ।

हो द्विजवर सब दलिमलि ल्याऊं ऐसे ।
दारु मथन कर सार अगिनि को काढ़त जैसे ।।
- रुक्मिणी मंगल, छन्द ७४ ।

(२) श्रीकृष्ण के आने से पूर्व रुक्मिणी के बायें अंग फड़कते हैं :

एवं वध्वा: प्रतीक्षन्त्या गोविन्दागमनं नृप ।
वाम ऊरुर्भुजो नेत्रमस्फुरन् प्रिय भाषिण: ।।
- दशमस्कन्ध, अध्याय ५३, श्लोक २७ ।

फरकन लागी भुजा वाम, कंचुकि बंध तरकन ।
हिय तें सूल लग्यौ सरकन उर अंतरधरकन ।।
- रुक्मिणी मंगल, छन्द ७८ ।

(३) कृष्ण के पास से ब्राह्मण के लौटने का उल्लेख इस प्रकार है :

अथ कृष्ण [illegible]: स एवाहित सत्तम:
अन्त:पुर चरीं देवीं राजपुत्रीं ददर्श ह ।।
- दशमस्कन्ध, अध्याय ५३, श्लोक २८ ।

[illegible] द्विज बर चल्यौ चल्यौ अन्त:पुर आयौ ।
[illegible] बड़ भागी देखि कछु मन धीरज पायौ ।।
- रुक्मिणी मंगल, छन्द ७९ ।

इसी प्रकार श्रीकृष्ण का रुक्मिणी के योग्य नायक होने, रुक्मिणी द्वारा [illegible] [illegible] [illegible] की ओर [illegible] बलदेव द्वारा शत्रु सेना की रौंद

इससे स्पष्ट होता है कि रुक्मिणी मंगल की कथा वस्तु के आधार सूत्र भागवत दशमस्कन्ध के उक्त अध्यायों से ही ग्रहण किये गये हैं।

५२ यह दृष्टव्य है कि रुक्मिणी मंगल के आरम्भ में गुरु चरणों और कृष्ण कृपा की महिमा तथा ग्रन्थ के प्रारम्भ और अन्त में रुक्मिणी हरण के माहात्म्य का उल्लेख कवि ने अपनी स्वतन्त्र प्रवृत्ति के अनुसार किया है।

५३ भागवत में शिशुपाल के साथ विवाह की बात जानने पर रुक्मिणी द्वारा ब्राह्मण के हाथ श्रीकृष्ण के पास तुरन्त सन्देश भेजने का उल्लेख एक ही श्लोक में आ जाता है।[1] किन्तु रुक्मिणी मंगल में, रुक्मिणी की इच्छा के विरुद्ध विवाह की सूचना के प्रसंग के अवसर का पूरा लाभ उठाया गया है। उसमें उक्त एक ही श्लोक की सीमाओं के अन्दर रुक्मिणी की आन्तरिक और बाह्य दशा का मार्मिक चित्रण और पत्र की योजना के लिए २१ छन्दों का [illegible] किया गया है[2] जिनमें नवीन नवीन उद्भावनाओं का समावेश करके प्रसंग को नितान्त नवीन रूप में रखने का प्रयत्न झलकता है।

५४ भागवत में रुक्मिणी अपना सन्देश ब्राह्मण के समक्ष प्रकट कर, श्रीकृष्ण के पास भेजती है।[3] इस प्रसंग में नन्ददास ने कदाचित् यह अनुभव किया कि प्रियतम के विषय में रुक्मिणी के उद्गार गोपनीय ही रहने चाहिए। श्रीकृष्ण के लिए रुक्मिणी ने यद्यपि लोकलाज का परित्याग कर दिया था तथापि इस रहस्य को स्त्रियोचित लज्जा के कारण किसी भी व्यक्ति के सम्मुख वह प्रकट नहीं कर सकती थी। किन्तु सन्देश तो श्रीकृष्ण तक पहुँचाना ही था। इसके लिए कवि ने "पाती" का आयोजन करके प्रतिभापूर्ण विकल्प प्रस्तुत किया है। रुक्मिणी अपने हृदय के उद्गारों को पत्र में अंकित करके ब्राह्मण को यह कह कर देती है कि वह उसे श्रीकृष्ण के पास जाकर उनके ही हाथ में दे दे और किसी अन्य व्यक्ति पर विश्वास न करे।[4] कवि की पत्र [illegible] में यह विशेषता है कि जहाँ पत्र द्वारा रुक्मिणी की स्त्री सुलभ लज्जा की रक्षा हुई है, वहीं प्रेमाश्रुओं से सने होने के कारण उसी पत्र द्वारा

१- दशमस्कन्ध, अध्याय ५२, श्लोक २६। २- न० ग्रं०, पृ० २००-२०२ (छन्द ३-२०)

३- दशमस्कन्ध, अध्याय ५२, श्लोक २६। ४- न० ग्रं०, पृ० २०२।

श्रीकृष्ण को रुक्मिणी के परम प्रेम का वह अनुभव हुआ[1] जो अन्य प्रकार से सम्भव न होता। रुक्मिणी हरण के प्रसंग में सूरदास ने भी पत्र की योजना की है।[2] सम्भव है कवि को सूरदास से ही पत्र के समावेश की प्रेरणा मिली हो।

५५ भागवत् में सन्देश लेकर श्रीकृष्ण के पास ब्राह्मण के पहुंचने का उल्लेख भी एक ही श्लोक में मिलता है[3] और उसमें ब्राह्मण की तत्परता एवं द्वारका का किंचित भी वर्णन नहीं है। किन्तु नन्ददास ने सन्देश के प्रति ब्राह्मण की तत्परता, द्वारका पुरी के सौन्दर्य और श्रीकृष्ण के ऐश्वर्य का विशद वर्णन प्रस्तुत किया है।[4] कवि ने श्रीकृष्ण की प्रतीक्षा करती हुई रुक्मिणी की मनोदशा और क्रियाकलाप को थोड़े शब्दों में बड़े प्रभाव पूर्ण ढंग से चित्रित किया है; जब कि उसे प्रखर तेज के नीचे अल्प-थोड़े जल में तड़पने वाली मछली के समान कहा है और अट्टालिका तथा झरोखों से झांकने का उल्लेख करके उसके औत्सुक्य को सजीव बनाने का यत्न किया।[5]

कुण्डिनपुर के नागरिकों द्वारा श्रीकृष्ण के रूप सौन्दर्य और गुणों के वर्णन का भी कवि ने विस्तार में उल्लेख किया है,[6] जब कि भागवत् में केवल तीन श्लोकों में इस प्रसंग को समाप्त कर दिया गया है।[7] इससे कवि की रूपासक्ति का परिचय मिलता है।

भागवत की देवी अम्बिका रुक्मिणी को अपने मुख से आशीर्वाद नहीं देती है वरन् ब्राह्मणियां उसे आशीर्वाद देती हैं।[8] कवि ने देवी द्वारा आशीर्वचन कहने का उल्लेख करके प्रसंग[9] को अधिक सजीव एवं स्पष्ट कर दिया है।

५६ भागवत् में रुक्मिणी श्रीकृष्ण को भेजे गये अपने सन्देश में यह भी बता देती है कि उसे लेने के लिए उन्हें अन्तःपुर में नहीं आना पड़ेगा, वह उन्हें देवी की पूजा

१- न० ग्रं०, पृ० २०५ । २- सूरसागर, पद ४७८५ ।

३- दशमस्कन्ध, अध्याय ५२, श्लोक ३० । ४- न० ग्रं०, पृ० २०२-४ ।

५- वही, पृ० २०६-७ । ६- वही, पृ० २०७-८ ।

७- दशमस्कन्ध, अध्याय ५३, श्लोक १६-१८ । ८- वही, श्लोक ५१ ।

९- न० ग्रं०, पृ० २०८ ।

के उपरान्त बाहर ही मिल जायेगी ।[1] नन्ददास ने यह उल्लेख छोड़ दिया है क्योंकि ~~क~~ उनके कृष्ण उद्धारक ही नहीं नायक भी हैं ।[2] और नायिका के प्रति स्वयं प्रयत्न करने के लिए तत्पर हैं । कवि के इस प्रयास से काव्य के सौन्दर्य में तो वृद्धि हुई ही, श्रीकृष्ण के उद्धार-कार्य का महत्त्व भी बढ़ गया ।

श्रीकृष्ण द्वारा रुक्मिणी का हरण कर लिए जाने पर जरासन्ध, रुक्मी आदि और यदुवंशियों के बीच भीषण युद्धों के वर्णनों को भी कवि ने नहीं अपनाया है । क्योंकि अस्त्र शस्त्रों की खड़खड़ाहट से काव्य में वह माधुर्य न आता जिसका कवि उपासक है, फिर कवि ने कदाचित् यह नहीं चाहा कि श्रीकृष्ण का नृशंस रूप, जो केवल युद्ध में ही प्रकट होता है, उसके काव्य में स्थान पाये ।

भागवत में श्रीकृष्ण ने जो रुक्मी को निस्सहाय करके उसे मारने के लिए तीखी तलवार निकाली, उसके लिए उनको रुक्मिणी के विरोध का सामना करना पड़ा ।[3] रुक्मिणी मंगल में इस प्रसंग को बड़ी कुशलता से सम्पन्न करके कवि ने यह जतलाया है कि वह ऐसी परिस्थितियां नहीं लाना चाहता जिनसे उसके आराध्य देव के महत्त्व को किसी प्रकार की आंच आये अथवा उनके शील का किसी प्रकार से विरोध हो ।

५.७ इस प्रकार प्रकट है कि कवि ने मूल आधार, दशमस्कन्ध से लेते हुए भी ग्रन्थ में कवि-सुलभ कल्पना के सहारे अनेक मौलिकताओं का समावेश किया है । सर्वप्रथम, उसने भागवत के अंशों को भाषा में ज्यों का त्यों इस प्रकार संजोया है कि वे भागवत ~~के-अंशों-को-भाव~~ की अनुकृति होने पर भी, [illegible] की सी झलक देते हैं । कुण्डिनपुर के नागरिकों द्वारा श्रीकृष्ण को रुक्मिणी के योग्य पति रूप के में देखने, कृष्ण द्वारा शत्रुओं को तहस नहस करके रुक्मिणी के लाने आदि के प्रसंगों के उल्लेख इसके उदाहरण हैं । द्वितीय, ~~द~~ भागवत के अत्यन्त [illegible] प्रसंगों का रोचक शैली में विस्तार में वर्णन किया है । यथा; शिशुपाल से विवाह होने की सूचना पर रुक्मिणी की [illegible] और उसके [illegible] ब्राह्मण द्वारा द्वारका पहुंचने पर पुरी तथा श्रीकृष्ण

1- श्रीमद्भागवत, [illegible] ५३, श्लोक ११ । 2- नं० ग्रं०, पृ० २०८ ।

3- श्रीमद्भागवत, अध्याय ५४, श्लोक ३२-३३ और ३५ ।

के वैभव का चित्रण, 'पाती-पीना', देवी द्वारा रुक्मिणी को आशीर्वाद दिये जाने का आदि के उल्लेख जिनसे कवि की मौलिक सूझ का सहज परिचय मिलता है, उल्लेखनीय हैं। तृतीय, श्रीकृष्ण द्वारा ब्राह्मण को दिये गये उपदेश, रुक्मिणी द्वारा अन्तःपुर में प्रवेश किए बिना ही अपने हरण की युक्ति बता देने आदि के भागवत के उल्लेखों को अपने काव्य से विलग रखने के प्रयास द्वारा कवि ने काव्य-सौष्ठव की रक्षा की है। इसके अतिरिक्त, कवि ने भागवत के अनेक प्रसंगों को अपने मंगल में स्थान नहीं दिया क्योंकि वे एक तो श्रीकृष्ण के महत्त्व और शील के प्रतिकूल होते और दूसरे कवि के माधुर्य भाव के निर्वाह में बाधक होते। इस प्रकार के प्रसंगों के अन्तर्गत जरासन्ध, रुक्मी आदि राजाओं के साथ श्रीकृष्ण का घोर संग्राम होने, श्रीकृष्ण द्वारा रुक्मी को मार डालने के लिए तीखी तलवार निकालने और रुक्मिणी द्वारा भयभीत होकर उसके भाई का वध करना उनके योग्य कर्म न होने की बात कहने के उल्लेख प्रमुख हैं।

रास पंचाध्यायी

५८ जैसा कि नाम से ही प्रकट है, रास पंचाध्यायी में पांच [illegible] में रास-कथा वर्णित है। सर्वप्रथम, पहले अध्याय में कवि ने शुकदेव जी की वन्दना की है और उनका नख शिख वर्णन किया है। कवि का कहना है कि शुकदेव जी हरि की लीलाओं में लीन होकर आनन्द संसार में विचरण करते हैं। वे महान ज्ञानवान और भक्त हैं तथा उनके दर्शन मात्र से काम क्रोधादि सांसारिक दुर्गुण नष्ट हो जाते हैं। वे गंगा जैसी पवित्र नदियों को भी पवित्र करते हुए पृथ्वी पर विचरण करते हैं। इसके उपरान्त कवि का कथन है कि वह भागवत की पंचाध्यायी को एक मित्र की आज्ञा से भाषा में लिखता है।[१] भागवत में दशमस्कन्ध के २९ से ३३ तक के अध्यायों में रासलीला वर्णित है। 'पंचाध्यायी' कहने से कवि का प्रयोजन इन्हीं अध्यायों से होना ज्ञात होता है। अतः कहा जा सकता है कि रास पंचाध्यायी की रचना का आधार भागवत के उक्त पांच अध्याय ही हैं। किन्तु जैसा कि नीचे प्रकट होगा, कहीं कहीं अन्य-ग्रन्थों का भी सहारा लिया गया है।

५६ श्री मद्भागवत में शुकदेव जी का वर्णन प्रथम स्कन्ध के उन्नीसवें अध्याय में दिया गया है[1] और कवि के द्वारा उक्त वर्णन इसी अध्याय के आधार पर लिखा गया जान पड़ता है। यहाँ कवि ने एक ओर जम्बु, कंठ, जानु, नाभि आदि अंगों का वर्णन भागवत के समान ही किया है, दूसरी ओर बच्चों और स्त्रियों से घिरे होने, बाह्य वेष, वर्ण अथवा आश्रम के बाह्य चिह्नों से रहित होने आदि के उल्लेखों को अनावश्यक समझ कर छोड़ दिया है क्योंकि भागवत में इस प्रकार के उल्लेख शुकदेव जी का परिचय देने के लिए दिये गये जान पड़ते हैं, और नन्ददास को उनका नख शिख वर्णन करना ही अभीष्ट है। इसके साथ ही कवि ने नवीन उत्प्रेक्षाओं का समावेश करके प्रसंग को रुचिर बनाने का प्रयास किया है। घुंघराले केश उनके मुख पर ऐसे शोभित हैं मानों कमल पर भौंरों की पंक्ति हो, उनके मस्तक की कांति ऐसी है मानों अनेक चन्द्रमाओं का सम्मिलित प्रकाश हो, उनके लाल नेत्र करुणा से इस प्रकार पूर्ण हैं मानों श्रीकृष्ण के प्रेम मद का पान किए हुए हों[2], आदि। तदनन्तर कवि ने श्री वृन्दावन वैभव, श्रीकृष्ण की शोभा, शरद रजनी, मुरली, ब्रज बालाओं की विरह दशा, राजा परीक्षित का प्रश्न और शुकदेव जी द्वारा उसका समाधान, कृष्ण गोपी मिलन, वन विहार, मदन-मद-हरण तथा गोपीजनों के वर्णनों को पहले अध्याय में ही प्रस्तुत किया है जिसका आधार दशम स्कन्ध का २९ वाँ अध्याय ज्ञात होता है।

६० वृन्दावन की शोभा को अवर्णनीय बताते हुए कवि कहता है कि उसने श्रीकृष्ण की लीला के रसास्वादन से मुग्ध होकर जड़ता धारण कर ली है। वहाँ सभी जीव-जन्तु काम, क्रोध, मद, लोभादि से रहित होकर प्रेम पूर्वक रहते हैं, प्रकृति के सभी जड़-चेतन अंगों सहित उन पर काल और गुणों का प्रभाव नहीं होता है। वहाँ सदा वसन्त ऋतु रहती है और वह वनों में उसी प्रकार श्रेष्ठ है जिस प्रकार [illegible] में विष्णु। उस वन में सभी वृक्ष, कल्पवृक्ष के समान मनोवांछित फल देने वाले हैं, भूमि चिन्तामणि के समान है और श्रीकृष्ण का श्रम दूर करने के लिए अमृत की फुहारें पड़ती रहती हैं। वहाँ सोलह दलों वाले कमल के मध्य भाग में [illegible] सुन्दर ब्रजेश की छाया में [illegible] शोभित रहते हैं।[3]

१- भागवत, प्रथम स्कन्ध, अध्याय १९, श्लोक २५, २६ और २८।
२- [illegible], पृ० [illegible]। ३- वही, पृ० ३-६।

दशम स्कन्ध के २६ वें अध्याय में वृन्दावन के विषय में केवल इतना ही उल्लेख है कि उस वन में भगवान् श्रीकृष्ण के दिव्य उज्ज्वल रस के उद्दीपन की पूरी सामग्री थी ।[1] दशम स्कन्ध के ११ वें अध्याय में वृन्दावन का परिचय देते हुए कहा गया है कि वृन्दावन एक वन है, उसमें छोटे छोटे और नये नये वन हैं ।[2] वह बड़ा ही सुन्दर वन है । वहाँ की प्रत्येक ऋतु सुख प्रद होती है ।[3] उसी स्कन्ध के १५ वें अध्याय में भी वृन्दावन विषय वर्णन है । इस वर्णन में उल्लेखनीय बात यह कही गई है कि वन अत्यन्त मनोहर था और उसे देख कर भगवान् ने मन ही मन उसमें विहार करने का संकल्प किया ।[4]

इस पर भी कवि ने वृन्दावन के जिस मनोहर चित्र को रास पंचाध्यायी में रक्खा है, उसकी मूल प्रेरणा उसे दशम स्कन्ध के २६ वें अध्याय के उसी कथन से प्राप्त हुई है जिसमें कहा गया है कि वहाँ श्रीकृष्ण के दिव्य रस के उद्दीपन की पूर्ण सामग्री विद्यमान थी । इसी पूर्ण सामग्री को प्रकाश में लाने के लिए कवि ने ११ वें और १५ वें अध्यायों में प्राप्त उक्त सूत्रों को तो ग्रहण किया ही, अपनी उर्वरा कल्पना और अनोखी सूझ के रंगों से उनको इस प्रकार रंग दिया कि चित्र की शोभा जैसा कि ऊपर प्रकट है अनुपमेयता की सीमा को छूती हुई प्रतीत होती है ।

६१ इसी प्रकार श्रीकृष्ण की महिमा और शोभा का चित्रण कवि की स्वतन्त्र प्रवृत्ति का परिचायक है । दशम स्कन्ध के २६ वें अध्याय के इस प्रसंग में श्रीकृष्ण की शोभा विषयक कोई उल्लेख नहीं है किन्तु कवि ने इसका समावेश करके [illegible] के भीतर श्रीकृष्ण के ईश्वरत्व और उनकी सहज लावण्यता को प्रकट करते हुए कहा है कि परमात्मा, परब्रह्म, नारायण, भगवान, श्रीकृष्ण अन्तर्यामी, धर्मस्वरूप और सबके स्वामी हैं । उनके वक्षस्थल में अत्यन्त कान्तिमान कौस्तुभ मणि सुशोभित है, उनके अद्भुत रूप की आभा सारे संसार में व्याप्त है, उनके शरीर में बाल, कुमार और पौगण्ड अवस्थायें साथ साथ प्रकट हैं और उनकी अनन्त सौन्दर्यशालिनी छवि का वर्णन नहीं किया जा सकता है । ऐसे सुन्दर [illegible] जिस वृन्दावन में रहते हैं उसके आगे परम धाम वैकुण्ठ का भी ऐश्वर्य तुच्छ लगता है ।[5]

१- [illegible] अ० २६, श्लोक १ । २- वही, अ० ११, श्लोक २८ ।
३- वही, श्लोक ३६ ४- वही, अ० १५, श्लोक ३ ।
५- [illegible]

६२ शरद रजनी का वर्णन करते हुए कवि लिखता है कि शरद ऋतु के आगमन पर वृन्दावन की शोभा वैसे ही बढ़ जाती है जैसे बहुमूल्य नग तथा रूप गुण युक्त शरीर की शोभा सुन्दर जड़ाऊ आभूषण जड़ दिये जाने पर बढ़ जाती है। शरद रात्रि में फूले हुए फूलों की लुनाई ऐसी जान पड़ती है मानों शरद रात्रि ही मूर्तिमान होकर हंस रही हो। उसी क्षण रास के आनन्द को बढ़ाने वाला चन्द्रमा उदित होता है और वह ऊपर उठता हुआ ऐसा लगता है मानों श्रीकृष्ण की कौतुक पूर्ण लीला को झांक झांक कर देख रहा हो।[1]

दशम स्कन्ध के २९ वें अध्याय को देखने से प्रकट होता है कि इस अध्याय का आरम्भ ही शरद ऋतु के उल्लेख के साथ होता है और प्रथम श्लोक में शरद ऋतु की विद्यमानता तथा उसके कारण बेला चमेली आदि सुगन्धित पुष्पों के प्रफुल्लित होने की सूचना दी गई है। अगले दो श्लोकों में शरद-रजनी तथा चन्द्रोदय का वर्णन किया गया है जिसके साथ रास पंचाध्यायी के उक्त वर्णन के [illegible] से विदित होता है कि कवि ने दशमस्कन्ध के उपर्युक्त श्लोकों को आधार अवश्य माना है किन्तु सुन्दर जड़ाऊ आभूषण, गुणवती कुमारी, कामदेव द्वारा मले गये गुलाल, चन्द्र किरणों की स्फटिक मणि से समानता और उनका पत्तियों के छिद्रों से छन छन कर आने, चन्द्रमा [illegible] श्रीकृष्ण की लीलाओं को झांक झांक कर देखने आदि के उल्लेख कवि की स्वतन्त्र उद्भावनाओं के फलस्वरूप ही समाविष्ट हुए प्रतीत होते हैं।

६३ रास [illegible] में शरद की उक्त मनोहर रात्रि में श्रीकृष्ण द्वारा योग माया के समान मुरली ग्रहण किये जाने का उल्लेख किया गया है। कवि ने कहा है कि वह मुरली असम्भव को भी सम्भव करने वाली है, उसके सुर से वेद शास्त्र प्रकट हुए हैं और वह शब्द रूप ब्रह्म की जननी तथा गुणों की अपार राशि के समान है। उस मुरली से श्रीकृष्ण ऐसी ध्वनि निकालते हैं कि गोपियां मुग्ध हो जाती हैं।[2]

दशमस्कन्ध के इस प्रसंग में केवल इतना ही उल्लेख उपलब्ध होता है कि श्रीकृष्ण ने अपनी बांसुरी पर [illegible] स्त्रियों के मन को हरण करने वाली काम बीज "क्लीं" की अस्पष्ट एवं मधुर तान छेड़ी और भगवान का यह वंशी वादन उनके प्रेम

को अत्यन्त उकसाने वाला था।[१] इस प्रकार स्पष्ट है कि कवि ने भागवत के बीज मात्र आधार सूत्र को ग्रहण करके उसे अपनी स्वतन्त्र कल्पना से परिपोषित कर अंकुरितावस्था प्रदान करने की चेष्टा की है।

६४ मुरली की ध्वनि सुनते ही नन्ददास की गोपियाँ घर, कुंज आदि सभी का मोह छोड़कर ध्वनि मार्ग पर चल देती हैं। कवि कहता है कि मुरली से उत्पन्न नादरूपी अमृत रस को प्राप्त करने का मार्ग परम और अत्यन्त सूक्ष्म है और उस पर प्रेम की साक्षात प्रतिमायें गोपियां ही चलने की अधिकारिणी हैं। उनका मन कृष्ण ने हर लिया है और वे पिंजड़े से छूटे हुए पक्षियों की भाँति सब कुछ छोड़ कर सावन सरिता की भाँति कृष्ण की ओर जाती हैं। जो गोपियां विवशता से घर पर ही रह जाती हैं वे श्रीकृष्ण के वियोग का असह्य दुःख भोगने के उपरान्त उनसे मन में ही ध्यान द्वारा मिलती हैं और करोड़ों स्वर्गों के सुख का क्षण भर में अनुभव करती हैं।[२]

श्रीकृष्ण की मुरली ध्वनि पर मुग्ध गोपियों की विरह-दशा का वर्णन दशमस्कन्ध में भी दिया गया है।[३] किन्तु कवि ने इस वर्णन को ज्यों का त्यों ग्रहण नहीं किया है। उसने एक ओर मुरली ध्वनि के सुनने पर गोपियों द्वारा गृहस्थी के कार्यों को जिस अवस्था में कर रही थीं उसी अवस्था में छोड़कर कृष्ण की ओर जाने के भागवत के उल्लेखों को अपनी रचना में नहीं रखा दूसरी ओर श्रीकृष्ण के प्रसंग में पारस मणि, गोपियों का पिंजड़ों से छूटे हुए [illegible] के समान कृष्ण की ओर जाने, उनके प्रेमावेश को सावन सरिता के समान दिखाने आदि के उल्लेखों के समावेश द्वारा वर्णन में नवीनता का संचार कर दिया है और इससे गोपियों की विरह दशा का चित्र भी अधिक स्पष्ट हो पाया है।

६५ इसके उपरान्त कवि राजा परीक्षित द्वारा प्रश्न किये जाने के साथ साथ उनकी महिमा का भी वर्णन करता है। परीक्षित शुकदेव जी से पूछते हैं कि [illegible] को परब्रह्म मानकर [illegible] भाव न रखने पर गोपियां को श्रीकृष्ण कैसे प्राप्त हो गए। शुकदेव जी कहते हैं कि श्रीकृष्ण के प्रति कैसा भी भाव रखा जाय, वे उसे स्वीकार करके परम गति दी देते हैं। शत्रु भाव रखने वाले शिशुपाल को भी उन्होंने परम गति दे दी थी [illegible] की प्रीति में लीन हो रही हैं, इसीलिए अशरीर वे

कृष्ण की प्राण प्यारी बन गईं ।[1]

भागवत के इस प्रसंग में, परीक्षित की महिमा के विषय में केवल इसके कि वे परम भागवत हैं और शुकदेव जी से प्रश्न पूछते हैं,[2] कोई उल्लेख नहीं किया गया है । शुकदेव जी द्वारा प्रश्न के समाधान की वस्तु कवि ने उसी रूप में ग्रहण की है जिस रूप में वह भागवत में है ।[3]

६६ मुरली की ध्वनि पर मुग्ध गोपियों के आने पर श्रीकृष्ण भी आदर से उनका स्वागत करते हैं और प्रीति पूर्ण वचनों के उपरान्त उनसे व्यंग रूप में नारी धर्म बोधक वचन कहते हुए घर लौट जाने को कहते हैं । उन वचनों को सुनकर गोपियां चकित रह जाती हैं और प्रीतिपूर्वक कहती हैं कि धर्म, जप, तप आदि सभी सुफल प्राप्ति के लिए किए जाते हैं, धर्म आदि पाने के लिए सुफल नहीं किया जाता । आपके मोहन रूप को पा लेने पर तो कुछ पाना शेष ही नहीं रह जाता है । उनकी ऐसी वाणी सुनकर श्रीकृष्ण का मक्खन सा हृदय द्रवित हो जाता है और वे आत्माराम होते हुए भी उनकी प्रीति लीला में रमण करते हैं ।[4]

दशमस्कन्ध में यह प्रसंग विस्तार में वर्णित है । उसमें २५ श्लोकों में श्रीकृष्ण और गोपियों के इस मधुर मिलन का वर्णन किया गया है ।[5] कवि ने इसी वर्णन के आधार पर गोपी-कृष्ण-मिलन का उक्त उल्लेख दिया है किन्तु वह भागवत की अपेक्षा संक्षिप्त है । उसने श्रीकृष्ण द्वारा गोपियों से मिलने पर कुशल पूछने, रात्रि में वन की भयानक स्थिति दिखाने, उत्तम लोक की प्राप्ति के लिए पति सेवा करने, जार पुरुष के सम्पर्क से नरक प्राप्ति की बात कहने, आदि के भागवत के उल्लेखों को छोड़दिया है । कवि ने सम्भवतः इन उल्लेखों में निहित उपदेशात्मकता को दृष्टिगत रखते हुए इन्हें स्थान देना अनावश्यक समझा । इनके स्थान पर गोपियों के नूपुरों की ध्वनि सुनकर श्रीकृष्ण के नयनों का श्रवणों तक सिमिटने, उनके नयनों को शरद में टकटकी लगाते हुए दो चकोर कहने, प्रीति के बाहुल्य से प्रेम-वृद्धि होने, [illegible] के वचन सुनकर गोपियों की विस्मयपूर्ण हंसी और उनका कृष्ण की ओर तिरछी चितवन से देखने आदि के उल्लेखों को

१- ०० पु०, पृ० ६-१० ।

२- दशमस्कन्ध, अ० २६, श्लोक १२ ।

३- वही, श्लोक १३ ।

४- ०० पु०, पृ० १०-१२ ।

कवि ने स्वतन्त्र रूप से समाविष्ट किया है जिससे प्रसंग में मार्मिकता तो आई ही, उसकी स्वाभाविकता भी मिटने नहीं पाई।

६७ गोपियों से मिलने के उपरान्त श्रीकृष्ण उनके साथ वृन्दावन में विहार करते हैं। वे एक कुंज से दूसरे कुंज में प्रवेश करते हैं। कुछ ही समय में वे मन्द मन्द गति से मलयानिल से युक्त यमुना तट पर पहुँचते हैं। वहाँ पर लहरों से निर्मित उज्ज्वल और सुन्दर बालू पर बैठकर श्रीकृष्ण सानन्द अनेक प्रकार की लीलायें करते हैं।[१]

श्रीकृष्ण द्वारा वृन्दावन और यमुना तट पर गोपियों के साथ वन विहार करने का उल्लेख दशमस्कन्ध के २९ वें अध्याय में ४२ से ४६ वें तक के श्लोकों में दिया गया है। कवि ने रास पंचाध्यायी में प्रस्तुत प्रसंग में इन्हीं श्लोकों के आधार पर वर्णन किया है। किन्तु 'सरित के तीर' की प्राकृतिक छटा को व्यक्त करने वाले पांच छन्द[२] कवि ने ऐसे लिखे हैं जो पूर्णतः उसकी स्वतन्त्र सूझ की ही उपज हैं और जिनसे यमुनातट का उन्मादकारी रूप पाठकों के मन को सरस करके रास लीला के प्रति [illegible] करता हुआ जान पड़ता है।

६८ जिस समय श्रीकृष्ण गोपियों के साथ यमुना तट पर विहार करते हैं, कवि कहता है कि उसी समय फूलों के पंच बाणों को लिए हुए और [illegible] देवताओं को जीतने में सफल हो जाने के कारण गर्वोन्मत्त मदन का आगमन होता है किन्तु श्रीकृष्ण उसके गर्व को चूर्ण करते हुए उसे परास्त कर देते हैं।[३] भागवत में इसका कहीं उल्लेख न होने से नन्ददास की यह निजी कल्पना ज्ञात होती है। इससे श्रीकृष्ण का ईश्वरत्व सिद्ध करने के साथ साथ कथन की रोचकता बढ़ाने में भी कवि सफल रहा है। जैसा कि डा० प्रेम नारायण टंडन ने कहा है कि निश्चय ही कामदेव का यह प्रसंग शिव की उस पर विजय के पौराणिक आख्यान का स्मरण कराता है, परन्तु जहाँ शिव द्वारा काम को भस्म करने का उल्लेख पुराणकारों ने किया है, वहाँ नन्ददास ने उसके केवल मद का मंथन करा कर उसका मूर्छित मात्र होना बताते हुए पुराने प्रसंग को नवीन रूप में उपस्थित करने की मौलिकता की है।[४]

६९ कामदेव को भी पराजित करने वाले श्रीकृष्ण की प्रीति-पात्री बनने का सौभाग्य पाने पर गोपियां गर्व करने लगती हैं। उन्हें गर्व से पूर्ण देख कर, उनकी प्रीति भावनाओं की वृद्धि करने के लिए श्रीकृष्ण कुछ समय के लिए कुंज में छिप जाते हैं।[१]

गोपी गर्व विषयक कवि का उक्त वर्णन भागवत के वर्णन[२] के अनुसार ही है। दशमस्कन्ध के २९ वें अध्याय और रासपंचाध्यायी के प्रथम अध्याय की समाप्ति इसी वर्णन के साथ होती है।

७० रास पंचाध्यायी के दूसरे और तीसरे अध्यायों में श्रीकृष्ण के साथ संयोग के उपरान्त उनके अन्तर्धान होने से उत्पन्न गोपियों के विरह की दशा का वर्णन किया गया है। वे श्रीकृष्ण से बिछुड़ने पर ठगी सी रह जाती हैं और विरह से व्याकुल हो कर जड़ चेतन के बोध से रहित हो जाती हैं। वे पेड़-पौधों, लता-बेलों, फल-फूलों और मृग-पशुओं से श्रीकृष्ण के सम्बन्ध में पूछती हैं तथा प्रियतम को ढूंढती हुई विरह-व्यथा की अधिकता से पागल जैसी घूमती हैं। वे निराश होकर प्रियतम की मनोहर लीलाएं करती हैं और उनमें ही तल्लीन होकर उन्हीं का रूप अपने को समझने लगती हैं। इतने में ही एक स्थान पर उन्हें प्रियतम के चरण चिह्न दिखाई देते हैं। वे उसकी वन्दना करतीं हैं। उन चरण चिह्नों के निकट ही उनकी प्रियतमा के चरण चिह्न भी गोपियों को दिखाई पड़ते हैं और वे उन्हीं के सहारे आगे बढ़ती हैं।

साधु-सन्तों में श्रेष्ठ गोपियाँ उस प्रियतमा को, यह समझ कर कि उसने श्रीकृष्ण की अनन्य भाव से आराधना की है जिससे उसे उनके अधरामृत का पान करने का परम सौभाग्य प्राप्त हुआ, धन्य धन्य कहतीं हैं। जब वह प्रियतमा भी श्रीकृष्ण के संयोग सुख को पाकर अपने सौभाग्य पर इठलाने लगती है तो वे उसको भी त्याग देते हैं और वह विरह से व्याकुल होकर उनके लिए विलाप करने लगती है। उसे इस प्रकार पाकर गोपियां छाती से लगा लेती हैं और उसके साथ यमुना तट पर आतीं हैं जहां श्रीकृष्ण ने उनके साथ प्रेम लीलायें कीं थीं।[३]

१- वही ग्रं०, पृ० १३३।   २- दशमस्कन्ध, अ० २९, श्लोक ४७-४८।

३- वही ग्रं०, पृ० १३८-१४० (दूसरा अध्याय)।

तदनन्तर, कवि तृतीय अध्याय में विरहाकुल गोपियों की मनोदशा का चित्रण करता है। गोपियाँ विलाप करती हुई कहती हैं कि हे प्रियतम ! हँसी हँसी में हम बिना मोल की दासियों को निष्ठुरता पूर्वक क्यों मारते हो ? मारना ही था तो काली नाग के विष से, प्रबल जल वर्षा से, दावानल से और वज्रपात से क्यों बचाया था ? वे अपने प्रेम का प्रमाण देती हुई कहती हैं कि हे कृष्ण ! जब तुम गाय चराने जाते थे तो वन की कठोर भूमि पर चरण रखते समय वहाँ के कंकड़ पत्थर आदि गड़ते तो तुम्हारे चरणों में थे किन्तु पीड़ा हमारे हृदय में होती थी। आपके तो चरण कमल ही समस्त कामनाओं को पूर्ण करने वाले हैं। अतः हमारे दुख दूर कर दोगे तो क्या हानि होगी ? हमारे वक्षस्थल जैसे सुकुमार स्थानों के होते हुए भी तुम इस सघन वन में जहाँ नुकीले कुश-कंटक गड़ने का पग पग पर भय है, क्यों घूम रहे हो ?[1]

गोपियों की विरह दशा का कवि का उक्त वर्णन दशम स्कन्ध के क्रमशः तीसवें और इकतीसवें अध्यायों के विरह वर्णन के लगभग समान है। तरु वरों, पौधों, लताओं, फूलों और मृग वधुओं से श्रीकृष्ण का पता पूछने के उल्लेखों में कवि ने इनके नामों की शब्दावली को भी ज्यों का त्यों ग्रहण किया है। भागवत में मतवाली गोपियों द्वारा पूतना, तृणावर्त, वत्सासुर, बकासुर आदि के वध, गोवर्द्धन-धारण, काली नाग मर्दन आदि श्रीकृष्ण की लीलाओं को किये जाने के वर्णन को[2] कवि ने अत्यन्त संक्षेप में देते हुए कहा है कि "गोपियाँ मनोहर कृष्ण की लीलायें करने लगीं।[3] श्रीकृष्ण द्वारा प्रियतमा के केश संवारते समय उनके दर्शनों से वंचित न होने की दृष्टि से मंजु मुकुर का उल्लेख नन्ददास ने स्वतन्त्र रूप से किया है।[4] भागवत में इसका कोई वर्णन नहीं है। इसी प्रकार श्रीकृष्ण द्वारा परित्यक्त एक गोपी के विषय में बादलों से बिछुड़ कर बिजली द्वारा ही बाला शरीर धारण कर खड़ी होने अथवा चन्द्रमा से रूठ कर चाँदनी द्वारा पीछे रह जाने का उल्लेख[5] कवि की कल्पना का ही [illegible] है। इसके अतिरिक्त श्रीकृष्ण के अन्तर्धान होने पर उनके विरह के महत्त्व का प्रतिपादन करने में भी कवि ने प्रभाव पूर्ण स्वतन्त्र

१- भ० ग्रं०, पृ० १७-१८ (तीसरा अध्याय) ।

२- [illegible] ३० ३०, श्लोक १४-३० ।

३- भ० ग्रं०, पृ० १६, छन्द १६ ।

४- वही, छन्द २८ ।

५- वही, पृ० १७, छन्द ३३ ।

उचित और अनूठी सूफ का परिचय दिया है जिसमें कवि ने कहा है कि बीच बीच में कटु, तिक्त, अम्ल पदार्थ के सेवन से मधुर वस्तु का स्वाद बढ़ जाता है तथा पुट देने से कपड़े का रंग और भी चटकीला हो जाता है उसी प्रकार कुछ समय के वियोग से प्रेम की वृद्धि होती है।[1] गोपियों के द्वारा एक बार श्रीकृष्ण से मिलने और पुन: उनसे वियोग होने की अवस्था के प्रसंग में निर्धन द्वारा विपुल धन पाने और पुन: उससे रहित होने के कथन[2] का समावेश भी कवि द्वारा मौलिक रूप में हुआ है।

७१ जैसा कि ऊपर लिखा जा चुका है, रास पंचाध्यायी के तृतीय अध्याय में आई हुई कथा वस्तु, द्वितीय अध्याय में निहित विरह दशा के वर्णन के कुम में उसका ही शेषांश है जिसका आधार दशम स्कन्ध का इकतीसवां अध्याय है। यहां पर भी कवि की स्वतन्त्र उद्भावना के दर्शन होते हैं किन्तु इनसे भागवत में निहित सूत्रों का मूल रूप विकृत नहीं होने पाया है। यथा, भागवत में जहां गोपियां कहती हैं कि श्रीकृष्ण ब्रह्मा जी की प्रार्थना से विश्व रक्षार्थ यदुवंश में अवतीर्ण हुए[3] वहीं रास पंचाध्यायी में उनसे कहलाया गया है कि श्रीकृष्ण को संसार के कल्याण के लिए वे ही विधाता से अनुनय विनय करके इस लोक में लाई हैं।[4] इस प्रकार कवि ने अपनी कल्पना-कौशल द्वारा मूल की रक्षा करते हुए मौलिकता लाने का प्रयास किया है।

७२ रास पंचाध्यायी के चौथे अध्याय में विरह से विह्वल ब्रज बालाओं के मध्य श्रीकृष्ण के प्रकट होने का वर्णन है, जिसमें कवि ने कहा है कि श्रीकृष्ण गोपियों के बीच उसी प्रकार प्रकट हो गए जैसे कुशल नट दर्शकों को मुग्ध करते करते उनकी दृष्टि बांधते हुए अन्तर्धान हो कर पुन: एका एक प्रकट हो जाता है।[5] श्रीकृष्ण को देखकर गोपियों में जैसे पुन: प्राणों का संचार हो जाता है। वे उनसे अपने अपने ढंग से मिलती हैं। श्रीकृष्ण भी अपनी अनेक रूपता के द्वारा गोपियों को एक ही समय अलग अलग सुख प्रदान करते हैं।[6] कवि का कथन है कि यद्यपि श्रीकृष्ण सर्वत्र व्याप्त हैं तथापि उन्हें गोपियों के मध्य ही शोभा प्राप्त होती है। गोपियां श्रीकृष्ण से मिलने पर मन ही मन मुस्काती हुई प्रीति रीति सम्बन्धी प्रश्न पूछती हैं। -

---

१- न० ग्रं०, पृ० १७। छन्द १-२। २- वही, छन्द ४।
३- भागवत [illegible] ३१, श्लोक ४। ४- न० ग्रं०, पृ० १८, छन्द ४।
५- वही, पृ० १९, छन्द २। ६- वही, पृ० २०, छन्द ६।

वे कहती हैं कि कुछ व्यक्ति प्रेम करने वाले से ही प्रेम करते हैं, दूसरे अपने प्रेम भाव से उदासीन रहने वाले से भी प्रेम करते हैं और प्रतिदान की परवाह नहीं करते। अब हे कृष्ण! बताओ कि वे तीसरे वर्ग वाले कौन हैं जो प्रेम की इन दोनों रीतियों का त्याग कर देते हैं?[1] उत्तर में, श्रीकृष्ण कहते हैं कि प्रथम प्रकार का प्रेम करने वालों का प्रेम तुच्छ है, दूसरे प्रकार के प्रेम करने वाले लोग धर्मात्मा हैं और उनको ही प्रेम के सच्चे सुख का अनुभव होता है। स्वार्थ और परमार्थ की इन दोनों रीतियों से ऊपर उठकर जो प्रेम रखते हैं, वे पूर्णकाम हैं।[2] इतना कहने के उपरान्त श्रीकृष्ण गोपियों के प्रति उनके परम प्रेम के कारण परम कृतज्ञता प्रकट करते हैं।[3]

श्रीकृष्ण द्वारा प्रकट होकर गोपियों से पुन: मिलने के उक्त प्रकार के वर्णन का आधार दशमस्कन्ध का बत्तीसवाँ अध्याय है। भागवत के इस अध्याय के सूत्रों का रास पंचाध्यायी के चौथे अध्याय के निर्माण में कवि ने अवलम्बन अवश्य ग्रहण किया है किन्तु अनेक स्थलों पर वर्णन शैली की मौलिक प्रवृत्ति भी दृष्टिगोचर होती है। गोपियों के हृदय रूपी प्रेमामृत सागर में लहरें उठने[4], विरह विह्वलता में गोपियों द्वारा "अलबल" बोलने[5], गोपियों की कृष्ण के प्रति प्रीति को महा क्षुधित की भोजन के प्रति प्रीति से कोटि गुनी अधिक होने[6], कमल की नवपंखुड़ियों के मध्य में स्थित पराग केसर से युक्त कमल कोष के समान कृष्ण की शोभा होने,[7] श्रीकृष्ण का जगद्गुरु होने पर भी गोपियों के प्रेम के आगे स्वयं पराजय स्वीकार करने[8], मायापति श्रीकृष्ण का गोपियों की महामोहिनी माया द्वारा मोहित कर दिये जाने[9] आदि के उल्लेख वाले छन्द जो रास पंचाध्यायी में मिलते हैं, कवि की मौलिक प्रवृत्ति के फलस्वरूप समाविष्ट हुए विदित होते हैं।

१- न० ग्रं०, पृ० २०, छन्द १४।
२- वही, पृ० ३१ (परिशिष्ट), छन्द ५६
३- वही, पृ० २०-२१, छन्द १६-१८।
४,५- वही, पृ० १६, छन्द १।
६- वही, पृ० १६, छन्द ५।
७- वही, पृ० २०, छन्द १२।
८- वही, पृ० २१, छन्द १८।

७३ पांचवें अध्याय में रास क्रीड़ा और उसके महत्त्व का वर्णन मिलता है जिसमें कवि कहता है कि प्रियतम के प्रेम वचन सुनकर गोपियां प्रसन्न हो जाती हैं और उन्हें गले से लगा लेती हैं। श्रीकृष्ण भी अनुकूल होकर गोपियों के दु:खों को निर्मूल कर देते हैं। तदनन्तर वे सुन्दर कल्प वृक्ष के नीचे कमल चक्र पर अद्भुत और सुखद रास लीला आरम्भ करते हैं। नूपुर, कंकण, किंकिणी आदि आभूषणों के साथ साथ करताल, मुरली, मृदंग, उपंग, चंग आदि वाद्यों की सम्मिलित ध्वनि होती है। गोपियां विभिन्न प्रकार से अंग संचालन करके अभिनय करती हैं और मधुर स्वरों में गान करती हैं। कवि कहता है कि संसार में प्रचलित जिस संगीत कला से सुर-नर मुग्ध हो जाते हैं, और जिसके प्रभाव का गान वेद पुराण तक करते हैं, वह गोपियों को सहज की प्राप्त है। रास की ध्वनि सुनकर मुनिजन भी मोहित हो जाते हैं। शिलायें द्रवित हो जाती हैं और जल स्तब्ध होकर शिलावत् हो जाता है। कुंज सदन में इस प्रकार अत्यन्त सुख पूर्वक विविध हास विलास करके श्रीकृष्ण, मदमाते हाथी के समान यमुना जल में विहार करते हैं। उनके साथ क्रीड़ा रस रत गोपियां दिव्य शोभा से युक्त हो जाती हैं। कवि का कथन है कि इस रास लीला को सुनने से प्रेम भक्ति की प्राप्ति होती है। क्योंकि यह गान, हरिध्यान और श्रुतियों का सार है। यह पापों का नाश करने वाली, मनोहर और प्रेम बढ़ाने वाली है जिसको उसने कोटि यत्न करके संजोया है। अत: उसका मत है कि पाठक इसे सावधानी से ग्रहण करें।[१]

रास क्रीड़ा का वर्णन दशम स्कन्ध के तैंतीसवें अध्याय में मिलता है जिसमें इसे 'महारास' नाम दिया गया है और इसके अन्तर्गत कहा गया है कि गोपियां भगवान् की मधुर वाणी सुनकर मुग्ध हो जाती हैं। तब एक दूसरे की बांह में बांह डाले हुए यमुना तट पर खड़ी [illegible] गोपियों के साथ वे अपनी दिव्य रस क्रीड़ा आरम्भ करते हैं। सभी गोपियों को भान होता है कि उनके प्रियतम तो उनके ही पास हैं। देवता, ग[illegible]ादि सभी इस लीला को देखते हैं। नूपुर, कंकण, किंकिणी के एक साथ बजने से विपुल मधुर ध्वनि होने लगती है। गोपियां, कृष्ण के साथ [illegible] प्रकार से अंग संचालन करके नृत्य करती हैं। कृष्ण कभी गोपियों

१- [illegible] पृ० ११-१२।

को हृदय से लगा लेते हैं, कभी हाथ से उनके अंग स्पर्श करते हैं, कभी तिरछी चितवन से देखते हैं और कभी लीला से उन्मुक्त होकर हँसने लगते हैं। पश्चात्, वे यमुना जल में प्रवेश करके गजराज के समान गोपियों के साथ जल विहार करते हैं जिसको देखकर देवता पुष्प वर्षा करते हुए उनकी स्तुति करते हैं। तब वे गोपियों और भ्रमरों से घिरे हुए यमुना तट के रमणीय उपवन में विचरण करने लगते हैं।[१]

७४ उपर्युक्त विश्लेषण से प्रकट है कि रास पंचाध्यायी में वर्णित रास लीला भागवत् के आधार पर लिखी गई है। दोनों ग्रन्थों के अवलोकन से निम्न-लिखित तथ्य प्रकाश में आते हैं :

(१) भागवत में यमुना पुलिन पर रास का आरम्भ होना दिखाया है[२] किन्तु इस यमुना पुलिन का चाहे जितना विस्तार हो नन्ददास ने "आरंभित अद्भुत सुरास उहि कमल चक्र पर"[३] कह कर रास क्रीड़ा के एक निश्चित स्थान को दिखा दिया है।

(२) श्रीकृष्ण के साथ नृत्य करती हुई गोपियों के नूपुर, कंकण, किंकिणी की मधुर ध्वनि की ओर संकेत करते हुए भागवत में जहां रास नृत्य के चित्र की एक हलकी रेखा मात्र दी गई है,[४] वहीं कवि ने उस चित्र को पूर्ण करके स्पष्ट रूप से सामने रख दिया है।

> नूपुर कंकण किंकिणि करतल मंजुल मुरली।
> ताल मृदंग उपंग चंग एकैसुर जु रली।
> मृदुल मुरज टंकार तार झंकार मिली धुनि।
> मधुर जंत्र की तार भंवर गुंजार रली पुनि।
> तैसिय मृदु पद पटकनि चटकनि कठतारन की।
> लटकनि मटकनि झलकनि कल कुंडल हारन की।
> सांवरे पिय संग निरतत चंचल ब्रज की बाला।
> मनु घन मंडल खेलत मंजुल चपला माला।।[५]

१- [illegible] ३३।
२- भा० पु०, पृ० २९, छन्द ४।
३- भा० पु०, पृ० [illegible]।

(३) भागवत में श्रीकृष्ण द्वारा गाये जाने वाले स्वरों का उल्लेख तो है[1] किन्तु उसमें यह स्पष्ट नहीं है कि वे स्वर उनके मुख द्वारा निकले गए हैं अथवा मुरली के सुर में। गोपियां तो श्रीकृष्ण के पास मुरली ध्वनि से आकर्षित हो कर ही आई थी। अतः वस्तु स्थिति यही प्रतीत होती है कि श्रीकृष्ण मुरली की ध्वनि पर ही गाते थे, जिसकी ओर कवि ने स्पष्ट कर संकेत कर दिया है :

> कोउ मुरली संग रली रंगीली रसहिं बढ़ावति।
> कोउ मुरली को छेंकि छबीली अद्भुत गावति।।[2]

(४) भागवत में गोपियों को रास क्रीड़ा के समय, अपने केश, वस्त्र और कंचुकी को संभालने में भी असमर्थ दिखाया गया है[3] किन्तु नन्ददास के तद्विषयक कथन से प्रकट होता है कि गोपियां मुग्ध होकर अपने वस्त्र और आभूषण निछावर करती हैं[4] जिससे उनका कृष्ण के प्रति सर्वस्व समर्पण का भाव व्यक्त होता है।

(५) दशमस्कन्ध में रास के प्रसंग में शरद रात्रि की शोभा का सामान्य वर्णन करते हुए कहा गया है कि वह रात्रि, जिसके रूप में अनेक रात्रियां पुंजीभूत हो गई थीं, बहुत ही सुन्दर थी और चारों ओर चन्द्रमा की बड़ी सुन्दर चांदनी छिटक रही थी[5] किन्तु कवि ने इस स्थल पर दिखाया है कि रास क्रीड़ा के प्रभाव से शरद रात्रि भी स्तब्ध रह गई और उसे अपने व्यतीत होने का भी भान नहीं रहा।[6] इस प्रकार कवि ने स्वतन्त्र कथन का समावेश किया है जिससे नवीनता तो आई ही, पहले अध्याय में दिये गए शरद रात्रि के वर्णन का पुनरुल्लेख न होकर काव्य की रोचकता की भी रक्षा हो गई।

(६) भागवत् के अनुसार व्रज सुन्दरियों के बीच में श्रीकृष्ण का होना, अगणित स्वर्ण मणियों के मध्य महा मरकत मणि के होने के समान प्रतीत हो रहा था[7] वो उसी में उल्लिखित इस कथन के के विपरीत ठहरता है जिसमें कहा गया है कि

१- दशमस्कन्ध, अ० श्लोक १० ।
२- न० ग्रं०, पृ० २२, छन्द १६ ।
३- दशमस्कन्ध, अ० ३३, श्लोक १८ ।
४- न० ग्रं०, पृ० २२, छन्द १९ ।
५- दशमस्कन्ध, अ० ३३, श्लोक १६ ।
६- न० ग्रं०, पृ० २३, छन्द २४ ।
७- दशमस्कन्ध, अ० ३३, श्लोक ७ ।

रास मण्डल में दो दो गोपियों के बीच में एक एक श्रीकृष्ण अर्थात् एक गोपी और और एक कृष्ण - यही क्रम था ।[1] कवि ने इस सन्देहात्मक कथन को नवीनता से समाधानात्मक रूप में प्रकट किया है :

नवमर्कत मनि स्याम कनक मनि गन ब्रजबाला ।
वृंदावन कौं रीझि मनौं पहिराई माला ।।[2]

(७) भागवत में गोपियों द्वारा यमुना जल में श्रीकृष्ण पर उलीच उलीच कर जल की बौछार करने का उल्लेख है ।[3] कवि उत्प्रेक्षा की सहायता से इसी कथन को अपनी स्वतन्त्र कल्पना द्वारा नवीन रूप में प्रस्तुत करने का प्रयास करता है :

मंजुल अंजुलि भरि भरि पिय कौं तिय जल मेलत ।
जनु अलि सौं अरविंद-वृंद मकरंदन खेलत ।।[4]

इससे ज्ञात होता है कि कवि ने रास का वर्णन भागवत के आधार पर लिखा अवश्य है, किन्तु अपनी स्वतंत्र कल्पना के योग से उसे नवीन रूप देने का मौलिक प्रयत्न किया है । ऊपर दिये गए तथ्यों के अतिरिक्त [illegible] में ऐसे अनेक छन्द मिलते हैं जो कवि के मस्तिष्क की ही उपज हैं । यथा, प्रिय के मधुर वचन सुनकर गोपियों द्वारा क्रोध त्यागने,[5] श्रीकृष्ण को कोटि कल्पतरु के समान कहने,[6] गोपियों की वेणी को [illegible] सी बताने,[7] कृष्ण के पीत पट पर मुग्ध होने,[8] सुर-नरों को रिझाने वाले संगीत का गोपियों के लिए सुलभ होने,[9] गोपियों के नृत्य का अवर्णनीय होने,[10] रास नृत्य को देखकर पवन और सूर्य द्वारा भी स्तब्ध होने[11], आदि के उल्लेख वाले छन्द कवि के अपनी ही जान पड़ते हैं । साथ ही

१- वही दशमस्कन्ध, श्लोक ३ ।
२- न० ग्रं०, पृ० २१, छन्द ४ ।
३- दशमस्कन्ध, अ० ३३, छन्द २४ ।
४- न० ग्रं०, पृ० २३, छन्द २६ ।
५- वही, पृ० २१, छन्द १ ।
६- वही, पृ० २१, छन्द २ ।
७- वही, पृ० २२, छन्द १० ।
८- वही, छन्द ११ ।
९- वही, छन्द १८ ।
१०- वही, पृष्ठ २३, छन्द १९ ।
११- वही, छन्द २२ ।

वनविहार के उपरान्त जलविहार का वर्णन[1] भी कवि ने नवीन रूप में किया है। भागवत में रास लीला के औचित्य की ओर परीक्षित और शुकदेव जी का प्रश्नोत्तर दिया गया है,[2] किन्तु कवि ने उसे नहीं अपनाया है। इसके स्थान पर उसने दस छन्दों में स्वतन्त्र रूप से रास का महत्त्व प्रकट करने के साथ साथ उसके अधिकारियों की ओर संकेत किया है।[3] अन्तिम तीन छन्द भी कवि की मौलिक रचना हैं जिनमें उसने पुन: रास की महिमा का वर्णन किया है और अपने हृदय में नित्य उसकी स्थिति की ~~कल्पना~~ कामना प्रकट की है।[4]

७५ इस प्रकार उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि रास पंचाध्यायी में गोपियों के साथ श्रीकृष्ण द्वारा रचित रास का वर्णन किया गया है। यद्यपि रास लीला पांचवें अध्याय में वर्णित है तथापि प्रथम से चतुर्थ अध्याय तक का वर्णन उसी रास लीला के लिए की गई तैयारी के रूप में दृष्टिगत होता है। रास में भाग लेने वाले श्रीकृष्ण परब्रह्म हैं तथा गोपियां भी सब स्त्रियों से न्यारी हैं और परब्रह्म श्रीकृष्ण की प्राण प्यारी हैं। अत: यह रास लीला अद्भुत है और बिना अधिकारी हुए इसका अनुभव नहीं होता है। इसके सुनने के अधिकारी वे ही हैं जो गोपियों की भांति विषय सक्ति से मुक्त हैं और जिनकी भागवत धर्म में आस्था है। यह ज्ञान, हरिध्यान और श्रुतियों का सार है, अघहरनी है तथा भगवत्प्रेम को बढ़ाने वाली है। कवि ने भागवत का आधार ग्रहण करते हुए भी इसे एक नवीन रूप में प्रस्तुत किया है। यद्यपि अनेक स्थलों पर कवि ने भागवत के वर्णन का ही अनुसरण किया है और भागवत की भावधारा से इसका परिसिंचन किया है तथापि उसकी अधिकांश उपमाएं, उत्प्रेक्षाएं आदि सर्वथा मौलिक हैं और अनेक स्थलों पर वर्णन भी कवि के मस्तिष्क की स्वतन्त्र उपज के रूप में समाविष्ट हुए हैं जिससे ग्रन्थ एक नवीन काव्य के रूप में दृष्टिगत होता है। यही कवि की विशेषता है।

१- र० पं०, पृ० २२, छन्द २०-२८।

२- भागवत [illegible], अ० ३३, श्लोक ३०-३७। ३- र०पं०, पृ० २४, छन्द ३०-३९।

४- वही, पृ० २४, छन्द ४०-४२।

सिद्धान्त पंचाध्यायी

७६ इस रचना में कवि सर्वप्रथम श्रीकृष्ण के परब्रह्मत्व को प्रकट करने की ओर प्रयत्नशील दृष्टिगोचर होता है। वह कहता है कि उनके रूप, गुण और कर्म अपार हैं। सभी विकारों की जननी माया उनके वश में रहती है। वे परम धाम, जग धाम और सबके आश्रय हैं। वे सबके गर्व को मिटाने में समर्थ हैं। उन्होंने गर्वोन्नत कामदेव को पराजित करने के लिए रास रस प्रकट किया। रास रस सभी रसों में श्रेष्ठ हैं। रास में गोपियों ने जो श्रीकृष्ण को स्पर्श किया वह धर्म विपरीत आचरण नहीं था क्योंकि वे ही परम धर्म हैं और उनसे बढ़ कर कोई धर्म नहीं है।[१]

७७ तदनन्तर कवि जीव, शिव और ब्रह्म का अन्तर, संसार, जगत आदि की ओर संकेत करता है।[२] वृन्दावन और उसमें सदा विराजमान रहने वाली शरद ऋतु की शोभा का उल्लेख करते हुए कवि कहता है कि श्रीकृष्ण शब्द ब्रह्म मय मुरली द्वारा सुर, नर, गन्धर्वादि सबको मोहित कर लेते हैं। मुरली की मादक ध्वनि को सुनते ही गोपियां मोहित होकर उसकी ओर चल पड़ती हैं। उनका मन श्रीकृष्ण के सुन्दर श्याम स्वरूप की ओर पहले ही लगा हुआ था, मुरली की ध्वनि से अनुराग पूर्ण होकर सावन सरिता के समान कृष्ण रूपी सागर से मिलने के लिए उमड़ पड़ती हैं। वे दूध दुहने, भोजन बनाने आदि गृहस्थी के सभी कार्यों को यथा स्थिति में छोड़ कर और धर्म, अर्थ, काम आदि त्याग कर श्रीकृष्ण का अनुसरण करती हैं।[३]

७८ श्रीकृष्ण भक्तवत्सल, परब्रह्म परमात्मा हैं। अत: उनकी रास लीला को प्रकट करने वाली पंचाध्यायी कोई शृंगार कथा नहीं है। यही बात गोपियों के विषय में भी है। गोपियों के प्रेम को देख कर शुकदेव जी अनुराग पूर्ण हो जाते हैं, ब्रह्मा उनकी पद रज की कामना करते हैं, शंकर, सनकादि उनका गान करते हैं और सभी उनको गुरु मान कर आचरण करते हैं।[४] कवि का कथन है कि श्रीकृष्ण परम धर्म की रक्षा करने वाले हैं। वे प्रेम की परीक्षा के लिए गोपियों से धर्म, अर्थ और काम विषयक वचन कहते हैं और गोपियों के प्रेम वचनों को सुनकर आत्माराम

१- न० ग्रं०, पृ० ३०-३१, छन्द १-१४। २- वही, पृ० ३१, छन्द १५-१६।
३- वही, पृ० ३१-३२, छन्द ३०-३८। ४- वही, पृ० ४१, छन्द ३६-४३।

होते हुए भी उनके साथ रमण करते हैं। उनके संस्पर्श से गोपियों को गर्व हो जाता है और गर्व को प्रेम में बाधक जान कर उसे मिटाने के लिए वे कुछ समय के लिए अन्तर्धान हो जाते हैं। इस पर गोपियां उनके विरह में व्याकुल हो उठती हैं। वस्तुतः श्रीकृष्ण का विरह प्रेम का उन्नायक और सुखदायक होता है जिससे सभी दुख मिट जाते हैं। गोपियां विरह विह्वलता की अवस्था में श्रीकृष्ण की लीलाओं का अभिनय करती हैं, तभी उन्हें प्रियतम के चरण चिन्ह दिखाई देते हैं। वे अपने भाग्य को सराहते हुए कहती हैं कि इस रज को ब्रह्मा, शिव और विष्णु भी अपने सिर में धारण करते हैं।[१]

७९ कवि पुनः श्रीकृष्ण के परमात्म स्वरूप को प्रकट करते हुए कहता है कि वे केवल प्रेम सुगम्य हैं और अन्य सभी प्रकार से अगम्य हैं। जब सभी गोपियों में तीव्र विरहानुभूति के उपरान्त प्रेम की लहरें उठने लगती हैं तो वे प्रकट होकर उन्हें सुख देने के लिए उनके साथ यमुना तट पर विहार करते हैं। वे गोपियों के मध्य ऐसे लगते हैं जैसे अनेक शक्तियों से आवृत परमात्मा हो।[२]

८० श्रीकृष्ण ही ईश्वर हैं। वे अकारण हैं। जिस भाव से भी उनसे सम्बन्ध रखा जाय वे प्रसन्न होते हैं। द्वेष-भाव रखने पर भी शिशुपाल को उन्होंने मुक्ति प्रदान की। गोपियां पहले उनसे काम भाव से मिलती हैं फिर वही भाव उनके प्रभाव से निःसीम प्रेम में परिणत हो जाता है और तब वे कृष्ण के साथ रास लीला में भाग लेती हैं। कवि रास लीला का वर्णन करने के उपरान्त उसकी महिमा की ओर संकेत करता है और रसिक जनों को सम्बोधित करते हुए कहता है कि वे सरस मन से इस लीला को सुनें और अच्छी प्रकार समझें। अन्त में वह गोपियों के पद पंकज रस के प्रति अनुराग की कामना करता है।[३]

८१ उपर्युक्त विश्लेषण से प्रकट है कि ग्रन्थ की विषय वस्तु रास लीला से सम्बन्धित है। ऊपर लिखा जा चुका है कि रास लीला का वर्णन कवि ने दशमस्कन्ध

१- नन्द ग्रं०, पृ० ४९-५४, छन्द ६३-८३। २- वही, पृ० ५५-५६, छन्द ९०-१०१। ३- वही, पृ० ५६-५८, छन्द १०८-१३८।

के आधार पर रास पंचाध्यायी में लिया है। अतः रास पंचाध्यायी तथा दशमस्कन्ध के सम्बन्धित प्रसंगों के साथ प्रस्तुत ग्रन्थ का अवलोकन करने से ज्ञात होता है कि कवि ने अपने स्वतन्त्र उल्लेखों के साथ जहां एक ओर श्रीकृष्ण, रास और गोपियों के आध्यात्मिक पक्ष को प्रस्तुत करने के लिए रास पंचाध्यायी से तद्विषयक कथनों को ग्रहण किया है, वहीं दूसरी ओर दशम स्कन्ध के उन्तीस से तैंतीस तक के अध्यायों के अनेक ऐसे कथनों का भी आश्रय लिया है जिन्हें वह रास पंचाध्यायी में स्थान नहीं दे पाया था। अतः सिद्धान्त पंचाध्यायी का आधार भी दशमस्कन्ध के उक्त अध्यायों में निहित कथा सूत्रों से भिन्न नहीं है। आधार सूत्रों की दृष्टि से रास पंचाध्यायी में आई हुई कथा वस्तु पर ऊपर विचार किया जा चुका है, यहां दशम स्कन्ध के रास लीला विषयक वे कथन विचारणीय हैं जिनका आश्रय कवि ने रास पंचाध्यायी में न लेकर सिद्धान्त पंचाध्यायी में लिया है। यथा,

(१) सिद्धान्त पंचाध्यायी में कवि का कथन है कि श्रीकृष्ण उज्ज्वल और परम धर्म की रक्षा करने वाले हैं, उन्होंने गोप-स्त्रियों का स्पर्श किया और जीवों के लिए यह धर्म विपरीत आचरण होते हुए भी उनके लिए चिन्मय लीला है।[१]

कवि के उक्त कथन दशमस्कन्ध के तैंतीसवें अध्याय के २७, २८ और ३६वें श्लोकों पर आधारित हैं जिनमें कृष्ण को धर्म की स्थापना और धर्म मर्यादा बनाने वाले तथा अपनी दिव्य चिन्मय विग्रह करके लीला प्रकट करने वाले कहा गया है।

(२) श्रीकृष्ण शब्द ब्रह्म मय वेणु बजा कर सभी को मोहित कर देते हैं।[२] गोपियां उनके सुन्दर श्याम रूप पर पहले ही रम चुकी थीं, मुरली का मधुर निनाद सुन कर वे मोहित हो जाती हैं।[३] वे दूध दुहने, भोजन बनाने आदि घर के कार्यों को छोड़ कर उनकी ओर जाती हैं। यद्यपि उन्हें उनके माता, पिता, पति, पुत्रादि जाने से रोकते हैं तथापि वे नहीं रुकतीं हैं क्योंकि उनका चित्त श्रीकृष्ण चुरा चुके होते हैं। कृष्ण जिसका हृदय चुरा लेते हैं उसे कोटि विघ्न भी नहीं रोक पाते हैं,[४] फिर गोपियों की तो बात ही क्या, जिनको पलक झपकने का समय भी कोटि युगों के समान प्रतीत होता है।[५]

१- [illegible], पृ० [illegible], छन्द [illegible] और पृ० [illegible], छन्द १४।

२- वही, पृ० [illegible], छन्द [illegible]।   ३- वही, छन्द २८।

कवि के उक्त कथन का आधार दशम स्कन्ध का उन्तीसवां अध्याय है जिसमें कृष्ण द्वारा मुरली की मधुर तान छोड़ने[1], मुरली ध्वनि सुनते ही गोपियों द्वारा घर के कार्यों को यथास्थिति में छोड़कर कृष्ण की ओर जाने, प्रिय जनों के रोकने पर भी न रुकने और कृष्ण द्वारा उनका सर्वस्व चुरा लेने[2] के उल्लेख दिये गये हैं। कवि ने एक ओर भागवत के उक्त कथनों का अनुसरण किया है, दूसरी ओर अपनी कल्पना का आश्रय लेकर प्रसंग को नवीन रूप देने का प्रयास किया है। यथा, श्रीकृष्ण द्वारा चित्त चुराने पर कोटि कोटि विशेषों द्वारा भी न रुकने, गोपियों के लिए पलक झपकने का समय कोटि युगों के समान होने आदि के उल्लेख कवि के निजी प्रयास के फलस्वरूप आये हैं।

(३) सिद्धान्त पंचाध्यायी के अनुसार सभी शास्त्र श्रीकृष्ण के प्रति प्रेम भक्ति रखते हैं क्योंकि वे नित्य प्रिय और परम सत्ति मय हैं। स्त्री, पुत्र, पति आदि सम्बन्धियों से सुख नहीं मिल सकता है, ये केवल विषय-रोग को बढ़ाते हैं और प्रतिक्षण दुख देते हैं।[3]

भागवत के अनुसार भी आत्म ज्ञान में निपुण महापुरुष श्रीकृष्ण से प्रेम करते हैं क्योंकि वे नित्य प्रिय और अपनी ही आत्मा हैं। अनित्य एवं दुखद पति पुत्रादि प्रयोजन हीन ही हैं।[4] प्रकट है कि कवि ने भागवत के अनुसार ही उक्त उल्लेख दिया है।

(४) अपनी रचना में कवि ने दिखाया है कि गोपी गर्व निवारणार्थ अन्तर्धान होकर श्रीकृष्ण जब पुनः उनके सम्मुख प्रकट होते हैं तो गोपियां उनको पाकर वियोग के दुखों को इस प्रकार भूल जाती हैं जैसे जागृति, स्वप्न और सुषुप्ति अवस्था के उपरान्त तुरिय अवस्था को प्राप्त कर सब कुछ भूल गई हों।[5] श्रीकृष्ण भी गोपियों के साथ इस प्रकार शोभित होते हैं जैसे परमात्मा अनेक शक्तियों से युक्त होकर।[6] गोपियां उनके चारों ओर ऐसी शोभित होती हैं मानों सुन्दर कल्प वृक्ष के चारों ओर आनन्द की लतायें शोभित हों।[7] कृष्ण दर्शन ही गोपियों [का] मनोरथ है और दर्शन पाते

१- दशमस्कन्ध, अ० २९, श्लोक ३।
२- वही, श्लोक ६-८।
३- [illegible]
४- दशमस्कन्ध अ० २९, श्लोक ३३।
५- रा० पं०, पृ० [illegible], छन्द १०१।
६- वही, पृ० ४६, छन्द १०५।
७- वही, पृ० ४६, छन्द [illegible]।

ही उन्हें परमानन्द प्राप्त होता है ।[१]

उक्त प्रसंग भागवत में भी मिलता है और उसमें कहा गया है कि श्रीकृष्ण के प्रकट हो जाने पर गोपियां विरह के दुख से मुक्त होकर शान्ति-सागर में डूबने उतराने लगीं ।[२] उनके बीच में श्रीकृष्ण ऐसे शोभित थे जैसे परमेश्वर अपने नित्य ज्ञान, बल आदि शक्तियों से सेवित होकर शोभित होते हैं ।[३] यहां कवि ने जागृति, स्वप्न आदि अवस्थाओं तथा कल्पवृक्ष और आनन्द की लताओं के उपमानों का उल्लेख स्वतन्त्र रूप से किया है ।

(५) यद्यपि श्रीकृष्ण अखण्डानन्द हरि भगवान हैं तथापि गोपियों के मध्य ही उन्हें शोभा प्राप्त होती है ।[४] वे गोपियों को अपने स्वर पर लाकर उनके साथ रमण करना चाहते हैं ।[५] रास मण्डल में वे दो दो गोपियों के बीच सुशोभित हैं और उनकी एक ही मूर्ति आलात की भांति प्रत्येक गोपी के साथ विद्यमान हैं । रास मण्डल में प्रेम से भरी हुई शत कोटि गोपियां हैं । उनके गुण, गति और ध्वनि समस्त विश्व में फैली हुई है ।[६]

सिद्धान्त पंचाध्यायी के उक्त उल्लेखों का आधार भागवत के वे कथन हैं, जिनके अन्तर्गत कहा गया है कि श्रीकृष्ण परमात्मा ही तो थे[७], वे भगवान थे[८], अपने भाव में ही सन्तुष्ट थे और अखण्ड थे[९]। वे दो दो गोपियों के बीच में प्रकट हो गए और इस प्रकार सहस्त्र सहस्त्र गोपियों से शोभायमान होकर उन्होंने दिव्य रासोत्सव आरम्भ किया है ।[१०] प्रकट है कि भागवत का आधार ग्रहण करते हुए भी कवि ने प्रसंग को नवीन रूप में प्रस्तुत किया है तथा आलात के उल्लेख द्वारा स्थिति को स्पष्ट करने और गोपियों की संख्या बढ़ा बढ़ा कर कहने के कथन उसके अपने हैं ।

१- न० ग्र०, पृ० ४६, छन्द १०६ ।
२- दशमस्कन्ध, अ० ३२, श्लोक ८ ।
३- वही, अ० ३२, श्लोक १० ।
४- न० ग्र०, पृ० ४६, छन्द १०३ ।
५- वही, पृ० ४३, छन्द ६६ ।
६- वही, पृ० ४७, छन्द ११६-१७ ।
७- दशमस्कन्ध, अ० २९, श्लोक ११ ।
८- वही, अ० ३३, श्लोक ३४ ।
९- वही, अ० ३०, श्लोक ३४ ।
१०- वही, अ० ३३ श्लोक ३-४ ।

(६) अन्त में रसिक जनों को संकेत करते हुए कवि कहता है कि वे सच्चे हृदय से रास लीला को सुनें, समझें और आनन्दित हों, क्योंकि यह सभी शास्त्रों का सार है और परम एकान्त आनन्द रस है जिसके रंचक सुनने और जानने से श्रीकृष्ण वश में होते हैं। कवि कृष्ण से विनय करता है कि सांसारिक विषयों को तुच्छ समझ कर छोड़ने वाली और रास में भाग लेने वाली गोपियों के चरण कमलों पर ही उसका चित्त लगा रहे।[१]

दशमस्कन्ध के उन्तीसवें[२], इकतीसवें[३] और तैंतीसवें[४] अध्यायों में भी रास लीला की प्राय: इसी प्रकार की महिमा की ओर संकेत मिलता है। किन्तु रासलीला के प्रति सच्चे हृदय से आचरण करने का आग्रह कवि का अपना है तथा गोपियों के पद पंकज रस में लीन किये जाने का भी कवि का अनुरोध स्वतन्त्र रूप में समाविष्ट हुआ है जिससे उसकी भक्त में ही भगवान् के दर्शन करने की भावना दृष्टिगत होती है।

८२ इसके अतिरिक्त श्रीकृष्ण के ईश्वरत्व, उनकी माया और उसका प्रभाव, सांसारिक जीव, प्रेमी भगवद् भक्तों से सम्बन्धित अधिकांश उल्लेख कवि ने भागवत के रास प्रसंग से स्वतन्त्र रह कर ही दिये हैं।

८३ इस प्रकार उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि सिद्धान्त पंचाध्यायी का विषय रास पंचाध्यायी की भांति ही रास लीला है, अन्तर केवल इतना है कि इसमें कथा की सम्बद्धात्मकता का नितान्त अभाव है और ऐसा जान पड़ता है कि कवि थोड़ी थोड़ी देर में रास, श्रीकृष्ण और गोपियों के आध्यात्मिक पक्ष को प्रकाशित करने के लिए जैसे बिजली का बटन दबाता रहता है। इस प्रकार में जहां एक ओर रास पंचाध्यायी के अनेक स्थलों का ज्यों का त्यों दिग्दर्शन होता है दूसरी ओर दशमस्कंध के उन्तीस से तैंतीस तक के अध्यायों की सामग्री स्पष्ट रूप में दृष्टिगत होती है। बीच बीच में स्वतन्त्र कथनों की भी झांकी मिलती है। इस सम्बन्ध में कवि कहता है कि रास रस सभी शास्त्रों का सिद्धान्त महारस है जिससे प्रकट होता है कि उक्त स्वतन्त्र कथनों को कवि ने किसी एक ग्रन्थ के आधार पर नहीं दिया होगा प्रत्युत

१- न० ग्रं०, पृ० ८८, छन्द ११७-११८।   २- दशमस्कन्ध, अ० २९, श्लोक १४।

३- वही, अ० ३१, श्लोक ९।   ४- वही, अ० ३३, श्लोक ४०।

वे विभिन्न शास्त्रों के अध्ययन के फलस्वरूप कवि द्वारा प्राप्त ज्ञान पर आधारित होंगे। इन शास्त्र-ग्रन्थों में वल्लभाचार्य के भी ग्रन्थ रहे होंगे क्योंकि कवि उन्हीं के सम्प्रदाय का अनुचर था। वल्लभाचार्य के सिद्धान्तों के प्रकाश में कवि के विचारों को देखने का प्रयास स्वतन्त्र रूप से आगामी प्रकरण में किया जावेगा। अत: यहां यही कहा जा सकता है कि सिद्धान्त पंचाध्यायी में रास और उसके प्रवर्तक श्रीकृष्ण तथा गोपियों की अलौकिकता प्रकट करने का प्रयास किया गया है।

कवि का कथन है कि पंचाध्यायी श्रृंगार कथा नहीं है और इसे श्रृंगार ग्रन्थ मानने वाले पंडित कुछ नहीं जानते तथा वे कृष्ण को विभचारी मानते हैं। कथा से तात्पर्य रास कथा से है जो रास पंचाध्यायी में वर्णित है अत: पंचाध्यायी कहने से कवि का प्रयोजन रास पंचाध्यायी से है। इससे प्रकट होता है कि सिद्धान्त पंचाध्यायी की रचना रासपंचाध्यायी के आध्यात्मिक पक्ष को प्रकट करने के लिए की गई है। इसमें कवि ने दिखाया है कि श्रीकृष्ण जीव नहीं ईश्वर हैं और गोपियां भक्त हैं। श्रीकृष्ण प्रेम द्वारा ही प्राप्य हैं। गोपियों ने उन्हें प्रेम से प्राप्त करने के मार्ग का प्रदर्शन किया जिससे सभी गोपियों को गुरु मानते हैं। रास अलौकिक रस है जिसको देख कर शंकर, नारद, सारद, सनक, सनन्दन आदि मुग्ध होते हैं।

भंवर गीत

८४ भंवर गीत कवि की अन्तिम रचना है[1] और लोक प्रियता की दृष्टि से इसका नाम सर्व प्रथम आता है। इसमें श्रीकृष्ण का सन्देश लेकर आने की बात के द्वारा उद्धव गोपियों को अपने ब्रजागमन का कारण बताते हैं[2], श्रीकृष्ण का नाम सुनते ही गोपियां आनन्दातिरेक के कारण मुख से एक शब्द भी नहीं बोल पाती हैं। उद्धव के मुख से प्रियतम द्वारा शीघ्र आने का समाचार सुनकर उन्हें श्रीकृष्ण का रूप स्मरण हो आता है तथा वे प्रेम विह्वलता से मूर्च्छित हो जाती हैं। उद्धव प्रेम वचनों द्वारा सचेत करते हुए उन्हें ज्ञान का उपदेश देते हैं। गोपियां बड़ी सतर्कता से उनके ज्ञानोपदेश का विरोध करके प्रेम का पक्ष लेती हैं। वे प्रेम द्वारा ही कृष्ण को प्राप्त करने की बात कहती हैं,[3] उनकी सम्मति में ज्ञान, कर्म और योग से प्रेम का

स्थान बहुत ऊँचा है । वे ब्रह्म के अव्यक्त रूप का विरोध करके सगुण रूप के प्रति की आसक्ति व्यक्त करती हैं । सगुण श्रीकृष्ण की चर्चा करते करते वे इतनी तल्लीन हो जाती हैं कि उन्हें अपने सम्मुख ही कृष्ण का स्वरूप दिखाई देने लगता है और तब वे उद्धव से बातें करना छोड़कर अपने प्रियतम से बातें करने लगती हैं ।[1] गोपियां कृष्ण के चरित्रों का वर्णन करते करते उन्हीं के अनुराग में ऐसे मग्न हो जाती हैं कि उनके सभी रूपों एवं चरित्रों का दर्शन करने लगती हैं । उनकी प्रेमावस्था को देखकर उद्धव के ज्ञान और योग का भाव दूर हो जाता है और वे स्वीकार कर लेते हैं कि प्रेम मयी भक्ति का उदय होने पर द्विविधा ज्ञान सहज ही दूर हो सकता है ।[2] इतने में ही एक भ्रमर उड़ते हुए गोपियों के मध्य आकर गुनगुनाने लगता है । भ्रमर का स्वरूप उद्धव और श्रीकृष्ण के समान ही देखकर वे उपालम्भ पूर्वक उद्धव तथा श्रीकृष्ण - दोनों के प्रति हास्य एवं व्यंग पूर्ण अनेक युक्तियां कहती हैं । गोपियों की प्रेम विह्वलता इतनी बढ़ जाती है कि वे 'हा करुणामय नाथ हो केशो 'कृष्ण मुरारि ' कह कर इस प्रकार रो पड़ती हैं जैसे उनका हृदय ही फट कर बह चला हो । कृष्ण के प्रति गोपियों की प्रेमानन्यता देखकर उद्धव बहुत प्रभावित होते हैं और उनकी निर्गुण-सगुण अथवा कर्म और भक्ति सम्बन्धी रही सही दुविधा मिट जाती है । गोपियों की प्रीति की महिमा गाते हुए उद्धव मथुरा लौट जाते हैं और गद गद कंठ से श्रीकृष्ण के सम्मुख गोपियों के प्रति उनकी निष्ठुरता का उल्लेख करते हुए वृन्दावन में जा कर निवास करने और गोपियों को सुख देने का अनुरोध करते हैं । उद्धव की बातें सुनकर श्रीकृष्ण प्रेमावेश में अपनी सुध बुध भूल जाते हैं । उनका शरीर इस प्रकार रोमांचित हो जाता है मानों एक एक रोम एक एक गोपी हो गया हो । सुधि आने पर वे उद्धव के सम्मुख, अपने और गोपियों के अभिन्न होने की बात प्रकट करते हैं । कवि कहता है कि श्रीकृष्ण की इस सरस लीला का गान करके वह पवित्र होता है ।[3]

८५ भ्रमर गीत का प्रसंग भागवत दशमस्कन्ध के ४६ वें और ४७ वें अध्यायों में उपलब्ध होता है । यहां उद्धव कृष्ण का सन्देश लेकर नन्द बाबा के घर पहुंचते हैं ।[4]

१- न० ग्रं०, भंवरगीत, छन्द १३-२८ । २- वही, छन्द २६-४४ ।

३- वही, छन्द ४५-७५ । ४- भागवत, दशम स्कन्ध,

उन्हें कृष्ण की वेष भूषा में देखकर गोपियां उनका परिचय प्राप्त करने के लिए उत्सुक हो जाती हैं और यह ज्ञात होने पर कि वे कृष्ण का सन्देश लेकर आये हैं, तन मन एवं वचन से कृष्ण के स्वरूप में तल्लीन हो जाती हैं। वे उनकी लीलाओं का स्मरण करके उनका गान करने लगती हैं। इस गोपी को समीप ही एक भ्रमर गुनगुनाता हुआ दिखाई देता है। वह उस भ्रमर को सम्बोधित करके कृष्ण को उनकी निष्ठुरता के लिए उपालम्भ देती हैं। गोपियां उनके विविध चरित्रों का स्मरण करती हुई प्रेम विह्वल हो उठती हैं। उन्हें कृष्ण के दर्शन के लिए अत्यन्त उत्सुक और तड़पती हुई देखकर उद्धव सान्त्वना देते हुए उनकी प्रेम भरी भक्ति की महती प्रशंसा करते हैं। तब वे कृष्ण का सन्देश सुनाते हैं। इस सन्देश में कृष्ण ने अपने को सर्वात्मा, अखण्ड और अनन्त बताते हुए कहा था कि वे गोपियों से इसलिए दूर रहते हैं कि अशेष वृत्तियों से रहित सम्पूर्ण मन उनमें लगा कर गोपियां उनका अनुसरण करें और उन्हें सदा के लिए प्राप्त हो जांय। प्रियतम का सन्देश सुनकर गोपियों को बड़ा आनन्द होता है। उन्हें कृष्ण के स्वरूप और एक एक लीला का स्मरण होने लगता है। कृष्ण के शुभागमन की आशा ही उनका जीवन है। वे कृष्ण को अपना स्वामी और सर्वस्व बताती हुई कहती हैं, "हे ब्रज नाथ! तुम्हारा यह सारा गोकुल जिसमें हम सब हैं, दुख सागर में डूब रहा है, आकर रक्षा करो। गोपियों की प्रेम विह्वलता तथा कृष्ण में तन्मयता देखकर उद्धव, प्रेम और आनन्द से भर जाते हैं। पश्चात् ब्रजवासियों से विदा लेकर मथुरा लौट जाते हैं और वहां पहुंच कर ब्रजवासियों की प्रेममयी भक्ति का उद्रेक जैसा उन्होंने देखा, कृष्ण से कह देते हैं।[1]

८६ उपर्युक्त विश्लेषणों से ज्ञात होता है कि नन्ददास ने दशमस्कन्ध के ४६ वें और ४७ वें अध्यायों के उल्लेखों को ही अपने भंवरगीत के मूल आधार के रूप में ग्रहण किया है। उक्त दोनों स्थलों के अवलोकन से प्रकट होता है कि नन्ददास का भंवर गीत भागवत की भांति श्रीकृष्ण द्वारा उद्धव को ब्रज यात्रा की आज्ञा देने के प्रसंग से आरम्भ नहीं होता है प्रत्युत उद्धव द्वारा गोपियों को श्रीकृष्ण का सन्देश सुनाये जाने के अवसर से आरम्भ होता है, जैसा कि भंवरगीत की प्रथम पंक्ति से प्रकट है :

ऊधौ को उपदेश सुनौ ब्रज नागरी।[2]

१- [illegible]।

२- [illegible]

८७ भागवत में उद्धव द्वारा श्रीकृष्ण का सन्देश देने की बात भ्रमर गीत के बीच में भ्रमर उपाख्यान के उपरान्त दी गई है[1] किन्तु नन्ददास ने भ्रमर के आगमन के पूर्व ग्रन्थ के आरम्भ में ही उसे दिखाया है ।[2] इससे प्रिय सन्देश की सूचना यथा स्थान देने की योजना से उसमें स्वाभाविकता आ गई है क्योंकि उद्धव से भेंट होने पर उनके कुछ कहे बिना ही गोपियों द्वारा भ्रमर को संकेत करके वार्ता आरम्भ करने की अपेक्षा यह अधिक संगत प्रतीत होता है कि उन्होंने ही सन्देश लेकर आने की बात कही । दूसरी ओर, भागवत में गोपियों के पूछने पर भी उद्धव श्रीकृष्ण की कुशल अपने मुंह से नहीं कहते हैं, गोपियां ही कृष्ण के सन्देश को सुन लेने पर उनके सकुशल होने का अनुमान करती हैं ।[3] होना तो यही था कि गोपियों द्वारा पूछे जाने पर उद्धव कुशल समाचार देकर उत्तर देते । उधर नन्ददास की गोपियां उद्धव से ही कुशल ज्ञात करती हैं । यही नहीं नन्ददास के उद्धव प्रत्युत्तर में सन्देश भी प्रकट कर देते हैं कि वे ब्रजांगनाओं की कुशल जानने के लिए आये हैं और कृष्ण उन्हें शीघ्र ही मिलेंगे ।[4] इससे प्रसंग में, स्वाभाविकता की रक्षा सहज ही हो गई है ।

८८ भागवत की गोपियाँ स्वयं योग साधन के विषय में कोई चर्चा नहीं करती हैं, किन्तु नन्ददास की गोपियां ऐसी चेष्टायें करती हैं जिससे उन को उद्धव के 'जोग जुगत'[5] शब्द को सुनते ही, अपनी तर्क पूर्ण बुद्धि से जैसे योग साधन के ऊपर प्रेम साधन की विजय दिखाने का अवसर मिल गया हो । यही नहीं नन्ददास के उद्धव श्रीकृष्ण के निर्गुण रूप के प्रतिपादन के जितने भी प्रयत्न करते हैं वे सभी का खण्डन करती हैं और सगुणात्मक रूप की ही श्रेष्ठता सिद्ध करती हुई अन्त में कहती हैं कि हमें तो श्रीकृष्ण का सगुण रूप ही प्रिय है, इसी रूप में हमें करोड़ों निर्गुण ब्रह्मों का दर्शन होता है[6], यद्यपि नन्ददास ने भागवत के कर्म, योग साधन और निर्गुण ब्रह्म की भावना को भागवत से ही लिया है तथापि गोपियों के तर्क वितर्कों द्वारा सगुण भावना के समक्ष उसकी स्थिति को पर्याप्त रूप में स्पष्ट करने का उन्होंने मौलिक प्रयास किया है । इसी प्रकार भ्रमर के प्रति उपालम्भ के प्रसंग में भी कवि ने मौलिकता

१- दशमस्कन्ध, अ० ४७, श्लोक २८ । २- न०ग्रं०, पृ० १७२ ।

३- दशमस्कन्ध, अ० ४७, श्लोक ३६ । ४- न० ग्रं०, पृ० १७४, छन्द ६ ।

५- वही, पृ० १७५, छन्द ११ । ६- वही, पृ० १७५-७६ ।

की तार्किक वृत्ति का यथाशक्ति उपयोग करके उपालम्भ में मानों प्राण फूंक दिए हैं। साथ ही योग और निर्गुण भाव के प्रति हास्य और व्यंग्यपूर्ण उक्तियों का समुचित समावेश करके इस उपालम्भ को कवि, भागवत की अपेक्षा जिसके भ्रमर प्रति उपालम्भ प्रसंग में योग साधन या निर्गुण भाव का कोई समावेश नहीं हुआ है, अधिक हृदय स्पर्शी रूप में प्रस्तुत करने में सफल हुआ है। उसकी गोपियां प्रेमानन्यता की चरमावस्था को छूती हुई एक साथ ही इस प्रकार प्रलाप करने लगते हैं मानों प्रेम के प्रबल प्रवाह से उनका हृदय ही फट कर अश्रुरूप में बहने लगा हो।[1] यही नहीं इस प्रेम प्रवाह में उद्धव जैसे ज्ञानागत भक्त भी बह जाते हैं[2] और स्वयं भी प्रेम रस का लाभ प्राप्त करते हैं।

८८ गोपियों द्वारा श्रीकृष्ण के स्वरूप के स्मरण होने और उद्धव की ओर से ध्यान हटा कर श्रीकृष्ण से बातें किये जाने का नन्ददास ने स्पष्ट और विशद रूप में उल्लेख किया है[3]; जब कि भागवत में यह प्रसंग नहीं मिलता है और कृष्ण को संकेत करके अपनी विरह व्यथा प्रकट करने का उल्लेख भी जहां नन्ददास ने बारह छन्दों में दिया है[4] वहीं उसमें केवल एक श्लोक में मिलता है।[5] इसके अतिरिक्त गोपियां तन्मयता की अवस्था में उपालम्भ पूर्वक श्रीकृष्ण की निष्ठुरता की ओर संकेत करती हुई विस्तार में उनका चरित्र गान करती हैं।[6] किन्तु भागवत में ये कथन भ्रमर के प्रसंग में कहे गये हैं और उसमें केवल राम तथा वामनावतारों के चरित्रों का ही उल्लेख है। नन्ददास की गोपियां वामन, नृसिंह, परशुराम और राम के रूप में किये गये अनेक प्रतिकूल तत्वों के शमन कार्यों का तो स्मरण करती ही हैं, कृष्ण के रूप में रुक्मिणी हरण करके शिशुपाल का विवाह से वंचित करने का भी उल्लेख करती हैं।[7] यद्यपि रुक्मिणी हरण उद्धव के ब्रजागमन के अनेक वर्ष बाद उस समय हुआ जब श्रीकृष्ण द्वारिका में थे और इससे यह सन्देह उत्पन्न होता है कि शिशुपाल के विवाह का भावी प्रसंग गोपियों ने कैसे छेड़ा तथापि कवि इस सन्देह का समाधान यह कह कर देता है कि गोपियों के रोम रोम में [illegible] व्याप्त हैं जिससे उनके लिए

१- न० ग्रं०, पृ० [illegible], छन्द [illegible]। २- वही, छन्द ६१।

३- वही, पृ० [illegible]। ४- वही, पृ० [illegible], छन्द [illegible]।

५- [illegible] अध्याय [illegible], श्लोक १२।

६- न० ग्रं०, पृ० [illegible]। ७- वही, पृ० [illegible]।

भूत और भविष्य की कोई लीला गोपनीय नहीं हो सकती है ।[1] इस प्रकार कवि ने प्रसंग को मौलिक रूप में प्रस्तुत करने का प्रयास किया है ।

६० भ्रमर के प्रसंग में भागवत के इस कथन से कि भ्रमर मानों रूठी हुई गोपी को मनाने के लिए कृष्ण द्वारा भेजा हुआ दूत है,[2] स्थिति उतनी स्पष्ट नहीं होती जितनी कवि के कथन से । कवि कहता है कि मानों उद्धव का मन ही भ्रमर बन कर गोपी के चरणों पर झुकने के लिए प्रकट हो गया है ।[3] यहां भ्रमर द्वारा गोपियों के चरणों पर बैठने की अभिलाषा दिखाकर कवि ने उद्धव द्वारा गोपियों के सम्मुख पराजय स्वीकार करने की सूचना देने का यत्न किया है ।

६१ भागवत के अनुसार एक ही गोपी, जिसको श्रीकृष्ण की लीला का स्मरण हो रहा था, भ्रमर से उपालम्भ करती है, अन्य गोपियां इस उपालम्भ में भाग नहीं लेती हैं,[4] किन्तु नन्ददास का भ्रमर, ब्रजबाला वृन्द के बीच मध्य गुनगुनाता हुआ शोभित होता है तथा एक एक करके अनेक गोपियां उस भ्रमर को संकेत करते हुए उत्तर-प्रत्युत्तर और तर्क-वितर्क करने में हाथ बंटाती हैं ।[5]

६२ उद्धव द्वारा ब्रज यात्रा से लौटने के अवसर पर भागवत में केवल इतना ही उल्लेख है कि मथुरा पहुंच कर उद्धव ने श्रीकृष्ण को प्रणाम किया और उन्हें ब्रजवासियों की भक्ति के उद्रेक से परिचित कराया ।[6] नन्ददास ने अपने कल्पना-कौशल से उद्धव तथा श्रीकृष्ण के मध्य उक्त अवसर पर हुए वार्तालाप का रुचिर चित्र प्रस्तुत किया है । नन्ददास के उद्धव कृष्ण की करुणा पर सन्देह करते हैं क्योंकि उन्होंने प्रेममयी गोपियों को दुख के कूप में डाल रखा है । वे कहते हैं कि "हे श्याम आप प्रेम मयी गोपियों के साथ वृन्दावन में रहिए और उन्हें सुख दीजिए ।" नन्ददास के श्रीकृष्ण अपने में और गोपियों में कोई अन्तर न होने की बात को बड़ी स्पष्टता से प्रकट करते हैं ।[7] इस प्रकार का समावेश कवि कौशल की ही वस्तु जान पड़ती है ।

१- न० ग्र०, पृ० १७२ ।
२- द०स्कन्ध, अ० ४७, श्लोक ११ ।
३- न० ग्र०, पृ० १७३, छं० ३४ ।
४- द०स्क०, अ० ४७, श्लोक ११-२१ ।
५- न० ग्र०, पृ० १७८-८६ ।
६- द०स्क०, अ० ४७, श्लोक ६८ ।
७- न० ग्र०, पृ० १९५ ।

६३ भागवत के उद्धव गोपियों से श्रीकृष्ण का सन्देश लाने की बात कह कर तुरन्त सन्देश [सुनाने] सुनाने लगते हैं।[1] किन्तु नन्ददास सन्देश लाने की सूचना [देने] और सन्देश सुनाने की मध्यावधि में प्रेम-विवश गोपियों की जड़तावस्था के दिग्दर्शन कराने की मौलिक योजना प्रस्तुत करते हुए कहते हैं, `कि श्याम का नाम सुनते ही गोपियां ग्राम-धाम की सुधि भूल गईं, उनका हृदय प्रेमानन्द से भर गया और प्रेम रूप जो लता श्रीकृष्ण की वियोगाग्नि से फुलस गई थी, पुन: लहलहा उठी । उनके शरीर पुलकित हो गए, रोम खड़े हो गये, नेत्रों में आनन्दाश्रु छल छला उठे, कंठ रुंध गया और मुख से एक शब्द भी न बोल सकीं ।[2]

इसी प्रकार प्रियतम श्रीकृष्ण का सन्देश सुनकर गोपियों की मूर्च्छावस्था का चित्रण[3] भी नन्ददास की मौलिक सूफ के फलस्वरूप हुआ है; भागवत में यह चित्रण उपलब्ध नहीं होता है ।

६४ योग `साधना ` और `कर्म ` के उल्लेखों के अन्तर्गत `धूरि ` अथवा `कर्म धूरि ` विषयक भागवत में कोई उल्लेख नहीं मिलता है, नन्ददास ने अपने भंवर गीत में इसका समावेश किया है ।[3] इससे कवि को अपनी प्रेम भक्ति का प्रतिपादन करने में सहायता मिली है; उद्धव के मुख से योग साधना की ओर संकेत सुनते ही नन्ददास की गोपियां प्रेम को अमृत सदृश श्रेष्ठ और योग साधन को `धूल ` के सदृश तुच्छ समफती हैं । इस प्रकार गोपियों के परम विशुद्ध प्रेम की ओर कवि का संकेत दृष्टिगत होता है ।

६५ भागवत के [उद्धव] ब्रज लौटते हुए सीधे मथुरा में श्रीकृष्ण के पास पहुंचते हैं[4] और मार्ग में उनके मन में क्या विचार आये, इनकी ओर उसमें कोई संकेत नहीं है । यह तो सम्भव नहीं है कि ब्रज से मथुरा तक मार्ग को पार करने में जो समय लगा होगा उसमें उद्धव के मन में कोई विचार ही न आया हो । आया अवश्य होगा, किन्तु भागवत इस विषय में मौन है । उद्धव के इस समय के विचारों का उद्घाटन नन्ददास ने अपनी सहज कल्पना के सहारे कर दिया है :

१- द० स्क०, अ० ४७, श्लोक २८ । २- न० ग्र०, पृ० १८३ ।
३- वही, पृ० १८०-८१ । ४- दशमस्कन्ध, अ० ४७, श्लोक ६८ ।

ऐसे मन अभिलाष करत मथुरा फिरि आयौ ।
गद गद पुलकित रोम अंग आवेस जनायौ ।
गोपी गुन गावन लाग्यौ, मोहन गुन गयौ भूलि ।
जीवन कौं लै जा करौं पायौ जीवन मूरि ।
भक्ति कौ सार यह ।[1]

\+ \+ \+

ऐसे सोचत स्याम जबहिं राजत तहँ आगौं ।।[2]

६. नंददास के भंवर गीत के आधार सूत्रों के विषय में अन्तिम रूप से विचार करने से पूर्व उन सूत्रों का अवलोकन भी वांछनीय प्रतीत होता है जो भागवत दशमस्कंध के परे और भंवर गीत की रचना के पूर्व विद्यमान थीं । इस प्रकार के सूत्र अष्ट छाप के प्रसिद्ध महाकवि सूरदास के काव्य में उपलब्ध होते हैं ।[3] सूरदास ने ही भ्रमरगीत को भागवत से हिन्दी में लाने के कार्य का सूत्रपात किया है । इस महाकवि ने तीन भ्रमरगीतों का प्रणयन किया है । उनमें से एक दोहा चौपाई छंदों में लिखा गया है और भागवत का अविकल अनुवाद न होते हुए भी उसकी भावनाओं से पर्याप्त प्रभावित है । इसमें कवि ने दिखाया है कि श्रीकृष्ण के कहने पर उद्धव रथ द्वारा व्रज के लिए प्रस्थान करते हैं । व्रज में उनके आने पर गोपियों को संभ्रम होता है कि श्रीकृष्ण स्वयं आये हैं किन्तु यह ज्ञात होने पर कि श्रीकृष्ण नहीं आये, गोपियां मूर्च्छित हो जाती हैं ।[4] तभी नन्द उद्धव से मथुरा के कुशल समाचार पूछते हैं । उद्धव श्रीकृष्ण का सन्देश देते हुए कहते हैं कि बलराम जी सहित श्रीकृष्ण चार पांच दिन में ही आ जायेंगे । तदनन्तर, उद्धव श्रीकृष्ण की पत्रिका देते हैं और गोपियां अपनी विरह व्यथा प्रकट करती हैं । इसी में ही भ्रमर का प्रवेश होता है और गोपियां उसको संकेत करके उद्धव को उपालम्भ देती हैं ।[4] दूसरा भ्रमर गीत केवल एक ही छन्द में है जिसमें उद्धव का [illegible] को उपदेश, गोपियों द्वारा उपालम्भ और उद्धव द्वारा मथुरा जाकर श्रीकृष्ण के सम्मुख गोपियों का विरह वर्णन और

१- नं० ग्रं०, पृ० १८८ । २- नं० ग्रं०, पृ० १८८ ।

३- प० मानन्ददास ने भी भंवर गीत नाम से रचना की है । उसमें उपालम्भ के पद तो हैं किन्तु भ्रमर से सम्बद्ध पदों का उल्लेख नहीं है ।

४- [illegible]सागर, पद [illegible] ।

उसको सुनकर श्रीकृष्ण के मूर्छित होने का उल्लेख है। इसमें भ्रमर का कोई उल्लेख नहीं दिया गया है। तीसरा भ्रमर गीत ही, वस्तुत: अपने नाम को सार्थक करने योग्य है। इसमें सीधे उपालम्भों के साथ साथ भ्रमर से सम्बद्ध उपालम्भ भी दिये गए हैं। यहां उद्धव श्रीकृष्ण का सन्देश लेकर ब्रज में आते हैं। गोपियां यह समझती हैं कि श्रीकृष्ण स्वयं आये हैं किन्तु उनके न आने की बात जान कर वे अत्यन्त व्यथित हो जाती हैं। तदनन्तर उद्धव श्रीकृष्ण का पत्रांकित सन्देश गोपियों को देते हैं और अपना योग-सन्देश सुनाते हैं। गोपियों की विरह विह्वलता पुन: मुखर हो उठती है और इसी बीच में एक भ्रमर उड़ता हुआ आता है। गोपियां उसको संकेत करके उद्धव के प्रति उपालम्भ कहने लगती हैं। श्रीकृष्ण के प्रति प्रेमालाप और अपने प्रति गोपियों के उपालम्भों के सम्मुख उद्धव पराजित होकर सगुण भक्ति का पक्ष लेने लगते हैं। इसीलिए वे मथुरा लौटने पर श्रीकृष्ण के समक्ष स्वीकार करते हैं कि गोपियों के से विशुद्ध प्रेम के द्वारा भगवान् की प्राप्ति सहज ही हो सकती है।[१]

६७ सूरदास के उक्त भ्रमर गीतों का आधार भागवत दशम स्कन्ध के ४६ वें और ४७ वें अध्याय हैं। उक्त विश्लेषण से प्रकट है कि सूरदास ने भागवत के सूत्रों को लेकर अपनी कवि कल्पना के आश्रय से इस गीत को अनेक छन्दों में अनेक रूप से विकसित किया। भागवत के सम्बन्धित वर्णन और सूरदास के भ्रमरगीतों के साथ ही नन्ददास के भंवरगीत के अवलोकन से ज्ञात होता है कि कथा वस्तु के भंवर-गीत के-[illegible] आधार के सम्बन्ध में नन्ददास, सूरदास के भ्रमर गीतों की अपेक्षा भागवत के ही ऋणी हैं, किन्तु यह बात नहीं है कि सूरदास के भ्रमर गीत से उन्हें कोई प्रेरणा ही न मिली हो। छन्द की दृष्टि से तो नन्ददास ने सूरदास का ही अनुकरण किया है। सूरदास ने तीसरे भ्रमरगीत में रोला और दोहे के सम्मिश्रण से जिस छन्द का प्रतिपादन किया है उसी को नन्ददास ने अपने भंवर गीत में स्थान दिया है। नन्ददास ने उक्त मिश्रित छन्द के अन्त में जो दस मात्राओं की एक पंक्ति दी है, उसका भी समावेश सूरसागर के दान लीला वर्णन में मिल जाता है।[२] भागवत में कुब्जा का उल्लेख नहीं है और सूरदास ने अपने भ्रमर गीत में कुब्जा का वर्णन

१- सूरसागर, पद : ४७७०। २- वही, पद २२३६।

किया है ।[1] नन्ददास ने भी भंवरगीत में कुब्जा का उल्लेख किया है[2] जिसके लिए वे सूरदास के ही आभारी प्रतीत होते हैं । इसके अतिरिक्त भंवर गीत का आरम्भ ही नन्ददास ने सूरदास के अनुकरण पर किया है :

`ऊधौ को उपदेस सुनौ किन कान दै ।` ---- सूरदास
`ऊधौ को उपदेश सुनौ ब्रज नागरी ` ---- नन्ददास ।

६८ नन्ददास ने भागवत का आधार तो ग्रहण किया ही, सूरदास द्वारा प्रणीत भ्रमर गीत के भी विकसित रूप को लेकर ललित शैली में रचना करने का सफल प्रयास किया । इस प्रयास में जहां तक एक ओर उसने सूरदास की पत्र योजना और राधा के उल्लेखों को अपने भंवरगीत में स्थान नहीं दिया, वहीं दूसरी ओर संक्षिप्त कथा वस्तु को लेकर भी काव्य-सौष्ठव प्रस्तुत करने में अपनी स्वतन्त्र सूफ का परिचय दिया है । श्रीकृष्ण के सन्देश के विषय में नन्ददास ने सूर की पत्रिका की कल्पना को कदाचित् दो कारणों से छोड़ दिया । प्रथम यह कि ज्ञानी तथा तर्कशील उद्धव को अपने ज्ञान पर गर्व था जिससे वे श्रीकृष्ण के पास मौखिक सन्देश लेकर चल दिये । उन्होंने सम्भवत: यही सोचा कि वे भोली भाली गोपियों को सहज में ही शिक्षा दे देंगे । द्वितीय, यह कि नन्ददास भंवर गीत से पूर्व रुक्मिणी मंगल की रचना कर चुके थे ।[3] यद्यपि भागवत में रुक्मिणी हरण के प्रसंग में पत्र का उल्लेख नहीं है तथापि उसमें कवि ने पत्र द्वारा ही रुक्मिणी के सन्देश को श्रीकृष्ण के पास भेजने की योजना की है और इस प्रकार एक ग्रन्थ में पत्र योजना का उपयोग कर लेने के उपरान्त भंवर गीत में भी उसका उल्लेख ~~कर-लेने-के-उपरान्त~~ न करके कवि ने कदाचित् पुनरुक्ति दोष से बचने की चेष्टा की है ।

६९ नन्ददास के भंवर गीत का निम्नलिखित छन्दांश द्रष्टव्य है :

रुचिर चाप किधौं बधुव के अधर बसन रंग रात ।
अब ब्रज में आये कहा करन कौन की घात ।।
बात किन पातकी ।[3]

१- सूरसागर, पद : ४३८९ । २- नं० ग्रं०, पृ० १८५, छन्द ५४-५५ ।
३- नं० ग्रं०, पृ० १८८ ।

नन्ददास की कवित्व कौशल के अनुकूल होते हुए भी उक्त छन्द विप्रलम्भ के प्रतिपादन की दृष्टि से सूफी भाव धारा के अनुकूल प्रतीत होता है क्योंकि रुधिर पान की भावना सामान्यतः सूफी काव्य में ही उपलब्ध होती है।

१०० इस प्रकार भंवर गीत की कथा वस्तु और उसके आधार सूत्रों से सम्बद्ध उपर्युक्त विवेचन से प्रकट है कि भंवर गीत का मूल आधार भागवत दशम स्कन्ध होने पर भी वह भागवत का अविकल अनुवाद तो दूर, अविकल भावानुवाद भी नहीं कहा जा सकता है, क्योंकि कवि ने उसमें अपनी स्वतंत्र प्रवृत्ति के अनुकूल अनेक परिवर्तन करके नवीन रूप में प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। पर्फ

अपने उक्त प्रयास में उसे सर्व प्रथम, आधार ग्रन्थों की उस सामग्री को ग्रहण न करने का लोभ संवरण करना पड़ा है जो उसकी भावना के प्रकाशन के मार्ग में अनावश्यक थी। यथा, इधर दशम स्कन्ध के ४६ वें अध्याय की सामग्री को तो उसने भंवर गीत में स्थान नहीं ही दिया, ४७ वें अध्याय के भी अनेक प्रसंगों को छोड़ दिया है, उधर, सूरदास द्वारा अपनाये गये भागवत से स्वतन्त्र, कुब्जा और राधा के उल्लेखों में से कुब्जा को तो स्थान दिया किन्तु राधा का कोई वर्णन न देकर अपनी स्वतन्त्र प्रवृत्ति का परिचय दिया है।

द्वितीय, कवि ने भागवत के कथनों को अपने ढंग से स्पष्ट करते हुए नवीन रूप में प्रस्तुत किया है। अनेक स्थलों पर कथा सूत्र समान होने पर भी उनमें नाटकीयता के समावेश से नवीनता आ गई है। भागवत के अति संक्षिप्त स्थलों को भी कवि ने इस तत्परता से विकसित किया है कि उसमें कृत्रिमता लेश मात्र को भी नहीं आने पाई। यथा, श्रीकृष्ण को सम्बोधित करके गोपियों द्वारा विरह व्यथा प्रकट करने का उल्लेख भागवत में केवल एक श्लोक में उपलब्ध होता है।[१] किन्तु भंवर गीत में एक पूरा उपाख्यान ही श्रीकृष्ण के प्रति उपालम्भ से सम्बद्ध है जो १६ छन्दों में वर्णित है।[२] इसी प्रकार भागवत के उद्धव ब्रज से मथुरा लौटने पर श्रीकृष्ण को [illegible]लियों की भक्ति का उद्रेक बताते हैं किन्तु इस उद्रेक के प्रभाव से उद्धव श्रीकृष्ण

१- दशमस्कन्ध, अ० ४७, श्लोक ५१। २- नं० ग्रं०, पृ० १८९-९२।

के सम्मुख किस रूप में उपस्थित होते हैं । इसका कोई स्पष्ट चित्र उस में नहीं दिया गया है, नन्ददास ने वस्तुस्थिति को स्पष्ट कर दिया है जिससे प्रकट होता है कि उद्धव गोपियों के प्रेमातिरेक से इतने प्रभावित हुए कि श्रीकृष्ण के दर्शन करते ही गोपियों के प्रति उनकी निर्दयता पर उन्हें क्रोध हो आया और कृष्ण से ब्रज में जाकर गोपियों का दुख दूर करने का आग्रह करने लगे ।[१]

तृतीय, भंवर गीत में कवि ने वृतान्तों को उसी क्रम में नहीं दिया जिसमें वे भागवत में मिलते हैं और उसमें यथेष्ट परिवर्तन करने में उसने कोई संकोच नहीं किया है । यथा, भागवत में उद्धव द्वारा श्रीकृष्ण का सन्देश लाने का उल्लेख[२], भ्रमरोपाख्यान के उपरान्त किया गया है किन्तु नन्ददास ने भंवरगीत के आरम्भ में ही उसे स्थान दे दिया है ।[३] भागवत में गोपियां [illegible] की कुशल उस स्थल पर पूछती हैं जहां पर भ्रमर प्रति उपालम्भ समाप्त होने को होता है,[४] नन्ददास की गोपियां उद्धव के आदर सत्कार के तुरन्त उपरान्त उद्धव से श्रीकृष्ण की कुशल पूछती है ।[५] उद्धव जी को गोपियों द्वारा पराजित दिखाने के लिए प्रेमाभक्ति के सिद्धान्तों के तर्कों का तो क्रम इस प्रकार रक्खा गया है कि उद्धव के तर्क [illegible] के तर्कों के सम्मुख स्पष्टत: निर्बल प्रतीत होते हैं ।

चतुर्थ, इस गीत में कवि ने ऐसी सूझ और उद्भावनाओं का समावेश किया है जो स्वतन्त्र और मौलिक ज्ञात होती है तथा कवि के व्यक्तित्व का यथार्थ प्रकाशन करती हैं । इस सम्बन्ध में यहां कहा जा सकता है कि भागवत के भंवर गीत के प्रसंग से कवि ने आधार सूत्रों का चयन किया और सूर कृत भ्रमर गीत से प्रेरणा प्राप्त की, योग साधन और निर्गुणवाद के अवरोधों से सतर्क रह कर प्रेम भक्ति के प्रतिपादन में वह कृष्ण प्रेम से व्याकुल अपने हृदय को लेकर कुशल कवित्व शक्ति के सहारे तन्मयता की उस भूमि की ओर अबाध क्रम से अग्रसर हुआ जहां [illegible] के स्वरूप के अतिरिक्त अन्य कोई वस्तु थी ही नहीं । [illegible] प्रेम की एकान्त प्राप्ति हेतु कवि को निर्गुण – सगुण के खण्डन – मण्डन का सहारा लेना पड़ा और वह उसी

१- न० ग्रं०, [illegible] १८८-८९ ।
२- [illegible] – [illegible], श्लोक ४८ ।
३- [illegible], श्लोक २८ ।
४- न० ग्रं०, पृ० १८३, छन्द २ ।
५- न०ग्रं०, पृ० १८५, छन्द १ ।

की प्रतिमा थी कि ऐसे शुष्क प्रसंग को, नीरस होने से बचा सके । तर्क-वितर्कों को भी उसने बड़े रुचिर ढंग से संजोया है । विशेषता तो यह है कि गोपियों पर प्रभाव डालने के लिए उद्धव अपने ज्ञान, कर्म और योग का ढिंढोरा पीटते जाते हैं किन्तु गोपियों की श्रीकृष्ण के प्रति प्रेम भक्ति दृढ़तर होती जाती है ।

उद्धव ने अपने ज्ञान की प्रखर किरणों से गोपियों के प्रेमासक्त हृदय को निराम्बु करने की चेष्टा क्या की, वे किरणें ही गोपियों के लिए स्नेह सलिल की वर्षा का कारण बनीं जिससे गोपियों के तो आभूषण हार, कंचुकी आदि भीग ही गये, उसके प्रवाह में उद्धव भी बह गये । यही नहीं कवि ने गोपियों को वियोगा-वस्था की उच्च भाव भूमि में पहुंचाकर उन्हें प्रियतम के स्वरूप का प्रत्यक्ष अनुभव भी करा दिया । इस प्रकार वियोग में ही संयोग की अनूठी योजना कवि ने की है ।

यह भी कितना स्वाभाविक और मनोवैज्ञानिक है कि कोई भी व्यक्ति जागृतावस्था में अधिक समय तक विचारों से मुक्त नहीं रह सकता है । उद्धव ब्रज से मथुरा तक के लम्बे मार्ग को पार करें और उनके मन में भागवत के अनुसार कोई विचार ही न आये, यह कैसे हो सकता है ? नन्ददास ने अपनी पैनी कल्पना शक्ति के सहारे मार्ग में सोचे गये उद्धव के विचारों का उद्धार किया है ।

गोपियों का तो सच्ची प्रेमिकाओं के रूप में परिचय कवि ने कृति के आरंभ में दे दिया, और उनके विशुद्ध प्रेम की पुष्टि भी छन्द प्रति छन्द में की ही, श्रीकृष्ण को भी प्रेम विह्वलता की स्थिति में चित्रित करके प्रसंग का अत्यन्त सुखद अन्त भी प्रस्तुत कर दिया ।

वस्तुत: भंवर गीत की गोपियां, नन्ददास के श्रीकृष्ण स्नेह-सिक्त हृदय का ही प्रतिनिधित्व करती जान पड़ती है, इसीलिए तो वे श्रीकृष्णानुग्रह के इस प्रसंग का गान करके पवित्र होने की बात कहते हैं ।

१०१ अत: स्पष्ट है कि भंवर गीत में कवि ने [illegible] के द्वारा निर्गुण पर सगुण की जय कराई, ज्ञान और योग पर प्रेमभी भक्ति की श्रेष्ठता दर्शायी है । ऐसा करते समय सिद्धों के योग साधन और सन्तों के निर्गुणवाद की अवहेलना और विरोध करना भी कवि का अभीष्ट रहा हो तो असम्भव नहीं । इस गीत की रचना जहां एक ओर दशम स्कन्ध के आधार पर की गई है, वहीं दूसरी ओर सूर के भ्रमर गीत

से कवि को प्रेरणा मिली है। यहां कवि ने प्रेममयी भक्ति का जिस तर्क विज्ञपूर्ण ढंग से प्रतिपादन किया है वह उसकी अपनी ही वस्तु है। कवि ने आधार ग्रन्थ के उन प्रसंगों को तो पर्याप्त विस्तार दिया जो प्रेम भक्ति से अधिक सम्बन्धित थे किन्तु जो उसकी उक्त भावना के किंचित भी प्रतिकूल थे अथवा जिनका प्रेम भक्ति से विशेष सम्बन्ध न था, उन्हें कवि ने अपने गीत में कोई स्थान नहीं दिया। इसमें वृत्तान्तों में स्वाभाविकता और मनोवैज्ञानिकता के समावेश से रुचिरता तो आई ही है, उनका क्रम भी कवि की भावना के अनुकूल ही बन पड़ा है; यहां प्रेम के समक्ष सभी तर्क क्षीण होते जाते हैं। भंवरगीत में कवि ने प्रेम लक्षणा भक्ति के समर्थन के साथ साथ अपनी स्वतन्त्र सूझ और नवीन उद्भावना शक्ति का जैसा परिचय दिया है उससे उसके व्यक्तित्व का यथार्थ प्रकाशन हुआ है। भंवर गीत में ही कवि की भावना का परम उद्रेक और कला का चरम प्रस्फुटन देखने को मिलता है। यह कहना कि पचहत्तर छन्दों का यह छोटा सा ग्रन्थ अपनी भाव और कलापूर्णता के कारण कवि को उच्च स्थान दिलाने के लिए पर्याप्त है, असंगत न होगा।

पदावली

१०१ नन्ददास अपनी उपर्युक्त कृतियों के लिए ही प्रमुखतः स्मरण किये जाते हैं। किन्तु उक्त ग्रन्थों के साथ साथ उन्होंने पदों की भी रचना की है। खेद का विषय है कि अभी तक उनके सभी पदों का कोई प्रामाणिक संग्रह प्रकाश में नहीं आया है। बाबू ब्रज रत्न दास जी ने जो प्रयास किया है उसके परिणाम स्वरूप नन्ददास ग्रन्थावली में केवल १६५ पदों का ही ऐसा संग्रह हो पाया है।

१०२ नन्ददास ग्रन्थावली में संगृहीत पदों के अवलोकन से ज्ञात होता है कि प्राय: सभी पदों की रचना कवि ने अपने आराध्यदेव श्रीकृष्ण अथवा गुरु [illegible] जी के सम्मुख कीर्तन-भजन करने के प्रयोजन से की होगी। दो पद ऐसे भी मिलते हैं जिनका सम्बन्ध राम कृष्ण के अभेदत्व से है,[१] एक पद जानकी जी[२] तथा दो पद हनुमान जी[३] की महिमा से भी सम्बन्धित है।

१- [illegible] पृ० [illegible]। २- वही, पृ० २४।

३- वही, पृ० [illegible]।

१०४ विट्ठलनाथ जी से सम्बन्धित पदों से प्रमुखत: यह प्रकट होता है कि कवि उन्हें गिरिधर का अवतार मानता था और उनके प्रति उसकी अमित श्रद्धा थी । ब्रज महिमा वाले पदों से कवि की ब्रज के प्रति आसक्ति प्रकट होती है ।[1] श्रीकृष्ण-जन्म और बधाई[2], बाल क्रीड़ा[3], राधा जन्म[4], राधा का पूर्वानुराग, राधा कृष्ण विवाह,[5] प्रेम लीला,[6] मान लीला[7] पर भी यद्यपि कवि के कीर्तन के पद मिलते हैं तथापि अधिकांश पदों का विषय ब्रजबाला प्रेम[8], छाक लीला[9], दान लीला[10], गोवर्द्धन लीला[11], रास लीला,[12] त्योहार,[13] वर्षा[14], फाग लीला[15] आदि से सम्बन्धित है । इन सभी पदों में कवि का कृष्णानुरक्त भक्त हृदय झांकता हुआ दृष्टिगत होता है ।

१०५ कवि के उपर्युक्त सभी पद स्वतन्त्र रूप से लिखे गए जान पड़ते हैं । यह कहा जा चुका है कि इन पदों की रचना सम्प्रदाय गुरु और इष्टदेव के सम्मुख कीर्तन के लिए की गई है । अत: इन पर सम्प्रदाय की भावनाओं का प्रभाव होना स्वाभाविक है । नन्ददास, अष्ट छाप के भक्तों के प्राय: समकालीन थे और सभी अष्टछापी भक्त श्रीनाथ जी के ही सम्मुख कीर्तन गान करते थे । अत: उनके पदों में भावनात्मक और पदात्मक साम्य होना अस्वाभाविक नहीं है ।

निष्कर्ष

१०६ इस प्रकार उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि कवि ने अपने काव्य में जिस कथावस्तु को स्थान दिया है, [illegible] रूप में उसका श्रीकृष्ण से सहज सम्बन्ध है

१- न० ग्रं०, पृ० ३३१ ।
२- वही, पद, २३-३० ।
३- वही, पद ३१-५१ ।
४- वही, पद ५२-५३ ।
५- वही, पद ५४-६१ ।
६- वही, पद ६२-७३ ।
७- वही, पद १२०-४५ ।
८- वही प,द ७४-९० ।
९- वही, पद १०८-१२ ।
१०- वही, पद ११३-१५ ।
११- वही, पद ११६-१८ ।
१२- वही, पद ११९-२६ ।
१३- वही, पद १८९-१९४ ।
१४- वही, पद १४६-७२ ।
१५- वही, पद १७३-८१ ।

और जो उनसे असम्बन्धित प्रतीत होती है, वह अल्प है। जैसे, हनुमान, जानकी और राम सम्बन्धी पद, अनेकार्थ भाषा और नाम माला में आये हुए शब्द तथा रस मंजरी में उल्लिखित नायक-नायिका भेद। किन्तु किंचित गहनता से विचार करने पर प्रकट हो जाता है कि वस्तुत: कवि ने श्रीकृष्ण से इतर किसी से सम्बंधित वर्णन किया ही नहीं; राम और कृष्ण में वह कोई भेद नहीं मानता, अनेकार्थ भाषा भाषा के शब्दार्थों को कृष्ण अथवा कृष्ण नाम महिमा द्वारा स्पष्ट करता है, नाम माला के प्रत्येक नाम का सम्बन्ध राधा कृष्ण प्रेम से दिखाता है और रस मंजरी की नायिकाओं के आलम्बन रूप में श्रीकृष्ण के स्वरूप को भी अनिवार्यत: श्रोता या पाठकों के सम्मुख रखता है। यह और बात है कि कहीं उनका नाम दिया हो और कहीं काव्य या विषय के आग्रह से अनावश्यक समझ कर छोड़ दिया हो। कथावस्तु के विषय में यह उल्लेखनीय है कि कवि की प्रमुख कृतियों की कथावस्तु विरह मय है और विरह के प्रति ही उसकी विशेष प्रवृत्ति दृष्टिगत होती है। वह विरह द्वारा ही अपने इष्ट का सान्निध्य प्राप्त करता है।

स्मरणीय है कि कवि वल्लभ सम्प्रदाय में दीक्षित था और इस सम्प्रदाय के प्रवर्तक आचार्य वल्लभ के सभी ग्रन्थ संस्कृत में थे। उक्त सम्प्रदाय का मान्य ग्रन्थ श्रीमद्भागवत भी संस्कृत में ही था। अत: साम्प्रदायिक सिद्धान्तों से पूर्ण परिचय प्राप्त करने के लिए कवि ने स्वयं तो संस्कृत का अध्ययन किया ही, पुष्टि मार्ग के प्रति आस्था रखने वाले असंस्कृतज्ञों को संस्कृत का ज्ञान कराने का भी प्रयास किया जिसके फलस्वरूप अमर कोष और अनेकार्थ समुच्चय आदि कोष ग्रन्थों के आधार पर अनेकार्थ भाषा और नाममाला में संस्कृत शब्दों के अर्थ एवं नाम लिखे गये। इन दोनों कोष ग्रन्थों में आये हुए भक्ति विषयक [illegible] के समावेश से प्रकट होता है कि कवि ने संस्कृत न जानने वालों के लिए जहां एक ओर संस्कृत का ज्ञान कराने की चेष्टा की वहीं दूसरी ओर उनके हृदय में भक्ति का संचार भी करना चाहा। कवि की यह चाह मंजरी ग्रन्थों में और भी मुखर रूप में दृष्टिगत होती है। कलियुग में भगवान् को प्रेम द्वारा ही प्राप्त किया जा सकता है अत: कवि प्रेम तत्व का ज्ञान कराने के लिए ही रसमंजरी और रूपमंजरी की रचना करता है तथा विरह मंजरी में इस बात की ओर संकेत करता है कि उसके पढ़ने और मनन करने से सिद्धान्त तत्व को जाना जा सकता है। रूपमंजरी और विरह मंजरी में कवि ने भगवद्स्वरूप को अनुभव के

लिए जिस प्रेम का अवलम्ब ग्रहण किया है वह पुष्टि मार्ग के नितान्त अनुकूल ठहरता है। कवि का भक्ति विषयक दृष्टिकोण अपने स्वतन्त्र रूप में सर्वप्रथम इन्हीं दो ग्रन्थों में मिलता है।

रुक्मिणी मंगल, रास पंचाध्यायी, सिद्धान्त पंचाध्यायी और भंवर गीत की रचना के लिए कवि भागवत दशमस्कन्ध का आभारी है। भागवत का आधार ग्रहण करते हुए भी कवि अपनी मौलिक प्रवृत्ति के कारण इन्हें नवीन रूप में प्रस्तुत करने में पूर्ण सफल हुआ है। यहां एक दृष्टव्य है कि भागवत कार ने जहां एक और प्रेममयी भक्ति को श्रेष्ठता प्रदान की है वहीं दूसरी ओर ज्ञानादि साधनों का भी आश्रय ग्रहण किया है, इसमें से नन्ददास ने प्रेममयी भक्ति के पक्ष का ही समर्थन किया है और ज्ञानादि प्रसंगों को छोड़ दिया है। ऐसा उसने पुष्टि मार्गीय प्रेम लक्षणा भक्ति के प्रभाव से ही किया है।

श्याम सगाई, रूपमंजरी और विरहमंजरी से प्रकट होता है कि छोटे से प्रसंग को लेकर सम्बद्ध कथा का रूप देने में कवि को पर्याप्त सफलता मिली है। उसके कथा प्रसंगों में सर्वत्र ही सरलता एवं अकृत्रिमता के दर्शन होते हैं और वे सभी प्रेम-भक्ति के रंग में रंगी रंगी हुए दृष्टिगोचर होते हैं, तथा उनमें कवि का भक्त हृदय निरन्तर झांकता हुआ प्रतीत होता है। जिस प्रकार कवि के इष्टदेव कृष्ण सर्व भाव भगवान् हैं, उसी प्रकार उसकी कृतियां किसी भी मनुष्य को उसकी भावना के अनुसार रससिक्त करने में समर्थ है। भक्तों के लिए भगवद् प्रेम और लौकिकों के लिए मनोरंजन की प्रचुर सामग्री उनमें मिलती है।

हिन्दी साहित्य को नवीन दिशा की ओर ले जाने का प्रयास भी कवि की कृतियों में देखा जा सकता है। अनेकार्थ भाषा और नाम माला में शब्दों के अर्थ और पर्याय लिख कर कवि ने शब्द कोष विषयक अपने ढंग की नवीन सामग्री प्रस्तुत की है। रसमंजरी, नायक [illegible] भेद पर प्रकाश डालने वाली हिन्दी के [illegible] ग्रन्थों में से है। विरह मंजरी में विरह के परम्परागत भेदों का [illegible] न करके नितान्त नवीन भेदों की ओर संकेत किया गया है जिनमें विस्तार न होकर गंभीरता है और वो कवि की भावानुभूति की [illegible] है। भंवरगीत में भाव [illegible] के साथ अपनी [illegible] के प्रतिपादन के लिए कवि ने जिस तार्किक शैली को ग्रहण किया है, वह भी [illegible] साहित्य में प्रथम ही नहीं बेजोड़ है। इन कृतियों में [illegible] विरह भी अपने ढंग का अनोखा ही है।

कवि का मत है कि वास्तविक सुख की प्राप्ति इस लोक की वस्तुओं द्वारा नहीं अपितु भगवान के स्वरूपानुभव द्वारा ही हो सकती है। यही कारण है कि कवि के जिस कृत्योद्यान की ओर जाएं वहीं भगवद् प्रेम-पुष्प के सौरभ का अनुभव होता है। गुरु महिमा, सत्संग, लोक विरति, तड़पाने वाला विरह और भगवदनुग्रह के भी सर्वत्र ही दर्शन होते हैं। यहां लौकिक प्रतीत होने वाले श्रृंगार के वर्णनों के मूल में अलौकिक भाव धारा निरन्तर विद्यमान रहती है। वस्तुत: कृतियों में आये हुए समस्त वृत्तान्त कवि के आध्यात्मिक पक्ष का प्रकाशन करते हैं।

गोपियों का श्रीकृष्ण के प्रति प्रेम ही कवि का आदर्श है। इसीलिए उसने गोपी - कृष्ण मिलन — रास, का बड़े मनोयोग से वर्णन किया है। गोपी-कृष्ण प्रेम की परिणति भंवर गीत में उस स्थल पर दृष्टिगत होती है जहां कृष्ण अपनी और गोपियों की अभिन्नता का उद्धव के सम्मुख प्रदर्शन करते हैं। यहीं पर नन्ददास भी कृत कृत्य हो जाते हैं। कलात्मक ढंग से प्रस्तुत इसी प्रेम के प्रसाद से कवि का काव्य इतना हृदय ग्राही हो गया है कि सहृदयों पर एक बार के संसर्ग से ही उसका प्रबल प्रभाव परिलक्षित होने लगता है; पाठक या श्रोता उसी के साथ तन्मयावस्था को प्राप्त हो जाता है।

यद्यपि नाम माला और रस मंजरी में आधार ग्रन्थों की ओर स्पष्ट उल्लेख मिलता है तथापि रुक्मिणी मंगल से पूर्व के ग्रन्थों की रचना सामान्यत: विविध ग्रन्थों के अध्ययन के फलस्वरूप प्राप्त ज्ञान के आधार पर स्वतन्त्र रूप से की गई ज्ञात होती है। रुक्मिणी मंगल और उसके उपरान्त की कृतियों की रचना के लिए जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, कवि ने आधार सूत्रों को भागवत दशम स्कन्ध से लिया है किन्तु उनको वर्तमान रूप में प्रस्तुत करने का श्रेय उसकी स्वतन्त्र सूझ, कवि सुलभ कल्पना और मौलिक चिन्तना शक्ति एवं प्रवृत्ति को है; इनसे उसकी कृतियाँ अधिकांशत: नवीन काव्य के रूप में सम्मुख आती हैं जिसमें कवि अपने हृदयस्थ भावसागर में सबको निमग्न करता हुआ अग्रसर होता है। यही उसकी कृतियों में आई हुई कथावस्तु की गुरुता है जिसके कारण उसका नाम उच्च कोटि के कलाकारों के साथ लिया जा सकता है।

अध्याय ५

कृतियों में प्राप्त दार्शनिक तत्व

५

कृतियों में प्राप्त दार्शनिक तत्व

१ कवि की कृतियों में आई हुई कथावस्तु और उसके आधार से परिचय प्राप्त कर लेने पर उनमें निहित उन तत्वों की ओर दृष्टि जाना है जिनमें उसके दार्शनिक रूप को प्रश्रय मिला है। नीचे विभिन्न शीर्षकों के अन्तर्गत इन्हीं तत्वों पर प्रकाश डाला गया है।

[illegible]

२ कवि का कहना है कि श्रीकृष्ण परमात्मा परब्रह्म और नारायण हैं तथा सबके अन्तर्यामी हैं।[१] वे धर्म स्वरूप और सबके स्वामी हैं। वे इन्द्र के इन्द्र, देवताओं के देव, ब्रह्म के ब्रह्म, काल के काल, ईश्वरों के ईश्वर, वरुण के वरुण, शिव के धनुष और सन्तों के सर्वस्व हैं। उनकी महिमा वेद और पुराणों में गाई गई है।[२] उनके सुन्दर शरीर में बाल कुमार और पौगण्ड अवस्थाएं साथ साथ प्रकट हैं तथा तीनों ही अवस्थाओं के धर्मों का निर्वाह वे अपने सुन्दर शरीर से करते हैं।[३] वे अनावृत हैं,[४] उनका मन [illegible] है, वे दुष्ट मद के हरने वाले हैं और परम धर्म की रक्षा करने वाले हैं।[५]

३ श्रीकृष्ण ही नाम, रूप और गुणों के भेद से सर्वत्र प्रकट हैं तथा उनसे रहित कोई भी तत्व नहीं है।[६] उनके रूप, गुण और कर्म भी अपार हैं, वे परम धाम तथा जग धाम हैं।[७] एवं आगम और निगम और पुराण उनकी निःश्वास हैं।[८] उनका सुन्दर मोहन रूप करोड़ों को मोहित करने वाला है[९] और इस मोहन रूप को प्राप्त कर लेने के पश्चात कुछ भी प्राप्त करना शेष नहीं रह जाता। इसलिए सभी नियम जप, तप और धर्म उनको प्राप्त करने के लिए ही किए जाते हैं।[१०] उनका स्वरूप अनन्त भी है और एक भी।[११] वे [illegible] हैं,[१२] और अखण्डानन्द ईश्वर हैं।[१३] उनकी चरण रज

१-भा० पु०, पृ० ६, छन्द ३५। २- वही, पृ० २५३, पद ६१। ३-वही, पृ०६, छंद ३६। ४-वही, पृ० [illegible], छन्द ३८। ५- वही, पृ० ११, छंद ५० । ६-वही, पृ०७६, दो० ९। [illegible], पृ०[illegible], छन्द १। [illegible], पृ०[illegible], छन्द २। ९-वही, पृ०११, छन्द ८२।

की ब्रह्मा, शिव और लक्ष्मी खोजते हैं और उसे शिरोधार्य करके अपने दोषों का निवारण करते हैं।[1] सनकादि, नारद और शारदादि भी इस रज के अनुरागी हैं[2] तथा लक्ष्मी तो अन्य सब कुछ छोड़कर भी इनके चरणों पर पड़ी रहती है।[3] यद्यपि वे निगमों के लिए भी नितान्त अगम हैं तथापि रंगीले प्रेम द्वारा उनका सान्निध्य प्राप्त हो जाता है।[4] वे आत्माराम हैं, किन्तु प्रेमवश अन्यत्र भी रमण करते हैं।[5]

४ योगी अनेक जन्मों तक तपस्या करते हैं फिर भी उन्हें प्राप्त नहीं कर पाते।[6] अवतार धारण करने वाली जितनी भी विभूतियां हैं श्री कृष्ण उन सबके आधार हैं।[7] संसार में जो कुछ रस है उसके भी आधार वे ही हैं।[8] जगत के वे जीवन हैं,[9] जगत के वे रक्षक हैं[10] और त्रिभुवन नायक हैं।[11] वे सम्पूर्ण जगत के एक मात्र मित्र हैं।[12] वे काल-कर्म और प्रलय के समय सभी उनमें लीन होते हैं।[13] वे काल कर्म और योगमाया के स्वामी हैं।[14] माया उनके वश में रहती है।[15]

५ उनका हृदय प्रेम ~~और-परम-सुखमय-है-जिनसे-सभी-काम्य-कर्म,-अज्ञान-और~~ समुद्र के समान है[16] और इस प्रेम समुद्र में यदि मन डूब गया तो फिर नहीं निकल सकता।[17] वे परमेश्वर और परम सुखमय हैं जिनसे सभी काम्य कर्म, अज्ञान और संसार के महान दुखों का अन्त हो जाता है।[18]। भव सागर से पार लगाने वाले भी ये ही हैं[19] और इन्हें जाने बिना आवागमन से छुटकारा नहीं मिल सकता।[20] वे अजन्मा हैं।[21]

६ वे कामना कल्पतरु हैं।[22] और सबकी मनोकामनाओं की पूर्ति करते हैं।[23] जो उन्हें जिस भाव से स्मरण करता है उसे उसी भांति प्राप्त होती है।[24] वे सर्व

१-न० ग्र०, पृ० ४४, छंद ८३। २-वही, पृ० २७२, छंद २३। ३-वही, पृ० ५२, छन्द६०।
४-वही, पृ०१४३, दो० ५३४। ५-वही, पृ०४२, छन्द ६२। ६-वही, पृ०१२९, पं० २४९।
७-वही, पृ० ४४, छन्द ७९।८-वही, पृ०१४४, पं० ७। ९-वही, पृ० ५३, दो० ३०।
१०-वही, पृ०५६, दो०४१। ११-वही, पृ० २४५, छन्द६२। १२-वही, पृ०६२, छं० १०८।
१३-वही, पृ०१७, दो० ६१। १४-वही, पृ०३१, छन्द १०। १५-वही, पृ० ३८, छं० ५।
१६-वही, पृ०३९, छं० २४। १७-वही, पृ०१२७, पं०२१४। १८-वही, पृ०४६, छं० १०८।
१९-वही, पृ०१२६, पं०[illegible]। २०-वही, पृ०१०७, दो०२६४। २१-वही, पृ०५९, दो० ८२।
२२-वही, पृ०२०६, छं० ९२। २३-वही, पृ०२०, छन्द ९। २४-वही, पृ०१४१, पं०४९०।

भाव भगवान हैं,[१] इसलिए किसी भी भाव से उनसे सम्बन्ध हो जाने पर परम गति को मिलती है । उदाहरणार्थ, शिशुपाल ने उनके प्रति बाल्यावस्था से ही शत्रुता का भाव रक्खा, फिर भी उसको श्रीकृष्ण ने सहज ही वह गति प्रदान की जो योगियों और मुनियों को भी दुर्लभ होती है ।[२]

७ श्री कृष्ण ही नारायण भगवान हैं, सबके आश्रय हैं और नन्दनन्दन हैं ।[३] ये जगत के कारण हैं और करुणायतन हैं[४]। यद्यपि ये नन्द यशोदा के पुत्र हैं किन्तु सम्पूर्ण विश्व उनमें निहित है और उन्होंने लीला के लिए ही अवतार धारण किया है[५]। श्रीकृष्ण के रूप में अवतरित होने से पूर्व भी ये नृसिंह, वामन, परशुराम और श्री राम के रूप में अवतार धारण कर चुके थे[६]। कवि के मतानुसार श्रीराम तथा श्री कृष्ण में कोई अन्तर नहीं है ।[७]

८ इसके अतिरिक्त, नन्ददास द्वारा श्रीकृष्ण का आध्यात्मिक परिचय देने का प्रयत्न, एक ही स्थल --रूप मंजरी ग्रन्थ में उपलब्ध होता है । वहां पर कुछ स्त्रियों से रूपमंजरी प्रश्न करती है कि श्रीकृष्ण कौन हैं ? उसके उत्तर में ये स्त्रियां कहती हैं कि उनका ही यह सारा संसार है । पृथ्वी, आकाश, चन्द्रमा, सूर्य, तारे, नदियां, बड़े बड़े पहाड़ और सभी नर नारियों की रचना उन्होंने ही की है । रूप मंजरी के पुन: यह पूछने पर कि वे कहां रहते हैं, एक वयस्क स्त्री उत्तर देती है कि वह सबको देखता है किन्तु उसको कोई नहीं देख पाता । फिर भी पंडित लोग कहते हैं कि वह सर्वत्र व्याप्त है और [illegible] उसकी गाथा गाते समय किसी गोकुल ग्राम का नाम लेते हैं जहां वह सदा निवास करता है । उस गोकुल ग्राम के नन्द उनके पिता और यशोदा उनकी माता है तथा गिरिधर लाल के नाम से वे स्वयं जगत में विख्यात हैं ।[८]

९ श्रीकृष्ण नाम के विषय में कवि का कथन है कि उनका नाम अमृत का भी अमृत है[९]। वह सागर के मध्य में नाव के समान मूल रूप है[१०]और जितने ही सब नाम

१- न० ग्रं०, पृ० ६, छन्द ६३ । २-वही, पृ० १०, छंद ६४ । ३-वही, पृ०३८, छं० ७।
४-वही, पृ० ७६, छं० १ । ५-वही, पृ०१७५, छं० ११ । ६-वही, पृ०१८१, छं० ३७-४०।
७-वही, पृ० ३३३-३४, पद २-३। ८-वही, पृ०१३७, पं० ४०९-१३ ।
९-वही, पृ० [illegible], दोहा ३१ । १०- वही, पृ० ५६, दोहा ५८ ।

की नाव पर चढ़ कर भव सागर से पार हो गये ।[1] कृष्ण नाम ही सिद्धमंत्र है[2] और पापों को नाश करने वाला है ।[3] इस नाम के प्रभाव से पानी में पत्थर तैरने लगते हैं ।[4] कलियुग में तो कृष्ण नाम ही सब कुछ है ।[5] इसीलिए कृष्ण का नाम लेने में ही रसना की सार्थकता कही गयी है ।[6] इस नाम के श्रवण से विचित्र ही दशा हो जाती है :

कृष्ण नाम जब तें सुन्यो री आली,
    भूली री भवन हौं तो बावरी भई री ।
भरि भरि आवें नैन चितहूं न परै चैन,
    मुखहू न आवै बैन, तन की दसा कछु और भई री ।
जे तक नेम धरम किए री मैं बहुविधि,
    अंग अंग भई मैं तो श्रवन मई री ।
नंददास जाके नाम सुनत ऐसो गति,
    माधुरी मूरति है, धौं कैसी दई री ।[7]

ख
गोपी
----

१० नन्ददास के मत से गोपियां ज्योतिस्वरूपिणी हैं, उनसे ही यह विश्व प्रकाशित होता है ।[8] वे संसार की समस्त स्त्रियों से निराली हैं, वे सदा श्रीकृष्ण की प्रीति के आनन्द में ही इस प्रकार लीन रहती हैं कि उनको और कुछ सुहाता ही नहीं है[9] और प्रेममय होने पर ही वे सुहाती हैं ।[10] फलस्वरूप वे सशरीर ...

१- वही, पृ० ६१, दोहा १३१ । २- वही, पृ० ५६, दोहा ७६ ।
३- वही, पृ० ६१, दोहा १२९ । ४- वही, पृ० वही, दोहा १३० ।
५- वही, पृ० ५८, दोहा ७ । ६- वही, पृ० ६१, दोहा ६६ ।
७- वही, पृ० ३३४, पद ५४ । ८- वही, पृ० ६, छन्द ५७ ।
९- वही, पृ० १०, छन्द ६५ । १०- वही, पृ० ४३, छन्द ७६ ।

को प्राण प्यारी बनती हैं और उनकी विरहाग्नि के ताप से तपे हुए प्रेम वचनों से श्री कृष्ण का कोमल हृदय सहज ही द्रवित हो जाता है[1]। ये गोपियां ईर्ष्या या कोप के भाव से रहित साधु संतों में शिरोमणि हैं ।[2] शुकदेव जी ने भी कहा है कि गोपियों के हृदय में सर्वभाव भगवान निवास करते हैं,[3] शंकर भी उन्हें भलापांति जानते हैं और नारद सारदादि उनका गान करते हैं । क्योंकि जगत गुरु गोपियों को, सभी गुरु मानते हैं ।[4] श्रीकृष्ण भी यशोदा के पुत्र यों ही नहीं हो गये । उन्हें यशोदा के पुत्र-रूप में जन्म दिलाने का श्रेय बहुत कुछ गोपियों को ही है क्योंकि संसार के कल्याण की कामना से विधाता से बहुत अनुनय विनय करके वे ही श्रीकृष्ण को इस लोक में लाई हैं ।[5]

११ गोपियां श्रीकृष्ण का मित्र और प्राण प्यारी हैं[6] और यद्यपि श्रीकृष्ण की प्रभुता कोटि कोटि ब्रह्माण्डों में व्याप्त है, परन्तु उन्हें प्रेम स्वरूपा गोपियों के ही बीच में शोभा प्राप्त होती है, जिस प्रकार कमल की नयी नयी पंखुड़ियों के मंडल या चक्र के मध्य में स्थित पराग-केसर से युक्त कमल-कोश सुशोभित होता है, उसी प्रकार तरुणी ब्रज-सुन्दरियों के मध्य श्रीकृष्ण विराजमान होकर शोभित होते हैं ।[7] यद्यपि श्रीकृष्ण अपनी तुरत बुद्धि और चतुरता के कारण जगत गुरु माने जाते हैं तथापि वे इन गोपियों के शुद्ध प्रेम के वशीभूत होकर अपनी पराजय स्वीकार करते हैं ।[8] गोपियों के इस प्रेम भाव को स्वीकार करते हुए श्रीकृष्ण स्पष्ट रूप से कहते हैं कि वे उनके चिर ऋणी हैं और कोटि कोटि कल्प तक भी वे उनके साथ उपकार करें तब भी उऋण नहीं हो सकते ।[9] श्रीकृष्ण गोपियों से कहते हैं-- हे नवल ब्रज बालाओं, मेरी माया इतनी प्रबल है कि सारे विश्व को वश में करने में समर्थ है परन्तु तुम्हारी माया तो उससे अधिक प्रबल है जिसने मुझ मायापति का मन भी मोह लिया है । प्रेम का जो परमो-

---

१- न० पु०, पृ० १६, छन्द ८५ । २-वही, पृ० १७, छन्द २८ ।
३- वही, पृ० ६, छन्द ६३ । ४-वही, पृ० ४६, छन्द ४३ ।
५- वही, पृ० १८, छन्द ४ । ६-वही, पृ० १८, छन्द ५ ।
७-वही, पृ० २०, छं० ११-१२ । ८-वही, पृ० २०, छन्द १५ ।
९- वही, पृ० २६, छन्द १० ।

उज्ज्वल आदर्श, लोक और वेद की सुदृढ़ शृंखलाएँ तोड़ कर तुमने स्थापित किया है, वैसा करने में आज तक कोई समर्थ नहीं हो सका है[1]। इस प्रकार निश्चय ही गोपियाँ महान हैं और उनका प्रेम महानतम है। इसका प्रमाण यह भी है कि उनके प्रेम को देख कर शुकदेव जी भी मुग्ध हो जाते हैं,[2] सनकादि उन्हें शिर नवाते हैं,[3] और उद्धव उनके प्रेम प्रवाह में बह जाते हैं।[4] गोपियाँ हरि-रस की निज पात्र हैं, और उद्धव जैसे ज्ञानी जन इनके दर्शन मात्र से कृत-कृत्य हो जाते हैं तथा ज्ञान का मल कट जाता है।[5] इसी-लिए इन गोपियों के चरणों को उद्धव सभी सुखों का मूल कहते हैं।[6] और श्री कृष्ण के गुणों को भूल कर गोपियों के गुण गाने लगते हैं।[7] उद्धव ही नहीं ब्रह्मा भी उनकी पद-रज का अभिलाषी है।[8]

१२ गोपियाँ उस संगीत और नृत्य को सहज ही प्राप्त करती हैं जिस पर सुर-नर मुग्ध होते हैं और जिसका अगम गान करते हैं[8अ] क्योंकि वे इस लोक की सभी वस्तुओं को छोड़कर श्री कृष्ण के शरण में गईं।[9] श्रीकृष्ण की शरण में जाते समय सर्वप्रथम उनका प्रेम काममय था किन्तु पीछे वही निःसीम-प्रेम में परिवर्तित हो गया जिससे श्री कृष्ण वशीभूत हुए[10] और गोपियों को उस रस की प्राप्ति हुई जिसे लक्ष्मी भी प्राप्त न कर सकी[11] तथा श्रीकृष्ण ने अपने समान स्तर प्रदान कर इनके ही साथ रास में रमण किया।[12]

१३ जिस प्रकार श्रीकृष्ण की महिमा का कोई पार नहीं पा सकता, उसी प्रकार गोपियों के गुणों की गणना नहीं हो सकती।[13] गोपियों के तो श्रीकृष्ण ही

१- न० ग्र०, पृ० २१, छन्द १८ । २- वही, पृ० ४१, छन्द ४१ ।
३- वही, पृ० ४४, छन्द ८० । ४- वही, पृ० १८६, छन्द ६१।
५- वही, पृ० १८६, छन्द ६२ । ६- वही, पृ० १८७, छन्द ६६।
७- वही, पृ० १८८, छन्द ६६ । ८- वही, पृ० ४१, छन्द ४२ ।
८अ-वही, पृ० ५७, छन्द १२२ । ९- वही, पृ० २०२, छन्द २२।
१०-वही, पृ० ४६, छन्द १०२ । ११-वही, पृ० ५७, छन्द १२८।
१२-वही, पृ० ५८, छन्द ६६ । १३-वही, पृ० ५७, छन्द १२५।

दर्पण हैं[1] और उनके रोमरोम में श्रीकृष्ण व्याप्त हैं।[2] वैसे भी गोपियों और श्री कृष्ण में कोई भेद नहीं है, वे अभिन्न हैं, यह बात श्रीकृष्ण द्वारा उद्धव के प्रति कहलायी गई है :

उनमें मोमें है सदा छिन भर अंतर नाहिं।
ज्यों देखो मो माहिं वे हौं हूं उनहि माहिं।।[3]

१४ इसके अतिरिक्त कवि ने श्रीकृष्ण को तो परमात्मा कहा ही है, उसके कथन से यह भी ध्वनित होता है कि गोपियाँ श्रीकृष्ण की शक्तिरूपा हैं।[4]

मुरली

१५ मुरली के विषय में कवि का कथन है कि वह योगमाया स्वरूपिणी और असंभव को भी संभव कर देने में समर्थ है। इस मुरली को श्रीकृष्ण अपने सरस अधरों से लगाते हैं और इसके मधुर सुर से वेद शास्त्र प्रकट हुए हैं। यह शब्द रूप ब्रह्म की जननी है और समस्त सुखों की अपार राशि के समान है। इससे उत्पन्न नाद रूपी अमृत रस को प्राप्त करने का मार्ग भी बड़ा सरल और अत्यन्त सुगम है।[5]

१६ मुरली शब्द ब्रह्म मय है जिसकी ध्वनि सुनकर सभी मोहित होते हैं। यहां तक कि देवता और गन्धर्व सुध-बुध भूल जाते हैं, क्योंकि उसकी सुन्दर ध्वनि परम मधुर व और मादक है।[6]

वृन्दावन

१७ श्री वृन्दावन की शोभा और सुषमा अवर्णनीय है। इसने श्रीकृष्ण की ललित लीलाओं के रसास्वादन से मुग्ध होकर जड़ता धारण कर ली है। इस अत्यन्त मनोहर वन के पर्वत, पक्षी, मृग, लता, कुन्ज, वृक्षादि जितने भी जड़ चेतन अंग हैं, सभी त्रिकाल और त्रिगुणों के प्रभाव से रहित होने के कारण शाश्वत हैं तथा उनकी शोभा और शक्ति सदा समान रहती है।[7]

१- म० प्र०, पृ० १६६, पं० १७ । २-वही, पृ० १८२, छन्द ५२ ।
३- वही, पृ० १८८, छन्द ७४ । ४-वही, पृ० ५६, छन्द १०४ ।
५- वही, पृ० ८६, छन्द [illegible] ।६-वही, पृ०७०, छं०२६- २७।७-वही, पृ०७४, छं० १७-१८ ।

१८ श्री वृन्दावन में सभी जीव जन्तु स्वभावतः शत्रु होते हुए भी शत्रुता त्याग कर प्रेम-पूर्वक रहते हैं और सिंह तथा मृग साथ-साथ विचरण करते हैं। ये काम, क्रोध, मद लोभ आदि सांसारिक दुर्गुणों से रहित हैं और श्रीकृष्ण की सुखद लीला के आनन्द का अनुभव करते हैं। उस रमणीय वन में सुन्दर वसन्त ऋतु ही विराजमान रहता है जिसमें सूर्य का सुखदायक घाम प्राणियों को सदैव सुख देता है और इस वृन्दावन की शोभा से ही समस्त वन-उपवन शोभित होते हैं।[१]

१९ इस वृन्दावन के वैभव का वर्णन नहीं किया जा सकता है। स्वयं श्री कृष्ण भी बलराम जी से उसकी महिमा का कुछ ही वर्णन कर पाये थे। जिस प्रकार देवताओं में रमापति विष्णु सर्वश्रेष्ठ हैं, उसी प्रकार वनों में वृन्दावन श्रेष्ठ है।[२] तथा इस वन का शिवजी और गणेश जी भी पार नहीं पाते हैं। इस वन में सभी वृक्ष कल्पवृक्ष के समान मनोवांछित फल-प्रद हैं और वहां की भूमि चिन्तामणि के समान सभी कामनाएं पूर्ण करने में समर्थ है।[३] कल्पवृक्ष की प्रत्येक शाखा, पत्ते, फूल और फलों में श्रीकृष्ण का प्रतिबिम्ब विराजमान रहता है।[४] किन्तु बिना अधिकारी हुए वृन्दावन नहीं सूझता है।[५]

२० इसी वृन्दावन में श्रीकृष्ण विचरण करते हैं[६] क्योंकि यही उनका नित्य सदन है।[७] इसीलिए वृन्दावन के वैभव के सम्मुख वैकुण्ठ का वैभव भी क्षीण हो जाता है।[८] जहां श्रीकृष्ण रहते हैं वहां देवगण, महामुनि आदि भी नित्य रहें तो सर्वथा स्वाभाविक है। कवि ने इस ओर स्पष्ट संकेत किया है --

नंद गांव नीको लागत री

० ०

जहां बसत सुर देव [illegible] स्कोपत नहिं त्यागत री।[९]

सभी तो नन्ददास ने कहा है कि यदि मन में रहना हो इष्ट हो तो वृन्दावन में ही रहना चाहिए।[१०]

१- न० ग्र०, पृ० ५, छन्द १६-२०। २-वही, पृ० ५, छन्द २२-२३।
३- वही, पृ० ५, छन्द २४-२५। ४-वही, पृ० ६, छन्द २८।
५- वही, पृ० १२, छन्द [illegible]। ६-वही, पृ० १२, छन्द [illegible]।
७- वही, पृ० ३१, छन्द २०। ८-वही, पृ० ६, छन्द ३७।

राधा

२१ राधा श्रीकृष्ण की निवाहिता है।[१] राधा का मान उनका कल्याण करने वाला है।[२] उसके दर्शन से अमृत की वर्षा होती है और सभी मनोरथ पूर्ण होते हैं।[३] तीनों लोकों में उसके समान और कोई स्त्री नहीं है।[४] श्रीकृष्ण और राधा जैसे एक प्राण और दो शरीर हैं।[५] राधा के समान प्रेम मय और कोई नहीं है।[६] उसकी कीर्ति सरिता गंगा के समान, नर नारियों को पवित्र करती है।[७] श्रीकृष्ण और राधा का चन्द्र और चांदनी का सा सम्बन्ध है।[८] राधा का प्रेम अगाध है और वह वृन्दावन में श्री कृष्ण के साथ विहार करती है।[९]

जीव

२२ जीव, काल, कर्म और माया के अधीन है[१०] और वे संसार की धारा में बहे जाते हैं।[११] ये जीव कर्म के बन्धन में रहने से ही ईश्वर से विमुख हो जाते हैं,[१२] किन्तु श्रीकृष्ण की भक्ति प्राप्त होने पर ये संसार में आनन्द रस से भरे रहते हैं।[१३]

माया

२३ कवि का कथन है कि माया श्रीकृष्ण के अधीन है। जागृति, स्वप्न, सुषुप्ति अवस्थायें भी माया के ही कारण हैं। इस माया के कारण जीव का ईश्वरीय अंश तिरोभूत हो जाता है।[१४] संसार माया के अधीन है,[१५] किन्तु ब्रह्म और माया के गुण भिन्न भिन्न हैं।[१६] प्रकृति में जो गुण हैं, वे ब्रह्म के गुणों की छाया मात्र हैं, उनमें

१- न० ग्र०, पृ० १६६, छन्द २७-२८ । २-वही, नाममाला दोहा : ५ ।
३- वही, दोहा ८२ । ४- वही, दोहा ८४ । ५- वही, दोहा ८८ ।
६- वही, दोहा ८७ । ७- वही, दोहा ९३ । ८- वही, दोहा १०० ।
९- न० ग्र०, पृ० १६२ (प्रत्यक्ष विरह वर्णन) १०-वही, पृ० ३६, छन्द १५ ।
११-वही, छन्द १८ । १२- वही, पृ० १०६, छन्द १४ ।
१३-वही, पृ० ३६, छन्द १६ । १४- वही, पृ० ३८, छन्द ५-६ ।
१५-वही, पृ० ८०, दोहा १२३ । १६- वही, पृ० १७७, छन्द २१ ।

और इनमें वही अन्तर है जो पुष्प और शीशे वाली उसकी छाया में होता है तथा माया ने ही प्रकृति के रूप में इन गुणों को वैसे ही भिन्न कर दिया है जैसे पंक निर्मल जल को कर देता है।[१]

<u>रास</u>

२४ रास में श्रीकृष्ण आलम्बन हैं। शरद, रजनी, चन्द्रमा आदि रस राज के सहायक हैं। इसमें संयोग शृंगार ही चित्रित है। किन्तु नन्ददास के मत से रास पंचाध्यायी-- जिसमें रास का चित्रण है, शृंगार ग्रंथ नहीं है।[२] अत: रास पंचाध्यायी लौकिक केलि विलास के ग्रन्थ से भिन्न है और वह साधक भक्तों के लिए अध्यात्म तत्व है।[३] रास में गोपियों का प्रेम, ज्ञान के ऊपर प्रेम का विजय का रूपक है और इस प्रकार रास-कथा को कृष्ण-प्रेम का अध्यात्म रूपक बनाया गया है।

२५ रास में सम्मिलित होने के लिए गोपियां श्रीकृष्ण की ओर निम्नलिखित क्रम से आकर्षित होती हैं :

(१) इक पहलियें गमन मन सुंदर घन मूरति हरि।[४]

(२) प्रीतम सूचक शब्द सुनत जब अति रति बाढ़ी।
हौत सहज सब त्याग नाग जिमि कंचुकि छाड़ी।[५]

और जब गोपियां श्रीकृष्ण के पास पहुंचती हैं तो वे पहले काम विषय पर वचन बोलती हैं।[६] फिर धर्म, अर्थ पर प्रकाश डालती हैं।[७] किन्तु अन्त में गोपियों के ही एकान्त भाव की विजय होती है।[८]

२६ गोपियां सांसारिक विषयों को नीरस समझ कर और उनका त्याग कर[९] तथा दार, गार, सुत, पति आदि सब के सुख को भी दुखमूलक मानकर श्रीकृष्ण में रत

१- न० ग्र०, छन्द २० । २- वही, पृ० ४१, छन्द ४० और ४६ ।

३- वही, पृ० ४०, छन्द ३४ । ४- वही, पृ० ४०, छन्द [illegible]।

५- वही, पृ० ४०, छन्द ३२ । ६- वही, पृ० ४१, छन्द ४८ ।

७- वही, पृ० ४२, छन्द ५१ । ८- वही, पृ० ४२, छन्द ६२ ।

९- वही, पृ० ४८, छन्द १३[illegible] ।

हुई, आत्माराम श्रीकृष्ण उनके वचनों को सुन कर उनके प्रेम के वश हुए[1] और हाँ क्यों न वे प्रेम रस[से] जो भरी हुई हैं।[2] गोपियों के इस शुद्ध प्रेम को प्रकट करने के लिए ही रास का आयोजन हुआ।[3] अत: रास रस सब रसों में श्रेष्ठ है।[4] यह ऐसा अद्भुत ~~रस~~ रस है जिसकी प्रशंसा शेष अपने सहस्र मुखों से गाते हैं और ब्रह्मा भी इसका अन्त नहीं पाते हैं।[5]

२७ इस रास को भलीभांति समझने के लिए कवि का निवेदन है :

हो सज्जन जन रसिक सरस मन को यह सुनियाँ।
सुनि सुनि पुनि आनन्द हृदै ह्वै नीके गुनियाँ।[6]

क्योंकि यह सभी शास्त्रों के सिद्धान्तों का नितान्त एकान्त महारस है जिसके रंचमात्र सुनने और समझने से श्रीकृष्ण बस वश में होते हैं।[7] इसीलिए यह रास -- शिव, सनकादि, नारद, शारदादि को भी अत्यन्त प्रिय है और वे आनन्दित होकर फूल बरसाते हैं।[8] किन्तु सांसारिक प्राणी को उस रास रस का आनन्द पाने का सौभाग्य नहीं मिलता है। इसका कारण यह है कि नित्य ब्रह्म सर्वान्तर्यामी होने के कारण रहता तो सभी प्राणियों के अत्यन्त निकट है, परन्तु उनकी इन्द्रियाँ सांसारिक विषय वासनाओं में लिप्त रहने के कारण इतनी दोषयुक्त हो जाती हैं कि उसके सूक्ष्म और दिव्य स्वरूप को देख या पहिचान नहीं पातीं।[9]

२८ यद्यपि लक्ष्मी नित्य हरि के पद-कमल-सेवा-रत रहती हैं फिर भी इस रास का अनुभव उन्हें नहीं हो पाता[10] क्योंकि रास रस वृन्दावन में ही प्राप्य है और वृन्दावन बिना अधिकारी हुए नहीं सूझता है। इस रास का वर्णन, [लक्ष्मी ने कोटि यत्नों के उपरान्त किया है और यह श्रवण, कीर्तन,] स्मरण, ज्ञान, हरिध्यान, श्रुति आदि सबका सार है, पापों का नाश करने वाला है और कल्याण-

---

१- न० ग्र०, पृ० ४२, छन्द ६२। २- वही, पृ० ४५, छन्द १०२।
३- वही, पृ० ४२, छन्द ५१। ४- वही, पृ० ३६, छन्द १३।
५- वही, पृ० ४८, छन्द १३४। ६- वही, पृ० ४८।
७- वही, पृ० ४८, छन्द १३६। ८- वही, पृ० ४८, छन्द १३३।
९- वही, पृ० ४०, छन्द ३५। १०- वही, पृ० २४, छन्द ३३।

कारी है ।[1] इसीलिए कवि अपने हृदय में इसकी स्थिति की कामना करता है :

अघहरनी मन हरनी सुन्दर प्रेम वितरनी ।
नंददास के कंठ बसौ नित मंगल करनी ।।[2]

२९ श्रीकृष्ण द्वारा रास रस प्रकट किये जाने का कारण भी स्पष्ट मिलता है :

ब्रह्मादिक कौं जीति महाभट मदन भर्यौ जब ।
दर्प दलन नंद ललन रास रस प्रकट कर्यौ तब ।[3]

और

नंददास प्रभु कौ विलास रास ।
देखत ही मनमथ हु कौ मन मथ्यौ री मन ।[4]

और गोपियों को अपने समान स्तर प्रदान करके श्रीकृष्ण रास में रमण करते हैं ।[5],
जिसमें अनहद नाद बजता है ।[6]

३० कदाचित इस रास या कृष्ण लीला में भाग लेना ही मोक्ष है । इसीलिए नंददास इस लीला को अत्यन्त निकट से देखते हैं --

देखौ री नागर नट,
गोपिन के मध्य राजे मुख को लटक,
काछिनी किंकिनी कटि पीताम्बर को चटक,
कुण्डल किरन रवि रथ को अटक,
ततु थेई ततु थेई सबद सकल घट,
उरप तिरप मानों पद को पटक,
रास मध्य राधे राधे मुरली में येई रट,
नंददास गावै तहां निपट निकट ।[7]

१- न०ग्र०, पृ० २४, छन्द ११ । २- वही, पृ० २५ ।
३- वही, पृ० ३९ । ४- वही, पृ० ३६५, पद १८३ ।
५- वही, पृ० ३३, छन्द ४६ । ६- वही, पृ० ३६५, पद १२४ ।
७- वही, पृ० ३६३, पद १३८ ।

आत्मा

३१ आत्मा के विषय में कवि का केवल अनेकार्थ भाषा में ही किंचित उल्लेख मिलता है । यहां कवि का कथन है कि आत्मा नित्य है[1] और परमात्मा ही आत्मा का आधार है ।[2]

निरोध

३२ ज्ञान में जो स्वयं को ही सब कुछ मान कर गर्व करते हैं, उनके गर्व का परिहार श्रीकृष्ण निरोध द्वारा करते हैं[3] तथा प्रेम में जो भी तत्त्व बाधक होता है उसका निराकरण भी वे निरोध द्वारा करते हैं ।[4]

मुक्ति

३३ मुक्ति चार प्रकार की बताई है किन्तु नंददास ने इन प्रकारों की ओर संकेत नहीं किया है । केवल यही कहा है कि मुक्ति जप तप या योग से प्राप्य नहीं है ।[5] यद्यपि पंडित लोग ज्ञान के बिना मुक्ति प्राप्त न होने की बात कहते हैं, किन्तु गोपियों ने इसके विपरीत प्रेम का अवलम्बन किया ।[6] ~~यद्यपि पंडित लोग ज्ञान के बिना मुक्ति प्राप्त न होने की बात कहते हैं, किन्तु गोपियों ने इसको~~ वस्तुतः बिना श्रीकृष्ण से सम्पर्क किये मुक्ति नहीं प्राप्त हो सकती ।[7] यह सम्पर्क चाहे द्वेष भाव से ही क्यों न हो, शिशुपाल की भांति, मुक्ति प्राप्ति का कारण होता है --

> जैन केन परकार होइ बति कृष्ण मगन मन ।
> अनाकर्ण चैतन्य कछु न चितवै साधन तन ।
> महा द्वेष करि महाशुद्ध शिशुपाल भयौ जब।
> मुकत होत वह दुष्ट पगी कछु न संगयौ तब।[8]

१- न० ग्रं०, पृ० ११, दोहा ३० । २- वही, पृ० ५०, दोहा ८ ।
३- वही, पृ० ३८, छन्द ६ । ४- वही, पृ० ४४, छन्द ८७ ।
५- वही, पृ० ७८, दोहा २७ । ६- वही, पृ० ४१, छन्द ३८ ।
७- वही, पृ० १०७, दोहा ३०४ । ८- वही, पृ० १६२, चौपाई ।

श्रीकृष्ण विरह

३४ नन्ददास का श्रीकृष्ण विरह, ब्रज बिमल बालाओं का विरह है और यह चार प्रकार का है[१]--

(१) प्रत्यक्ष विरह (२) पलकान्तर विरह

(३) वनान्तर विरह और (४) देशान्तर विरह ।

प्रत्यक्ष विरह राधा का विरह है जो नव निकुंज-सदन में श्रीकृष्ण के साथ विहार करती है किन्तु संयोग में भी वियोग का अनुभव करती है[२] और इस प्रकार संभ्रमवश मिलन भी वियोग हो जाता है। पलकान्तर विरह में प्रेमिका निरन्तर श्रीकृष्ण को देखती रहना चाहती है किन्तु पलकों के कारण उसे संयोग में भी वियोग का अनुभव होता है ।[३] वनान्तर विरह गोपियों का विरह है । श्रीकृष्ण गाय चराने जाते हैं, गोपियों को उनके विरह में एक एक पल कल्प के समान प्रतीत होता है[४] और उनके लौटने की आशा से ही उनमें प्राण रह पाते हैं ।[५] देशान्तर विरह में श्रीकृष्ण की मथुरा, द्वारका आदि की लीलाओं का स्मरण करके उनकी स्मृति में तदाकार स्थापित किया जाता है ।[६] विरह मंजरी में वर्णित बारहमासा इसी विरह का फल है ।

३५ नन्ददास द्वारा वर्णित श्रीकृष्ण विरह प्रमुखत: गोपियों का विरह है । श्रीकृष्ण के विरह में गोपियों की वह दशा होती है जो एक मछली की जल से अलग होने पर होती है[७] और यह विरह निपट अटपटा चटपटा है और सुलझाने पर भी नहीं सुलझता है तथा जिसमें बड़े बड़े लोग उलझ जाते हैं ।[८] वस्तुत: अटपटे प्रेम के कारण ही विरह में चटपटापन आता है ।[९]

३६ श्रीकृष्ण का विरह क्षण भर का भी करोड़ों दुखों और करोड़ों वर्षों तक नरक भोग के समान है ।[१०] इसीलिए श्रीकृष्ण विरह के कारण गोपियों का बहु

१- न० ग्रं०, पृ० १६२, चौ० ५-६ । २- वही, पृ० १६३, चौ० ६ ।
३- वही, पृ० चौ० ११-१२ । ४- वही, चौ० १४-१५ ।
५- वही, दोहा १६ । ६- वही, पृ० १६४, चौ० १८ ।
७- वही, पृ० १६५, चौ० ३ व ४ । ८- वही, पृ० १६४, दो० २३ ।
९- वही, पृ० १७२, चौ० ६१ । १०- वही, पृ० ८ छन्द ५२ ।

चेतन का भी ज्ञान नहीं रहता और न स्वयं की सुधि ही रहती है।[१] इसे भी कैसे उन्होंने प्रेम सुधारस जो पिया है। भूत के प्रभाव होने, मदिरा के पीने आदि सुधि खोने वाली वस्तुओं के सेवन के उपरान्त भी सुधि रह जाती है किन्तु प्रेम सुधानिधि पीने के उपरान्त कोई सुधि नहीं रह जाती।[२] गोपियां कृष्ण विरह से विह्वल हो कर अटपटे वचन बोलने लगती हैं।[३] और उनसे इस विरह ध्वनि सुन कर खग, द्रुम तथा लताएं भी रोने लगती हैं।[४] इस विरह के कारण ही विरहिणी गोपियों को श्री कृष्ण में उस प्रीति से कोटि गुनी प्रीति हुई जो महाक्षुधित की भोजन के प्रति होती है[५], ऐसे विरह के कारण ही श्री कृष्ण गोपियों के वश में हुए।[६] इसीलिए नन्ददास ने मिलन से विरह को अधिक सुखदायी कहा है --

हो जानी पिय मिलन ते बिरह अधिक सुख होय।
मिलिते मिलिये एक सों बिछुरे सबसों सोय॥[७]

और विरहावस्था में ही स्मृति में श्री कृष्ण का आलिंगन करने से करोड़ों सुखों का अनुभव होता है।[८]

वस्तुतः श्रीकृष्ण का विरह, विरह न कहलाकर, प्रेम उज्ज्वलन कहलाता है जो दुःखों का निवारण करने वाला और परम-सुख-प्रद है।[९]

३७ इस प्रकार तात्विक दृष्टि से कवि के निम्नलिखित विचार ज्ञात होते हैं :

(१) नन्दनन्दन श्रीकृष्ण परब्रह्म पुरुषोत्तम परमात्मा हैं। वे अजन्मा अन्तर्यामी, अनावृत, अनाकृष्ण और नाम, रूप, तथा गुण भेद से सर्वत्र व्याप्त हैं। वे सर्वेश्वर, निगमातीत और आत्माराम हैं। लीला के लिए वे अवतार लेते हैं। अवतार रूप में उनके दो स्वरूप हैं, एक द्वारका के लोक रक्षक श्रीकृष्ण और दूसरे नित्य गोकुल में रहने वाले लोक रंजक गिरिधर गोपाल। कवि को उनका गिरिधर रूप ही इष्ट है।

१- नं०ग्रं०, पृ० १७, छन्द ४। २- वही, पृ० १६३, दो० १०। ३- वही, पृ० १६, छं० १।
४- वही, पृ० १७, छन्द ३५। ५- वही, पृ० १६, छन्द ५।
६- वही, पृ० १२, छन्द ४६। ७- वही, पृ० १३६, दो० ४६८।
८- वही, पृ० ८, छन्द ५३। ९- वही, पृ० ४३, छन्द ७० और पृ० १६२, दो० ३।

(२) श्री कृष्ण परम सुखमय हैं, कल्पतरु हैं तथा सब भक्तों से प्रसन्न होते हैं। नारायण, जगत के समवाय कारण और निमित्त कारण भी वे ही हैं। वे सब कर्ता हैं, जगत के रक्षक हैं, प्रलय के समय सबको आश्रय देते हैं, विरुद्ध धर्मों के आश्रय हैं तथा वे अनेक गुणों (ऐश्वर्यादि) से युक्त हैं।

(३) कवि ने उन्हें अनन्त और एक, दोनों स्वरूपों में बता कर उनका आविर्भाव और तिरोभाव की शक्ति का और संकेत किया है जिससे वे अनेक से एक और एक से अनेक होते रहते हैं तथा कवि ने इसी कथन के द्वारा जीव, जगत, सृष्टि और ब्रह्म में एकता होने की बात व्यक्त की है।

(४) जीव में आनन्दांश तिरोहित रहता है और इसीलिए वह काल, कर्म तथा माया के वश में रह कर सांसारिक दु:खों को भोगता है किन्तु श्रीकृष्ण के सान्निध्य से वह पुन: आनन्द को प्राप्त हो जाता है।

(५) माया श्रीकृष्ण के अधीन रहती है। जागृति, स्वप्न, सुषुप्ति अवस्थाओं का कारण माया ही है। ब्रह्म के गुण माया से भिन्न हैं।

(६) ब्रह्म का ही अविकृत परिणाम होने से जगत सत्य है। संसार जीव से सम्बन्धित होने से मिथ्या है। घनश्याम श्री कृष्ण को जानने से ही जीव को संसार से मुक्ति मिल सकती है; दूसरे शब्दों में, अज्ञान के मिटने पर जीव संसार से मुक्त हो जाता है।

(७) कवि ने श्रीकृष्ण को 'हरि' नाम से भी अभिहित किया है और ब्रह्मा विष्णु और महेश शिव से ऊपर बताया है। उनका सान्निध्य पूर्ण समर्पण भाव से युक्त विशुद्ध प्रेम द्वारा ही प्राप्त किया जा सकता है। इसीलिए प्रेम और समर्पण की मूर्तियां [illegible] को वे सहज ही प्राप्त हो जाते हैं।

(८) [illegible] उनकी शक्ति स्वरूपा हैं और साधु संतों में श्रेष्ठ हैं। [illegible] विशुद्ध प्रेम के कारण ही गोपियों के वश में होते हैं। गोपियां और श्रीकृष्ण अभिन्न हैं।

(९) श्री कृष्ण की मुरली, शब्द ब्रह्ममय है और सभी सुखों को देने वाली है। वह योग माया के समान और [illegible] मान है। इसी के नाद को सुन कर गोपियां श्री कृष्ण की ओर [illegible] जाती हैं।

(१०) श्रीकृष्ण नित्य वृन्दावन में विचरण करते हैं। इसलिए उनके प्रभाव से वृन्दावन में सदा वसन्त रहता है। वहां प्रकृति के सभी जड़-चेतन अंग काल और गुणों से अप्रभावित रहते हैं। वह सर्वश्रेष्ठ वन है जहां सभी कामनाएं पूर्ण हो जाती हैं। कवि ने इसे वैकुण्ठ से भी ऊपर बताया है, किन्तु यह बिना अधिकारी हुए प्राप्त नहीं होता है। गोपियां ही उसका अनुभव करने के लिए सबसे योग्य हैं। इसलिए श्रीकृष्ण ने गोपियों के साथ वृन्दावन में रास का आयोजन किया।

(११) रास अलौकिक तत्व है, लौकिक श्रृंगार से उसका कोई सरोकार नहीं है। रास सर्वश्रेष्ठ और अद्भुत रस है। इसलिए ब्रह्मा, शिव, सनकादि, नारदादि को भी इसके प्रति अतीव आस्था रहती है। विषयों में लिप्त जीव को इसका अनुभव नहीं होता है। यह रस अघ-नाशक और सब रसों का सार है। गर्वोन्मत्त कामदेव को मिटाने के लिए श्रीकृष्ण ने इसका प्रतिपादन किया। रास में भाग लेना ही मोक्ष है। दूसरे शब्दों में श्रीकृष्ण के सम्पर्क से ही मोक्ष मिल सकता है, फिर वह सम्पर्क चाहे किसी भाव से हो।

(१२) जिस प्रकार श्रीकृष्ण और गोपियों में कोई अन्तर नहीं है, उसी प्रकार श्रीकृष्ण और राधा भी अभिन्न हैं। राधा अप्रतिम रूपमयी हैं। उसका श्रीकृष्ण से वैसा ही सम्बन्ध है जैसा कि चान्दनी का चन्द्रमा से है। उसका यश गंगा के समान सबको पवित्र करने वाला है।

(१३) ऊपर कहा गया है कि श्रीकृष्ण प्रेम द्वारा ही प्राप्य हैं। यह प्रेम विरह द्वारा विशुद्ध होकर वृद्धि को प्राप्त होता है। श्रीकृष्ण का विरह, विरह न होकर प्रेम को ही बढ़ाने वाला होता है। इससे दुखों से छुटकारा मिल कर परम सुख की प्राप्ति होती है। वस्तुतः मिलन से विरह अधिक आह्लादक होता है क्योंकि इससे अपने इष्ट के सर्वत्र ही दर्शन होने लगते हैं।

पुष्टिमार्ग की दार्शनिक मान्यताएं

पीछे जीवन चरित्र के प्रकरण में इंगित किया जा चुका है कि नन्ददास ने पुष्टि [illegible] में दीक्षा प्राप्त की थी और तदुपरान्त पुष्टिमार्ग की मान्यताओं के प्रति उनकी आस्था [illegible] हो गई थी। अतः उनकी कृतियों में आये हुए उपर्युक्त

तात्त्विक विचारों को समुचित रूप से समझने के लिए उन्हें पुष्टिमार्ग की दार्शनिक मान्यताओं के प्रकाश में देखना कदाचित अप्रासंगिक न होगा ।

३९ पुष्टिमार्ग अथवा वल्लभ सम्प्रदाय का प्रतिपादन श्री वल्लभाचार्य जी ने किया था ।[१] यह दर्शन के क्षेत्र में उनका मत शुद्धाद्वैत, ब्रह्मवाद और अविकृत परिणामवाद तथा आचरण के क्षेत्र में पुष्टिमार्ग के नाम से प्रसिद्ध है । वस्तुत: आचार्य जी विष्णुस्वामी मत के अनुयायी थे और उनकी गद्दी के अधिकारी हुए । विष्णुस्वामी का दार्शनिक सिद्धान्त भी शुद्धाद्वैत था । उनके मत की प्रतिष्ठा कुछ कम हो गई थी और आचार्य जी ने उसमें प्राणों का संचार कर उसका पुन: प्रचार किया । अपने सिद्धान्तों का प्रतिपादन आचार्य जी ने स्वरचित ग्रन्थों में किया है । इन ग्रन्थों में वेदान्त सूत्र का अणुभाष्य, भागवत की सुबोधिनी टीका, षोडश ग्रन्थ, पुरुषोत्तम सहस्रनाम तथा तत्व दीप निबन्ध प्रमुख हैं ।

ब्रह्म

४० आचार्य जी के अनुसार ब्रह्म सजातीय, विजातीय और स्वगत भेद वर्जित है तथा सत्य आदि हजारों गुणों से युक्त है ।[२] वह सच्चिदानन्द स्वरूप है, व्यापक और अव्यय है, सर्व शक्तिमान और सर्वज्ञ है एवं सर्व गुणों से रहित है ।[३] वह जगत का समवायि कारण है, निमित्त कारण है तथा अपने स्वरूप से स्वरचित लीला में नित्य मग्न रहता है । जिस प्रकार अग्नि से चिनगारियां उत्पन्न होती हैं उसी प्रकार ब्रह्म से असंख्य जीव उत्पन्न होते हैं ।[४] वह अनन्त मूर्ति तथा विरुद्ध धर्मों का आश्रय है ।[५] वल्लभसम्प्रदाय में श्रीकृष्ण ही पूर्णानन्द, पूर्ण पुरुषोत्तम परब्रह्म हैं ।[६] तत्वदीप निबन्ध के शास्त्रार्थ प्रकरण के प्रथम श्लोक में आचार्य जी ने लिखा है, ' कि मैं उस भगवान श्रीकृष्ण को नमस्कार करता हूं जिससे संसार की उत्पत्ति हुई

१- वल्लभाचार्य का समय संवत् १५३५ से सं० १५८७ तक ठहरता है । दे० अष्टछाप परिचय : प्रभुदयाल मीतल, पृ० ४ और पृ० १६ ।
२-३, तत्त्वदीप निबन्ध, शास्त्रार्थ प्रकरण, पृ० २२१ ।
४- वही, पृ० २२३ । ५- वही, पृ० २२६ ।
६- सिद्धान्त [illegible], श्लोक ३ ।

है और जो रूप तथा नाम भेद से उसके रमण करता है ।

इस सम्प्रदाय में ब्रह्म के तीन मुख्य स्वरूप बताये गए हैं । पूर्ण पुरुषोत्तम रस रूप परब्रह्म श्रीकृष्ण पहला स्वरूप है । दूसरा अक्षर ब्रह्म है जो सच्चिदानन्द है और अवस्था भेद से दो प्रकार का है । पहले प्रकार के अन्तर्गत, पूर्ण पुरुषोत्तम का अक्षर धाम स्वरूप सच्चिदानन्द अक्षर ब्रह्म आता है जो काल, कर्म और स्वभाव रूप में परिणत होने वाला सृष्टिकर्ता तथा उसका संहार कर्ता है । ब्रह्म का तीसरा स्वरूप उसका अन्तर्यामी रूप है ।[1] आचार्य जी का मत है कि भगवान के सम्मुख पूर्ण कोण समर्पण होने से ब्रह्म भाव की प्राप्ति होती है ।[2]

४१ जैसा कि ऊपर कहा गया है इस संप्रदाय में श्रीकृष्ण को परब्रह्म रूप में माना गया है । उनके इस रूप के अनन्त अवयव हैं, अनन्त रूप हैं और वह अविभक्त है । वह अनादि है तथा अपनी इच्छा से ही विभक्त होने वाला है ।[3] वह जगत का आधार है तथा माया उसके वश में रहती है । वह निर्गुण होते हुए भी सगुण है ।[4] उसमें आविर्भाव और तिरोभाव की शक्ति है जिससे वह एक से अनेक और अनेक से एक होता रहता है ।[5] इसी आविर्भाव और तिरोभाव के द्वारा जड़-जगत, जीव, सृष्टि और ब्रह्म में एकता स्थापित की गई है । जड़ तत्व में चित् और आनन्द दो धर्म तिरोभूत हैं, केवल सद्धर्म प्रकट है । जीव में सत् और चित् दो धर्म प्रकट हैं और आनन्द तिरोभूत है । ब्रह्म का आनन्दांश अन्तरात्मा रूप से प्रत्येक जीव में है । इसलिए वह अन्तर्यामी है ।[6] वल्लभ संप्रदाय में रस रूप परब्रह्म को ऐश्वर्य, वीर्य, यश, श्री, ज्ञान और वैराग्य इन छः गुणों से युक्त बताया गया है । इन गुणों के तिरोहित होने पर जीव को दुःख भोगना पड़ता है । भगवान की कृपा से जब पुनः उक्त छः गुण मिल जाते हैं तो वह अपने स्वरूप ज्ञान से ब्रह्म के समान होजाता है ।

१- त० दी० नि०, सर्व निर्णय प्रकरण, श्लोक ११६ ।

२- बालबोध, [illegible] ग्रन्थ, भट्ट [illegible]नाथ शर्मा, श्लोक १७ ।

३- त० दी० नी०, शास्त्रार्थ प्रकरण, पृ० २३३ ।

४- वही, पृ० २०५ । ५- वही, पृ० १३८ ।

६- वही, श्लोक १२-१४ ।

४२ परब्रह्म आनन्दाकार विग्रह से अपने अक्षर धाम में अनेक लीलाएं करता है। ब्रह्म का पूर्ण पुरुषोत्तम रूप अगणितानन्द है और अक्षर ब्रह्म गणितानन्द, अक्षर ब्रह्म के जो अनेक अंश समय समय पर कला रूप से दो रूपों में अवतार धारण करते हैं, एक धर्म संस्थापक के रूप में और दूसरे लोक रंजक रूप में। कृष्ण का अवतार यहां चतुर्व्यूहात्मक तथा रसात्मक दोनों रूपों में माना जाता है। उनको विशेषता यही है कि वह निर्गुण सगुण, निर्धर्मक-सधर्मक और निराकार साकार के विरोधी रूपों में एक ही समय अवस्थित है।

वृन्दावन

४३ परब्रह्म पूर्ण पुरुषोत्तम अपने अक्षर धाम तथा अपनी शक्तियाँ सहित अवतार लेता है इसीलिए वल्लभमत में वृन्दावन को भगवान का लीला धाम अथवा गोलोक का अवतार माना जाता है। यह कृष्ण की नित्य लीला का स्थल है, जो माया के गुणों से अलग है और जहां से उनका कभी वियोग नहीं होता। यहां वे अपनी आनन्द प्रसारिणी शक्तियों के साथ लीला करते हैं। वल्लभाचार्य जी ने गोकुल आदि की महत्ता वैकुण्ठ आदि लोकों से भी अधिक मानी है।[1] इसीलिए उनके मतावलम्बी भक्तों को वृन्दावन के प्रति अतीव आसक्ति दृष्टिगत होती है।

जीव

४४ अणुभाष्य में आचार्य जी ने लिखा है कि भगवान की इच्छा से जीव के ऐश्वर्य आदि गुण तिरोहित हो जाते हैं।[2] ऐश्वर्य के तिरोभाव से हीनता, पराधीनता, वीर्य के तिरोभाव से अनेक प्रकार के दुख, यश के तिरोभाव से हीनता, श्री के तिरोभाव से जन्म मरण विषयक आपत्तियां, ज्ञान के तिरोभाव से विषयों में आसक्ति हो जाती है। आनन्दांश का तिरोभाव तो पहले से ही हो जाता है। आचार्य जी ने जीव को अणुमात्र माना है, जो गन्ध की भांति सम्पूर्ण शरीर में फैला हुआ है।[3] जीव अंश और परमात्मा अंशी है। जीव असंख्य, नित्य और सनातन है, इसमें अपने अंशी के सब गुण हैं, किन्तु वह अल्प सामर्थ्यवान है और अपने अंशी

१- अणुभाष्य, अध्याय ३, पाद २, सूत्र ११।

२- वही, अ० ३, पा० २, सू० ५। ३- वही, अ० २, पा० ३, सू० १९।

परमात्मा के वशीभूत है। ऐश्वर्यादि गुणों के न रहने पर वह भ्रम में पड़ कर संसारचक्र में घूमता है और भगवद्भजन से ही उसे इन दुखों से मुक्ति मिल सकती है। जीव दो प्रकार के माने गए हैं, दैवी और आसुरी। दैवी जीव पुष्टि तथा मर्यादा भेद से दो प्रकार के हैं। पुष्टि जीव भी चार प्रकार के हैं- शुद्धपुष्ट, पुष्टिपुष्ट, मर्यादा पुष्ट और प्रवाही पुष्ट। इनकी चारों पुष्टों की उत्पत्ति पुरुषोत्तम के अंग से मानी गई है।[1]

माया

४५ जीव माया के अधीन है। आचार्य जी ने माया के दो रूप बताए हैं, विद्या माया और अविद्या माया। अविद्या माया जीव के बन्धन का कारण है और विद्या माया मुक्ति का। अविद्या माया के कारण जीव में अहंता ममतामय भाव आते हैं। इससे दो प्रकार से भ्रम उत्पन्न होता है। एक तो यह विद्यमान को प्रकाशित नहीं होने देती और दूसरे अविद्यमान को प्रकाशित करती है।[2] शास्त्रार्थ प्रकरण में अतएव आचार्य जी ने माया को पंचपर्वा बताया है।[2] ये पांच पर्व अन्तःकरण, प्राण, इन्द्रिय, देह और स्वरूप नाम के अध्यास हैं। स्वरूपाध्यास में जीव यह बिल्कुल भूल जाता है कि वह भगवान के चेतन अंश का अंश है। वल्लभ संप्रदाय में अविद्या जीव की और माया भगवान की कही गयी है।[3] वह जीव को लौकिक विषयों में फंसाकर अज्ञानता में डालती है। इस अविद्या माया का नाश भगवान की कृपा से ही सम्भव है। भगवान की कृपा होने पर ही जीव इससे मुक्त होता है।[4]

जगत

४६ सिद्धान्त मुक्तावली में आचार्य जी का कथन है कि परब्रह्म तो श्रीकृष्ण ही हैं। सात्त्विक सच्चिदानन्द अक्षर ब्रह्म है जो दो प्रकार का है, जगत स्वरूप और

१- [illegible], भागवत - २६-३३।

२- त० दी० नी०, शा० प्र०, श्लोक ३६।

३- वही, निर्णय प्रकरण, व्याख्या श्लोक १२०।

४- वही, शा० प्र०, ३०, ३८।

उससे भिन्न । वस्तुत: अक्षर ब्रह्म का ज्ञान स्वरूप है जो गंगा जल के सदृश है, अर्थात् एक जल रूप है और दूसरा तीर्थ रूप है ।[1] अणुभाष्य में लिखा है कि ब्रह्म ही इस जगत का निमित्त कारण है और वही इसका उपादान कारण है ।[2]

इस प्रकार आचार्य जी जगत को ब्रह्म का ही एक रूप मानते हैं । जगत ब्रह्म की ही इच्छा से उत्पन्न होता है, इसलिए ब्रह्म को जगत का कर्ता कहा गया है।[3] जैसा कि डा० दीनदयालु गुप्त जी ने कहा है कि वल्लभ सम्प्रदाय अथवा पुष्टिमार्ग जगत के सम्बन्ध में अविकृत परिणामवाद को मानता है । परिणाम अथवा परिवर्तन दो प्रकार का होता है, अविकृत और विकृत । अविकृत परिणाम वह है जब कोई पदार्थ अपना रूप बदलने पर फिर अपने रूप में आ जाय, दूसरा विकृत परिणाम वह है जब परिवर्तित पदार्थ फिर से अपने पहले असली रूप में न आ सके ।[4] अत: जगत एक सत्य तत्व का अविकृत परिणाम होने से सत्य है, पर उसका आविर्भाव-तिरोभाव होता है । उसकी सृष्टि भगवान ने अपनी क्रीड़ा के लिए की है और उसका लय ~~भ्रम~~ भगवान की इच्छा पर निर्भर है ।

संसार

४७ जगत सत्य है क्योंकि वह ब्रह्म का अविकृत परिणाम है । संसार का सम्बन्ध जीव से है और वह जीव कृत होने के कारण ~~मिथ्या~~ मिथ्या है ।[5] जगत भगवान का कार्य है जो भगवान की माया नामक शक्ति से बना है । संसार को जीव ने अपनी अविद्या माया से रचा है । इसका उपादान कारण अविद्या और निमित्त कारण जीव है । [illegible]त्मक अवस्था ही संसार है । जब जीव का अज्ञान मिटता है तो उसके संसार का लय हो जाता है और इससे उसे मुक्ति मिल जाती है । जीव की मुक्ति में ही संसार का लय है ।[6]

१- अणुभाष्य ३।२।३०।

२- त० दी० नी०, शा० प्र० श्लोक ८१ पृ० २०६ ।

३- अष्टछाप और वल्लभ संप्रदाय : डा० गुप्त, पृ० ४३६ ।

४- त० दी० नी०, शा० प्र०, २६ ।

५- वही, श्लोक २० पृ० ८९ । ६- [illegible] ३।२।३०।

मुक्ति

४८ जीव संसार के दुःख से तभी छूटता है जब अविद्या का नाश होकर इन्द्रिय अहं आदि का अध्यास मिट जाता है। प्रारब्ध कर्मों के नष्ट होने और भगवान की कृपा होने पर ही जीव मुक्ति को प्राप्त होता है। भगवान के कृपा पात्र पुष्टिमार्गी भक्त के प्रारब्ध कर्म बिना भोगे ही नष्ट हो जाते हैं।[1] जीवों का भगवान के साथ सम्बन्ध हो जाना ही मुक्ति है। पुष्टिमार्ग के अनुसार यह सम्बन्ध भक्ति द्वारा सरलता से स्थापित हो सकता है। इस मार्ग में मुक्ति की चार अवस्थाओं -- सालोक्य, सामीप्य, सारूप्य और सायुज्य के अतिरिक्त एक और सायुज्य अनुभवा मुक्ति अवस्था मान कर उसे सब अवस्थाओं से श्रेष्ठ माना गया है, जब मुक्त जीव भगवान की लीला में प्रविष्ट होकर उसका साक्षात रूप से अनुभव करता है। आचार्य जी इस अवस्था में संयोग और वियोग दोनों ही रसों की अनुभूति करते हैं। इसी लिए उन्होंने सायुज्य मुक्ति की लयात्मक और प्रवेशात्मक दो अवस्थायें मानी हैं। श्रीमद्भागवत् की भांति उन्होंने 'सद्योमुक्ति' और 'क्रममुक्ति' भी स्वीकार की है। सद्योमुक्ति के अधिकारी पुष्टिपुष्ट भक्त होते हैं जिन्हें भगवान आनन्द विग्रह देकर अपनी रसात्मक लीला में ग्रहण करते हैं। क्रममुक्ति ज्ञानमार्गियों को प्राप्त होती है, विरह की अवस्था को वल्लभ संप्रदाय में बहुत महत्व दिया गया है क्योंकि उस अवस्था में ही भक्त और भगवान का एकीकरण होता है। यह भी एक सायुज्य अवस्था ही है।

रास

४९ आचार्य वल्लभ का कहना है कि भगवान ने ब्रज में लीलाएं इसलिए कीं कि जीवों को ब्रह्मानन्द से मुक्त होकर भजनानन्द मिले, ब्रज लीलाओं की पराकाष्ठा रासलीला में है। रास शब्द का मूल रस है और रस स्वयं श्री कृष्ण ही हैं। जिससे रस की अभिव्यक्ति हो उसे रास कहते हैं।[2] रास लीला में मानसिक रस का उद्गम होता है, देह द्वारा प्राप्त अनुभव से उस रस की अनुभूति नहीं होती। वल्लभाचार्य

१- अणुभाष्य ४। ४। १०।

२- भागवत की सुबोधिनी टीका, रास प्रकरण।

जो नै आभ्यन्तर और वाह्य दो प्रकार का रस माना है ।[1] दास्य, वात्सल्य, सख्य और माधुर्य में केवल माधुर्य भाव से ही रस की अनुभूति होती है । इस सम्प्रदाय में रास केवल-रूप-क रूपक या कल्पना मात्र नहीं है प्रत्युत यहां उसे सत्य स्वीकार किया गया है । वह लौकिकस्त्री पुरुषों का मिलन नहीं था । उसके प्रतिपादक स्वयं सच्चिदानन्द भगवान थे और नायिकायें उनकी आनन्द प्रसारिणी सामर्थ्य शक्ति गोपियां थीं । अत: उनकी यह लीला अप्राकृत थी । भागवत में शुकदेव जी ने भी यही कहा है ।[2]

गोपियां

५० इस रासलीला में प्रवेश करने का अधिकार उसी को है, जो अहंता ममता के भाव को छोड़ चुका है अपनी आत्मा को भगवान की शक्ति मात्र ही मान कर उनकी दी हुई वस्तु उन्हीं को समर्पित करने को उत्सुक हो उठता है । गोपियों का यही भाव था । वे आत्म समर्पण की मूर्तियां थीं और श्री कृष्ण स्वयं परमेश्वर थे । वे जीवात्मा थीं तथा श्रीकृष्ण परमात्मा थे । रास आत्मा परमात्मा के मिलन का ही परिणाम था ।

जैसा कि ऊपर कहा गया है, कि गोपियां भगवान की आनन्दप्रसारिणी सामर्थ्य शक्ति है आचार्य जी ने रास में भाग लेने वाली गोपियों को १६ प्रकार की बताया है[3] जो मुख्यत: तीन वर्ग की थीं । पहली अनन्य पूर्वा (विवाहिता तथा कुमारिका), दूसरी अन्यपूर्वा और तीसरी निर्गुणा । अनन्यपूर्वा और अन्यपूर्वा, प्रत्येक तामस, राजस और सात्विक तीन गुणों के प्रभाव से तथा इन गुणों के मेल से नौ नौ प्रकार की एवं सोलहवीं गोपी निर्गुणा थी । रास रस की अधिकारिणी अन्य पूर्वा और अनन्य पूर्वा दो ही प्रकार की गोपियां बनी थीं । पूर्ण रूप से दैन्य भाव से जब उन्होंने आत्म समर्पण किया तभी कृष्ण ने प्रकट होकर उन्हें रास रस का अनुभव कराया ।

१- बाह्याभ्यन्तरभेदेन आन्तरं तु परं फलं-सुबोधिनी फलप्रकरण कारिका ।

२- भागवत १०।२९।१२।१६ और १०।३३।३०-३३।

३- आचार्य वल्लभ कृत रास पंचाध्यायी, फल प्रकरण, अध्याय ३ ।

राधा

५१ पुष्टि सम्प्रदाय में राधा को ही रस की सिद्ध शक्ति तथा स्वामिनी स्वरूपा बताया गया है। किन्तु उल्लेखनीय है कि वल्लभाचार्य जी ने राधा नाम की स्वामिनी स्वरूपा गोपी का उल्लेख अपने ग्रन्थों में कहीं भी नहीं किया, राधा नाम का समावेश सम्भवत: चैतन्य तथा निम्बार्क सम्प्रदाय के प्रभाव से विट्ठलनाथ जी ने अपने सम्प्रदाय में किया था। यहां राधा रसात्मक शक्ति की प्रतीक है।

वेणु

५२ आचार्य जी ने वेणु से भी भगवान का अविच्छिन्न सम्बन्ध माना है। उन्होंने सुबोधिनी टीका में वेणुगीत का बड़े विस्तार के साथ अर्थ किया है और सारे ही गीत को प्रभु में अर्क आसक्ति द्वारा निरोध सिद्ध कराने के लिए बताया है। वेणुगीत का विवेचन दशम-स्कन्ध के तामस प्रकरण के अन्तर्विभाग प्रमेय प्रकरण में माना है। भागवत में वेणु का प्रभाव बताते हुए लिखा है कि मुरली की तान से मनुष्यों की तो बात ही क्या, सभी चलने वाले पशु पक्षी जड़ नदी आदि स्थिर हो जाते हैं तथा अचल वृक्षों को भी रोमांच हो जाता है।

५३ इस प्रकार उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि कवि की कृतियों में आए हुए गोपी, मुरली, वृन्दावन, जीव, जगत, संसार, माया, रास आदि विषयक तत्व आचार्य वल्लभ के मत के अनुसार ही हैं। यहां द्रष्टव्य है कि विरहमंजरी की रचना के उपरान्त कवि ने राधा का नामोल्लेख नहीं किया है। विट्ठलनाथ जी द्वारा समूह पुष्टि सम्प्रदाय में राधा को स्वामिनी स्वरूपा माना जाता है और नन्ददास ने भी इन्हीं के अनुकरण पर विरह मंजरी पर्यन्त अपनी कृतियों में उसका उल्लेख किया है। नाममाला में तो कवि ने कृष्ण और राधा का चन्द्र और चाँदनी का सा सम्बन्ध प्रकट किया है। श्याम सगाई में राधा, कृष्ण की विवाहिता और विरहमंजरी में कृष्ण की अपूर्व प्रेमिका के रूप में चित्रित की गई है, किन्तु पंचाध्यायी प्रभृति ग्रन्थों और भंवरगीत में अवसर होने पर भी कवि ने राधा का नामोल्लेख तक नहीं किया है। अत: जो कवि कोष ग्रन्थ होते हुए भी नाममाला में राधा के मान को कथा देता है और विरहमंजरी में विरह का उदाहरण देते समय राधा का नाम

देता है, उसी के द्वारा उक्त ग्रन्थों में अनुकूल प्रसंग होने पर भी उसका नामोल्लेख न किया जाना अवश्य कुछ अर्थ रखता है।

जैसा कि पीछे कह आये हैं पंचाध्यायी ग्रन्थों और भंवरगीत की रचना भागवत दशमस्कन्ध के आधार पर की गई है और भागवत में राधा का नाम कहीं नहीं आता है। अतः ज्ञात होता है कि भागवत के ही अनुसरण अनुकरण पर कवि ने भी राधा का उल्लेख उक्त ग्रन्थों में नहीं किया। स्मरणीय है कि सूरदास ने रास और भंवर गीत के प्रसंगों में राधा का भरपूर गुणगान किया है तथा सूरकृत सूरकृत भंवर गीत से प्रेरणा ग्रहण करने पर भी नन्ददास द्वारा राधा का नामोल्लेख तक न किए जाने से आधार ग्रन्थ भागवत का अनुसरण तो ज्ञात होता ही है, विट्ठलनाथ जी के ग्रन्थों की अपेक्षा वल्लभाचार्य जी के ग्रन्थों में प्रतिपादित साम्प्रदायिक सिद्धान्तों के मूल रूप के प्रति ही उनकी तत्वतः अधिक अनुरक्ति भी व्यक्त होती है।

अध्याय ६

भक्ति भावना

भक्ति-भावना

१ जैसा कि कथावस्तु और आधार वाले प्रकरण में संकेत किया जा चुका है, कवि की सभी कृतियों में भक्ति की अभिव्यक्ति का प्रस्फुटन हुआ है और उसका रसोद्रेक सर्वत्र उमड़ा ~~हैं~~ हुआ मिलता है। अतः नन्ददास की भक्ति-भावना का निश्चय उनकी कृतियों में निहित भक्ति विषयक विचारों से पूर्ण परिचय प्राप्त कर लेने पर ही किया जा सकता है। तदर्थ, भक्ति-भावना को दृष्टिगत रखते हुए उनकी सभी कृतियों पर विस्तार से विचार करके उनमें समाहित भक्ति संबंधी यथार्थ प्रवृत्ति को प्रकाश में लाने ~~की~~ सफल दिशा की ओर अग्रसर होने का यहां प्रयास किया जाता है।

कृतियों में भक्ति विषयक विचार

अनेकार्थ भाषा

२ अनेकार्थ भाषा में कवि का कथन है, कि अपना कर्तव्य न भूल कर हरि भजन करो।[1] धन सम्पत्ति का मोह छोड़ कर हरि नाम स्मरण करो।[2] छल कपट,[3] विष तुल्य विषयों[4] और आलस्य का त्याग करके[5] हरि का भजन करो। यदि सुख की अभिलाषा है तो पुण्य करके हरि का भजन करो।[6] यौवन बीता जा रहा है, समय पर गोपाल का भजन करो।[7] हे दीनदयालु कलियुग के क्लेशों से मुझे छुड़ाओ।[8] संसार में वही धनी है जिसके बलवीर ही एकमात्र धन है।[9] कूरंग वही है जो हरि-भक्ति के रंग में नहीं रंगा है।[10] बालक वही है जो बाल गोपाल का भजन नहीं करता है।[11] हे हरि अज्ञान दूर करके मेरे हृदय में ज्ञान का दीपक जला दो।[12] भक्तिभाव से गोविन्द के गुणों और चरित्रों का गान करो।[13] जो नन्दनन्दन का भजन नहीं करते, वे [illegible] और अभागे हैं।[14] जो हरि का भजन नहीं करता, जगत में वही

१- न० ग्र०, अनेकार्थ भाषा, दोहा १५। २- वही, दोहा १८। ३- वही, दो० १९।
४- वही, दो० २०। ५- वही, दो० २८। ६- वही, दोहा २३। ७- वही, दो० २६।
८- वही, दो० ३३। ९- वही, दो० ३५। १०- वही, दो० ३७। ११- वही, दो० ४६।
१२- वही, दो० ५२। १३- वही, दो० ५३। १४- वही, दो० ६६।

गर्दभ है ।[1] हे श्यामसुन्दर, यमराज से बचाये रखो ।[2] अम्बिका माता, मुझे घनश्याम की भक्ति दे ।[3] आठों पहर भगवान का भजन करो ।[4] प्रेम रस ही श्रेष्ठ रस है जिसके वश में बलवीर हैं ।[5] हे गिरिधर मुझे अपने चरण कमलों की प्रीति दीजिए ।[6]

३ इससे ज्ञात होता है कि नन्ददास हरि का भजन करना ही जीवन का एकमात्र कर्तव्य समझते हैं । इसीलिए उन्होंने उक्त प्रकार से हरिभजन का उपदेश दिया है और उसके लिए विधि निषेधों की ओर संकेत किया है । मोह, छल, कपट और आलस्य हरि भजन में बाधक होते हैं और जब तक ये हृदय में रहते हैं, भगवद भजन ठीक से नहीं हो पाता है । इसीलिए कवि ने स्थान स्थान पर इन बाधाओं से बचकर भजन करने का उपदेश दिया है । लौकिक वस्तुओं से सुख की आशा करना मृगतृष्णा मात्र है, वास्तविक सुख तो हरिभजन से ही प्राप्त हो सकता है । कवि के अनुसार समय पर किया गया काम ही फलदायक होता है और जैसे अन्य महत्वपूर्ण कार्यों को करने के लिए यौवन ही उपयुक्त काल है, उसी प्रकार हरि भजन भी यौवन रहते ही कर लेना चाहिए ।

कवि की दृष्टि में हरि भजन ही सबसे बड़ा धन है और संसार की प्रत्येक वस्तु तथा प्राणी की सार्थकता हरि भजन से ही सिद्ध होती है, हरि भजन के बिना सब निरर्थक है ।

भगवान के सामीप्य लाभ के लिए उनके गुण और चरित्रों का अनुभव आवश्यक है किन्तु प्रेमभक्ति के बिना इन गुणों और चरित्रों में चित्त नहीं रमता है । अत: अन्ततोगत्वा यही ज्ञात होता है कि प्रेमाभक्ति प्राप्त करना ही कवि का मनोरथ है ।

स्याम सगाई

१ जैसा कि पीछे लिखा जा चुका है, राधा यशोदा के यहां खेलने के लिए आती है । इसको देखकर यशोदा उसके साथ कृष्ण की सगाई करना चाहती है और वह इस

१-न० ग्र०, दोहा ६१ । २- वही, दोहा ६२,१०३ । ३-वही, दोहा १०२ । ४- वही, दोहा ११० । ५- वही, दोहा ११९ । ६- वही, दोहा १२० ।

आश्रय का प्रस्ताव कोर्ति के पास भेजतो है।[1] कृष्ण की चपलता को दृष्टिगत रखते हुए कोर्ति उस प्रस्ताव को अस्वीकार कर देती है।[2] इस पर यशोदा चिन्तित हो उठती हैं[3] और माता की इच्छा से परिचित होते ही कृष्ण अपने मोर मुकुटयुक्त वेश से बरसाने के बाग में आई हुई राधा का चित चुरा लेते हैं। राधा उनके प्रेमावेश में मूर्छित हो जाती है[4] और घर लाये जाने पर सखियों के कहने से वह माता से नाग द्वारा डसे जाने की बात कहती है।[5] कोर्ति शोकाकुल हो उठती है। सखियों के कहने से गारुड़ी के रूप में कृष्ण को बुलाया जाता है।[6] कृष्ण के दर्शन और संस्पर्श से राधा अपनी सुधि प्राप्त करके आनन्द से भर जाती है।[7] उनकी प्रीति देख कर कोर्ति सगाई कर देती है[8] और इस समाचार से सखा गण प्रेम रस से भरे हुए नाचने गाने लगते हैं।[9]

५ इस प्रकार स्याम सगाई में राधा और कृष्ण की सगाई का कथन है जो कि भगवान श्रीकृष्ण के चरित्र से सम्बन्धित होने से भक्ति का विषय है। इसमें श्रीकृष्ण के प्रति किशोर और युगल रूप की भक्ति भावना तो विदित होती ही है, वात्सल्य तथा सख्य भाव की भक्ति भी इसमें झलकती है। बरसाने के बाग में श्रीकृष्ण किशोर रूप में सामने आते हैं। राधा के साथ सगाई हो जाने पर इनके युगल रूप का चित्र दृष्टिगत होता है। यशोदा के कथनों और उसकी भावनाओं से वात्सल्य भाव प्रकट होता है। ग्वालिनों के कथनों तथा सगाई के उपरान्त ग्वालों की प्रतिक्रिया से सख्य भाव की भक्ति के दर्शन होते हैं। इसके अतिरिक्त राधा और गोपियों की श्रीकृष्ण में तन्मयता के रूप में माधुर्य रति को भी देखा जा सकता है।

इससे प्रकट है कि स्याम सगाई में कवि की प्रारंभिक भक्ति भावना की सफल रूप में व्यंजना हुई है। इसमें कवि ने स्वकीया भक्ति भावना को प्रश्रय दिया है।

१- न० ग्र०, स्याम सगाई, छन्द १-२। २- वही, छन्द ५।
३- वही, छन्द ६। ४- वही, छन्द १०। ५- वही, छन्द १४।
६- वही, छन्द १६। ७- वही, छन्द २५। ८- वही, छन्द २७।
९- वही, छन्द २८।

नाममाला

६ नाममाला में नन्ददास ने गुरु और श्रीकृष्ण दोनों की वन्दना की है।[१] तब कहा है कि राधा का मान सबका कल्याण करे।[२] मान करती हुई राधा को सखी मना कर लाती है और `राधा माधव पुन: प्रेम पूर्वक मिलते हैं।`[३] नन्ददास नन्द नंदन नन्ददास कहते हैं कि युगल किशोर सदा मेरे हृदय में बसें।[४] इसमें कवि का यह भी कथन है कि कृष्ण और राधा भिन्न भिन्न नहीं हैं, दो शरीरों में एक प्राण हैं।[५] राधा की कीर्ति गंगा की तरह नर नारियों को पवित्र करने वाली है।[६] कवि ने मुक्ति की ओर संकेत करते हुए कहा है कि घनश्याम को बिना जाने आवागमन से छुटकारा नहीं मिल सकता है, इसलिए हरि, गुरु और भक्तों का नित्य भजन करना चाहिए।[७]

७ इस प्रकार नाममाला में माधुर्य भावान्तर्गत स्वकीयाभाव की ही भक्ति के दर्शन होते हैं। कवि ने इस स्वकीया भाव का निर्वाह राधा कृष्ण की युगल छवि में दिखा कर किया है और राधा-कृष्ण के `युगल किशोर` रूप को ही अपने हृदय में नित्य-स्थिति की कामना प्रकट की है।

रसमंजरी

८ रसमंजरी में कवि की मान्यता है कि इस प्रेमरस नन्दकुमार ही प्रभु हैं और उसकी परिणति भी उन्हीं में है। अत: जगत में जो भी इस प्रेमजन्य आनन्द रस है, वह भी सब गिरिधर देव का ही है। किन्तु जब तक नायिका भेद का ज्ञान नहीं होता तब तक प्रेम तत्त्व को नहीं जाना जा सकता है, क्योंकि ज्ञान न होने पर निकट की वस्तु भी दूर प्रतीत होती है। जगत की कोई वस्तु श्रीकृष्ण से रहित नहीं है, अत: कोई कवि किसी भी वस्तु का कैसा भी वर्णन करे, वह श्रीकृष्ण का ही यशगान

१- वही, नाममाला, दोहा १। २- वही, दोहा ५।

३- वही, दोहा २४१। ४- वही, दोहा २४३। ५- वही, दोहा ८८।

६- वही, दोहा ६३। ७- वही, दोहा २४४।

होगा ।[1] रसमंजरी में कवि नायक नायिका भेद का वर्णन करता है जिसका कि श्री कृष्ण लीला या चरित्र से यद्यपि कोई सम्बन्ध नहीं प्रतीत होता किन्तु जो कुछ दृश्य श्रव्य और अनुभवगम्य है, सभी तो श्रीकृष्णमय है, तब नायक नायिका भेद का वर्णन ही उनके प्रभाव से अछूता कैसे रह सकता है ? इसलिए कवि ने नायिका भेद में जहां भी सम्भव हुआ, आलम्बन रूप में श्रीकृष्ण का उल्लेख किया है । यथा, मध्याधीरा-धीरा नायिका कहती है, "हे मोहन प्रियतम ! हमारा हृदय नव अनुराग से भरा हुआ है और हे नन्दलाल आप चतुर शिरोमणि तथा नवयौवन, रूप गुणों से भरे हुए हैं ।[2] इसी प्रकार प्रौढ़ा धीरा नायिका सांवरे प्रीतम के पास जाकर मान करके बैठ जाती है ।[3]

९ इससे नन्ददास की माधुर्य भाव की भक्ति की अभिव्यंजना होती है । ग्रन्थारंभ में "प्रेम-तत्त्व"[4] कहने से भी प्रकट होता है कि वह प्रेम के द्वारा ही भगवान की प्राप्ति करने की चेष्टा करता है । इसमें कवि का प्रेमाभक्ति की ओर संकेत मिलता है ।

रूपमंजरी

१० कवि ने इसमें प्रेम मार्ग के अन्तर्गत भगवत् प्राप्ति के दो मार्ग बताये हैं । इनमें से यहां वह केवल एक के मार्ग का ही अनुसरण करता है[5] और रूपमंजरी को भगवत प्रेमासक्त भक्त तथा स्वयं को उसकी सखी इन्दुमती के रूप में रखकर अग्रसर होता है । रूपमंजरी अत्यन्त रूपवती है ।[6] इन्दुमति उपपति रस द्वारा उसके रूप को गिरिधर श्रीकृष्ण को समर्पित करने की बात सोचती है ।[7] वह एक दिन गोवर्धन जा कर गिरि-धर की प्रतिमा देख आती है तथा गुरु के वचनों के अनुसार उसे अपने हृदय में धारण करने लगती है ।[8] संसार से उद्धार पाने के लिए प्रभु से अनन्य विनय करने के अतिरिक्त उसे अन्य कुछ भी नहीं सुहाता है । इधर वह पुन: पुन: प्रभु के चरणों का स्मरण करती है ।[9] उधर गिरिधर प्रभु स्वप्न में एक सुन्दर नायक के रूप में

१- न० ग्रं०, पृ० १४४ । २- वही, पृ० १४७ । ३- वही, पृ० १४८ ।
४- वही, पृ० १४४ । ५- वही, पृ० ११८ । ६- वही, पृ० १२० ।
७- वही, पृ० १२३ । ८- वही, पृ० १२५ । ९- वही, पृ० १२६ ।

रूपमंजरी को दर्शन देते हैं और रूपमंजरी उनके अनुराग में बेसुध हो जाती है।[१] जागने पर वह उसे स्वप्न मात्र समझती है, किन्तु इन्दुमती कहती है कि ईश्वर के अनुकूल होने पर स्वप्न के भी सत्य होने में देर नहीं लगती है [२] और वह पुन: पुन: प्रभु का स्मरण करके क्षण-प्रति-क्षण प्रेम की वृद्धि करती है। रूपमंजरी तब स्वप्न में देखे हुए प्रियतम मोहन के रूप का वर्णन करती है जिसको सुनते ही सखी आनन्द में भरकर बेसुध हो जाती है।[३] सुधि आने पर वह सोचती है कि कौन से पुण्य के कारण यह सखी नन्दनन्दन प्रभु से मिल गई-ह- आई है।[४] वहीं पर सखी रूपमंजरी को बताती है कि उसने ही गिरिधर प्रभु से विनती की थी जिससे वे उसे स्वप्न में मिले। रूप-मंजरी के पूछने पर वह उनका पता बताती हुई कहती है कि वे नन्द-यशोदा के पुत्र हैं और गोकुल ग्राम में रहते हैं। तब रूपमंजरी के हृदय में गिरिधर देव के प्रति ऐसा प्रेम उत्पन्न हो जाता है कि उसमें वे निवास करने लगते हैं और इन्दुमति अत्यन्त अनुराग से भरी हुई उसी में उनकी आराधना करने लगती है।[५]

११ रूपमंजरी प्रियतम से मिलने के लिए विकल हो उठती है और उसे उनके विरह का भी अनुभव होने लगता है।[६] छ: ऋतुओं की अवधि में उसका विरह क्रमश: तीव्रतर होता जाता है। बसन्त ऋतु में वह अत्यन्त उतावली होकर सखी से कहती है कि तू जो कहती थी कि वर्षा बीतने पर प्रियतम से मिलाऊंगी, तूने अभी तक नहीं मिला मिलाया।[७] तभी वह देखती है कि होली खेली जा रही है। नर-नारी परस्पर पिचकारी भरकर परस्पर डाल रहे हैं, वह खड़ी देखती रहती है। उसे वहां कोई पुरुष ही नहीं दिखाई देता है जिस पर वह रंग छिड़के।[८] इतने में लोगों के मुख से व्रज-लीला गाते समय गिरिधर के उसी स्वरूप का वर्णन सुनती है जिसे उसने स्वप्न में देखा था।[९] उसके पूछने पर एक स्त्री बताती है कि जिसकी लीला का गान हो रहा है वे गिरिधर, नन्द-यशोदा के पुत्र हैं और सदा गोकुल में निवास करते हैं।[१०]

१- न० ग्रं०, पृ० १२७ । २- वही, पृ० १२८ । ३- वही, पृ० १२९ ।
४- वही, पृ० १२९ । ५- वही, पृ० १३० । ६- वही, पृ० १३२ ।
७- वही, पृ० १३८ । ८- वही, पृ० १३६ । ९- वही, पृ० १३७ ।
१०- वही, पृ० १३७ ।

यह सुनते ही वह स्वप्न में देखे हुए गिरिधर के आने की बात सुनने पर ही उसे सुधि आती है।[1] किन्तु गिरिधर लाल की प्रत्यक्ष में न पाकर उसकी विरह की आग बढ़ती जाती है। इधर उसे देख कर इन्दुमति थोड़े जल में व्याकुल मछली की भांति तड़पने लगती है,[2] उधर रूपमंजरी कहती है :

अब मोपै छिनु जियौ न जाई। जौ हौं कहां सु करिहि रिझाई।
सुन्दर सुमनन सेज बिछाई। अरगज मरगजि असनि डसाई।।
चन्दन घरिचि चंद उगवाई। मन्द सुगन्ध समीर बहाई।।
पिक गवाई कैकां कुहुकाई। पपिहा पै पिउ पिउ कुलाई।।
मधुर मधुर तू बीन बजाई। मोहन नन्द सुवन गुन गाई।।[3]

यह कहते ही जब उसने गला लटका दिया तब इन्दुमती फूट फूट कर रो पड़ती है और गिरिधर प्रभु से कहती है, 'कि हे गिरिधर लाल, आप कैसे दीन दयालु हो ? मछली जब उछल कर तट पर आ जाती है तो जड़ होने पर भी जल उस पर दया दिखाता है और गण्ड भी डूबते हुए को बचाये रखता है। आप तो सर्व शक्तिमान हैं, फिर आपने अपने ही मुख से कहा भी है कि जो जिस भाव से स्मरण करता है उसी के अनुसार कामना पूरी करता हूं।' इसी समय रूपमंजरी को स्वप्न में अपने भाव के अनुरूप ही श्रीकृष्ण का संसर्ग प्राप्त होता है और उसका तो श्रीकृष्ण से संयोग होता ही है, उसके सत्संग से सखी इन्दुमती का भी उद्धार हो जाता है। नियमों के अनुसार भगवान यद्यपि कामातिशय हैं तथापि नन्ददास ने उक्त प्रकार से रंगीले प्रेम द्वारा उनके नैकट्य को प्राप्त किया। इस प्राप्ति के लिए कवि के अनुसार महान यत्न करना पड़ता है।[4]

१२ इस प्रकार ज्ञात होता है कि यहां कवि ने उपपति रस के द्वारा माधुर्य भावान्तर्गत परकीया भाव की भक्ति को प्रश्रय दिया है जिसमें एकान्त और अनन्य प्रेम द्वारा कलियुग में भगवान के सामीप्य का अनुभव होता है। भगवान के सामीप्य

१- नं०ग्रं०, पृ० १३६। २- वही, पृ० १४०। ३,४- वही, पृ० १४१
५- वही, पृ० १४३।

की स्थिति प्राप्त होने में गुरु का महत्वपूर्ण योग होता है। भगवत्प्रेम का दीपक किसी के हृदय में यों ही नहीं जल उठता, उसके लिए गुरु को तो यत्न करना ही पड़ता है, भगवान की कृपा की भी नितान्त अपेक्षा रहती है।

१३ गुरु को जिसका चित्त भगवान की ओर आकर्षित करना होता है, उसको पहले स्वप्न में भगवान के मोहक रूप से साक्षात्कार कराया जाता है जिससे वह भगवान के रूप रस में निमग्न होकर सुधबुध खो बैठता है। तदनन्तर उसे सहज ही भगवान की अनन्य भक्ति प्राप्त होती है और लौकिक सम्बन्धों तथा वस्तुओं से उसका कोई सरोकार नहीं रह जाता है। वह प्रियतमा के रूप में, पूर्ण समर्पण भाव से भगवान के दर्शन के लिए तड़पने लगता है और दर्शन न होने पर उसे भगवान के विरह की तीव्रानुभूति होती है। वह धीरे धीरे विरह की चरमावस्था को प्राप्त होता है और उससे आगे जीवित रह सकना वह असम्भव समझता है। उस समय गुरु प्रयत्न करता है। गुरु भगवान के सम्मुख दया याचना करता है और तब भगवान कृपा करके भक्त की भावना में प्रकट होकर उसको विरह के अपार दुख से मुक्त कर देते हैं। इस भांति भक्त की मनोकामना पूर्ण होती है और उसके सत्संग से गुरु का भी निस्तार हो जाता है। स्मरणीय है कि रूपमंजरी की विरह साधना के रूप में कवि ने प्रेमा-भक्ति का उत्कृष्ट उदाहरण प्रस्तुत किया है।

विरहमंजरी

१४ विरहमंजरी में एक ब्रज बाला को श्रीकृष्ण की द्वारावती की लीलाओं का ज्योंही स्मरण होता है, वह उन लीलाओं के साथ तदाकार हो जाती है और उसके हृदय में भगवान का विरह जाग उठता है।[१] बारहों मास के विरह दुख का सामना करने पर भी जब उसे नन्दनन्दन के सामीप्य का अनुभव नहीं होता है तो उसकी विरह-अनुभूति इस सीमा तक बढ़ जाती है कि वह लोक लाज की परवाह न करके सांवरे प्रियतम के पास स्वयं ही द्वारावती जाने को उद्यत हो उठती है।[२] उसी समय उसे भगवान की लीलाओं का स्मरण हो आता है जिससे उसको विरह ताप से उसीप्रकार [illegible] मिल जाता है जैसे जागने पर स्वप्न के दुख से। प्रातः होने पर श्रीकृष्ण की मुरली के नाद को सुनकर ब्रज बाला उसी ओर जाती है और उसका श्रीकृष्ण से सहज

इससे प्रकट होता है कि विरह मंजरी में कवि का भक्ति माधुर्य भाव की भक्ति है जो भगवान के प्रति एकान्त और अनन्य प्रेम, तीव्र विरहानुभूति एवं लोक लाज के परित्याग की भावना द्वारा समन्वित है। यहां प्रेम ही सब कुछ है।

रुक्मिणीमंगल

१५ यहां कवि का कथन है कि जिस प्रकार श्रीकृष्ण की कृपा से सुर नर आदि सभी को सुख की प्राप्ति होती है उसी प्रकार गुरु के चरणों के प्रताप से भी सदा आनन्द की वृद्धि होती है।[१]

पश्चात् कवि कहता है कि नारद मुनि के मुख से श्रीकृष्ण का गुणगान सुनकर श्रीकृष्ण, रुक्मिणी को अमृत से भी बढ़कर प्रिय विदित होते हैं और वह आत्म-समर्पित होकर उन्हें अपने पति रूप में चुन लेती है।[२] किन्तु उनका संग प्राप्त करने में शिशुपाल से विवाह की बात उसके सम्मुख एक बड़ी बाधा के रूप में उपस्थित हो जाती है और इससे अवगत होते ही[३] उसके हृदय में श्रीकृष्ण का तीव्र विरह जाग उठता है।[४] बहुत विचार करने के उपरान्त वह कहती है, कि जिस प्रकार भी हरि भगवान की अनुगामिनी बन सकूं वही उपाय करूंगी।[५] वह गिरिधर नन्दकुंवर को प्राप्त करने के लिए लोक लाज का भी परित्याग करने को उद्यत हो उठती है। उसके सम्मुख गोकुल की गोपियों का आदर्श उपस्थित हो जाता है जिन्होंने प्रेम से परिपूर्ण अवस्था में लोक-वेद की रीतियों की परवाह न करके और अपने लौकिक पतियों को भी छोड़कर श्रीकृष्ण का अनुसरण किया।[६] वह श्रीकृष्ण के पास एक द्विज के हाथ सन्देश भेजती है कि, "हे कमलनयन गिरिधर यदि तुम मुझे नहीं अपनाओगे तो मैं तिनके के समान अग्नि में भस्म हो जाऊंगी।[७] रुक्मिणी की इस वर्तावाणी को सुनते ही श्रीकृष्ण उसके उद्धार के लिए आ पहुंचते हैं और उसे अपना कर उसकी मनोकामना पूरी करते हैं।[८]

१६ इस प्रकार रुक्मिणीमंगल में प्रेमा-भक्ति की अनन्यता, लोकलाज का परित्याग, तीव्र विरहानुभूति और आत्मसमर्पण की भावना तो प्रकट होती ही है, कामरूप एवं गुरु चरणों का महत्व भी प्रतिष्ठित होता है।

१-वही, पृ० २०० । २-वही, पृ० २०१ । ३-४- वही, पृ० २००-२०१ ।
५-६- वही, पृ० २०३ । ७,८- वही, पृ० २०६ । ९- वही, पृ० २११ ।

रासपंचाध्यायी

१७ ऊपर रूपमंजरी में निहित कवि की भक्ति भावना का विश्लेषण करते हुए ज्ञात हुआ था कि भगवान के चरण कमलों को प्राप्त करने के लिए जगत में नाद और रूप, दो अमृत मार्ग हैं और इनमें से रूपमार्ग का वर्णन उसने रसमंजरी में किया है। उसी समय यह सहज जिज्ञासा होती है कि कवि का नाद-अमृत मार्ग कौन सा है ? यह जिज्ञासा तब तक बनी रहती है जब तक रासपंचाध्यायी का यह कथन सम्मुख नहीं आता कि नाद अमृत मार्ग अत्यन्त सरस और सरल है जिसका ब्रज बालाओं ने अनुसरण किया।[1] तदनन्तर कवि का कथन है कि मुरली की ध्वनि की कूक सुनते ही गोपियां भवन-भीति, द्रुम-कुंज-पुंज आदि से अबाधित होकर नाद के मार्ग पर चल पड़ीं जो प्रारब्ध वश त्रिगुणात्मक शरीर से मुरली नाद का अनुसरण करके श्रीकृष्ण के समीप नहीं जा सकीं उन्होंने श्रीकृष्ण के असह्य विरह का सामना करने के उपरान्त उसी मार्ग के अनुसरण द्वारा हृदय में ही प्रियतम का आलिंगन किया जिससे उन्हें करोड़ों स्वर्गों के सुख भोग से भी बढ़ कर आनन्द लाभ हुआ।[2]

१८ उधर जो गोपियां सब कुछ छोड़ कर श्रीकृष्ण की ओर गई थीं, उनके प्रेमरस को बढ़ाने की दृष्टि से श्रीकृष्ण लौकिक धर्म की सुधि दिलाकर उनसे उनके घर लौट जाने को कहते हैं।[3] इस पर गोपियां उनके विरह से व्याकुल होकर परम प्रेम रस से परिपूर्ण हो जाती हैं जिससे श्रीकृष्ण वश में होकर उनका मनोरथ पूर्ण करते हैं।[4] इस प्रकार भगवान श्रीकृष्ण को स्ववश करने में सफल हो जाने पर गोपियों के हृदय में सहज अभिमान का प्रादुर्भाव हो उठता है।[5] प्रेम भाव में गर्व को बाधक जान कर उसका निराकरण और प्रेमसुख का विस्तार करने की दृष्टि से श्रीकृष्ण कुछ समय के लिए गोपियों के बीच से अन्तर्धान हो जाते हैं।[6] उनको सामने न पाकर गोपियां प्रेमोन्मत्त अवस्था में उनकी विविध लीलाएं करने लगती[7] हैं और श्रीकृष्ण की प्रेम-भक्ति प्रसूत विरहावस्था से उनमें इस प्रकार तन्मय हो जाती हैं कि अपने को उन्हीं का रूप समझने लगती हैं। तब उन्हें [illegible] के चरण-कमल-रज की प्राप्ति होती है, वे

१-२ न० ग्रं०, पृ० ८ । ३- वही, पृ० ११ । ४- वही, पृ० १२ ।
५,६- वही, पृ० १३ । ७- वही, पृ० १४ ।

उसकी वन्दना करके[1] श्रीकृष्ण की खोज करती हुई यमुना तट पर आती हैं। यहां पर पहले तो वे श्रीकृष्ण से उपालम्भपूर्ण कहती हैं, 'कि हे नाथ, विरह का महाशस्त्र लेकर तुम बिना मोल की दासियों को क्यों मार रहे हो ? यदि मारना ही था तो काली नाग, इन्द्रकोप, दावानल आदि से रक्षा क्यों की थी ? फिर वे अत्यन्त दीनता पूर्वक कहती हैं, कि हे मित्र, हे प्राणनाथ, यह आश्चर्य की बात है कि तुम हमें तड़पा रहे हो। हम तुम्हारी हैं, तड़प तड़प कर हमारे प्राण भी नहीं रह जायेंगे तो फिर तुम किसकी रक्षा करोगे ? हमारे तो तुम ही अवलम्ब हो, अतः दर्शन देकर हमारे दुख दूर करो।[2] इस प्रकार प्रेम की लहरों के अप्रतिम रूप से बढ़ जाने से जब गोपियां अत्यन्त विह्वल हो गयीं[3] तो श्रीकृष्ण ने प्रकट होकर उन्हें विरह के महान दुख से मुक्त किया।[4] उन्होंने प्रत्येक गोपी के साथ अलग अलग विराजमान होकर उनकी मनोकामनाएं पूर्ण कीं।[5] यहीं पर गोपियां श्रीकृष्ण से प्रीति की रीति संबंधी बातें पूछती हैं, 'कि कुछ तो ऐसे हैं जो अपने से ही प्रेम करते हैं, दूसरे कुछ ऐसे निर्लिप्त हैं जो अपने से प्रेम न करने वाले से भी प्रेम करते हैं। अब हे नन्दलाल, बताओ कि वे तीसरे वर्ग वाले कौन हैं जो प्रेम की इन दोनों रीतियों को त्याग देते हैं।[6] व्यंजना से गोपियों का तात्पर्य है कि वे श्रीकृष्ण से अतीव प्रेम रखती हैं किन्तु उन्होंने उन्हें अपने दर्शनों से भी वंचित रखकर करके उनके प्रति महत् निष्ठुरता का परिचय दिया। यह किस कोटि की प्रीति रीति है ? गोपियां उक्त प्रश्न श्रीकृष्ण के साथ तन्मयता का अनुभव करके ही करती हुई जान पड़ती हैं। अतः यहां सख्य भाव का सहज समावेश दृष्टिगत होता है। गोपियों के उक्त प्रीतिपूर्ण वचनों को सुनकर श्रीकृष्ण कहते हैं कि उन्होंने निष्ठुर सा प्रतीत होने वाला व्यवहार उनके प्रेम को बढ़ाने के लिए ही किया।[7] वे उनके प्रेम के सम्मुख पराजय स्वीकार करते हुए कहते हैं कि हे व्रजबालाओं मैं तुम्हारा ऋणी हूं। अपने हृदय से मेरे सभी दोषों को दूर कर दो। कोटि कल्पों तक भी यदि मैं तुम्हारे प्रति उपकार करूं तो भी उऋण नहीं हो सकता। तुम्हारी मोहमयी माया ने मुझे मोहित कर लिया है।[8] इस प्रकार श्रीकृष्ण के मुख से उक्त

१- भ० पु०, पृ० २६ । २- वही, पृ० २८ । ३,४- वही, पृ० २९ ।
५,६- वही, पृ० ३० । ७- वही, पृ० ३१ (परिशिष्ट)

प्रकार के प्रत्युत्तर द्वारा कवि ने गोपियों के प्रेम को सर्वोत्कृष्टता सिद्ध करने का प्रयास किया है।

१९ तदनन्तर कवि ने कहा है कि श्रीकृष्ण के प्रेमरस से भरे हुए उक्त वचन सुनते ही गोपियों ने उन्हें हृदय से लगा लिया और श्रीकृष्ण ने भी गोपियों के अनुकूल होकर उनके दुखों का जड़ मूल से नाश कर दिया।[१] श्रीकृष्ण के अनुकूल होने से कवि का तात्पर्य उनके अनुग्रह से है जिसके द्वारा वे अपने प्रेमी भक्तों को अपनाते हैं। गोपियों पर अनुग्रह करके ही वे उनके साथ रास के प्रतिपादन द्वारा विविध विलास लीलाएं करते हैं और उन्हें इस रस का अनुभव कराते हैं जिसका उनके चरण कमलों की नित्य सेवा में रत लक्ष्मी को भी कभी स्वप्न में तक अनुभव नहीं हुआ।[२]

२० रासपंचाध्यायी में निहित भक्ति भावनाओं के उक्त विश्लेषण से भी यही सूचित होता है कि नन्ददास की भक्ति प्रेमा-भक्ति है, जो उनकी इस स्पष्टोक्ति से भी प्रकट है, "कि जो प्राणी रास लीला को शुद्ध भाव से गाता, सुनता और दूसरों को सुनाता है, वह सहज ही प्रेम भक्ति को ~~अनायास है~~ प्राप्त करता है और सबको प्रिय होता है।[३] पंचाध्यायी में इस प्रेमाभक्ति की प्राप्ति के लिए गोपियां केवल इतना ही करती हैं कि वे लोकाश्रय का परित्याग करके नाद मार्ग के अनुसरण द्वारा श्रीकृष्ण के पास पहुंच जाती हैं। उसके उपरान्त उन्हें आत्मसात् करने की दिशा में भगवान स्वयं ही अग्रसर होते हैं। वे धर्म की शिक्षा देने के मिस [उनके प्रेम की परीक्षा लेते हैं और प्रेम] की प्रतीति होने पर उन्हें अपने साथ विहार करने का अवसर प्रदान करते हैं।

२१ हृदय में किसी भी प्रकार के मद की उपस्थिति प्रेम की अनन्यता और एकान्तता के मार्ग में बाधक होती है। इसीलिए जब गोपियों के हृदय में श्रीकृष्ण की प्राप्ति का अभिमान मद छा जाता है, वे कुछ समय के लिए अन्तर्धान हो जाते हैं जिससे उनका तीव्र विरह-ताप उत्पन्न होकर गोपियों के गर्व को तो भस्मीभूत करता ही है, उनकी भावना को विशुद्ध प्रेम में भी परिवर्तित कर देता है, फलस्वरूप वे तन्मयतावस्था को प्राप्त होती हैं और श्रीकृष्ण से करुण स्वर में दुःख निवारणार्थ याचना करती हैं। जब उनकी विरह-विह्वलता इतनी बढ़ जाती है कि वे अटपटी वाणी बोलने

१- नन्द ग्रन्थ०, पृ० २१। २- वही, पृ० २२। ३- वही, पृ० २४।

~~बोलने~~ लगती हैं तो श्रीकृष्ण पुन: प्रकट होने की कृपा करते हैं, जिससे गोपियां आत्म समर्पित होकर, दु:खों से पूर्णत: तृप्ति और आनन्दानुभव का लाभ प्राप्त करती हैं ।

२२ इसके अतिरिक्त उपर्युक्त विश्लेषण से यह भी प्रकट होता है कि ग्रन्थ में प्रेमाभक्ति के अन्तर्गत परकीया माधुर्य भाव का प्रकाशन हुआ है । रासक्रीड़ा के समय माधुर्य के अन्तर्गत कान्ता भाव की तो पराकाष्ठा दिखाई दे देता है, गोपियों द्वारा प्रीति रीति के विषय में जिज्ञासा करते समय सख्य भाव की भी प्रतीति होती है । इसी स्थल पर कवि श्रीकृष्ण के ही मुख से विशुद्ध प्रेम की महत्ता का प्रकाशन करता हुआ ज्ञात होता है । वस्तुत: रासपंचाध्यायी में भक्ति का केन्द्रीय भाव प्रेम ही है और इतर आभासित होने वाले भाव एवं घटनाओं का अस्तित्व उसी के कारण है । यह बात इससे और भी स्पष्ट हो जाती है कि कवि ने वर्णनों और कथनों को इस क्रम से रक्खा है कि परिणामत: उनकी परिणति बार बार प्रेम में ही होती है और अलौकिक तत्व श्रीकृष्ण के संयोग के साथ उनका पर्यवसान होता है । इसी प्रेम को कवि ने `प्रेम भक्ति' के नाम से अभिहित किया है जिसको सामान्यत: प्रेमा भक्ति कहा जाता है ।

सिद्धान्तपंचाध्यायी

२३ सिद्धान्त पंचाध्यायी में कवि का कथन है कि गोपियों का चित्त पहले श्री कृष्ण के श्याम स्वरूप की ओर आकर्षित होता है और फिर मुरली की ध्वनि सुनते ही वे उनकी ओर चल पड़ती हैं ।[१] उन्हें माता, पिता, पति, पुत्र आदि कुटुम्बी जन रोकते हैं किन्तु वे नहीं रुकती हैं और प्रेम रस से भरी हुई श्रीकृष्ण के पास जा पहुंचती हैं ।[२] विवशत: घर में ही रह जाने वाली गोपियां त्रिगुणात्मक शरीर से परे चित्तस्वरूप द्वारा ही श्रीकृष्ण के दर्शन कर लेती हैं[३] । इस प्रकार गोपियां प्रेम द्वारा भगवान को प्राप्त करके अपने प्रेम मार्ग का प्रतिपादन करती हैं ।

२४ गोपियों को निकट देखकर श्रीकृष्ण ने विशुद्ध प्रेम को प्रकट करने की दृष्टि से उनसे कुछ और कुछ [illegible] वचन कहे जिसके प्रत्युत्तर में गोपियां कहती हैं कि `घर

की बातें तो उसको बतानी चाहिए जिसे उनकी आवश्यकता हो । धर्म की आवश्यकता तो इसीलिए होती है कि उन पर चल कर आपकी प्रेमभक्ति प्राप्त हो जिससे आपके चरण कमलों का नैकट्य सुलभ हो सके । हम तो आपके चरण कमलों का नैकट्य में आ चुकी हैं, इसलिए हमें धर्म की शिक्षा देना व्यर्थ ही है । जितने भी निपुण शास्त्रज्ञ हैं, सब आपके ही प्रेम में अनुरक्त रहते हैं । तब आपके चरण कमलों को छोड़कर हम ही 'दार गार सुत पति' की ओर क्यों जांय जो सुख तो क्या क्षण क्षण महान कष्टों को देने वाले हैं । जिस प्रकार लक्ष्मी सब कुछ छोड़कर आपके चरणों पर आई हैं, उसी प्रकार हम भी आई हैं । इसलिए हे प्रियतम हमें ठुकराओ नहीं ।' गोपियों के प्रेम वचन सुन कर श्रीकृष्ण हर्ष पूर्वक उनके साथ रमण करते हैं ।[1]

२५ इस प्रकार [illegible] का संस्पर्श पा कर गोपियों के हृदय में कुछ हर्ष-सा गर्व हो आता है, गर्वादिक जो काम के अंग हैं वे शुद्ध प्रेम के अंग नहीं हैं । इसलिए उनके प्रेम को गर्वादि से रहित विशुद्ध रूप प्रदान करने की दृष्टि से श्रीकृष्ण उन्हीं के बीच अन्तर्धान हो जाते हैं ।[2] और जब गोपियों के हृदय में महान विरहानुभूति के उपरान्त प्रेमामृत सागर उमड़ पड़ता है तथा वे अत्यन्त 'विह्वल' होकर 'कलकल' बोलने लगती हैं तो वे प्रकट हो जाते हैं । उनके दर्शन से गोपियों का दुख दूर हो जाता है[3] और उन्हें अपना मनोरथ प्राप्त हो जाता है ।

इस प्रकार गोपियां पहले काम भाव से श्रीकृष्ण की ओर गई और उनके साथ एक तन्मय होकर वही भाव शुद्ध प्रेम में परिणत होकर [illegible] का साधन सिद्ध हुआ ।

२६ उपर्युक्त विश्लेषण के आधार पर कहा जा सकता है कि सिद्धान्त पंचाध्यायी में नन्ददास की भक्ति भावना का वही रूप दृष्टिगत होता है जो रास पंचाध्यायी में हुआ था । इसका कारण यह है कि इसकी रचना ही रासपंचाध्यायी की [illegible]

१- रा० पं०, पृ० ४२ । २- वही, पृ० ४३ ।

३- वही, पृ० ४५ ।

व्याख्या के लिए हुई है । इसके अतिरिक्त इसमें कवि ने कहा है :-

> रास सकल मण्डल के जे भंवर भए हैं ।
> नीरस विषय विलास क्रिया कर छांड़ि दिए हैं ।
> नंददास सौं नंद सुवन जौं करुना कीजे ।
> तिन भक्तन को पद पंकज रस सौं रुचि दीजे ।[१]

गोपियां ही रास मण्डल की भंवर थीं । अत: भक्तों को पद पंकज रस से रुचि' के कथन से कवि का प्रयोजन गोपियों के प्रेम-भक्ति-रस से प्रीति होने से विदित होता है । इसी से प्रकट होता है कि नन्ददास की भक्तिभावना गोपियों की भक्ति भावना के अनुसरण पर ही निर्मित हुई होगी । दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि रास पंचाध्यायी और सिद्धान्त पंचाध्यायी में गोपियों की जिस भक्ति भावना की सूचना मिलती है, नन्ददास की भक्ति भावना उससे भिन्न नहीं है । यहां कवि एक ओर भक्त के हृदय में लोकाश्रय का त्याग, सर्वस्वसमर्पण भाव, तीव्र विरहानुभूति से विशुद्ध हुए प्रेम के सहारे परकीया माधुर्य भक्ति का प्रकाशन करता हुआ दृष्टिगत होता है, दूसरी ओर भगवान के सत्संग और भगवदनुग्रह द्वारा उसे स्थिरता प्रदान करने की चेष्टा करता है । यथार्थत: यह भगवान की कृपा का ही फल है कि गोपियों को उनका संसर्ग प्राप्त हुआ और वे रास लीला में भाग लेकर अप्रतिम आनन्द को प्राप्त कर सकीं, जिसके उपरान्त कुछ भी प्राप्त करना शेष नहीं रह जाता है ।

भंवरगीत

२७ भंवरगीत में नन्ददास के भक्ति विषयक विचार सर्वप्रथम उद्धव-गोपी संवाद के रूप में सम्मुख आते हैं । श्याम का नाम सुनते ही गोपियां सुध बुध भूलकर प्रेमानन्द से भर जाती हैं ।[२] पश्चात् मोहन के संदेश को सुनकर उन्हें उनका रूप भी स्मरण हो आता है और वे प्रेम विह्वल होकर मूर्च्छित हो जाती हैं ।[३] इसी समय उद्धव सगुण नन्दकुमार की ओर से उनका मन विरत करके ज्ञान द्वारा निर्गुण ब्रह्म को देखने का उपदेश देते हैं ।[४] गोपियां कहती हैं कि विश्व में व्याप्त ब्रह्म और ज्ञान को समझना

१-न०ग्र०, पृ० ३८ । २-वही, भ्रमरगीत, छन्द ३ । ३-वही, छन्द ६ ।
४- वही, छन्द ७ ।

उनके वश का नहीं है, फिर ज्ञान का मार्ग उनके लिए अनावश्यक भी है क्योंकि उनके श्याम का रूप बड़ा सुन्दर है और उनसे प्रेम करने का मार्ग भी बिलकुल सरल है।[1] उद्धव अपनी धुन में कहे जाते हैं कि ब्रह्म निराकार और निर्गुण हैं जिनके हाथ, पैर, नासिका, नैन, वाणी, श्रवण आदि कोई भी अंग नहीं है और जिन्हें योग साधन से ही प्राप्त किया जा सकता है।[2] तभी गोपियों को श्रीकृष्ण की लीलाओं का स्मरण हो आता है और वे कहती हैं कि यदि उनका मुख नहीं है तो उन्होंने मक्खन कैसे खाया, पैर नहीं हैं तो गायों के साथ वन में कैसे गए और हाथ नहीं हैं तो गोवर्द्धन कैसे उठाया ?[3] रहा योग साधन सो इसे उसको बताना चाहिए जो इसके योग्य हो। प्रेमामृत का एक बार पान कर लेने पर धूल समेटना उनके वश की बात नहीं है।[4] वे परब्रह्म की प्राप्ति का आधार कर्म नहीं प्रत्युत शुद्ध प्रेम बताती हैं जिसके अभाव में कर्मरत जीव विषय वासना के रोग से ही शिथिल हो कर मर जाता है।[5] उद्धव के मुख से योग साधना द्वारा ब्रह्माग्नि में शुद्ध होकर ब्रह्म ज्योति में लीन होने की बात सुनते ही गोपियां योगी और भक्त का अन्तर बताती हुई कहती हैं कि योगी की दृष्टि में ब्रह्मज्योति ब्रह्म से भिन्न कोई वस्तु है पर भक्त की दृष्टि में वह उसी का रूप है।[6] अत: योगी से भक्त की स्थिति अधिक सुबोध और स्पष्ट है तथा भक्त योग साधन के चक्कर में न पड़कर श्यामसुन्दर को हृदयस्थ करते हुए प्रेमामृत के पान का सौभाग्य सहज ही प्राप्त कर लेता है। ब्रह्म के निर्गुण होने की बात के उत्तर में गोपियां कहती हैं कि यदि ब्रह्म गुण रहित है तो उससे उत्पन्न सृष्टि में गुण कहां से आ गये ? बीज के बिना कभी पेड़ नहीं उग सकता, क्या इतना भी समझाने की आवश्यकता है ?[7]

२८ ब्रह्म का दर्शन करने वाली दिव्य दृष्टि गोपियों को श्रीकृष्ण की कृपा से प्राप्त हो गई किन्तु उद्धव उससे वंचित होने के कारण उसका दर्शन नहीं कर सकते और कर्म कूप के अन्धकार में पड़े रहने के कारण उसका उस दिव्य तेज पर विश्वास भी नहीं कर सकते।[8] उद्धव ने जीव के निष्कर्म होने पर ब्रह्म में समाने की बात कही।[9] इस पर

१- न० मु०, भ्रमरगीत, छन्द ८। २- वही, छन्द ६। ३- वही, छन्द १०।
४- वही, छन्द १२। ५- वही, छन्द १६। ६- वही, छन्द १८।
७- वही, छन्द २०। ८- वही, छन्द २४। ९- वही, छन्द २५।

गोपियाँ कहती हैं कि यदि ब्रह्म कर्म और गुणों से परे है तो यह अवतार क्यों धारण करता है?[१] केवल निर्विकार ज्ञान द्वारा प्राप्य निर्गुण ब्रह्म को छोड़कर अन्य सबको उद्धव द्वारा नश्वर कहने की बात पर गोपियाँ कहती हैं, कि नास्तिक जन ब्रह्म के सगुण रूप को नहीं जान सकते हैं। वे तो सगुण ब्रह्म के प्रत्यक्ष स्वरूप की उपेक्षा करते हुए अव्यक्त निर्गुण ब्रह्म को जानने का यत्न करके वैसी ही मूर्खता करते हैं जैसे कोई प्रत्यक्ष रूप से चमकते हुए सूर्य को छोड़कर धूपरूपिणी उसकी छाया को पकड़ने का प्रयास करे। हमें तो अपने सगुण ब्रह्म की प्रत्यक्षमूर्ति ही प्रिय है क्योंकि इस प्रिय रूप में हमें करोड़ों निर्गुण ब्रह्मों का दर्शन होता है।[२] इतना कहते ही श्रीकृष्ण की मूर्ति उनके सम्मुख प्रकट हो जाती है और वे उसी मूर्ति की ओर तल्लीन होकर, उनकी निष्ठुरता के लिए उपालम्भ देती हुई तथा अपनी व्यथा को प्रकट करती हुई। करुणा स्वरों में अपने उद्धार के लिए अनुनय विनय करती हुई,[३] वे कृष्ण के विरह में उसी प्रकार तड़प तड़प कर विकलता प्रकट करती हैं जिस प्रकार जल से बिछुड़ने पर मछली।[४] वे कहती हैं कि यदि मारना ही था तो 'व्याल अनल विष ज्वाल' से उनकी क्यों रक्षा की थी।[५]

२८ भगवान श्रीकृष्ण के कार्यों और चरित्रों की चर्चा करते करते गोपियाँ उन्हीं के अनुराग में इस प्रकार निमग्न हो जाती हैं कि प्रियतम के सभी रूपों और चरित्रों का दर्शन उन्हें होने लगता है।[६] उनके ऐसे प्रेम को देख कर उद्धव का ज्ञान और योग का भाव दूर हो जाता है और वे अपने अज्ञान पर अत्यन्त लज्जित होते हैं।[७] वे गोपियों की चरणरज को सिर में रख कर कृत कृत्य होने की बात सोचने लगते हैं और साथ ही [illegible] की सी प्रेम भक्ति की कामना करने लगते हैं।[८] गोपियाँ इतने से ही नहीं मानतीं हैं, वे पुनः कहती हैं, कि हे भ्रमर तेरा ज्ञान तो उलटा है। साधन का उद्देश्य होता है, मुक्ति की प्राप्ति। कृष्ण को प्राप्त कर लेने पर हमें तो मुक्ति की आवश्यकता नहीं रह गई है, तब हमें कर्म और योग की शिक्षा देना व्यर्थ है।[९] इस प्रकार [illegible] भ्रमर के प्रति उपालम्भ के रूप में कृष्ण प्रेम की ऐसी धारा बहाती हैं कि उसमें उद्धव भी बह जाते हैं।[१०]

१- नं० ग्रं०, भ्रमरगीत, पृ० छं० २६। २-वही, छं० २८। ३-वही, छं० ३०। ४-वही, छन्द ३१। ५-वही, छं० ३४। ६-वही, छन्द ४२। ७-वही, छं० ४३। ८-वही, छन्द ४४। ९-वही, छन्द ६०। १०-वही, छन्द ६१।

गोपियों की अनन्य प्रेममयी भक्ति देख कर उन्हें निर्गुण की निस्सारता और सगुण की महत्ता का भान होता है। उन्हें ज्ञात हो जाता है कि ज्ञान और कर्म से प्रेममयी भक्ति निश्चय ही ऊपर है और प्रेममयी भक्ति तथा ज्ञान-कर्म-योग में समानता बतलाना वैसी ही मूर्खता है जैसी हीरे और कांच को समान बताने में।[1] वे कामना करते हैं कि उन पर गोपियों की दया पड़ती रहे।[2] उद्धव सत्संग की महिमा का भी अनुभव करते हैं और प्रेममयी गोपियों के सम्पर्क से शुद्ध प्रेम रस का पान करने योग्य स्थिति में अपने को पाते हैं।[3]

३० मथुरा से आते समय निर्गुण ब्रह्म का जो निरूपण उद्धव कर रहे थे, उसको निस्सार समझ कर सगुण श्रीकृष्ण के प्रति अनन्य प्रेममयी भक्ति को ही उद्धव भक्ति का सार कहते हैं।[4] आगे कवि लिखता है कि गोपी और कृष्ण अभिन्न हैं क्योंकि वे श्रीकृष्ण के रोम रोम में समायी हुई हैं।[5] श्रीकृष्ण की सरस प्रेमलीला गाकर नन्ददास भी पवित्र हो जाते हैं।[6]

३१ इस प्रकार ज्ञान, योग, कर्म-काण्ड आदि प्रेममयी भक्ति से इतर ब्रह्म की प्राप्ति के साधनों की निरर्थकता प्रकट की गई है। कर्मकाण्ड का ब्रह्म की प्राप्ति से कोई सम्बन्ध न होने से उसके द्वारा जीव को बन्धन से मुक्ति नहीं मिलती है। क्योंकि कर्म या तो बुरे होंगे या अच्छे ही। बुरे कर्मों से नरक और अच्छे कर्मों से स्वर्ग की ही प्राप्ति होती है, ब्रह्म की नहीं। ज्ञान या योग की साधना जो कि अत्यन्त विषम है, ब्रह्म की प्राप्ति के लिए ही की जाती है। ब्रह्म की प्राप्ति प्रेममयी भक्ति द्वारा भी होती है जिसका आधार विशुद्ध प्रेम होता है और जिस पर चलना योग साधन की अपेक्षा सरल भी है। ऐसे सरल मार्ग द्वारा यदि किसी भक्त को भगवान की प्राप्ति हो जाती है तो उसके लिए ज्ञान या योग साधन की स्पष्टतः कोई आवश्यकता ही नहीं रह जाती है। उसकी दृष्टि में प्रेम का स्थान कहीं ज्ञान या योग से ऊंचा होता है और वह ज्ञान द्वारा न जाने जानते हुए भी हृदय में अपने सगुण ब्रह्म के रूप में करोड़ों निर्गुण ब्रह्म का सुगमता से दर्शन कर लेता है।

१-नन्द०, भ्रमरगीत, छं० ६५। २-वही, छं० ६७। ३-वही, छं० ६८।
४-वही, छं० ६९। ५- वही, छं० ७२। ६- वही, छं० ७५।

३२ सगुण सृष्टि की उत्पत्ति का कारण ब्रह्म ही है और जिस प्रकार बीज के बिना पेड़ नहीं उग सकता है उसी प्रकार ब्रह्म के निर्गुण होने पर सृष्टि में भी गुणों का आविर्भाव कैसे हो सकता है ? जब ब्रह्म का निर्गुण होना ही निःसन्देह नहीं है तो निर्गुण ब्रह्म की प्राप्ति की दृष्टि से किए जाने वाले ज्ञान या योग-साधन की सार्थकता ही कैसे सिद्ध हो सकता है ? इसलिए प्रेमानुरागी भक्त अपने हृदय में सगुण ब्रह्म को ही धारण करता है जिसके स्वरूप और लीलाओं के ही साथ वह लोकाश्रय का त्याग करके विशुद्ध एवं अनन्य प्रेम वश आत्मसमर्पित हो कर तन्मयावस्था को प्राप्त होता है । तब भक्त और भगवान में कोई अन्तर ही नहीं रह जाता है । भगवत्प्रेमानुरक्त ऐसे भक्त के सम्पर्क में आने वाला ज्ञानी या योगी भी प्रेम से प्रभावित होकर अपने ज्ञान या योग को भूल जाता है और प्रेममयी भक्ति को ईश्वर प्राप्ति के सीधे और सहज मार्ग के रूप में तो स्वीकार करता ही है साथ ही वह उस भावना जगत में प्रवेश कर जाता है जहां ब्रह्म के निर्गुण सगुण, दोनों ही रूप विस्मृत होकर प्रेममयी भक्ति में अनुरक्त भक्त को पद रज और कृपा ही [illegible] की एवं उपासना की वस्तु रह जाते हैं । यही प्रेममयी भक्ति की विशेषता है । इसीलिए यह भक्ति का सार है ।[1]

३३ इससे विदित होता है कि अन्य कृतियों की भांति भंवरगीत में भी नन्ददास ने प्रेम भक्ति की ही महिमा का गान किया है । भगवान के प्रेम-प्रसंग में 'फाटि-ल्यि कुल बल्यां' के कथन[2] से भक्त हृदय की जिस विरहावस्था का कवि ने भंवरगीत में [illegible] देने का यत्न किया है, वह मस्तिष्क के लिए तो ग्राह्य नहीं वरन् भगवदनुराग से सिक्त नन्ददास के हृदय ने भी कुछ ही क्षणों के लिए अनुभव गम्य रही होगी । कवि ने दिखाया है कि भक्त की इस प्रकार की स्थिति लोकाश्रय और लोक वेद की मर्यादाओं को एक ओर रख कर विशुद्ध प्रेम द्वारा ही प्राप्त होती है। इसके लिए कर्म ज्ञान या योग की अपेक्षा नहीं रहती है । प्रेम भाव का उदय होने के लिए भगवान का नाम स्मरण ही पर्याप्त है ।[3]

१- नं०ग्र०, भ्रमरगीत, छन्द ६८ २- वही, छन्द ६० । ३- वही, छन्द 2

३४- कवि ने गोपियों के सम्मुख ज्ञान और योग के नशे में चूर उद्धव को पराजय दिखाकर प्रेममयी भक्ति को ही भगवद् प्राप्ति का श्रेष्ठतम साधन सिद्ध किया है तथा कर्म, ज्ञान और योग से इस भक्ति का स्थान अत्यन्त उच्च ठहराया है। कवि की दृष्टि में गोपियां वस्तुत: गुरु हैं जिन्होंने उद्धव के ज्ञानमद को मिटा कर सच्ची प्रेम भक्ति का पाठ पढ़ाया और यह भी श्यामानुरक्त गोपियों की ही सत्संगति का प्रभाव हुआ कि उद्धव का दुविधा ज्ञान दूर हो गया। उसे विदित हो गया कि श्री कृष्ण प्रेममयी गोपियों से भिन्न नहीं हैं।

३५ इसके अतिरिक्त उपर्युक्त विश्लेषण से यह भी दृष्टिगत होता है कि कवि गोपियों द्वारा बार बार निर्गुण की निस्सारता और सगुण का महत्व प्रकट करने में व्यस्त है। इस दिशा में कहीं तो वह गोपियों द्वारा श्रीकृष्ण के मुख, आंख आदि अंगों के [illegible] का उल्लेख करके उनके निराकार होने की बात का खण्डन करता है[1] और कहीं उनके निर्गुण रूप में होने का गोपियों द्वारा यह कहलाकर विरोध करता है कि उनमें गुण नहीं है तो यहां गुण कहां से आ गए ? क्या बीज के बिना पेड़ उग सकता है ?[2] इसी प्रकार ज्ञान, योग और कर्म से प्रेममयी भक्ति को पुन:पुन: उच्च ठहराता हुआ कहीं तो कवि यह दिखाता है कि उद्धव ज्ञान का उपदेश गोपियों को क्यों देता है ? वे तो प्रेम का सरल मार्ग पा चुकी हैं;[3] कहीं योग साधन को धूल के समान बताता है[4] और कहीं कहलाता है कि कर्म अच्छा हो या बुरा, बन्धन ही है, केवल प्रेम द्वारा ही सब दुखों से छुटकारा मिल सकता है।[5] कवि द्वारा ब्रह्म के निर्गुणत्व एवं कर्म, ज्ञान तथा योग के प्रति उक्त प्रकार से बार बार [illegible] प्रकट करने और प्रेम का ही समर्थन किये जाने से प्रतीत होता है कि वह अपने सिद्धान्त को किसी पर बलात् थोपने में कोई संकोच नहीं करता है। यह सिद्धान्त, पुष्टिमार्ग द्वारा पहुंचा है जिसमें कवि दीक्षित हुआ है। इस प्रकार पु[illegible] के प्रति कवि की अतीव निष्ठा का परिचय मिलता है और इसी के फलस्वरूप उसने भंवरगीत में इस मार्ग के सिद्धान्तों का भरपूर समर्थन किया है।

१-नं० पृ०, भ्रमरगीत, छन्द १० । २- वही, छन्द २० । ३- वही, छन्द ८ । ४- वही, छन्द १२ । ५- वही, छन्द १६ ।

पदावली

३६ कवि के ग्रन्थों में प्राप्त भक्ति विषयक विचारों का उक्त प्रकार से विश्लेषण और प्रासंगिक समीक्षण कर लेने पर भी उसकी भक्ति सम्बन्धी भावना का पूर्ण निश्चय करने का प्रयास कदाचित् तब तक पूरा न होगा जब तक उसकी पदावली का भी प्रस्तुत दृष्टिकोण से अवलोकन नहीं कर लिया जायगा । अत: नीचे इसी दृष्टिकोण से कवि की पदावली पर विचार किया जाता है ।

३७ अपने गुरु विट्ठलनाथ जी की महिमा का गान करते हुए कवि कहता है, "कि श्री वल्लभ सुत के प्रात:काल दर्शन करने चाहिए । वे तीनों लोकों के वन्दनीय हैं, पुरुषोत्तम हैं और वल्लभ कुल के चन्द्रमा हैं, उन पर तन मन धन न्योछावर करना चाहिए ।[१] वह पुन: कहता है कि श्री वल्लभसुत के चरणों का भजन करता हूं, जो पतित पावन, अतुल प्रताप और महिमामय हैं तथा जो पुष्टि मर्यादा एवं स्वजनों का पोषण करते हैं ।[२] उन्होंने वेद विधि से कलि-कुल-कलुष को मिटा कर अपने मत का विस्तार किया ।[३] कवि ने जन्म की बधाई गाते समय वल्लभ को पूर्ण पुरुषोत्तम का अवतार कहा[४] और विट्ठलनाथ जी को सृष्टि का आधार, अगणित गुणों से शोभित, ... और पुष्टि मत के अनुयायी कहा है ।[५] कवि का मत है कि विट्ठलनाथ जी का नाम प्रात: उठते ही लेना चाहिए क्योंकि वे ... दायक और परलोक के बन्धु हैं ।[६] उसकी कामना है कि वह उनके विमल यश का गान करे, उनके पुत्र गिरिधर के सुन्दर मुख को देख देख कर नयनों को तृप्त करे, उनके मुख से मोहन की लीला कथा सुनकर हृदय में बसाये और सदा चरणों को निकट रहकर वल्लभ कुल का दास कहलाये ।[७] कवि गुरु रूप में वर्णन करते हुए उन्हें कहता है कि विट्ठलनाथ जी युगों तक गोकुल में राज्य करें । ~~वे दीन वत्सल हैं और अपने ... जीवों का उद्धार करते रहें~~ । वे दीन वत्सल हैं और वल्लभ कुल कमल के लिए सूर्य सम हैं ।[८] उन्हीं की कृपा से कवि श्रीकृष्ण की लीलाओं को निरखता है ।[९]

१- म० पु०, पदावली, पद ५ । २- वही, पद ६ । ३- वही, पद ८ ।
४- वही, पद ९ । ५- वही, पद १० । ६- वही, पद ११ ।
७- वही, पद १२ । ८- वही, पद १३ । ९- वही, पद ३८ ।

३८ इससे ज्ञात होता है कि विट्ठलनाथ जी और पुष्टि मर्यादा के प्रति नन्ददास जी की अपार श्रद्धा थी । यह स्वाभाविक भी था क्योंकि विट्ठलनाथ जी ही उनके सम्प्रदाय गुरु थे और पुष्टि सम्प्रदाय में वे दीक्षित थे । गुरु विट्ठलनाथ जी को वे भगवान का स्वरूप ही मानते थे और उसी भाँति उनका भजन पूजन करते थे । वल्लभ वल्लभाचार्य जी और गिरिधर जी भी उनकी श्रद्धा के पात्र थे क्योंकि एक उनके गुरु विट्ठलनाथ के पिता और दूसरे पुत्र थे ।

३९ नन्ददास जी ने हनुमान जी द्वारा सागर को पार करके जानकी जी की सुधि लेने के लिए लंका में जाने का भी उल्लेख किया है ।[1] जिससे प्रकट होता है कि उनकी भक्तिभावना की सीमा श्रीकृष्ण के साथ साथ भगवान के अन्य अवतारों तक ही नहीं, उनके भक्तों तक भी फैली हुई थी । इसीलिए उन्होंने राम-कृष्ण के अभेदत्व,[2] रामचरित्र का कथन और उनकी महिमा का गान, जानकी के उल्लेख[3] के साथ साथ उनके भक्त हनुमान जी की महिमा का भी गान किया है ।

४० पदावली से यह भी ज्ञात होता है कि कवि को नन्दग्राम बहुत प्रिय है[4] क्योंकि वहाँ गोप-ग्वाल रहते हैं जिनके हृदय में मोहन बसते हैं और हलधर आदि सखाओं के साथ क्रीड़ायें करते हैं । कवि की सम्मति में पर्वतों में गोवर्धन, ग्रामों में नन्दग्राम, नगरों में मधुपुरी, सरिताओं में यमुना, ब्रम्हों में और वनों में वृन्दावन ही श्रेष्ठ हैं ।[5] उक्त कथनों से उसकी श्रीकृष्ण के लीलास्थलों के प्रति अपार आस्था व्यक्त होती है और यह एक मनोवैज्ञानिक तथ्य है कि जिन वस्तुओं के प्रति आस्था या प्रेम का भाव होता है, वे श्रेष्ठ जान पड़ती हैं ।

४१ पश्चात् कवि का कथन है कि श्रीकृष्णजन्म की सूचना पाते ही सभी ब्रज-नारियाँ आकर यशोदा को बधाई देने के लिए आती हुई ऐसी जान पड़ती हैं जैसे प्रेम नदी नन्दनन्दन सागर की ओर शीघ्रता से आ रही हो । ग्वालगण भी फूले नहीं समाये । नन्द ने पुत्र रूप में मनोरथ प्राप्त करने पर ब्राह्मणों को दो लाख गायें दान में दीं । जो भी नन्द के घर में आता, मन चाहा दान प्राप्त करता, अपने ठाकुर के घर पुत्र आया जानकर भृत्यों को मानो सब कुछ मिल गया हो ।[6]

१- नन्द०, पदावली, पद २० । २- वही, पद २-३ । ३- वही, पद ४ ।
४- वही, पद २१ । ५- वही, पद २२ । ६-वही, पद ३४ ।

यहां प्रकट है कि कवि ने श्रीकृष्णजन्म के समय ब्रज में ना ऋुन्न सुनाम्बुदों का चित्र प्रस्तुत करके वात्सल्य भक्ति के प्रति का उद्भावना की है। वह स्वयं भी ब्रज में प्रच्छन्न [illegible] से विमुग्ध होकर कभी नंदलाला का कलेया का कामना करता है,[2] कभी द्वंद्वों के मिटने और मनोरथ पूर्ण हो जाने का उल्लेख करता है,[3] कभी नृत्य करने लगता है,[4] कभी यशोदा पुत्र पर तन मन से निछावर होने का कामना करता है[5] और कभी नंद द्वारा पुत्र जन्म के उपलक्ष्य में क्या क्या किये जाने का उल्लेख करता है।[6]

४२ बाल क्रीड़ा के प्रसंग में यशोदा 'उठो लाल' कहती हुई अपने पुत्र को जगाती है और उनके कलेवा के लिए मक्खन मिश्री, दूध-मलाई लाती है। बालक श्रीकृष्ण भी माता की बात सुन कर तुतली वाणी में बोलते हुए तुरन्त उठते हैं और इससे यशोदा का हृदय हर्षोत्फुल्ल हो उठता है।[7] बछड़े की बोली सुनते ही यशोदा कहती है, 'मेरे लाल उठो, सुबल, श्रीदामा आदि द्वार पर खड़े होकर बुला रहे हैं और सभी दर्शन के अभिलाषी हैं।[8] मखमली पालने में झूलते हुए कुंवर नन्दलाल की शोभा को देख कर चतुर नारियां देह-गेह की सुधि भूल जाती हैं।[9] कृष्ण कहते हैं कि 'हे मैया मेरे लिए एक बछड़ी सो सोने की दोहनी बनवा दो। मैं नंद बाबा से गाय दुहना सिखाने के लिए कहूंगा। उनके ऐसे वचन सुन कर यशोदा के नयनों में आनन्दाश्रु भर आते हैं और वह उनको कलेया लेती है।[10] मोहन का छोटा सा बदन शोभा-सदन है और वे यशोदा के आंगन में खेलते हैं तथा मुनिगण उनके यश को गा गा कर मुग्ध होते हैं।[11] ब्रह्म के घनीभूत रूप बालकृष्ण की अंगुली पकड़ कर बाबा नंद चलना सिखाते हैं। जिनकी रिद्धि सिद्धि नव निधियों से युक्त कमला सेवा करती है और जिनसे धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की प्राप्ति होती है, गोपियां उनकी वाणी सुनकर सुखी होने की कामना करती हैं।[12] कृष्ण बालपन में ही गुणों से परिपूर्ण हैं[13] और उनके श्याम तन की छवि अवर्णनीय है।[14]

२- म० मु०, पद २५ । ३- वही, पद २६ । ४-वही, पद २७ ।
५- वही, पद २६ । ६- वही, पद ३० । ७-वही, पद ३१ ।
८- वही, पद ३२ । ९- वही, पद ३४ । १०- वही, पद ३६ ।
११-वही, पद ४० । १२-वही, पद ४२ । १३-वही, पद ४४ । १४-वही, पद ४६ ।

४३ उक्त उद्धरणों से प्रकट है कि कवि ने नंद यशोदा और ब्रजनारियों के वात्सल्य भाव को प्रकट करने का यत्न किया है। बाल कृष्ण को झूलते हुए देख कर ब्रज नारियां आनन्द निमग्न होकर अपना सुध बुध खो बैठती हैं और नन्द भी उन्हें साधारण बालक की भांति चलना सिखाते हैं। श्रीकृष्ण के बाल लीला रस में निमग्न यशोदा के हृदय में कभी भी नहीं आता है कि वे केवल पुत्र ही नहीं ईश्वर भी हैं और उनकी तुतली तथा सहज वाणी सुनकर वह पुलकित हो उठती हैं, उसके नेत्रों में आनन्दाश्रु झलक पड़ते हैं। यही वात्सल्य रति की चरम परिणति है।

४४ राधा कहती है 'ए सखी जब से कृष्ण नाम सुना है, घर भूल कर मैं बेसुध हो गई हूं। मेरी और ही दशा हो गई है। जिनका नाम सुनते ही ऐसी दशा होती है, उनकी मधुर मूर्ति कैसी होगी ?[१] नंद के घर में गुरुजनों की भीड़ होने से वहां वह मोहन के दर्शन नहीं कर पाती है और उससे उन्हें बिना देखे रहा भी नहीं जाता है। इसलिए वह सखी से यमुना तट पर चलने के लिए कहती है जहां बलबीर के दर्शन हो सकें।[२] विवाह होने पर राधा कृष्ण की जोड़ी पर कवि अपने को निछावर करता है।[३] राधा और श्याम की जोड़ी अविचल है।[४] सखी राधा से कहती हैं, 'कि तेरी सेज ने मोहन को मोहित कर लिया है, जिसका यश जगत गाता है, वह तेरे अधीन है।[५]

४५ दूती राधा से कहती है, 'लाल, रंग महल में बैठे हैं, चतुर रंगीली राधिके तू उनके पास चल। उन्होंने तेरे साथ क्रीड़ा करने के लिए विचित्र सजावट की हुई है। दूती के वचन सुनकर राधा प्रियतम के पास चल देती है। कवि इस प्रकार की शोभा का गान करके अपने को भाग्यशाली मानता है।[६]

४६ क कुंवरि राधिका पालकी पर चढ़ी है, मोहनलाल चरण चांप रहे हैं। राधा कभी हाथों से नयनों को छिपाती और कभी माथे का स्पर्श कराती है।[७]

१- म० पु०, पदावली, पद ५४। २-वही, पद ५५। ३- वही, पद ६०।
४-वही, पद ६६। ५-वही, पद ६८। ६-वही, पद १०३। ७-वही, पद १०५।

४७ राधा का मुख देखने से दुख द्वन्द्व मिट जाते हैं । मनाने के लिए आती हुई दूती से राधा कहती है कि सखी तू अपने घर जा । प्रभु क्यों नहीं आते, क्या उन्होंने पैरों में मेंहदी लगा रक्खी है ?[1] राधा दूती के मनाने पर मान नहीं छोड़ती है तो सांवरे ही सखी वेष में उसके पास जाते हैं [2] भेद खुलने पर राधा से कहते हैं, तुमने रूठने का जो नियम बना लिया है उसी कारण मैंने सखी वेष किया है ।[3] जिसके दर्शन के लिए जगत तरसता है उनसे ही राधा को देखे बिना ज़रा भी नहीं रहा जाता है, वे मुरली की ध्वनि में भी उसी की रट लगाते हैं ।[4]

४८ त्रिभंगी बालकृष्ण स्वयं तो टेढ़े हैं, पाग भी टेढ़ी धारण किए हैं । उनके कुंडलों की द्युति कोटि रवि समान है । वे हृदय में वनमाला धारण किए हैं, उनके सुन्दर तन पर पीताम्बर शोभित है, वे रसभरी मुरली बजाते हैं और वन से लौटते समय व्रजबालाओं को भी साथ लाते हैं ।[5] बिहारीलाल की पाग, चन्द्रिका गति, वचन, तिलक, भृकुटी, गुंजन की माला तो बांके हैं ही, गोवर्धन धारण करके स्वयं भी बांके हो गये हैं, किन्तु गोपियां सीधी हैं ।[6] किशोर कान्ह उभय रस पुंजन हेतु केलि कला, हास विनोद करके व्रज बालाओं को सुख देते हैं ।[7] वे गोपियों के लिए ही वंशी धारण करते हैं ।[8] गोपियां सांवरे प्रियतम का मुख देखने के लिए जाने में किसी का भय नहीं मानती हैं[9]।गोपियों के लिए पलकें बैरी हैं जो बीच में आकर उन्हें नन्दनन्दन का मुख नहीं देखने देती हैं । वन से कृष्ण वेणु बजाते हुए आते हैं उनकी अलकें गोरज मण्डित हैं, ललित कपोलों पर श्रम कण झलकते हैं और कानों में कुण्डल डोलते हैं । उनके ऐसे स्वरूप के दर्शन करने में बाधा पहुंचाने के लिए पलकों को सचमुच ही किसने बनाया ?[10] गोपियां गई तो जल भरने के लिए किन्तु भर लाईं कृष्ण प्रेम का रस । वे एक ओर मोहन के प्रेम पाश में फंसी हैं, दूसरी ओर लोक-लाज का भय है । प्रेम के कारण उन्हें कलशों की भी सुधि नहीं रहती है । गोपी कहती है कि इस लाज को आग लगे जो कमल नैन के दर्शन नहीं करने देती है । वन से

१-न० गु०, पदावली, पद १३३ । २-वही, पद १३४ । ३-वही, पद १३५ ।
४-वही, पद १३६ । ५- वही, पद ७४ । ६- वही, पद ७५ ।
७-वही, पद ७६ । ८-वही, पद ७७ । ९-वही, पद ७८ ।
१०- वही, पद ७८ ।

जाते हुए मोहन से भेंट हुई तो लोगों के सम्मुख संकोच के कारण उनके दर्शन के लिए कोटि श्रम करना पड़ा । उस दिन से मेरे नैन उन्हीं के अंगों के रंग रस में निमग्न रहते हैं ।[1] किशोर कान्ह के मुख कमल को देखे बिना गोकुल की नारियों को चैन ही नहीं पड़ता है और उनके विरह में पलक झपकने का समय भी चारों युगों के समान अनुभव होता है ।[2] वे पानी भरने जाती हैं, रास्ते में उन्हें गिरिधारी मिलते हैं और उनके नयनों की सैन से वे बेसुध होकर गागरी भी भूल जाती हैं ।[3] गोपी कहती है जिस दिन से मोहन ने मेरा तन देखा, मैं उनके हाथ बिक गई और मन उनमें इस प्रकार मिल गया जैसे सारंग में पानी ।[4] कभी किसी गोपी के घर नन्दकिशोर आते हैं तो वह चाहती है कि चन्द्रमा अस्त हो न हो और न भोर हो हो ताकि मोहन के संयोग सुख का लाभ अधिक से अधिक काल तक मिल सके ।[5] नन्दलाल के हाथ में लकुटिया, अधर में मुरली और तन में पीताम्बर वाले रूप ने ब्रज बालाओं की लोक लज्जा का हरण किया है और उनके रूप को देखकर वे प्रेमोन्मत्त हो जाती हैं । सचमुच जिसने हरि के दर्शन कर लिए वे ही सौभाग्यशाली हैं ।[6]

४९ उक्त कथनों से लोक लाज का परित्याग करने वाली ब्रज बालाओं के कृष्ण के प्रति अनुपम प्रेम के रूप में नन्ददास की परकीया मधुर भक्ति की अनन्य भावना सूचित होती है । कृष्ण का आकर्षक रूप ही गोपियों के लोक लाज को तिलांजलि देने की प्रेरणा देता है । वे श्रीकृष्ण की ओर इस प्रकार आकर्षित होती हैं कि कृष्ण के अतिरिक्त उन्हें अन्य किसी का भान ही नहीं रहता है । प्रस्तुत प्रसंग में भक्ति का संयोग पक्ष ही सामने आता है । वियोग यदि है तो, वह केवल पलकांत है जिससे वियोग की अपेक्षा संयोग पक्ष की ही पुष्टि होती है ।

५० खण्डिता ब्रज बाला कहती है, 'हे श्याम मेरे मन को लुभाने के लिए तुम अच्छे आये । तुम तो सर्वस्व दे आये । कहाँ ठगे गए, जो अंजन की लीक और अधरों में रंग

१-न० ग्र०, पदावली, पद ८१ । २-वही, पद ८५ । ३- वही, पद ८३ ।
४-वही, पद ८४ । ५-वही, पद ८७ । ६- वही, पद ८८ ।

लगा लाये हो ? तुम घर छोड़ कर तो गये हो, बातें बनाना भी सीख आये हो, ठीक है तुम बहुनायक और चतुर हो, हम गंवार हैं।[१]

इसी प्रकार पांड़ा अथोरा ब्रज बाला कहती है, 'सांवरे कुंवर कन्हैया ! कहां जाते हो ? कौन सी प्रिया पर मन ललचा गया है। अब चतुराई काम नहीं आवेगी जो जा रहो।[२]

५१ गोपिकायें कृष्ण की शिकायत यशोदा से करती हैं, 'ए रानी, तुम अपने पुत्र की करतूतों को स्वयं आकर देख लो। घर में एक कौन भी नहीं रखा। कुछ कहा तो पहले ही हंस पड़ते हैं। यह तो रोज़ का ही बन बात हो गई है और इन्हें ऐसा करते जरा भी लाज नहीं आती है। बताओ तुम्हारे यहां कैसे रहें ? नन्ददास कहते हैं कि उस समय प्रभु साधु की भांति अनजाने से बैठे हुए हैं।[३] ये कथन कवि के बाल-भाव की भक्ति के परिचायक हैं।

५२ मोहन ग्वाल मण्डली में छाक सेवन करते हैं। यह देखकर राधिका कंपने लगती हैं। ग्वाले सभी मोहन के जूठन की आशा में फूले नहीं समाते हैं।[४] भोजन करते हुए मोहन के साथ ग्वाले इस प्रकार तन्मय हैं कि गरज गरज कर बरसते हुए बादलों का उन्हें भान ही नहीं रहता है। रहे कैसे, उनका चित्त तो नित्य मोहन के साथ-सकले जूठन ग्रहण करने की ओर लगा हुआ है।[५]

ग्वालों का मोहन के साथ सख्य प्रेम है। अत: इससे ग्वाल-कृष्ण प्रेम के क्रम में कवि की सख्य भाव की भक्ति की सूचना मिलती है।

५३ दानलीला के प्रसंग में गोपिकायें कृष्ण को दही, मक्खन आदि नहीं देती हैं क्योंकि वे गोवर्द्धन की पूजा के लिए भलीभांति बना कर लाई हैं, इसलिए उन्हें चखने कैसे दें ? कवि का कथन है कि कान्ह प्रभु हो तो परमेश्वर हैं, उनकी पूजा को छोड़ कर गोवर्द्धन की पूजा की रीति चलाई है।[६] इसके उपरान्त गोवर्द्धन लीला के

१-न० ग्रं०, पद १००। २- वही, पद १०५। ३- वही, पद १०७।
४-वही, पद १११। ५- वही, पद ११२। ६- वही, पद ११४।

प्रसंग में कवि कहता है कि प्रभु की प्रभुताई के सामने गोवर्धन पर प्रलयकारी जल को बरसाने वाले इन्द्र की मतिमंदता को देखकर मुनि जन हंसने लगते हैं। प्रभु ने गिरिवर को धारण करके इन्द्र के गर्व को छनों में ही मिटा दिया।[1] पर्याप्त समय तक गिरिवर को कृष्ण के हाथों में देखकर सखागण उसे अपने हाथों में लेना चाहते हैं। नंददास कहते हैं कि उनके कष्ट मिटाने के लिए यही उत्तम अवसर है।[2]

[illegible]५४ इस प्रकार कवि ने गोपियों को ईश्वरत्व की सुधि दिलाने का यत्न किया है और गोवर्धन धारण द्वारा इन्द्र के गर्व को चूर्ण करके दिखाया है कि किस प्रकार वे गर्वान्वित व्यक्तियों को ठिकाने लगाते हैं किन्तु ग्वालगण उनके ईश्वरत्व को जैसे जानते ही नहीं हैं और उनके हाथ से गोवर्धन अपने हाथ में लेने को बात कहते हैं जिससे सख्य भाव की व्यंजना होती है।

[illegible]५५ कालिंदी तट पर रास में जहां [illegible] के मध्य मुरलीधर के कटि में किंकिणी और तन पर पीताम्बर फलक रहा है, कुण्डलों की ज्योति से सूर्य रथ भी स्तब्ध हो गया है, धनी और "तत थेइ" और "उरप तिरप" शब्द हो रहे हैं, मुरली में राधे राधे रट लग रही है, वहां निकट ही नन्ददास गान करते हैं।[3] रास की ध्वनि अनुपमेय है। रास में प्रभु के कौतुक को देखकर उनके साथ मिलन की कामना बढ़ जाती है।[4]

५६ स्मरणीय है कि भगवान की लीलाओं का हृदय में साक्षात्कार करने से उनकी भक्ति के प्रति अनन्य आसक्ति उत्पन्न होती है और इसी आसक्ति के द्वारा नन्ददास को रासरसिकवर श्रीकृष्ण के सौन्दर्य की अनुभूति प्राप्त हुई।

५७ कवि ने अक्षय तृतीया,[5] राखी,[6] और [illegible] [illegible][7] त्योहारों में श्याम की पूजा का उल्लेख किया है, वह श्याम प्रभु पर तन-मन-धन [illegible] करता है।[8]

१-न० ग्र०, पद १९६। २- वही, पद १९८। ३- वही, पद १९९।
४-वही, पद १२०। ५- वही, पद १२१। ६- वही, पद १२२।
७- वही, पद १२६। ८- वही, पद १२३।

५८ यहां द्रष्टव्य है कि जैसे श्याम का मोहक रूप है वैसे ही वर्षा में चारों ओर से घन उमड़ कर बरसते हैं जिनपर नन्ददास निछावर होते हैं ।[1] वर्षा में सभी कुछ नया हो गया है, प्रभु की छवि भी नयी है जिसपर नन्ददास निछावर होते हैं ।[2] इस ऋतु में यमुना तट पर गोपियों से घिरे हुए और रस से भरे हुए राधा-मोहन हिंडोला झूलते हैं । कवि इस युगल रूप को आनन्द से देखना चाहता है ।[3]

५९ वसन्त में फागलीला का वर्णन करते हुए भी गोपियों के साथ फाग खेलते हुए नन्दलाल की शोभा का कवि वर्णन नहीं कर पाता है ।[4] वह हर्षित होकर प्रभु की बलैया लेता है ।[5] बार बार रस भरे[6] और रस भीने[7] रूप में उन्हें अपने हृदय में बसाने की कामना प्रकट करता है । फाग लीला में सखागण मोहन के साथ रंग खेलते हैं ।[8] प्रेम से विवश होकर श्याम के साथ रंग खेलने में जिस रस का अनुभव होता है उसे शेष (~~शम्भु~~), सुरेश, महेश और लक्ष्मी भी प्राप्त नहीं कर पाती और उस रस का राधा जी के पदाम्बुजों की सहायता से जिन्हें अनुभव होता है, नन्ददास उन पर निछावर होते हैं ।[9] इसी प्रसंग में कवि कहता है कि जिसके हृदय में हरि चरित्र के प्रति रति उत्पन्न हो जाती है, उसे मुक्ति सहज ही मिल जाती है ।[10] दोलोत्सव में कभी ब्रजयुवतियां मदनगोपाल को झुलाती हैं और हलधर सहित सभी ग्वाल बाल आनन्द में भरकर फाग और धमार गाते हैं[11] तथा कभी ग्वालबाल डोल झुलाते हैं और ब्रजयुवतियां गाकर गोपाल को रिझाती हैं ।[12]

६० इस प्रकार त्योहारों में की जाने वाली कृष्ण पूजा की ओर संकेत उपलब्ध होता है । त्योहारों और ऋतुओं में कृष्ण की नित नवीन छवि कवि के हृदय में प्रभु प्रेम में परिवर्द्धन का कार्य करती है । इसीलिए वह इन अवसरों पर बार बार प्रभु पर निछावर होने का उल्लेख करता है । वर्षाऋतु में हिंडोला झूलते हुए राधा-मोहन को वह युगल भाव से देखकर सुखी होता है । राधा सहित गोपियों के साथ श्रीकृष्ण का रस से परिपूर्ण शोभा मधुर भाव को प्रकट करता है । कवि को श्रीकृष्ण का रंगभीना

१-न० ग्रं०, [illegible], पद १८७ । २-वही, पद १८८ । ३-वही, पद १८९ ।
४-वही, पद १९३ । ५-वही, पद १९४ । ६-वही, पद १९८ ।
७-वही, पद १९९ । ८-वही, पद १९६ । ९-वही, पद १९२ । १०-वही, पद २८१ ।
११-वही, पद २८२ । १२-वही, पद २८३ ।

मधुर रूप ही अधिक प्रिय है, फाग लाना में श्याम के साथ रंग खेलने में सखाओं को जो अनुपम सुख मिलता है वह सख्य भाव की चरम परिणति का परिचायक है, भक्तों को इस सुख का अनुभव राधा की कृपा से प्राप्त होता है और वे प्रभुचरित्र के प्रति लौ लगाने पर संसार से सहजही मुक्त हो जाते हैं ।

नन्ददास की भक्ति

६१ कृतियों में आई हुई भक्ति भावना के उपर्युक्त विश्लेषण एवं समीक्षण से ज्ञात होता है कि कवि की प्रत्येककृति श्रीकृष्ण प्रेम से ओत-प्रोत है । अनेकार्थभाषा में कवि श्रीकृष्ण के चरणों के प्रति प्रेम की स्वयं कामना करता है, श्यान सगाई व नाममाला में राधा का कृष्ण के प्रति प्रेम वर्णित है, दोनों मंजरी ग्रन्थ कृष्ण प्रेम रस से भरे हुए हैं, रुक्मिणी मंगल की रचना ही गिरिधर के प्रति प्रेम को सार्थक करने के लिए की गई है तथा रासपंचाध्यायी, सिद्धान्तपंचाध्यायी और भंवरगीत में वर्णनों का आधार गोपियों का श्रीकृष्ण के प्रति प्रेम ही है । अत: श्रीकृष्ण प्रेम ही कवि का इष्ट जान पड़ता है । इसी प्रेम को उसने "प्रेम भक्ति" कहा है :-

> जो यह लीला गावै चित दै सुनै सुनावै ।
> प्रेम भक्ति सो रस पावै वह सबके मन भावै ।
>
> --रासपंचाध्यायी, पांचवां अध्याय, छन्द ३६ ।
>
> जब तुम्हरी निज प्रेम भक्ति रुचि हैव आवै ।
> तौ कहुं तुम्हरे चरन कमल की निकटहिं पावै ।।
>
> --सिद्धान्त पंचाध्यायी, छन्द ५६ ।
>
> कबहुं कछै गुन गाय स्याम के इन्हें रिझाऊं ।
> प्रेम भक्ति तौ करी स्यामसुन्दर की पाऊं ।।
>
> (उद्धव वचन)
>
> -- भंवरगीत, छन्द ७४ ।।

इससे ज्ञात होता है कि कवि के अनुसार भगवान श्री कृष्ण के प्रति प्रेम ही

'भक्ति' है ।[1]

६२ प्रस्तुत प्रसंग में द्रष्टव्य है कि भक्ति का मानस भावतत्व है और मानव हृदय में भावतत्व अपने आविर्भाव के लिए भक्त के आश्रित है । यथार्थ में ने बिना भगवान के भक्ति है और न भक्ति के बिना भगवान का ही अस्तित्व है, एकमात्र भगवद् भावना ही दोनों में सन्निहित है । इस भावना से अनुप्राणित भक्ति का प्रवाह नन्ददास की सभी कृतियों में प्रकट हुआ है और जैसा ऊपर लिखा जा चुका है, इस प्रवाह को कवि ने 'प्रेम भक्ति' के नाम से अभिहित किया है जिसका तात्पर्य सगुण रूप श्रीकृष्ण की प्रेमा भक्ति से है । प्रेमाभक्ति का नामोल्लेख उक्त उद्धरणों वाली कृतियों में तो हुआ ही है, अनेकार्थभाषा,[2] श्याम सगाई,[3] ~~[illegible]~~[4]

१- कवि का यह दृष्टिकोण भक्ति सूत्रों के अनुसार ही दृष्टिगत होता है :

अ- शाण्डिल्य भक्ति सूत्र में ईश्वर में परम अनुराग को भक्ति कहा गया है (शाण्डिल्य भक्ति सूत्र, भक्तिचंद्रिका पृ० ५)

आ- नारद भक्ति सूत्र में भक्ति को ईश्वर के प्रति परम प्रेम रूपा कहा गया है । (नारद भक्ति सूत्र ।।२।।)

इ- श्रीमद्भागवत का तो वर्णन ही इस उद्देश्य से हुआ है कि उससे ईश्वर में प्रेममयी भक्ति हो, 'जिस प्रकार सबके आश्रय और सर्वस्वरूप भगवान श्री हरि में लोगों की प्रेममयी भक्ति हो ऐसा निश्चय करके उसका (भागवत का) वर्णन करो । (श्रीमद्भागवत्, स्कन्ध २, अध्याय ५, श्लोक ५२)

ई- आचार्य वल्लभ ने इन्हीं सब कथनों का अनुमोदन करते हुए कहा है, 'भगवान में माहात्म्य ज्ञान पूर्वक सुदृढ़ और सतत स्नेह ही भक्ति है ।' (त०दी०नी० शास्त्रार्थ प्रकरण, ज्ञानसागर, बम्बई, श्लोक ४६ ।)

२- तैल सनेह, सनेह घृत, बहुरी प्रेम सनेह ।
सो निज बरनन गिरिधरन, नंददास कहं देहु ।।

--न० ग्रं०, अनेकार्थभाषा, दोहा १२० ।

३- पुलक सगाई स्याम, ग्वाल सब अंगनि फूले,
गावत गावत चले प्रेम रस में अनुकूले ।

-- वही, श्यामसगाई, छन्द २८ ।

नाममाला[1] रसमंजरी[2] रूपमंजरी[3] विरहमंजरी[4] और रुक्मिणीमंगल[5] में भी इस भक्ति को प्रकट करने वाले संकेत मिलते हैं।

६३ उपर्युक्त विश्लेषण से यह भी स्पष्ट है कि अनेकार्थभाषा, श्यामसगाई, नाममाला, रसमंजरी, रूपमंजरी, विरहमंजरी, रुक्मिणीमंगल, रासपंचाध्यायी और सिद्धान्तपंचाध्यायी में कवि की उक्त प्रेमा भक्ति का धारा क्रमशः वेगवती होती गई है और भंवरगीत में उसका तीव्रतम उद्रेक देखने को मिलता है जिसमें कर्म, ज्ञान और योग के प्रतीक उद्धव बह जाते हैं तथा डूबते उतराते उसमें अवगाहन करने ~~लगते हैं, उद्धव~~

१- गौ, इन्द्रीक रव, करन, गुन, इन्द्री ज्यौं असु पाइ।
यौं राधा माधव मिले परम प्रेम हरखाई ।।
-- वही, नाममाला, दोहा २६१।

२- ऐसेहि रूप प्रेम रस जो कछु तुमने है तुमको कहि सोहै,
रूप प्रेम आनन्द रस जो कछु ~~निबरक बरनई~~ (जग में) आहि ।
सो सब गिरिधर देव को निधरक बरनों ताहि
---- ----
तू तो सुनि लै [illegible], नखसिख परम प्रेम रस भरी ।
--वही, रसमंजरी, पृ० १४४-४५।

३- जदपि अगम तें अगम अति निगम कहत हैं ताहि ।
तदपि रंगीले प्रेम तें निपट निकट प्रभु आहि ।।
-- वही, रूपमंजरी, दोहा ५३४।

४- इहि परकार बिरहमंजरी, निरवधि परम प्रेम रसभरी ।
जो इहि सुनें ~~गुनै~~ (गुनैं) हित लावैं । सो [illegible] को पावैं ।।
-- वही, विरहमंजरी, चौपाई १०।

५- पति धरि हरि हरि भवन गई गोकुल की थाती ।
तिनहु सबै विधि सौंपि परम प्रेम रस लौटी ।।
--वही, रुक्मिणी मंगल, छन्द २२।

लगते हैं । यही प्रेमा भक्ति, कवि का भक्ति रस है जिसको उसने 'भक्ति का सार'[1] कहकर कर्म, ज्ञान और योग से ऊपर ठहराया है ।

६४ भक्तिभावना विषयक पीछे दिए गए विश्लेषण एवं विवेचन से कवि की उक्त भक्ति का जो स्वरूप सामने आता है, उसको शब्दों में निम्नलिखित प्रकार से व्यक्त किया जा सकता है :

(१) रूप मार्ग और नाद मार्ग

नन्ददास की भक्ति के दो मार्ग हैं । एक रूप मार्ग और दूसरा नाद मार्ग[1]। ये दोनों ही मार्ग अत्यन्त सूक्ष्म हैं और इनपर अग्रसर होने के लिए लोकाश्रय से पूर्णतः अनासक्ति, पूर्ण आत्मसमर्पण, और भगवान की कृपा का होना आवश्यक है । यहां भगवान के रूप या उनकी मुरली नाद द्वारा आकर्षित भक्त का हृदय तीव्र विरहावस्था से होकर तन्मयावस्था और तदाकार की स्थिति में भगवान के नैकट्य का अनुभव प्राप्त करता है ।

यद्यपि रूपमार्ग का स्पष्ट उल्लेख रूपमंजरी में[2] और नाद मार्ग का रासपंचाध्यायी तथा सिद्धान्तपंचाध्यायी[4] में ही मिलता है तथापि कवि की अन्य कृतियों में भी इनका प्रतिपादन दृष्टिगत होता है । कोश ग्रन्थ होते हुए भी अनेकार्थ भाषा में रूप की ओर संकेत उपलब्ध होता है ।[5] श्याम सगाई में राधा श्रीकृष्ण के रूप पर मोहित हो कर सुध बुध खो बैठती है ।[6] नाममाला भी कोश ग्रन्थ है किन्तु उसमें रूप और नाद दोनों को ही प्रश्रय मिला है । वहां श्रीकृष्ण के सौंदर्य की सूचना[7] द्वारा रूप मार्ग तथा वंशी रव[8] द्वारा नाद मार्ग की ओर संकेत मिलता है । इसी प्रकार नायक और नायिका-भेद-ग्रन्थ होते हुए भी रस मंजरी में रूप से सम्बन्धित उल्लेख मिलते हैं ।[9]

१- न० ग्रं०, पृ० १८८ । २- वही, पृ० १९८ । ३- वही, पृ० ८ ।
४- वही, पृ० ४० । ५- वही, पृ० ६१, दोहा १२७ । ६-वही, पृ० १९६ ।
७- वही, पृ० ८६, दोहा ८८ । ८- वही, पृ० ८९, दोहा २०१ ।
९- वही, पृ० [illegible], पंक्ति ७७ ।

विरहमंजरी में श्रीकृष्ण अपने मधुर स्वरके और पंचम स्वरों से युक्त मुरली नाद द्वारा ब्रज बाला को आकर्षित करते हैं।[1] रुक्मिणी मंगल में श्रीकृष्ण का रूप ही उन्हें योग्य नायक घोषित करता हुआ जान पड़ता है।[2] भंवरगीत में तो वह श्रीकृष्ण का रूप ही है जिसके साथ गोपियों का भावात्मक संयोग होता है।[3]

<u>(२) नवधा भक्ति (साधन पक्ष)</u>

भगवत्भक्ति की प्राप्ति के लिए नन्ददास ने जिस साधन समूह को अपनाया है उसमें भक्ति के नौ साधनों का सम्यक् समावेश दृष्टिगोचर होता है :

<u>(अ) श्रवण, कीर्तन और स्मरण :</u> इन तीनों साधनों का सम्बन्ध नाम से है। रास पंचाध्यायी में रास लीला को कवि ने `श्रवन कीर्तन सार सार सुमिरन को है पुनि`[4] कह कर इन साधनों की ओर स्पष्ट संकेत किया है। उसमें कवि का यह भी कथन है कि रास लीला को ध्यान से गाने, सुनने और सुनाने से प्रेमा भक्ति की प्राप्ति होती है।[5] इसके अतिरिक्त भंवरगीत में गोपियां श्याम नाम श्रवण से प्रेम से परिपूर्ण हो जाती हैं,[6] अनेकार्थ भाषा में हरि नाम स्मरण का अनेक स्थलों पर[7] उल्लेख मिलता है, कृष्ण नाम सुनते ही गोपी तो भवन भूल कर बावरी हो जाती है और उसकी दशा कुछ विचित्र सी हो उठती है।[8] श्याम सगाई तो एक लम्बे पद के रूप में कीर्तन हेतु ही प्रणीत प्रतीत होती है और अन्य पदों की रचना के मूल में भी कीर्तन की भावना सन्निहित है। हरि नाम स्मरण के अतिरिक्त गुरु विट्ठलनाथ जी के नाम-स्मरण की ओर भी कवि की आसक्ति प्रकट होती है।[9] द्रष्टव्य है कि ये तीनों साधन सर्वत्र ही श्रद्धा और प्रेम में योग देते [illegible] होते हैं।

<u>(आ) पाद सेवन, अर्चन और वन्दन :</u> इन साधनों का सम्बन्ध रूप से है। अनेकार्थभाषा में नन्ददास गिरिधर के `निज चरणों` के प्रति स्नेह की कामना से[10] भक्ति के पाद सेवन रूप साधन की प्रतीति कराते हैं। यही भाव रूपमंजरी में

१-न० ग्र०, पृ० १०२, चा० ८७। २-वही, पृ० २०८, छन्द ६४।
३-वही, पृ० १७८, छन्द ३८। ४- वही, पृ० २५।
५- वही, पृ० २६, छन्द ३६। ६-वही, पृ० १७२। ७- वही, अनेकार्थभाषा, दोहा [illegible] ३६ आदि। ८- वही, पृ० ३३४, पद ५५।

'मन है हाथनि नाथ के पुनि पुनि पकरति पाय'[1] वाले कथन से प्रकट होता है। रास पंचाध्यायी में गोपियों को जब श्रीकृष्ण की चरणधूलि प्राप्त होती है तो वे उसकी वन्दना करती हैं।[2] यह तो हुआ भगवद् पक्ष, कवि ने गुरु विट्ठलनाथ जी की भक्ति के साधन के रूप में तो पाद सेवन का उल्लेख तो किया ही है,[3] भक्तों के पंकज रस के सेवन की कामना भी की है।[4]

रूपमंजरी के हृदय में जब गिरिधर निवास करने लगते हैं तो इन्दुमती अत्यन्त अनुराग में भरकर उसी भगवान की अर्चना करने लगती है और जो कुछ भी श्रेष्ठतम पदार्थ मिलते हैं, सबको लाकर उन्हें कराती है।[5] दधि-दान लीला के प्रसंग में भी कवि ने गोपियों को गोवर्द्धन की पूजा के लिए जाते हुए दिखाया है।[6]

वन्दना का सहारा तो नन्ददास ने अपनी लगभग सभी कृतियों में लिया है। अनेकार्थ भाषा में 'नमो नमो ता देव'[7] कहा है तथा नाममाला में श्रीकृष्ण और गुरु दोनों की वन्दना की है।[8] रसमंजरी में नन्दकुमार श्रीकृष्ण की वन्दना का उल्लेख करते हैं।[9] रूपमंजरी में परम ज्योति रूप में[10] और रासपंचाध्यायी में प्रथम अध्याय में शुकदेव जी की वन्दना[11] की गई है। सिद्धान्त पंचाध्यायी में भी श्रीकृष्ण की वन्दना का उल्लेख मिलता है।[12] भंवरगीत में उद्धव गोपियों की वन्दना को उन्मुख प्रतीत होते हैं।[13] विट्ठलनाथजी की वन्दना करना[14] भी नन्ददास नहीं भूले हैं।

यद्यपि उक्त तीन साधन वैधी भक्ति के विशेष अंग हैं तथापि कवि ने उक्त प्रकार से उन्हें प्रेमा भक्ति के क्रमिक विकास में सहायक के रूप में भी अपनाया है।

१-न० ग्रं०, पृ० १२६। २- वही, पृ० १६, छन्द २२। ३-वही, पृ० ३२६, पद ८।
४-वही, पृ० ४८, छन्द १३८। ५- वही, पृ० १३१, पंक्ति २०४।
६-वही, पृ० ३६१। ७-वही, पृ० ७६। ८-वही, पृ० ७६।
९-वही, पृ० १४४। १०- वही, पृ० ११७। ११- वही, पृ० ४।
१२- वही, पृ० ३८। १३- वही, पृ० १८२, छन्द ४३।
१४- वही, पृ० ३२५, छन्द ७।

(ङ) दास्य, सख्य तथा आत्मनिवेदन : ये भाव सम्बन्धी साधन हैं और इनमें से दास्य और सख्य का उल्लेख प्रेमा भक्ति के भेदों के अन्तर्गत भी होता है। दास्य और आत्मनिवेदन का आश्रय वहां पर प्रकट होता है जहां कवि ने दैन्य सूचक शब्दों में अपनी दीनता हीनता तथा भगवान की भक्तवत्सलता के सहारे उद्धार पाने के लिए निवेदन किया है। रूपमंजरी ग्रन्थ में इन्दुमती अत्यन्त दीनतापूर्वक गिरिधर लाल से उद्धार पाने के लिए करुण याचना करती है।[1] इसी में अन्य स्थल पर कवि द्वारा भगवान की दीनवत्सलता की ओर संकेत करते हुए अपनी दीनदशा को भगवान के सम्मुख प्रकट करने का प्रयत्न किया गया है।[2] रूप मंजरी ग्रन्थ में इन्दुमती की साधना दास्य रूप में ही व्याप्त हुई प्रतीत होती है। रुक्मिणी मंगल में उक्त रुक्मिणी का यह कथन "कि हौं भई परिचारि नाथ तुम भये हमारे।"[3] भक्त के दास्य साधन का उपयुक्ततम उदाहरण है। रासपंचाध्यायी में गोपियां दास्य, सख्य और आत्मनिवेदन, तीनों का सहारा लेती हैं। वे अपने को भगवान की दासी कहती हैं,[4] भगवान को मित्र रूप में अभिहित करती हैं[5] और अपने दुख दूर कराने के लिए उनसे निवेदन करती हैं।[6] दास्य और आत्म निवेदन का इसी प्रकार का भाव भंवरगीत में भी प्रकट होता है, जबकि दुख जलनिधि में डूबी हुई गोपियां "अहो नाथ, रमानाथ, और जदुनाथ गुसाईं" कहकर अवलम्बन के लिए निवेदन करती हैं।[7] उनकी दीन भावना की चरम सीमा तो तब प्रकट होती है जब "हा करुनामय नाथ हो केसे कृष्णमुरारि" कहते ही उनका हृदय फटकर नयनों के मार्ग से जल निकलता है।[8] भंवरगीत में उद्धव की श्रीकृष्ण के प्रति भावना से सख्य रूप साधन की प्रतीति होती है।

श्री कृष्ण जन्म[9] और आचार्य वल्लभ के जन्म[10] के उपलक्ष में कवि ने "मिटि गये द्वन्द्वन्द्वाधनि के" कहकर अपने दास्य भाव का परिचय दिया है। कवि ने अनुमक हनुमान जी का उल्लेख किया है।[11] जिनकी भक्ति का प्रमुख साधन दास्य और आत्म-

---

१- न० ग्रं०, पृ० १२५ पंक्ति १७२-७४ । २- वही, पंक्ति ४८५-९० ।
३- वही, पृ० २०५ । ४,५,६- वही, पृ० १८ । ७- वही, पृ० १७९ ।
८- वही, पृ० १८३ । ९- वही, पृ० ३३३ । १०- वही, पृ० ३२६ ।

निवेदन हो रहा है। सख्य का उत्कृष्टतम उदाहरण उन स्थानों पर मिलता है जहां सखा गण श्रीकृष्ण के ईश्वरत्व को भूलकर उनसे साधारण सखा के समान आचरण करते हैं। गोवर्धन को धारण करते समय श्रीकृष्ण से सखागण कहते हैं, 'हे कृष्ण बड़ी देर से गोवर्धन धारण किये रहने से तुम्हारे कोमल हाथ थक गये होंगे, जरा इसे हमारे हाथों में रख दो।'[1] फाग खेलते समय भी ग्वालों का श्रीकृष्ण के प्रति सख्य भाव हो रहा है। वे श्रीकृष्ण के साथ रंगभीने हो रहे हैं,[2] रंग खेलते हुए श्रीदामा, हलधर आदि सखा भाग जाते हैं।[3] श्रीकृष्ण सहित अनेक ग्वालबाल अनेक कामदेवों के समान जान पड़ते हैं।[4] डोलोत्सव में भी हलधर और सभी ग्वाले श्रीकृष्ण के सम्मुख फाग धमार गाते हैं,[5] ये ही ग्वाल बाल सखा भाव से श्रीकृष्ण को डोल झुलाते हैं[6] और रंग रंगीले ब्रज में बसन्त राग अलापते हैं।[7] संक्षेप में ये ही नन्ददास की भक्ति के साधन हैं। एक ओर तो ये साधन परस्पर सम्बद्ध ज्ञात होते हैं और दूसरी ओर, पूर्वापर क्रम से विकसित होकर दास्य, सख्य और आत्मनिवेदन में अन्तर्भुक्त हुए जान पड़ते हैं।

(३) दास्य, सख्य, वात्सल्य और माधुर्य भक्ति (भावपक्ष)

नन्ददास ने भगवत्तत्व को जिन विविध भावों से अनुभव किया है उन्हें चार प्रकारों में रक्खा जा सकता है। जहां उन्होंने भगवान के दीन वत्सल रूप में रमने का यत्न किया है, वहां उनकी भक्ति का दास्य भाव प्रकट हुआ है, जहां भगवान को हलधर श्रीदामा आदि सखाओं के साथ क्रीड़ारत दिखाया गया है वहां उनकी सख्यभाव की भक्ति सामने आती है और नन्द यशोदा के हृदय में कृष्ण की बाल सुलभ प्रकृति का सहज क्रीड़ा जन्य आनन्द दिखाने और गोपिकाओं की मधुर रति का चरमोत्कर्ष प्रस्तुत करने के यत्न में क्रमश: वात्सल्य और माधुर्य भक्ति का भाव प्रकट हुआ है। इनमें से दास्य और सख्य भक्ति भाव पर, ऊपर भक्ति के साधनों के अन्तर्गत विचार किया जा चुका है, अत: इसका पुनः[illegible] अनावश्यक होगा। वात्सल्य भक्ति, हृदय

१- न० ग्रं०, पृ० ३६२ । २- वही, पृ० ३८४ । ३- वही, पृ० ३८५ ।
४- वही, पृ० ३८०, पद १८२ । ५- वही, पृ० ३९६, पद १९२ ।
६- वही, पृ० ३९६, पद १९३ । ७- वही, पृ० ३९७, पद १९४ ।

में वात्सल्य रस के उद्रेक के साथ प्रकट होती है और वात्सल्य रस केवल पुत्र की सहज क्रीड़ा, बार बार गिरना, उठना, उसकी तुतली वाणी आदि के द्वारा उत्पन्न होता है । इसके संयोग और वियोग दो पक्ष हो सकते हैं । नन्ददास ने इस भावान्तर्गत जो कुछ भी वर्णन किया है, वह संयोग पक्ष का ही है, वियोग पक्ष से उसका कोई भी सरोकार नहीं रहा है । माधुर्य भाव की भक्ति ही भक्ति का ऐसी विधा है जिस पर नन्ददास की वृत्ति सर्वाधिक रमी है । उनके काव्य में इस विधा का विस्तार तो है ही, भक्त हृदय की रचनात्मक प्रवृत्ति द्वारा निर्मित नवीन दिशा और अन्तस्तल के गहनतम स्तरों तक को स्पर्श करने वाली सूक्ष्मतम अनुभूति भी उसमें विद्यमान है ।

(४) स्वकीया और परकीया भक्ति

नन्ददास की माधुर्य भाव की भक्ति में पतिपत्नी रूप प्रेम का ही प्राधान्य है । इस भाव के भी उसमें दो रूप हैं, (१) स्वकीया और (२) परकीया । श्रीकृष्ण से नियमानुसार विवाहित राधा का प्रेम स्वकीया भाव का प्रेम है और विवाहित गोपियों का श्रीकृष्ण से प्रेम परकीया भाव का प्रेम है । रुक्मिणी भी श्रीकृष्णकी विवाहिता थीं और नन्ददास ने रुक्मिणी मंगल में यही बात प्रकट भी की है । यद्यपि रुक्मिणीमंगल में दाम्पत्य भाव का परिपाक नहीं हो पाया है, उसकी ओर केवल संकेत मात्र किया गया है और उसमें श्रीकृष्ण का ब्रज लीला से युक्त रूप न आकर द्वारिका स्थित श्रीकृष्ण का उद्धारक रूप ही सामने आया है । फिर भी जिस आदर्श को लेकर रुक्मिणी श्रीकृष्ण की ओर उन्मुख होती हैं, वह है प्रेमरूपिणी गोपियों का अनन्य प्रेम । हृदय में गोपियों के आदर्श की विद्यमानता ने ही रुक्मिणी का पथ प्रदर्शन किया[1] और उसके प्रेम में गोपी प्रेम की भांति ही लोक विरति, विवेक, पूर्ण आत्मसमर्पण, [illegible], तीव्र विरहानुभूति आदि का सन्निवेश मिलता है । अतः रुक्मिणी की प्रेम भक्ति भी माधुर्य भाव की ही है जिसमें वियोग पक्ष का उत्कर्ष दृष्टिगत होता है ।

[illegible] काव्य में राधा स्वकीया है । इस बात की पुष्टि स्याम सगाई से होती है, जिसमें कवि ने राधाकृष्ण की रची [illegible] सगाई की योजना की है । राधा

और कृष्ण के अभिन्नत्व और युगल भाव का समावेश नाममाला में हुआ है । राधा प्रेम का पूर्ण प्रस्फुटन [illegible] में प्रत्यक्ष विरह के उदाहरण में मिलता है ।[1] इसके अतिरिक्त पदावली में भी राधाकृष्ण के प्रेम का उत्कर्ष दाम्पत्य भाव के रूप में [illegible] होता है ।[2]

स्मरणीय है कि कवि ने केवल उक्त कृतियों में ही राधा का चित्रण किया है किन्तु आगे चलकर पंचाध्यायी ग्रन्थों और भंवरगीत में अवसर आने पर भी उसका उल्लेख नहीं किया । इसका कारण, जैसा कि पृथक् से विचार किया गया है, राधा के उल्लेख का प्रस्थान चतुष्टय से अनुमोदित न होना ही जान पड़ता है ।[3] महत्वपूर्ण अन्तर न होते हुए भी इससे कवि का भक्ति [illegible] दृष्टिकोण दो कालों में विभाजित हो जाता है । पहला, आरम्भिक काल से विरहमंजरी की रचना काल तक और दूसरा, उसके उपरान्त । पुष्टिमार्ग के प्रति पूर्ण आसक्ति दोनों कालों में रही । किन्तु अन्तिम काल में कवि ने आचार्य जी के उपरान्त पुष्टि भक्ति में की गई उन प्रविष्टियों को जो प्रस्थान चतुष्टय से [illegible] नहीं होती थीं, स्वयं भी मान्यता देने में कदाचित संकोच का अनुभव किया । इनमें से राधा का उल्लेख ही प्रमुख है ।

परकीया भाव का समावेश सर्वप्रथम मंजरी ग्रन्थों में मिलता है । रसमंजरी में कवि ने नायिकाओं के लक्षणों को लिखते हुए समय सामान्यत: उनकी श्रीकृष्ण के प्रति आसक्ति की ओर संकेत किया है । भक्ति के क्षेत्र में इस आसक्ति को परकीया भाव की भक्ति कहा जा सकता है । रूपमंजरी ग्रन्थ में रूपमंजरी परकीयाभक्त के रूप में चित्रित की गई है और उसमें परकीया भक्ति भाव को उपपति रस के नाम से भी अभिहित किया गया है । रूपमंजरी लोक विधि के अनुसार विवाहिता थी, फिर भी उसने श्रीकृष्ण को प्रियतम मानकर उनसे क्रमश: भावात्मक सम्बन्ध स्थापित किया। इस प्रकार यह सम्बन्ध परकीया भाव के नितान्त अनुकूल है । नन्ददास ने इस भाव को सर्वश्रेष्ठ रस कहा है ।[4] यथार्थत: दाम्पत्य भाव, प्रेम की घनिष्टतम अवस्था का परिचायक है किन्तु उपपति [illegible] अवस्था उससे भी ऊपर की स्थिति है क्योंकि इसमें प्रेमिका का उपपति के प्रति जो प्रेम होता है वह इतना गहन होता है कि दाम्पत्य

प्रेम उसका ही एक अंश जान पड़ता है। इसीलिए नन्ददास ने इस भाव का आश्रय लिया है। इनके इस भाव में निमग्न रूपमंजरी भगवान के विरह का निरन्तर अनुभव करती है और उनके स्वरूप में उसकी वृत्ति इस प्रकार तल्लीन हो जाती है कि उसे सर्वत्र और सर्वकाल भगवान ही दिखाई देते हैं, यहां तक कि अन्त में उसे प्रियतम के रूप में भगवान का संसर्ग प्राप्त होता है और स्वप्न में ही भगवान के द्वारा उसका मनोरथ पूर्ण हो जाता है। विरहमंजरी में भी एक गोपी के श्रीकृष्ण के प्रति प्रेम के रूप में उत्कृ भक्तिभाव के दर्शन होते हैं।

परकीया भाव की अभिव्यक्ति प्रमुखतः पंचाध्यायी ग्रन्थों और भंवरगीत में वर्णित कृष्णेतर गोपों की विवाहित गोपियों के प्रेम के रूप में हुई है। पंचाध्यायी ग्रन्थों में इस भाव के संयोग और वियोग, दोनों पक्षों का प्रतिपादन मिलता है। गोपियां श्रीकृष्ण के सौन्दर्य और मुरली के मधुर नाद पर मुग्ध होकर उनकी ओर आकर्षित होती हैं। उन्हें भगवान की कृपा सहज ही प्राप्त हो जाती है और उनके हृदय में लोकाश्रय का त्याग तथा असह्य विरह का भाव अनायास हो आ जाता है। इस प्रकार की स्थिति को प्राप्त होने वाली गोपियों के भी दो प्रकार हैं। कृष्ण की मुरली के मधुर नाद पर मोहित होने वाली एक ओर वे गोपियां हैं जो लोक लाज निरपेक्ष हैं, उन्हें कृष्ण की ओर जाते हुए उनके सगे सम्बन्धी भी नहीं रोक पाते हैं और वे कृष्ण के पास जा कर उनके दर्शन कर लेने पर ही चैन लेती हैं। दूसरी ओर वे गोपियां हैं जो भौतिक शरीर से विवशतः श्रीकृष्ण के पास नहीं पहुंच पाती हैं और परम दुःसह्य विरह के उपरान्त भावना में श्रीकृष्ण के साथ आलिंगन सुख का लाभ प्राप्त करती हैं। प्रथम प्रकार की गोपियों में कृष्ण के सामीप्यानुभव से स्वच्छन्दता आ जाती है और अहम् का आवरण होने से उनकी भावना, स्वच्छन्दता की स्थिति को नहीं प्राप्त हो पाती है। उसे विरहाग्नि में तपा कर विशुद्ध करने की दृष्टि से श्रीकृष्ण अन्तर्धान होकर गोपियों को महाविरह का अनुभव कराते हैं और जब उनका प्रेम विरह ताप तथा लीला में तदाकार स्थिति के द्वारा अहम् के आवरण से मुक्त हो जाता है तो विशुद्ध प्रेम के प्रकाश में उन्हें पुनः [illegible] श्रीकृष्ण दिखाई देने लगते हैं। श्रीकृष्ण प्रकट होकर उनके मनोरथ तो पूर्ण करते ही हैं, रास मण्डल में उनके साथ विहार करके अलौकिक आनन्द का अनुभव भी

इस प्रकार रासपंचाध्यायी और सिद्धान्तपंचाध्यायी में संयोग और वियोग दोनों अवस्थाओं में परकीया भक्ति भाव का सम्यक् परिपाक दृष्टिगत होता है।

भंवरगीत में परकीया भक्तिभाव का जो समावेश मिलता है उसमें इस भाव के केवल वियोग पक्ष को ही स्थान मिला है। इसका कारण यह है कि इस गीत में श्रीकृष्ण जो सन्देश ब्रज में गोपियों के लिए उद्धव द्वारा भेजते हैं वह मथुरा से भेजते हैं और वहीं गोपियों का संदेश उद्धव द्वारा प्राप्त करते हैं जिससे संयोगावस्था ग्रन्थ में आये हुए प्रसंग से बाहर रह जाती है। स्मरणीय है कि भंवरगीत में परकीया भाव केवल वियोग पक्ष में ही स्थित होने पर भी अधिक संवेदनात्मक रूप में सामने आता है। उसमें कृष्ण के नाम को सुनते ही [illegible] को उनके विरह का अनुभव होने लगता है। यहां विरह में वह ताप नहीं है जिसमें तप कर प्रेम शुद्ध होता है, अपितु वह गहनतम प्रेम का ही परिचायक है जो पहले ही विशुद्ध अवस्था को प्राप्त है। गोपियां भगवद् भाव में इस प्रकार लीन हो जाती हैं कि उन्हें नयनों के आगे ही श्रीकृष्ण की उपस्थिति की प्रतीति होने लगती है। वे तीव्र विर[illegible] की अवस्था में उनकी लीलाओं का गान करते करते इस स्थिति को प्राप्त हो जाती हैं कि उनका हृदय ही फटकर अश्रु रूप में बहता हुआ प्रतीत होने लगता है। उनके हृदय में प्रेम का समुद्र ही उमड़ पड़ता है और उसके आगे जो भी आता है, उद्धव सर्व प्रथम इसके शिकार होते हैं। उद्धव कहां तो प्रेममयी गोपियों को निर्गुण ब्रह्म के ज्ञान का उपदेश देने के लिए आते हैं, कहां स्वयं उनके प्रेम सागर में डूब जाने से अपने अस्तित्व को ही खो बैठते हैं। इस प्रकार भंवरगीत में कवि की परकीया भाव की भक्ति अपने चरम अभिव्यक्ति के रूप में सामने आती है।

६१ इस प्रकार ज्ञात होता है कि कवि की भक्ति का स्वरूप प्रेमा भक्ति का है जिसको उसने 'प्रेम-भक्ति' के नाम से अभिहित किया है। अतः यदि कवि के भक्ति विषयक मत को 'प्रेमभक्ति' कहा जाय तो असंगत न होगा। कवि के मतानुसार जहां एक ओर प्रेम-भक्ति, प्रभु [illegible] का एकमात्र साधन है, वहीं दूसरी ओर प्रेम-भक्ति ही साध्य है और रास लीला के गान, श्रवण एवं वर्णन से उसकी प्राप्ति होती है। यद्यपि कवि ने अपनी प्रेमभक्ति के प्रतिपादन के लिए स्वकीया एवं परकीया दोनों भावों का आश्रय लिया है तथापि उसकी रुचि परकीया भाव ~~[illegible]~~

में ही अधिक रमी है और भगवदानुभूति के रूप में [illegible] भी उसे परकीया भाव द्वारा ही प्राप्त हुई है । रूपमंजरी ग्रन्थ में उल्लिखित उपपति रस भी परकीया भाव का ही दूसरा नाम है । अतः नन्ददास की भक्ति परकीया भाव प्रधान जान पड़ती है । उनकी इस भक्ति के उक्त स्वरूप के निर्माण में निम्नलिखित तत्वों का योग दृष्टिगत होता है :

(१) रूप दर्शन-स्मरण, गुण श्रवण-कथन या मुरली नाद श्रवण — भगवान के रूप दर्शन या स्मरण, उनके गुणों के श्रवण कथन अथवा उनकी मुरली नाद के श्रवण ~~स्वर नाद~~ से भक्त के हृदय में भगवद् भाव का प्रादुर्भाव होता है ।

(२) लोकाश्रय का त्याग और भगवद् प्राप्ति की प्रबल आकांक्षा

(३) भगवदनुग्रह — संयोग और समागम की कामना से तड़पते हुए भक्त पर भगवान स्वयं आकर कृपा करते हैं ।

(४) गुर्वाश्रय — भक्त को भगवदोन्मुख करने वाला गुरु होता है ।

(५) सत्संग — श्रीकृष्ण के संग से गोपियों का काम भाव निष्काम प्रेम में परिणत होकर परमानन्द प्राप्ति का साधन बनता है । प्रेममयी गोपियों के सत्संग से, ज्ञान का ढिंढोरा पीटने वाले उद्धव जैसे ज्ञानमार्गी को भी प्रेमाभक्ति के प्रति अनुरक्ति हो जाती है ।

(६) सब प्रकार से भगवान को समर्पित होना

(७) परम विरह — अन्य तत्व विहीन विशुद्ध प्रेमावस्था की प्राप्ति में विरहाकुलता एकान्ततः आवश्यक है ।

(८) विशुद्ध प्रेम

(९) दृढ़ आस्था और धैर्य तथा भगवान की कृपा पर पूर्ण विश्वास ।

(१०) [illegible] ।

(११) करुणा याचना या दैन्य भाव ।

(१२) एकान्त तन्मयावस्था और तदाकारावस्था ।

(१३) भावलीलानुभव अथवा भगवान के नैकट्य का अनुभव ।

ये ही, कवि के मधुर भाव से भावत्प्राप्ति प्रगल्भ पुष्प के दल हैं जिन्हें एकत्रित एवं अवंठित रूप में भगवान श्रीकृष्ण को चढ़ाने से नन्ददास को उनके सामीप्य की अनुभूति प्राप्त हुई । इसके अतिरिक्त कवि की भावना में भक्त में ही भगवद्दर्शन और भक्त भगवान के अभिन्नत्व के तत्व भी अनायास ही आ गये हैं ।

६६ पीछे लिखा जा चुका है कि नन्ददास पुष्टि सम्प्रदाय में दीक्षित हुए थे और वे पुष्टिमार्गी भक्त थे ।[1] अत: उनकी भक्ति भावना के उपर्युक्त स्वरूप को सम्यक प्रकार से समझने के लिए उसे पुष्टिमार्गी भक्ति के प्रकाश में देखना अनावश्यक न होगा ।

पुष्टिमार्गी भक्ति

६७ ऊपर कह आए हैं कि पुष्टिमार्ग के प्रवर्तक आचार्य वल्लभ थे । सम्प्रदाय प्रदीप के अनुसार आचार्य जी को पुष्टिमार्ग के प्रवर्तन के लिए आन्तरिक प्रेरणा मिली थी । दूसरी ओर उसके नामकरण की प्रेरणा उन्हें भागवत से प्राप्त हुई । श्रीमद्भागवत में कहा गया है कि, 'पोषणं तदनुग्रहः'[2] जिसके अनुसार भक्तों के ऊपर भगवान की जो कृपा होती है उसका नाम पोषण या पुष्टि है । इसी के आधार पर [illegible] जी ने कहा है कि, 'कालादि के प्रभाव को रोकने वाली कृष्ण-कृपा ही पुष्टि है ।'[3]

६८ यथार्थ में पुष्टिमार्ग केवल अनुग्रह से ही साध्य है ।[4] इस मार्ग में सभी भावों में श्रीकृष्ण की ही शरण है[5] और सब कुछ छोड़ कर दृढ़ विश्वास के साथ हरि का

१- दे० ऊपर पृ० ४ । २- भागवत २।१०।४।

३- कृष्णानुग्रह रूपा हि पुष्टि: [illegible] : त०दी०नि०,भागवत प्रकरण।

४- [illegible] पुष्टिमार्ग साध्य: : अणुभाष्य, ४।४।६।

५- [illegible] : [illegible], श्लोक १० ।

भजन ~~करनै~~ करने का विधान है ।[1] भक्त को सांसारिक विषयों का तन, मन और वचन से त्याग करना आवश्यक है ।[2] यहां सभी सांसारिक विषयों को भगवदोन्मुख किया जाता है और भगवान के गुण नाम श्रवण कीर्तनादि ही आनन्दप्रद हैं । अत: भगवान के गुणों का कीर्तन करना चाहिए ।[3] इस मार्ग के अनुसार आत्मासहित सम्पूर्ण वस्तुओं को श्रीकृष्ण को ही समर्पण करना चाहिए,[4] सदा श्रीकृष्ण की ही सेवा करनी चाहिए[5] और गुरु की आज्ञा का पालन करना चाहिए क्योंकि यह भी ईश्वर की सेवा का एक अंग है ।[6] त्याग से और श्रवण कीर्तनादि साधनों से ईश्वर प्रेम का बीज हृदय में जमता है ।[7] प्रेम की तीन अवस्थायें हैं, स्नेह, आसक्ति और व्यसन। ईश्वर के प्रति स्नेह से लोकासक्ति का नाश होता है और आसक्ति से गृह में अरुचि होती है । ईश्वरीय प्रेम की अवस्था में इस आसक्ति को पाने पर घर बार बाधक प्रतीत होने लगते हैं । व्यसन से भक्त को पूर्ण कृतार्थता मिलती है ।[8]

६६ जीव ब्रह्म के साथ सम्बन्ध स्थापित करके सदा ध्यान करे कि मैं सब प्रकार से सदा श्रीकृष्ण की शरण हूं ।[9] यदि प्राप्ति में विलम्ब हो तो फल के विषय में न सोचकर भक्त यही सोचे कि मैं भगवान का सेवक हूं ।[10] भगवान भक्त से किसी साधन सम्पत्ति द्वारा सन्तुष्ट नहीं होते हैं । जब भगवान सन्तुष्ट होते हैं तो सब दुखों का नाश कर देते हैं ।[11]

१-अन्त:करण प्रबोध, श्लोक ७ ।
२-निरोध लक्षण, २ श्लोक ४, षोडश ग्रन्थ ।
३-वही, श्लोक ५, भट्ट रमानाथ शर्मा ।
४-अन्त:करण प्रबोध, षोडश ग्रन्थ, श्लोक ८, भट्ट रमानाथ शर्मा ।
५-सिद्धान्त मुक्तावली ,, ,, ,, १ ।
६- नव रत्न, ,, ,, ,, ७ ।
७- भक्तिवर्धिनी, ,, ,, ,, १ ।
८- ,, ,, ,, ,, ३,४,५ ।
९- नव रत्न, ,, ,, ,, ६ ।
१०- अन्त:करण प्रबोध ,, ,, ७ ।
११- सुबोधिनी, फल प्रकरण, अध्याय ४, श्लोक २, ३ ।

७० नवधा भक्ति के साधन इस प्रकार द्वारा पूर्ण प्रेम की अवस्था आती है ।[१] ज्ञान के अभाव में पुष्टिमार्गीय भक्त को भागवत में कहे हुए कीर्तन आदि पूजा के साधन करने चाहिए ।[२]

७१ इस मार्ग के अनुसार सर्वदा समस्त भावों से श्रीकृष्ण का ही भजन करना ही धर्म है । यह सोचकर निश्चित हो जाना चाहिए कि वे सर्व समर्थ हैं और मेरे लिए जो कुछ कर्तव्य है उसे वे स्वयं कर देंगे । यदि श्रीकृष्ण को सर्वात्मना हृदय में स्थापित कर लिया तो लौकिक तथा वैदिक कर्मकाण्ड द्वारा अन्य किसी फल की प्राप्ति शेष नहीं रह जाती है । अत: सभी भांति श्रीकृष्ण के चरणों में रत होकर उनका स्मरण और भजन करना चाहिए ।[३] साथ ही पुष्टिमार्ग में श्रीकृष्ण की सर्वात्मभाव से सदा सेवा करना ही परम धर्म है, अन्य कोई धर्म या कर्तव्य नहीं, यही धर्म है, यही काम है और यही मोक्ष है ।[४] इस मार्ग में भक्त अपने हृदय में गोपियों के विरह की प्रबल वेदना के उत्पन्न होने की कामना करता है ।[५]

७२ जीवों के भेदों पर प्रकाश डालते हुए आचार्य वल्लभ ने लिखा है --"पुष्टि मार्ग में जीव भिन्न भिन्न हैं । उनकी सृष्टि भगवान की इस सेवा के लिए हुई है । जो जीव शुद्ध हैं वे भगवान की कृपा से उनके प्रेम पात्र बन चुके हैं और अत्यन्त दुर्लभ हैं । मिश्र जीव प्रवाही पुष्ट, मर्यादा पुष्ट और पुष्टि पुष्ट नाम से तीन प्रकार के हैं । इन सबकी रचना भगवान के कार्य की सिद्धि के लिए ही की गई है । भगवान का कार्य है लीला । अत: ये सब उस लीला में भाग लेने वाले हैं, लीला में भाग लेकर प्रभु की सेवा करने वाले हैं । सेवा की यह क्रिया ही पुष्टिमार्गीय भक्ति है । अत: निस्साधन भक्तों के लिए यह उच्चतम और सरलतम भक्ति मार्ग है ।[६]

१- बल भेद, षोडश ग्रन्थ, श्लोक १० ।

२- सिद्धान्त मुक्तावली, षोडश ग्रन्थ, श्लोक १७, १८ ।

३- चतु:श्लोकी, षोडश ग्रन्थ, श्लोक : १,२,३,४ ।

४- [illegible]ोधिनी, [illegible] ।

५- निरोध लक्षणम्, षोडश ग्रन्थ, श्लोक १ । भट्ट रमानाथ शर्मा ।

६- [illegible] श्लोक १२,१३,१५ ।

७३   पुष्टि सम्प्रदाय के प्रमुख व्याख्याता श्री हरिराय के अनुसार --`जिस मार्ग में समस्त साधनों की शून्यता प्रभु प्राप्ति में साधक बनती है अथवा साधनजन्य फल ही जहां साधन का कार्य करता है, जिस मार्ग में प्रभु का अनुग्रह ही लौकिक तथा वैदिक सिद्धियों का हेतु बन जाता है, जहां कोई यत्न नहीं करना पड़ता, जहां प्रभु कथ-न के साथ देहादि का सम्बन्ध ही साधन और फल दोनों (जाना) जाता है, जहां विषय परित्याग द्वारा हुए निर्मल मन को श्रीकृष्ण को समर्पित कर दिया जाता है` उसे पुष्टिमार्ग कहते हैं ।[१]

७४   हरिराम जी ने शिक्षापत्र में एक स्थान पर लिखा है --`[illegible], अन्नकूट, होरी, हिंडोरा आदि बरस के दिन उत्सव, तिनको अनेक लीला भाव करिके पुष्टि मारग की रीति में मन लगाइ के करें । तथा नित्य लीला, मंडिला, मंगल योग आरती, सिंगार, पालनों, राजभोग, उत्थापन, सैन (शयन) पर्यन्त, पीछे रासलीला मानसिक जल थल विहार इत्यादि की भावना करिये`[२]

७५-   पुष्टिमार्ग में आने के लिए यह आवश्यक है कि लोक और वेद के प्रलोभनों से दूर रहा जाय, उन फलों की आकांक्षा छोड़ दे जो लोक का अनुकरण करने से प्राप्त होते हैं तथा जिनकी प्राप्ति वैदिक कर्मों के सम्पादन द्वारा की गई है । यह तभी हो सकता है जब कि साधक अपने को भगवान के चरणों में समर्पण कर दे । इसी समर्पण से इस मार्ग का आरम्भ होता है और पुरुषोत्तम भगवान के स्वरूप का अनुभव और लीला सृष्टि में प्रवेश हो जाने पर अंत । बीच का मार्ग सेवा द्वारा प्राप्त होता है जिससे अहंताममता का नाश हो जाता है और भगवान के स्वरूप के अनुभव की क्षमता प्राप्त हो जाती है ।[३]

७६   पुष्टि सम्प्रदाय के प्रमुख विवेचक डा० दीनदयालु गुप्त जी ने पुष्टि भक्ति के प्रसंग में लिखा है ,`कि भगवान की कृपा द्वारा साध्य भक्ति के लिए हृदय में उत्कट

१- हरिराम बाइ [illegible] , पुष्टिमार्ग लक्षणानि, श्लोक १,२,१०,१५,१८ ।

२- हरिरायकृत संस्कृत में लिखे हुए शिक्षापत्र पर उनके अनुज श्री गोपेश्वर जी कृत ब्रज भाषा टीका ([illegible]र्वा, आषाढ़ १९६८, पृ० ११) ।

३- आचार्य शुक्ल कृत सूरदास (अष्टछाप परिचय पृ० ५५) ।

प्रेम का होना आवश्यक है।"[1]

७७ इससे स्पष्ट है कि पुष्टिमार्गीय भक्ति में प्रेम का प्राधान्य है। इसीलिए इसे प्रेम-लक्षणा भक्ति ~~कहते हैं~~ कहा जाता है। यहां भगवान की कृपा का अवलम्ब ही सब कुछ है। भक्त एक बार उनकी ओर उन्मुख भर हो जाय, बस वे अनुग्रह द्वारा स्वयं उसे अपना लेते हैं। उसका तन, मन और धन भगवान में रमने लगता है, जब लोकासक्ति छूट जाती है, वे अपने इन गुणों के आकर्षण द्वारा उसके प्रेम का उन्नयन करते हैं। यही नहीं भक्त उनमें पूर्ण आत्म समर्पण करने की स्थिति को प्राप्त हो जाता है। भक्त को प्रेम की प्रेरणा देने वाला गुरु होता है, इसलिए पुष्टि मार्ग में गुरु की भक्ति को भी भक्ति का ही अंग माना गया है। यहां गोपियां प्रेम का आदर्श हैं, भक्त के हृदय में उन्हीं के समान प्रेम की आकांक्षा रहती है। गोपियों को कृष्ण मिलन से पूर्व विरहाग्नि में तपना पड़ा था, पुष्टि भक्त को भी बिना विरह की अवस्था के अनुभव के भगवान की लीला का अनुभव नहीं हो सकता है। जब तक भगवद विरह के तीव्र ज्वर से भक्त छटपटाने नहीं लगता तब तक उसमें वास्तविक दैन्य भाव नहीं आ सकता और दैन्य भाव के बिना भगवान सन्तुष्ट नहीं होते। इस मार्ग के अनुसार नवधा भक्ति से, पूर्ण प्रेम की अवस्था आती है। यहां कृष्ण और उनकी सेवा ही परम कर्तव्य है। भगवान के गुण कथन से हृदय में प्रेम अंकुरित होता है, उसकी सुरक्षा के लिए बड़े धैर्य और विवेक की आवश्यकता होती है। विरह ताप द्वारा जब अहंता ममता मिट जाती है तो शुद्ध प्रेम की अवस्था आती है और तब भगवान की लीला का अनुभव अनुभव सहज ही हो जाता है। यही पुष्टि भक्ति का फल है। आत्म समर्पण और भगवद् लीलानुभव ही इस भक्ति में आदि और अन्त हैं। यहां प्रेम ही साधन है, साध्य मोक्ष या मुक्ति नहीं है, वह भी प्रेम --भगवत प्रेम ही है। अतः जो साधन है, वही साध्य है। इस मार्ग में भगवान के सत्संग का भी अनुभव होता है, अतः सत्संग भी कम महत्वपूर्ण नहीं है। इसके अतिरिक्त पुष्टिमार्ग में सेवा का भी महत्वपूर्ण स्थान है। यहां कृष्ण की सेवा सदा करनी चाहिए। वह सेवा मानसी होनी चाहिए, जो परा अर्थात् फल रूपा है,[2] हरि में चित्त का [illegible] ही सेवा

---

1. अष्टछाप और वल्लभ-सम्प्रदाय : डा० दीनदयाल गुप्त, पृ०: 428।

है ।[१] पुष्टिमार्गी भक्त को शुद्ध सेवा भाव से युक्त होकर भगवान के पूजोत्सवादि के स्थान पर रहना चाहिए ।[२]

७८ पुष्टि सम्प्रदाय के अनुसार सेवा दो प्रकार की होती है : (१) नामसेवा और (२) स्वरूप सेवा । स्वरूप से तीन प्रकार की है, तनुजा, वित्तजा और मानसी । मानसी के भी दो प्रकार हैं : मर्यादामार्गी और पुष्टिमार्गी । पुष्टिमार्गी मानसी सेवा करने वाला आरम्भ से भगवान के अनुग्रह का आश्रय ग्रहण करता है और शुद्ध प्रेम के द्वारा भगवान की भक्ति करता हुआ भगवदनुग्रह से सहज में ही अपने अभीष्ट को प्राप्त कर लेता है । पुष्टि सम्प्रदायी सेवा, भावना प्रधान है । इस सेवा के दो स्वरूप हैं, क्रियात्मक और भावात्मक । क्रियात्मक सेवा पर ही पूरा बल दिया जाता है । क्रम की दृष्टि से भी पुष्टिमार्गी सेवा दो प्रकार की है, नित्य सेवा और वर्षोत्सव की सेवा विधि । प्रातः काल से शयन पर्यन्त की, नित्य सेवा विधि और विशेष अवसरों पर वर्षोत्सव की सेवा विधि कही जाती है । नित्य सेवि विधि में वात्सल्य भक्ति की ही प्रधानता है और उसके आठ समय नियत हैं, मंगला, श्रृंगार, ग्वाल, राजभोग, उत्थापन, भोग, संध्या आरती और शयन । वर्षोत्सव की सेवा विधि में श्रीकृष्ण के नित्य और अवतार लीलाओं के उत्सव, छः ऋतुओं के उत्सव, त्यौहार, पर्व तथा अन्य जयन्तियां सम्मिलित हैं । नित्य और वर्षोत्सव दोनों सेवा विधियों के तीन मुख्य अंग हैं, श्रृंगार, भोग और राग । साधारणतया मनुष्य इन्हीं तीन विषयों में फंसा रहता है । तीनों ही विषयों को भगवान में लगा देने से उनसे मुक्ति मिल जाती है और ये विषय भी भगवद् स्वरूप हो जाते हैं । पुष्टि सम्प्रदाय में यमुना जी का बड़ा महत्व है । आचार्य वल्लभ ने यमुनाष्टक में यमुना जी के माहात्म्य का वर्णन किया है। प्रभु का स्वरूप और स्वरूप और उसमें जो गुण हैं वे ही यमुना जी में माने गए हैं । वे प्रभु की परम प्रिया हैं । इसलिए यमुना जी को कृष्ण में रति बढ़ाने वाली माना गया है ।

१- सिद्धान्त मुक्तावली, श्लोक ३ ।

२- वही, श्लोक १७ ।

संक्षेप में ये ही पुष्टिमार्गी साधना पक्ष की मान्यतायें हैं।

७६ ऊपर कही गयी कवि की भक्ति के साथ उक्त मान्यताओं के अवलोकन से विदित होता है कि उत्कट प्रेम की प्रधानता और भगवान की कृपा के अवलम्बन को कवि-कृतियों में पुष्टि-भक्ति के अनुसार ही स्थान मिला है। दोनों में गोपियां, प्रेम की आदर्श रूपा हैं और दोनों में भगवान श्रीकृष्ण के अनुग्रह द्वारा ही भगवत्प्राप्ति के रूप में उनका मनोरथ पूर्ण होता है। लौकिक विषयों को कृष्णोन्मुख करके,उनका गुण कीर्तन, स्वरूप स्मरण आदि से हृदय में भगवत्प्रेम उत्पन्न होने के कथन दोनों में समान हैं। पुष्टिमार्ग की यह भावना कि भगवान के प्रति प्रेम होने पर संसार से विरति उत्पन्न होती है और भगवान के प्रसन्न होने पर सभी मनोरथ पूर्ण होते हैं, नन्ददास की भक्ति भावना का भी अंग है। दोनों से ही प्रकट होता है कि नवधा भक्ति से पूर्ण प्रेमावस्था आती है, तीव्र विरहानुभूति के द्वारा वास्तविक दैन्य आता है एवं प्रेम विशुद्धावस्था को प्राप्त होता है, प्रेम को बनाये रखने के लिए सतत धैर्य एवं विवेक आवश्यक है तथा प्रेम ही साधन है और वही--भगवत्प्रेम ही,साध्य है। सत्संग एवं गुरु के महत्त्व को कवि ने उसी रूप में स्वीकार किया है जैसा वह पुष्टिमार्ग में मिलता है।

हरि में चित्त लगाना सेवा है और पुष्टिमार्ग में सेवा का महत्वपूर्ण स्थान है। यह सेवा भावना प्रधान है तथा इसका आरम्भ ईश्वरानुग्रह के आश्रय द्वारा होता है। इष्ट सेवा सम्बन्धी ये बातें जैसा कि ऊपर कवि की भक्ति भावना के विश्लेषण से प्रकट है कवि की कृतियों में भी उपलब्ध है। इसके अतिरिक्त पुष्टिमार्ग में निर्दिष्ट नित्य सेवा एवं वर्षोत्सव सेवा का भी कवि ने श्रीकृष्ण जन्म तथा बधाई, बालक्रीड़ा, छाक लीला, दधि दानलीला, गोवर्द्धनलीला, रासलीला, मानलीला, त्योहार, वर्षा, फागलीला आदि विषयक पदों द्वारा प्रतिपादन किया है।

इससे स्पष्ट है कि भक्ति के जिस स्वरूप को कवि की भावना में प्रश्रय मिला है वह पुष्टिमार्गी भक्ति के नितान्त अनुकूल है।

८० स्मरणीय है कि कवि ने रुक्मिणीमंगल, रासपंचाध्यायी, सिद्धान्त-पंचाध्यायी और भंवर गीत की रचना श्रीमद्भागवत के आधार पर की है। इसके साथ

रासपंचाध्यायी में उसने एक स्थान पर यह भी कहा है, कि रासलीला उन्हीं भक्तों को सुनानी चाहिए जिनका भागवत धर्म का अवलम्ब है।[1] ऊपर कह आये हैं कि कवि की भक्ति आचार्य वल्लभ द्वारा प्रतिपादित पुष्टि भक्ति के नितान्त अनुकूल ठहरती है और पुष्टि भक्ति की मूल प्रेरणा भागवत पर आधारित है। पुष्टि मत में यह भी कहा गया है कि ज्ञान के अभाव में पुष्टिमार्गी भक्त को भागवत में कहे हुए कीर्तन आदि पूजा के साधन करने चाहिए। इससे प्रकट है कि पुष्टिमार्गी तात्त्विक दृष्टि से चाहे अन्य सूत्रों[2] का भी ऋणी रहा हो किन्तु भक्ति के लिए प्रधानतः भागवत पर ही आधारित है। अतः पुष्टिमार्गी होने के कारण नन्ददास के काव्य में भी भागवत भावना से साम्य एवं उक्त प्रकार से भागवत धर्मोल्लेख दृष्टिगत होना अस्वस्थ अस्वाभाविक नहीं। फिर उक्त चार ग्रन्थों की तो रचना ही भागवत के आधार पर की गई है। किन्तु इसका यह तात्पर्य नहीं कि भक्ति भावना की दृष्टि से कवि भागवत का ही ऋणी है। निःसन्देह, कवि ने श्रीकृष्ण प्रेम का चित्रण किया है और श्रीकृष्ण प्रेम भागवत में भी वर्णित है। किन्तु भागवत में इस प्रेम के साथ साथ ज्ञान की भी चर्चा की गई है। वस्तुतः भक्ति का विवेचन एवं महत्व प्रतिपादन करने के लिए भागवत में ज्ञान का भी आश्रय लिया गया है किन्तु ऊपर दिए गए कवि की भक्ति के स्वरूप से प्रकट है कि उसने ज्ञान का विरोध ही नहीं, तीव्र विरोध किया है और केवल प्रेम भक्ति के लिए ही अपनी भावना के द्वार खुले छोड़े हैं। यह प्रेम भक्ति ~~के लिए ही अपनी भावना के~~ भी भागवत से सीधे नहीं ग्रहण की गई जान पड़ती है, प्रत्युत इसके लिए कवि भागवत पर पहले से ही अवलम्बित पुष्टिमार्ग का ही ऋणी ज्ञात होता है।

निष्कर्ष

८१ इस प्रकार उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि कवि की भक्ति प्रेमा भक्ति है जिसको उसने अपने ग्रन्थों में प्रेम भक्ति के नाम से अभिहित किया है। इस भक्ति में

१- न० ग्र०, पृ० २३, छन्द ३८।

२- अन्य सूत्र प्रस्थानत्रयी (उपनिषद् ब्रह्मसूत्र और गीता) है।

प्रेम ही सबकुछ है, वह साधन है और वही--भगवत्प्रेम, साध्य भी । भगवान के नाम श्रवण, स्वरूपदर्शन-स्मरण और गुण गान आदि से हृदय में भगवत्प्रेम उत्पन्न होता है । इस प्रेम की रक्षा के लिए विवेक एवं धैर्य की आवश्यकता होती है । प्रेम-भक्ति में गोपियों के समान विरहाकुलता के अनुभव का महत्वपूर्ण स्थान है । परम विरह से प्रेम विशुद्ध कोटि को प्राप्त हो कर भगवत्प्राप्ति का कारण होता है ।

कवि ने अपनी प्रेम भक्ति का प्रतिपादन स्वकीया और परकीया दोनों भावों में किया है किन्तु प्रमुखता परकीया भाव की होती है और इसी भाव द्वारा उसे भगवत्तत्त्व का अनुभव हुआ है । परकीया भाव के लिए उज्ज्वल रस की प्रस्थापना एवं नादमार्ग और अमार्ग के प्रतिपादन की चेष्टा कवि की अपनी ही देन है । ज्ञान, योग एवं कर्म का खण्डन करके प्रेम भक्ति को सर्वोपरि घोषित करने में भी कवि को आशातीत सफलता मिली है ।

कवि की उक्त प्रेमभक्ति पुष्टिमार्गी प्रेम लक्षणा भक्ति पर आधारित है जिसका उसने पूर्ण मनोयोग से समर्थन किया है तथा भक्ति के इतर साधन--ज्ञान और योग का प्रबल प्रतिरोध करने में कोई संकोच नहीं किया । वस्तुत: नन्ददास का हृदय प्रेम भक्ति का ही साकार रूप जान पड़ता है । इसीलिए उनकी प्रत्येक कृति भगवत्प्रेम से सराबोर है और यहां तक कि कोष और नायक नायिका भेद ग्रन्थ भी इस रस से निरापद नहीं रह पाये हैं । यही भक्त कवि की सफलता है ।

अध्याय ७

कार्यपद्धति

काव्य पक्ष

१ रूपमंजरी ग्रन्थ में एक स्थल पर नन्ददास ने कहा है, `कि रस से परिपूर्ण सरस्वती के चरणों की वन्दना करता हूं और वर मांगता हूं कि वे मुझे ऐसे अक्षर और वचन दें जो सुन्दर कोमल और अनूठे हों तथा जो कहने, सुनने एवं समझने में अत्यन्त मधुर हों । वे न तो `उघरे` ही हों और न अत्यन्त गूढ़ हों ।`[१]

इससे प्रकट है कि कवि ऐसी कविता की कामना करता है जिसमें सौंदर्य, कोमलता और माधुर्य तो हों ही, उसमें अनूठापन और प्रासादिकता भी हो । सौंदर्य भाव और भाषा दोनों का साथी है । कोमलता, भाषान्तर्गत कोमलकान्त पदावली की सहचरी के रूप में आती है । कवि ने माधुर्य को लेकर जो यह कहा है कि उसकी कविता कहने और सुनने में मधुर हो तो उससे कविता के बाह्य विधान के मधुर होने की प्रतीति होती है तथा यह कहने से कि वह समझने में मधुर हो तब भावों के मधुर होने का आभास मिलता है । वचनों के अनूठेपन की कामना से भी [illegible] का समर्थन होता है तथा वचनों के संबंध में `नहिंन उघरे गूढ़ न ऐसे` के कथन से भाषा की ओर संकेत परिलक्षित होता है ।

२ इस प्रकार काव्य के दोनों पक्षों — भाव और भाषा के प्रति कवि के दृष्टिकोण की सूचना मिलती है । यहां कवि की कामना जितनी भावोत्कर्ष प्रस्तुत करने की ओर प्रतीत होती है, [illegible] ही भाषा के सौंदर्य, कोमलता, मधुरता और सरलता की ओर उससे किसी प्रकार भी कम नहीं जान पड़ती है । नन्ददास द्वारा इंगित इन्हीं भाव और भाषा के पक्षों पर, उनके काव्य को दृष्टिगत रखते हुए नीचे विचार किया जाता है ।

१- रू० मं०, पृ०-१८८, पंक्ति : २१-२३ ।

भावानुभूति और भाव-चित्रण

१ पिछले अध्याय में नन्ददास काव्य का, भक्ति भावना के दृष्टिकोण से विचार करते समय उनके भावपक्ष का सामान्य परिचय मिल चुका है। यह भी स्पष्ट हो चुका है कि कवि ने रूप, प्रेम और आनन्द रस के वर्णन को ही अपनी कृतियों में स्थान दिया है तथा यह वर्णन निस्संकोच रूप में इस भावना से किया है कि वह सब भगवान श्रीकृष्ण से ही सम्बन्धित है, यह भावना उनके भक्त हृदय को स्रोतस्विनी धारा में निमज्जित होने के उपरान्त ही शब्दों में प्रकट हुई है। वस्तुतः भक्ति भावना की प्रेरणा से ही नन्ददास कविता कानन में प्रविष्ट हुए जिससे उनकी कृतियों में भक्ति भाव का ही प्राधान्य दृष्टिगत होता है। कवि ने स्वयं कहा है कि हरि यश रस विहीन कविता भीति चित्रवत् निष्प्राण होती है और उसके श्रवण का भी कोई फल नहीं होता है।[१] किन्तु इसका यह तात्पर्य नहीं है कि उनका काव्य भक्ति का उपदेशक काव्य है, अपितु तथ्य यह है कि उसमें भावना जगत की भक्ति भाव सम्पन्नता के साथ साथ सामान्य सहृदय को रससिक्त करने की प्रवृत्ति भी विद्यमान है जो कवि के इस कथन से प्रकट है, कि उसकी कविता को कोई ऐसा व्यक्ति न सुने जिसका हृदय सरस न हो क्योंकि अरसिक व्यक्ति सरस कविता को सुने भी तो वह उसके लिए व्यर्थ ही है; उससे उसे कोई आनन्द नहीं मिल सकता। युवती की रसभरी मुस्कान, कटाक्ष और लज्जा अन्धे पति के किस काम के? पत्नी का आनन्द जन्य सीत्कार पति के बधिर होने से निष्फल हो जाता है। काव्य की सरसता और युवती के कटाक्ष, दोनों, हृदय को आकर्षित करने वाले होते हैं किन्तु जिसका हृदय काव्य रस से सिक्त नहीं होता, उसका हृदय कठोर है, पाषाणवत् है।[२] कवि का उक्त कथन यथार्थ है, क्योंकि विभाव, अनुभाव और संचारी भावों से [illegible] करके कवि भाव को रस कोटि तक पहुंचा भी दे तो उसका आस्वादन बिना [illegible] के नहीं हो सकता। जिस प्रकार व्यंजन चाहे जितना स्वादु बना हो पर यदि आस्वादक स्वस्थ शरीर और मन का न हो तो उसे नहीं मिल सकता। इसी प्रकार कविता में रस का चाहे जैसा परिपाक हुआ

१. [illegible] दशमस्कन्ध ३४। २. वही, पृ० ३२।

हों, उसके पठन और श्रवण से तभी आनन्द प्राप्त हो सकता है जब पाठक या श्रोता सहृदय हों, उस कविता को सार्थकता भी तभी समझी जायेगी; दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि कवि का काव्य सहृदय हृदय संवेद्य है। इस बात की पुष्टि उसकी भावानुभूति और उसके भावचित्रण के अवलोकन द्वारा सहज ही हो सकती है। अत: कृतियों के आधार पर कवि की इसी भावविषयक अनुभूति और चित्रण को प्रकट करने का नीचे प्रयास किया जाता है।

अनेकार्थभाषा

४ अनेकार्थ भाषा कवि की सर्वप्रथम रचना है। यद्यपि इसका विषय भावात्मक होने की अपेक्षा इतिवृत्तात्मक ही है तथापि कवि की आरम्भिक मानसानुभूति—विरक्त और भगवदनुरक्त होने के भाव का सूत्रपात यहीं से हुआ जान पड़ता है। इस सम्बन्ध में कवि के वे कथन द्रष्टव्य हैं जिनके अन्तर्गत उसने कहा है, कि स्वर्ण से प्रीति न करके भगवान का भजन करो।[1] यौवन बीता जा रहा है श्रीकृष्ण का भजन कर लो,[2] हे दीनदयाल कलि क्लेश से मुझे उबारो,[3] श्रीकृष्ण ही एकमात्र धन हैं,[4] वे ही जगत के रक्षक हैं,[5] हे श्याम, यमराज से रक्षा करो।[6] हरि हीरा पाकर हाथ से न जाने दो,[7] नन्ददास को श्रीकृष्ण के चरणों में वह प्रेम भाव दो जो सब भावों में श्रेष्ठ है और जिसके वश में श्रीकृष्ण रहते हैं।[8]

५ इन कथनों से ज्ञात होता है कि इस कृति की रचना के समय कवि को संसार की असारता का अनुभव हो चुका था और उसी के फलस्वरूप उसके हृदय में भगवद भाव का उदय हुआ। भाव की आरम्भिक अवस्था में वह मन को लौकिक कामनाओं से विरत करके भगवद् भाव की दृढ़ता की ओर उन्मुख प्रतीत होता है। वह एक ओर मन से लौकिक विकारों को दूर करने का यत्न करता है और दूसरी ओर भगवान की कृपा तथा करुणा का स्मरण करके उनसे अपने उद्धार की याचना के के द्वारा उन्हीं में

१–न० ग्रं०, अनेकार्थभाषा, दोहा २० । २– वही, दोहा २९ ।
३– वही, दोहा ३३ । ४– वही, दोहा ३५ । ५– वही, दोहा ५४ ।
६– वही, दोहा ६२ । ७– वही, दोहा १०६ । ८–वही, दोहा ११९–२० ।

लीन होने की कामना करता है। यह कामना भगवान की दीन वत्सलता पर आधारित है, अतः उसमें कवि के हृदय का दैन्य भाव झलकता है। वह दीन होकर भगवान की शरण में शान्ति की आशा करता है। वह अत्यन्त अधीरता और विपन्नता का अनुभव करके पुकारता है, 'हे दीनदयाल, कवि कमेश की मेरी रक्षा करो'[1] ग्रन्थ में वह श्रोता या पाठकों को विधि निषेध का बोध कराते हुए और हरिभजन का उपदेश देते हुए दृष्टिगत होता है। यद्यपि इस प्रकार से उसकी दीनता का आभास सर्वत्र न होने की प्रतीति होती है तथापि वह भावों के अन्तराल में सतत विद्यमान रहती है और मार्ग पाने पर अवरुद्ध धारा की भांति प्रवहमान हो उठती है। यहां शान्त रस के अनुकूल सभी अवस्थायें मानों एकत्र हो गई हैं, श्रम, दैन्य, मति, स्मृति आदि संचारी भाव निर्वेद भाव की पुष्टि के लिए पर्याप्त हैं। ईशचिन्तन, संसार की असारता, यौवन की क्षणभंगुरता का उल्लेख आलम्बन विभाव और विधि निषेध से युक्त ईश भजनोपदेश उद्दीपन विभाव का काम करते हैं। संसार से वैराग्य, तल्लीनता, विषय त्याग आदि अनुभाव के रूप में आये हैं।

स्याम सगाई

६ स्यामसगाई में यशोदा के मन में राधा को देखकर अभिलाषा उत्पन्न होती है कि शाम की उससे सगाई हो जाय,[2] किन्तु कीर्ति द्वारा उसके प्रस्ताव के अस्वीकृत होने पर वह कृष्ण से कहती है, 'कि जहां भी तुम्हारी बात चलाती हूं, वहां से बुराई सुनने को मिलती है।[3] इसके साथ ही यशोदा की चिन्ता बढ़ जाती है, इस पर कृष्ण माता से कहते हैं, कि यदि तुम्हारी यही इच्छा है तो हम राधा को ही लायेंगे।[4] वे मोर चन्द्रिका धारण करके सुन्दर वेष में बरसाने के बाग में बैठ जाते हैं[5], उन्हें देखते ही राधा अपनी सुधि खो बैठती है और वह भावावेश में 'स्याम' 'स्याम' की ही रट लगाने लगती है।[6] सखियां उसे युक्ति बताती हैं कि घर पहुंचने पर वह सांप द्वारा डसे जाने की बात कह दे जिससे विष दूर कराने के बहाने कृष्ण को लिवा लाने का अवसर मिल सके।[7] घर पहुंचने पर कीर्ति ने उसके मुख से नाग द्वारा

१- वही, दोहा ३३। २-न० ग्र०, स्यामसगाई, छन्द १।
३- वही, छन्द ७। ४- वही, छन्द ८। ५-वही, छन्द ६
६- वही, छन्द ११। ७- वही, छन्द १२।

उसे जाने का बात सुना तो वात्सल्य भाव में निमग्न हो कर वह अपनी सुध बुध ही भूल गई।[1] इधर सखियां यशोदा से जाकर जब कहती हैं कि वे कृष्ण को साथ भेज दें और कीर्ति सगाई करने के लिए उत्सुक हैं तो अपने पुत्र के लिए मनचाही कन्या प्राप्त कर लेने की आशा में उसका हृदय आनन्द से भर जाता है।[2] यह आनन्द यशोदा के वात्सल्य भाव का व्यंजक है। कृष्ण को सामने देखकर राधा का मन लज्जा से भर जाता है।[3] श्याम की सगाई की सूचना से ग्वाले फूले नहीं समाते हैं तथा सख्य भाव में मग्न हो कर नाचते और गाते हैं।[4]

७ इस प्रकार श्यामसगाई में वात्सल्य, रति तथा सख्य भावों की अवतारणा की गई है। यशोदा के हृदय में अभिलाषा, औत्सुक्य, क्षोभ-चिन्ता और हर्ष के द्वारा और कीर्ति के हृदय में जड़ता एवं दैन्य के द्वारा वात्सल्य भाव का परिपुष्टि हुई है। रूप-दर्शन और उसके उपरान्त आवेग, विकलता, जड़ता, विवशता, पूर्वानुराग, चिन्ता, उत्सुकता और लज्जा द्वारा राधा के हृदय का रति भाव एवं हर्ष तथा विनोद के द्वारा ग्वालों के हृदय का सख्य भाव प्रकट हुआ है।

८ भावपक्ष के साथ साथ श्यामसगाई में विचार पक्ष भी देखने को मिलता है। कृष्ण को देखकर राधा बेसुध हो जाती है, किन्तु वह विवश है। प्रेम की पहुंच विवशता तक होती है। सखियां "सुनि कुंवरि तोहि इक जतन बताऊं" कहकर आगे कहती हैं :

> कहियो काटी नागनैं जो पूछै तो माय।
> हम हैं मीत गोपाल की, लैहैं तुरत बुलाय
> कहेगी पीर बहु।[5]

भावों के साथ बुद्धितत्त्व का सामञ्जस्य उपस्थित करने की नन्ददास की प्रवृत्ति का आरम्भ यहीं से होता है।

१- वही, छन्द १४। २- वही, छन्द १८। ३- वही, छन्द २६।
४- वही, छन्द २८। ५- वही, छन्द १२।

नाममाला

१   कोष-ग्रन्थ होते हुए भी नाममाला में अनेक ऐसे कथन अनायास ही आ गए हैं जो भाव कोटि के हैं। नाममाला में राधा के मान के प्रसंग में कवि का कथन है--'राधा मान करके बैठी है।[१] उसे त्योंम से भरी हुई देखकर सखियों के मन में भय पैदा हो जाता है।[२] फिर भी वह राधा के रति भाव को जगाने के प्रयत्न करती है, वह कहती है, 'कि ब्रह्मा ने दो शरीरों में एक ही प्राण स्थापन करके बड़ी निपुणता से यह जोड़ा बनाई है।[३] जिस प्रकार अर्जुन धनुधरों में श्रेष्ठ है उसी प्रकार ब्रह्मा ने तेरे प्रेम को सर्वश्रेष्ठ रूप दिया है।[४] तू जो दीर्घ श्वास ले रही है उसका क्या कारण है?[५] तुझ जैसी प्रेयसी और तेरे प्रिय जैसे प्राणपति और कोई भी नहीं है।[६] अकारण मान न कर,[७] तेरे गिरिधर प्रिय, रूप और गुणों के रत्नाकर हैं, उनसे मिलकर प्रेम विहार कर ले।[८] जब तेरे प्रिय ने गोवर्धन धारण किया था, उस समय की तेरे हृदय की धुकधुकी अभी भी नहीं मिटी है।[९] काली दहन के समय कृष्ण के प्रेम वश तेरी और ही दशा हो गयी थी।[१०] अब उन्हीं प्रिय की पीड़ा का अनुभव तुझे क्यों नहीं हो रहा है?[११] अब तो संध्या हो रही है, रोष त्याग कर उनके पास चल।[१२] नन्दकिशोर अटवी में अकेले खड़े हैं।[१३] तू विलम्ब करके रस में विष घोलने का काम न कर,[१४] शरद की समय और सुहावनी रात में भी यहाँ क्यों बैठी है? मोहन के पास चल।[१५] वे तेरी राह देख रहे हैं।[१६] कृपा करके अब रोष न कर।[१७] कल्पवृक्ष के नीचे तेरे प्रिय कब से तेरे लिए विकल हैं लेकिन फिर भी तेरे हृदय में दया नहीं है।[१८] वे अपनी वंशी में भी यही रट लगा रहे हैं --'कि ये प्राणेश्वरी आओ'[१९]

१- न० ग्र०, नाममाला, दोहा ७८। २- वही, दोहा ८०।

३- वही, दोहा ८८। ४- वही, दोहा ९१। ५- वही, दोहा ९४।

६- वही, दोहा ९९-१००-१०१-१०२। ७- वही, दोहा १११।

८- वही, दोहा १३७। ९- वही, दोहा १६५। १०-वही, दोहा १६८।

११-वही, दोहा १६९। १२- वही, दोहा १७१। १३-वही, दो० १७२।

१४-वही, दोहा १७३। १५- वही, दोहा १७५। १६-वही, दोहा १८४।

१७-वही, दोहा १८८। १८- वही, दो० १९७। १९- वही, दोहा २०१।

तब सखियों की ओर देख कर कुंवरि राधिका मुस्काने लगती है।[1] और कहने लगती है कि अभी सोये रहें, प्रातः चलेंगे।[2] लेकिन उसी समय न चलने से रस में विघ्न उपस्थित होता है।[3] सखी कहती है-- प्रिय के पास अभी चल, औषधि लाने में लज्जा की क्या बात है।[4] इस वीथि से कल प्रिय निकट गए थे।[5] यह वह स्थान है जहां तू कल अपने प्रिय के साथ बैठी थी।[6] तुझ में तो मानों रोष है ही नहीं; तू तो बड़ी रसीली है।[7] इसीलिए तुझे देखकर पान की बेलि भी सरस हो गई है[8], और यह सरोवर तेरे अनुराग से रंगीला हो गया है।[9] राधा सखी के साथ प्रिय से मिलने के लिए उसी ओर आ रही है[10] जहां बलवीर वानीर बेत मंजुल कुंज के नीचे बैठे हैं[11] और उनकी आकुलता को देखकर कोकिला कुंवरि को पुकार पुकार कर बुला रही है।[12] इस प्रकार राधा और माधव का मिलन हुआ और दोनों परम प्रेम से पुलकित हो गये।[13]

१० इन कथनों में कवि ने राधा की मान की दशा दिखा कर उसके हृदय में गर्व, हास्य, मान, रोष, लज्जा, अनुराग आदि भावों को दिखाया है। सखियों द्वारा प्रिय के गुण कथन, शौर्य कथन, अभिन्नत्व प्रदर्शन, सुहावनी शरद रजनी, कृष्ण की आकुलता के वर्णन से राधा के रति भाव को उद्दीप्त करने का प्रयास किया है। उसमें कृष्ण के हृदयस्थ भाव-- अभिलाषा, आकुलता, विवशता, अधैर्य आदि का वर्णन करके राधा के प्रेम भाव को परिपुष्ट करने की चेष्टा भी निहित है। इन कथनों से ज्ञात होता है कि कवि का हृदय प्रेम भाव की निमग्नावस्था में राधा के मान का वर्णन कर रहा है। कृति का विषय प्रमुखतः शब्द पर्याय सिखाना होने के कारण कवि भाव तारतम्य को पूर्णतः स्पष्ट नहीं कर पाया है, किन्तु जहां कहीं भी अवसर

१- वही, दो० २०६। २- वही, दो० २०८। ३- वही, दो० २०९।
४- वही, दो० २१०। ५- वही, दो० २१४। ६- वही, दो० २२६।
७- वही, दो० २३१। ८- वही, दो० २५३। ९- वही, दो० २५५।
१०- वही, दो० २५८। ११- वही, दो० २५९। १२- वही, दो० २६०।
१३- वही, दो० २६१।

मिला है उसके हृदय का भाव रस रूप में छलछलाता हुआ उमड़ पड़ा है। कवि ने सखी के माध्यम से कृष्ण के हृदय के विलखन और आरति के भावों को अपने सख्य रूप में पहचाना है तथा उसने राधा और कृष्ण की रसपूर्ण अवस्था का अनुभव किया है। तभी तो राधा के लिए 'निपट रसीली' और कृष्ण के हृदय की रस दशा की संकेत करते हुए राधा से 'रस में विष जिनि घोरि' तथा 'परी बूरे कै वज्र सिर बिरस करे रस माँहि' के कथन उसके मुख से अनायास ही निकल पड़े हैं। यह उसी का अनुभव है कि रसीली राधिका की देखते ही पान की बेलि सरस हो जाती है। संयोग होने पर राधा कृष्ण की जिस भाव दशा की अनुभूति कवि को हुई उसे उसने 'परम प्रेम दरसाई' कहकर प्रकट किया है। भाव की उसी दशा में कवि की वाणी 'जुगल किशोर सदा बसौं नंददास के हीय' के कथन के रूप में फूट पड़ी है। यही कहने की उसकी अभिलाषा थी। इस भाँति राधा का हृदयस्थ प्रेम-- मान, गर्व और संकोच सूचक अनेक भावों में होकर कृष्ण के साथ मिलन के बिन्दु पर स्थिरता को प्राप्त होता है।

११ इसके अतिरिक्त नाममाला में निर्वेद, भय और जुगुप्सा के भावों को स्थान भी मिला है। 'नरजनि जानहु नंदसुत हरि ईश्वर भगवान'[१] और 'सहस बदन करि गुन गनत तदपि न पावत अंत'[२] के कथनों में निर्वेद भाव की झलक मिलती है। यमराज की संकेत करते हुए सखी का 'जो तो पिय भ्रूभंग तें थर थर अति काँपत'[३] वाला कथन भय के भाव की अनुभूति के लिए अलम् है। 'लोहू पीवत पूतना पूत मनहु ह्वै गात'[४] के कथन से जुगुप्सा का भाव अभिव्यक्त होता है।

१२ नाम माला में कवि का विचार पक्ष भी अदृश्य नहीं होने पाया है। मानिनी राधिका को मनाने के लिए आयी हुई सखी की विशेषता ही यही है कि वह चतुर है और अपनी बुद्धि से विचार करके चलती है।[५] कवि के अनुसार मानिनी को मनाने का कार्य ही 'बचन चातुरी' से साध्य है।[६] यह सखी के विचार कौशल का ही काम था कि राधा के हृदय जगत में गर्व और क्षोभ की भावना के ऊपर कृष्ण मिलन की अभिलाषा का भाव जाग उठा।

१- वही, दो० ११३। २- वही, दो० ११६। ३- वही, दो० ११८।
४- वही, दो० १३२। ५- वही, दो० ७। ६- वही, दो० ८।

१३ इस प्रकार नाममाला जैसे शब्दकोष ग्रन्थ में भी भावात्मक स्थलों का होना इस बात का प्रतीक है कि नंददास भाव प्रवण कवि हैं, उनके मानस-मानसर में भाव लहरियां निरन्तर विद्यमान रहती हैं जो भक्ति भावानिल का रंचक स्पर्श पाते ही उद्वेलित हो उठती हैं। वे अकेली ही नहीं उठतीं, विचार वीचियों को भी साथ ले कर उठती हैं और कवि के भाव और विचार जगत के समन्वित दृष्टिकोण का भी आभास देती हैं।

रसमंजरी

१४ रसमंजरी में कवि की भाव दशा इस कोटि की हो जाती है कि संसार में प्रच्छन्न जो कुछ भी रस है, उसके आधार की अनुभूति उसे भगवान में ही होने लगती है[1] और इसके फलस्वरूप ही उसको प्रकट करने की ओर वह प्रवृत्त होता है।[2] यहां कवि को अनुभव होता है कि जब तक नायक नायिका भेद, हाव भाव, हेला और रति का परिचय नहीं मिलता तब तक प्रेम भाव की वास्तविक अनुभूति नहीं हो सकती।[3] इसके समर्थन में वह कहता है कि कमल के पास रहने पर भी उसके गुणों से अपरिचित रहने के कारण मीन को कमल के रूप, रंग, रस का आभास तक नहीं मिल पाता है और परिचित होने के कारण भ्रमर ही रस का आस्वादन लेता है।[4] रस मंजरी को नवसिख परम प्रेम रसभरी कहकर कवि ने सूचित किया है कि इसमें प्रेम भाव की ही प्रधानता है और कृति के अवलोकन से भी ज्ञात होता है कि इसकी रचना का आधार ही प्रेम भाव है और प्रेम को अनेक दृष्टिकोणों से प्रकट किया गया है। ऊपर से देखने में यद्यपि ग्रन्थ में इतिवृत्तात्मकता ही दृष्टिगत होती है किन्तु बीच बीच में विषय के आग्रह से ऐसे ऐसे स्फुट कथनों का समावेश हो गया है जिनमें होकर रति भाव को आगे बढ़ने का मार्ग मिला है। उदाहरण के रूप में कुछ कथनों का उल्लेख यहां किया जाता है।

१- नं० ग्रं०, रसमंजरी, पंक्ति २। २- वही, दोहा ७।
३- वही, पं० १०-११। ४- वही, पं० १३।

विश्रब्ध नवोढ़ा नायिका प्रिय के साथ होने पर भी गाढ़ आलिंगन में आबद्ध नहीं हो पाती है क्योंकि उसे भय है कि कहीं हृदय में उत्पन्न नव अनंग का अंकुर टूट न जाय ।[१]

मध्या नायिका के हृदय में लज्जा के द्वारा रति भाव दिन प्रति दिन बढ़ता जाता है । प्रिय के साथ मिलन होने पर भी उसकी मनोदशा ऐसी हो जाती है कि वह न सो पाती है और न जागना चाहती है ।[२]

प्रौढ़ा नायिका में रति भाव की वृद्धि का आभास `अधिक अनंग` के रूप में मिलता है । वह प्रेम रस से भरी रहती है । उसे दीर्घ रात्रि भाती है और प्रात: होने की आशंका से उसे दुख होता है ।[३]

मध्या अधीरा नायिका प्रिय से कहती है कि `प्राणप्रिय, रात्रि भर जागते तुम रहे और अरुण हुए हमारे नेत्र । तुमने अधर सुधारस का पान किया होगा, किन्तु हमारे हृदय में मदा हो रही है । प्रहार नख तुम्हें लगे हैं किन्तु पीड़ा का अनुभव हमें हो रहा है । आपको तो वन में मनचाही वस्तु मिल गई किन्तु हम क्रूर काम की शिकार हो रही हैं ।[४] इससे ऐसा लगता है कि कवि ने इस नायिका के भावों की पूरी पूरी थाह ले ली थी, तभी तो उसके कथन में इतनी स्पष्टता आ पाई है ।[४]

मध्या धीरा धीरानायिका के हृदय में प्रियतम को पास पाकर नव अनुराग उमड़ पड़ता है ।[५]

परकीया वाग्विदग्धा प्रियतम को सुनाकर राह चलते हुए पथिक से कहती है, `ऐ पथिक धूप बहुत तेज है, जरा आओ और विश्राम कर लो, यहां निकट ही कालिंदी तट है, तमाल वृक्ष एवं चमेली की लताओं के बीच शीतल मंद सुगंध समीर बह रहा है, क्षण भर यहां छांह में बैठ कर स्वस्थचित्त हो लो, फिर उठकर चले जाना ।[६]

१- वही, पं० ३३ । २- वही, पं० ५४ । ३- वही, पं० ५८-६१ ।
४- वही, पं० ७०-७४ । ५- वही, पं० ७५-७६ । ६- वही, पं० ९७-१०१ ।

परकीया प्रोषित पतिका को प्राणप्रिय के पास न होने पर सर्वत्र ही सूनेपन का अनुभव होता है। वह किसी के निकट श्वास नहीं लेती है और किसी के पूछने पर मुंह बन्द करके उत्तर देती है क्योंकि यदि उसका तप्त उच्छ्वास किसी तक पहुंच गया तो वह समझ जायेगा कि यह परकीया विरहिणी का उच्छ्वास है। सखी कमल का फूल लाकर देती है तो उसे भी वह हाथ से स्पर्श नहीं करती, उसे अनुभव होता है कि उसके हाथ विरह ज्वर से तप्त हो रहे हैं और यदि कमल स्पर्श करेगा तो वह झुलस जायेगा, तब भी औरों को उसके हृदय का भाव ज्ञात हो जायेगा। प्रेम भाव की तीव्रता के कारण उसका हृदय वैसे ही `अवां` की अग्नि के समान तप रहा है।[1] ऐसी प्रेम को देखकर ही कवि कहता है कि उत्तम मन से लग जाने पर प्रेम उसी प्रकार जन्म भर नहीं मिटता जिस प्रकार चकमक पत्थर की आग वर्षों तक जल में रहने पर भी नहीं बुझती है।[2]

प्रौढ़ा विप्रलब्धा में तो रति के साथ भय और दैन्य भाव भी आ गए हैं, कुंज सदन में प्रिय को न देखकर उसे सखियों की उपस्थिति का भान भी नहीं रहता है अपने को अकेला समझ कर कामदेव से भय खाता है। वह दीनता पूर्वक शिवजी से विनती करती है, `हे जगत के स्वामी, मदन से मेरा रक्षा कीजिए।`[3]

परकीया प्रौढ़कामना के उदाहरण भाव को भी देखिए -- वह कहती है `हे सखी प्रियतम कल चले जाने को कह रहे हैं, मैं क्या करूं, भगवान कुछ ऐसा करें कि जैसे कल हो ही नहीं।`[4]

अनुकूल नायक के चित्रणों का वर्णन करते समय श्रीराम का मनोभाव सहज ही प्रकट हो गया है। वन में सीता को चलते हुए देखकर राम कहते हैं `हे धरती तुम कोमल हो जाओ, हे सूर्य भगवान आप घाम न बरसाओ, हे पवन तुम चलकर तृणों को साथ न लाओ, हे पवन तुम मार्ग में न आओ, रे दंडक वन तुम जल्दी आ जाओ, क्योंकि कोमल पद वाली सीता चल नहीं पा रही हैं।`[5]

1- वही, पं० १२३-२८। २- वही, पं० १२९। ३- वही, पं० २०२-६। ४- वही, पं० २०३। ५- वही, पं० ३२०-२६।

१५ उपर्युक्त उद्धरण, रसमंजरी में निहित नन्ददास के मनोभाव का दिशा का सूचना देने के लिए पर्याप्त हैं। कृति का विषय नायक नायिका भेद होने और उसमें विभिन्न भेदों का परिगणन करके लक्षण देने का अनिवार्य आग्रह होने पर भी कवि उसके अन्तराल में रतिभाव धारा को प्रवहमान रखने में सफल रहा है। इन भावों का आधार चाहे संस्कृत रसमंजरी रहा हो, किन्तु मनोभावों का जो चित्रण नंददास ने उपस्थित किया है, वह नायिकाओं की भाव दशा को प्राप्त हुए बिना कदाचित ही किया हो। यह नन्ददास की ही अनुभूति है जिसके परिणामस्वरूप रसमंजरी में जिधर दृष्टि जाती है उधर प्रेम रस ही एकत्र किया हुआ मिलता है और उसे देखकर चित्त भी प्रेमरस से परिपूर्ण हो जाता है।

१६ इसके अतिरिक्त इसमें विचार पक्ष का भी समावेश हुआ है। वस्तुतः नायिकाओं के लक्षण-उदाहरणों के मध्य जहां भी अवसर रहा है, बुद्धि तत्व अनायास ही आ गया है। ललिता परकीया नायिका अपने कुल की वृद्धि बल के सहारे छिपाने की चेष्टा करती है,[1] मध्या उत्कंठिता नायिका प्रिय के न आने का कारण ज्ञात करने के लिए बुद्धि तत्व का आश्रय ग्रहण करती है।[2] इसी प्रकार मुग्धा स्वाधीन पतिका के प्रसंग में 'वचन चातुरी'[3] का उल्लेख देकर कवि ने विचार पक्ष का समर्थन किया है। कहना न होगा कि ग्रन्थ का वर्ण्य वस्तु--नायक नायिका भेद ही कवि के विचार पक्ष का विकास रहा है। इससे प्रकट है कि रसमंजरी में भाव पक्ष के साथ साथ विचार पक्ष को भी समाविष्ट होने का अवसर मिला है।

रूपमंजरी

१७ रूपमंजरी में कवि की भगवद्तत्त्व की अनुभूति ही रूपनिधि के रूप में होती है। उसे जान पड़ता है कि मन के सरस हुए बिना रस का वस्तु का अनुभव नहीं हो सकता और मन को सरस करने की दृष्टि से ही वह रूपमंजरी में प्रेम-पद्धति का वर्णन करता है। इस वर्णन का आधार 'उपपति' भाव है जिसका अनुभव उसे रूपमंजरी के रूप में के निष्फल होने की आशंका से उत्पन्न क्षोभ के उपरान्त होता है। कवि इस भाव

1-वही, पं० १०२-१०६। 2-वही, पं० १७९-८२। 3- वही, पं० २६२-६६।

की अवतारणा रूपमंजरी के हृदय में करना चाहता है और इस चाह के कार्य-परिणायन के व्यापार में निर्वेद एवं दैन्य भाव सर्व-प्रथम आते हैं । कवि विनतापूर्वक गिरिधर से कहता है, "हे परम उदार गिरिधर, तुम कला के भी कला हो । यह 'तरि' मंझधार में डूब रही है, इसे पार लगाओ ।"[1]

१८ स्वप्न में अपने प्रियतम को पाकर रूपमंजरी के हृदय में अनुराग उत्पन्न होता है जिसे कवि ने लज्जा, विस्मय, अवहित्थ और अधैर्य के द्वारा प्रकट किया है और उसमें उसी प्रकार अधिकाधिक पैठता जाता है जैसे हाथी पंक में ।[2] रूपमंजरी को रूप-दर्शन के उपरान्त प्रियतम के रूप का अनुभव हो जाता है किन्तु वह उसे प्रकट करने में असमर्थ है क्योंकि रूप के रस को नैनों द्वारा ग्रहण किया जाता है किन्तु ईश्वर ने उन्हें वाणी नहीं दी है ।[3] नन्ददास के लिए रूपमंजरी का भाव जगत अगम्य नहीं है। वह कहता है कि रूपमंजरी, श्रीकृष्ण के रूप का वर्णन करना चाहती है किन्तु नहीं करती है, उसे भय है कि बोलने पर हृदय से मोहन की मूर्ति ही कहीं न निकल जाय[4]। मनोगत भावों को प्रकट न कर पाने की रूपमंजरी की इस स्थिति से 'अवहित्थ' का भाव प्रकट होता है । रूपमंजरी के मुख से मोहन के रूप वर्णन को सुनकर इन्दुमती के हृदय में विस्मय और हर्ष के द्वारा मन्दहास के भाव का आभास होता है । यहां पर उस भाव में आमग्न होकर उसके मूर्छित होने से सात्विक अनुभाव 'प्रलय' की प्रतीति होती है,[5] सुधि आ जाने पर भी वह भूली सी रहती है ।[6]

१९ स्वप्न दर्शन के उपरान्त प्रियतम के प्रति उत्पन्न 'प्रथम प्रेम' को 'हाव' और 'हेला' के द्वारा रतिभाव की ओर ले जाने की चेष्टा की गई है ।[7] यहां आन्तरिक भाव के रूप में 'आकुलता' और सात्विक अनुभाव के रूप में 'स्तम्भ', 'अश्रु', स्वरभंग और वैवर्ण्य देखने को मिलते हैं ।[8] रूपमंजरी के द्वारा प्रियतम से प्रत्यक्ष में मिलने के लिए आकुल होने पर उसकी 'आकुलता' के भाव को कवि ने 'अति अरबरी' कह कर प्रकट किया है ।[9] इस आकुलता के साथ ही रूपमंजरी के हृदय में विरह भाव का भी

१-न०ग्रं०, रूपमंजरी, पं० २००। २-वही, पं० २१४। ३-वही, पं० २३०।
४-वही, पं० २३३। ५- वही, पं० २४६। ६- वही, पं० २५५।
७-वही, पं० २६०-८५। ८-वही, पं० २८७-९२। ९- वही, पं० २९४।

समावेश भी आता है और उसके परिणामस्वरूप उनका तन भी तपने लगता है ।[१] यहाँ सखियों की मनोदशा को कवि ने बड़ी भावप्रवणता के साथ प्रकट किया है । रूपमंजरी को विकल देखकर सखियों को कोई उपाय ही नहीं सूझता है, उसका मन समुद्र में स्थित जहाज के पक्षी की भाँति पुनः पुनः रूपमंजरी की दशा की ओर आता है ।[२] रूपमंजरी को सन्देह होता है कि क्या स्वप्न में मिली वस्तु भी प्रत्यक्ष में भी मिल सकता है ।[३] सखी के समझाने पर वह किसी प्रकार धैर्य रखती है किन्तु उसके अन्तर में धधकती `आकुलता` की `अवा` शान्त नहीं होता ।[४] प्रिय की राह देखते देखते बहुत समय हो जाने पर वह अत्यन्त दुख का अनुभव करने लगती है; हृदय में प्रियतम की मूर्ति गड़ जाने से वह विकल हो उठती है । कवि ने उसके हृदय के विकलता के भाव को `कलमल कलमल करै` कह कर दिखाया है ।[५] `विकलता` का भाव रूपमंजरी के हृदय में निरन्तर बना रहता है और कवि उसे कभी `बिहाल`[६], कभी `बरबर`[७] आदि शब्दों से प्रकट करता है ।

२० होलिका के प्रसंग में रूपमंजरी के हृदय में भय के भाव को भी प्रश्रय मिला है जो कवि के `भीत भई` के कथन से प्रकट होता है ।[८] वसन्त ऋतु में नर और नारी पिचकारी भर भर कर होली खेलते हैं किन्तु रूपमंजरी की भाव दशा ऐसी है कि उसे कोई पुरुष ही नहीं दिखाई देता है जिसके साथ वह रंग खेले ।[९] उसने प्रीतम का जैसा वर्णन सखी से सुना था और स्वप्न में देखा था उसी को `चाँचरी` खेलती हुई नारियों के मुख से सुनने पर अपनी चेतना खो देती है ।[१०] प्रेम सुधा रस पीने का ही यह परिणाम दिखाकर कवि ने सात्विक अनुभाव `प्रलय` की स्थिति प्रकट की है । ऐसी स्थिति कवि की ही भाव दशा के अनुकूल उपस्थित हुई है । वह तो कहता ही है कि प्रिय मिलन से उसका विरह अधिक आनन्दप्रद होता है क्योंकि मिलन में तो वे एक ही स्थान पर मिलते हैं किन्तु विरह में, भाव के विषय बन जाने से सर्वत्र

१- वही, पं० ३८६ । २- वही, पं० ३०३ । ३- वही, पं० २१७ ।
४- वही, पं० ३३१ । ५- वही, पं० ३३५ । ६- वही, पं० १३५ ।
७- वही, पं० ३४४ । ८- वही, पं० ३७१ । ९- वही, पं० ३९३ ।

हो उनका अनुभूति होता है ।[१] ग्रीष्म ऋतु के प्रसंग में, विरह दशा के वर्णन में कवि ने पुनः 'आकुलता' के भाव को प्रकट करके[२] रूपमंजरी का मनोदशा का सूचना उसी के मुख से 'अब मोंपै छिनु जियौ न जाइ'[३] कहला कर दी है । इसी के साथ 'याँ कहि कुंवरि ग्रीव जब नाई' के कथन से पुनः सात्विक अनुभाव 'प्रलय' की स्थिति उपस्थित की है और जड़ता, निद्रा, दैन्य, लज्जा, हर्ष, मद, आदि के द्वारा परिपुष्ट, रूपमंजरी में रतिभाव की स्थिति दिखाई है । उसका प्रियतम से सर्वप्रथम समागम होता है, इसलिए उसके हृदय में लज्जा का भाव है ।[४] लज्जा के कारण ही रूपमंजरी अंचल से दिया बुझा कर अंधेरा करना चाहती है और दिए के न बुझने पर वह प्रियतम से लिपट जाती है ।[५]

२१ इस प्रकार रूपमंजरी में नन्ददास का रति या प्रेम भाव के द्वारा शृंगार रस का अनुभूति कराने का सफल चेष्टा निहित है । यहां शृंगार के संयोग और वियोग दोनों पक्षों पर उनकी समान दृष्टि रही है । रति या प्रेम तो निरन्तर ही स्थायी भाव के रूप में विद्यमान है । आलम्बन रूप में रूपमंजरी और उसके अनुकूल नायक श्री कृष्ण का चित्रण किया गया है । स्वप्न में निर्जन एकान्त स्थान और मनोहर उद्दीपन का काम करते हैं । वियोगपक्ष में यही कार्य प्रियतम कृष्ण के गुण-श्रवण द्वारा प्रतिपादित हुआ है । अश्रुपात, स्वेद, स्तब्धता, स्तम्भ, स्वरभंग, वैवर्ण्य, प्रलयादि से भावों के बहिर्मुख होने की सूचना दी गई है । औत्सुक्य, व्रीड़ा, असूया, श्रम, चिंता दैन्य, उत्कंठा आदि संचारी भाव के रूप में आये हैं । वस्तुतः रूपमंजरी ग्रन्थ की रचना ही कवि के भाव जगत की उपज है । उसमें इतिवृत्तात्मकता जैसी वस्तु को स्थान नहीं मिला है । रतिभाव के अतिरिक्त उसमें दैन्य, भय, निर्वेद जैसे भावों को भी रंचक प्रश्रय मिला है । किन्तु इनकी उपस्थिति रतिभाव को ही परिपुष्ट करती हुई विदित होती है । इस भांति रूपमंजरी में केवल और एकमात्र रति या प्रेम भाव की प्रच्छन्नता स्पष्ट हो जाती है, किन्तु यह भी उल्लेखनीय है कि यह रति लौकिक नहीं, भगवद् रति है और इसमें कवि के हृदय के भक्तिभाव की ही महत्ता प्रदर्शित होती है ।

१- वही, पं० ३७८ । २- वही, पं० ३७९ । ३- वही, पं० ४०८ ।
४- वही, पं० ५०६ । ५- वही, पं० ५१० ।

२२ रूपमंजरी के हृदयस्थ भावों के चित्रण में तल्लीन रहने पर भी ग्रन्थ में कवि का विचार पक्ष ओझल नहीं होने पाया है, अपितु उसका सम्यक समावेश दृष्टिगोचर होता है। रूपमंजरी का विवाह कुरूप पति से हो जाने से उत्पन्न स्थिति पर सबलोग विचारमग्न दिखाई देते हैं।[1] इन्दुमती भी सखी के रूप को निष्फल न जाने देने के उपाय के लिए विचार तत्व का अवलम्ब ग्रहण करती है।[2] स्वयं रूपमंजरी, स्वप्नमें प्राप्त मनोरथ के विषय में बुद्धि तत्व के प्रभाव से ही तर्क करती है, कि स्वप्न उसी प्रकार सत्य नहीं हो सकता जिस प्रकार मन के लड्डुओं से भूख नहीं मिटती है अथवा मृग तृष्णा सत्य नहीं होती।[3] यहीं पर चित्रलेखा द्वारा द्वारिका जाकर अनिरुद्ध को लाये जाने के कार्य का उल्लेख भी विचार तत्व की उपस्थिति की प्रतीति कराता है।[4] नर नारियों के मुख से गिरिधर का गुणगान सुनकर रूपमंजरी विचार करती है, कि एक गिरिधर तो मेरे प्रियतम हैं, जिस गिरिधर का गुणगान ये कर रही हैं वे कौन से हैं।[5] [illegible] से मूर्छित रूपमंजरी में, बुद्धितत्व के आश्रय से ही सखी चेतना का संचार करती है।[6] श्रीकृष्ण से स्वप्न में प्राप्त फूलमाला का जागने पर भी रूपमंजरी के पास उसी रूप में विद्यमान रहने का कवि का उल्लेख भी[7] विचार का विषय है।

वस्तुत: रूपमंजरी में जो विचारतत्व का समावेश ऊपर दृष्टिगोचर होता है, वह भावपक्ष के प्रकाशन में सहायक के रूप में ही आया हुआ प्रतीत होता है। इससे यह भी ज्ञात होता है कि कवि ने भावानुसरण की धुन में विचारपक्ष की नितान्त उपेक्षा नहीं की है और जहां भी अवसर मिला है, उसे स्थान देने में संकोच नहीं किया है।

विरहमंजरी

२३ विरहमंजरी के आरम्भ में ही "परम प्रेम उच्छलन"[8] के कथन द्वारा कवि ने, ग्रंथ में आने वाले प्रेम या रति भाव की सूचना देने की चेष्टा की है। प्रेम की वृद्धि विरह

१-वही, पं० ६० । २-वही, पं० १९२। ३-वही, पं० २१३-१९ ।
४-वही, पं० २२५-२८। ५-वही, पं० ४००। ६-वही, पं० ४३६। ७-वही, पं० ५२५ ।
८-नं० ग्रं०, विरहमंजरी, दोहा १ ।

द्वारा होता है। वनान्तर विरह-वर्णन के प्रसंग में कवि का कथन द्रष्टव्य है, जिसमें उसका अभिप्राय है कि गोपियों के चित्त से एकात्म भाव स्थापित करके ही वनान्तर विरह का अनुभव हो सकता है।[1] इससे प्रकट होता है कि कृति की रचना के समय नन्ददास विरहिणी गोपियों के मानस में पैठ कर उनके भाव जगत से परिचय प्राप्त कर चुका था और उस परिचय एवं अनुभूति को प्रकट करने के लिए ही विरहमंजरी का प्रणयन किया। वह कहता है कि गोपियों के नैन, बैन, मन, श्रवणादि सभी प्रिय की ओर लगे हुए हैं और उनके लौट आने की आशा से ही घट में प्राण रह पाये हैं।[2] देशान्तर विरह का वर्णन कवि ने इसलिए किया है कि उसमें भावुकों को रस-सिक्त होने की सामग्री मिले।[3] उसमें कवि कहता है कि ब्रज बाला संध्या को प्रिय से मिलने के उपरान्त अटारी पर सोई हुई है, रात्रि के अन्तिम प्रहर में जागने पर उसे ज्यों ही कृष्ण की द्वारिका लीला का स्मरण हो आता है, उसे भान होता है कि वे द्वारिका में ही हैं और वह विकल हो उठती है।[4] उसे विरह का अनुभव होने लगता है। कवि ने उसकी भावावस्था को उसी के मुख से बारह मासा विरह वर्णन के रूप में प्रकट किया है। उसकी इस भावदशा का विश्लेषण ऊपर भक्तिभावना पर विचार करते समय कर दिया गया है। अत: यहां, यह कहना पर्याप्त होगा कि देशान्तर विरह के वर्णन में स्मृति, [illegible], उग्रता, हर्ष, चपलता, असूया, दैन्य, व्याधि, वितर्क आदि के द्वारा रति भाव की परिपुष्टि सहज ही हो गई है। कवि ने विरहिणी के विकलता के भाव को 'ताही छिन विकल ह्वै गई,[5] जन व्याकुल गोकुल है सबै,[6] बिलपि[7] आदि के द्वारा प्रकट किया है। वैशाख मास के विरह वर्णन में 'उपज्यो मन अभिलाष',[8] 'बिरही जन मारन मिस कह्यो'[9] से

१- वही, चौपाई १४। २- वही, दोहा १६। ३- वही, चौ० १७।
४-५, वही, चौपाई २१। ६- वही, चौपाई ५९।
७-वही, चौ० ६१। ८- वही, दोहा ३१। ९- वही, चौ० ४७।

क्रोध 'भौन में भाजि दुरनि है भामिनि'[1] और भादों रैन अंध्यारी भारी[2] से भय, 'बैरी मैन सैन दुखदायक, तुम बिन कौन छुड़ावन नायक'[3] से दैन्य, 'सुधि आवत वा मोहन मुख की'[4] से स्मृति, 'ये बचन परान पिय तुमहो पै आवत हैं'[5] से अधैर्य और चपलता, 'उजरि परन अब अंग सब'[6] से करुणा 'पिये जु दंत निवुंरन गाढ़े, तेऊ एक बात नहिं काढ़े'[7] और 'मदन दाढ़ बिच दै दै चांबे'[8] से जुगुप्सा तथा 'तिहि देख तन मन कंपे'[9] के कथन से वेपथु का भाव प्रकट होता है। 'घन अरु तिय के नैन होड़सि बरसति रैन दिन'[10] के कथन से सात्त्विक अनुभाव अश्रु को प्रश्रय मिला है। यहां पर दैन्य, करुणा, क्रोध, जुगुप्सा आदि भाव रति भाव के उत्कर्ष के लिए आये हैं, स्वतंत्र रूप से उनका कोई महत्त्व नहीं जान पड़ता है।

ब्रज लीला की सुधि आने पर ब्रज बाला के हृदय में वियोग रति का स्थान संयोग रति को मिल जाता है। यहां कवि ने 'देखि हरष भरे नैन सिराये'[11] और ताको निरखि नैन अरबरे'[12] जैसे कथनों द्वारा रतिभाव को प्रकट किया है।

२४ तत्वत:, विरहमंजरी से नन्ददास के भाव ज्ञान की एक विशिष्ट स्थिति की ओर ही संकेत मिलता है। कवि का बारहमासा विरह का चित्रण स्पष्टत: भाव चित्रण है। प्रत्येक मास के आगमन पर विरहिणी के हृदय की जो दशा होती है, उसको कवि ने मनोवैज्ञानिक ढंग से उपस्थित किया है। रूपमंजरी और विरहमंजरी में कथित बारहमासा, विरह की ही प्रकट करने वाली विशिष्ट स्थिति का प्रतीक है। कवि ने ब्रजबाला की जिस भाव दशा का चित्रण किया है, वह स्वयं ब्रज बाला के लिए भी विरल वस्तु थी, क्योंकि प्रियतम के सान्निध्य में होते हुए भी महाविरह की अनुभूति होने की अवस्था उसे कभी कभी ही प्राप्त हुई होगी।

१- वही, पं० ५८ । २- वही, पं० ५७ । ३- वही, पं० ४८ ।
४- वही, पं० ६४ । ५- वही, पं० ९३ । ६- वही, पं० ७४ ।
७- वही, पं० ७७ । ८,९- वही, पं० ८३ । १०- वही, पं० ५५ ।
११- वही, पं० ९९ । १२- वही, पं० १०० ।

२५ विचार पक्ष की दृष्टि से देखने पर ज्ञात होता है कि विरह मंजरी का आरम्भ ही विचार तत्व को लेकर हुआ है। श्रीकृष्ण सदा वृन्दावन में रहते हैं, फिर भी ब्रज-बाला को उनका विरह होना विचारणीय है। कवि ने ब्रज-विरह के कारण पर विचार पूर्वक प्रकाश डाला है। उसका कहना है कि ब्रज में चार प्रकार का विरह होता है--प्रत्यक्ष, पलकान्तर, वनान्तर और देशान्तर।[1] ब्रज का विरह निपट अटपटा है, वह केवल भावगम्य है, विचारों की पहुंच उस तक नहीं है। इसी-लिए बड़े बड़े विचारवान उसे नहीं समझ पाते हैं।[2] ब्रजबाला श्रीकृष्ण को संदेश कहते समय विचारतत्व का सहारा लेती प्रतीत होती है, वह कहती है कि चन्दन और चन्द्रमा तो उनके लिए शीतल हैं जिनके पास नन्दनन्दन हैं, हे चन्द्र! तुम शीघ्र जाकर उनसे कहो कि दावानल फिर फैल गया है, काला नाग पुन: [illegible] में आ गया है, अत: विपत्ति दूर करने के लिए हमारे गुण अवगुणों पर विचार न करके तुरन्त आओ।`[3] अनुभूति के साथ यह विचार तत्व ही है जिसके अवलम्ब से कवि कहता है, `कि यदि मित्र में अवगुण हों भी तो उनपर विचार नहीं करना चाहिए[4] और न ही उन्हें किसी से कहना चाहिए।[5] ब्रज बाला सन्देश में कहती है :

हो ससि जो पिय नंद किसोर। अवगुन कछुन लगो कछु मोर।
तो तुम तिनसों कहियो ऐसे। बहुरि कहूं न अभ्यासै जैसे ।।[6]

यहां `बहुरि कहूं न अभ्यासै` के कथन द्वारा विचारतत्व को स्पष्ट प्रतीति होती है।

२६ इससे विदित होता है कि कवि ने जहां एक ओर गोपी हृदय के भावों को थाह लेने की चेष्टा की है, वहां दूसरी ओर विचार तत्व के सहारे उन भावों का उत्कर्ष दिखाने का प्रयास किया है। वस्तुत: कवि ने कृष्ण-विरह के जिस रूप को विरहमंजरी में अपने काव्य का विषय बनाया है, बुद्धि तत्व का समावेश होते हुए भी उसकी स्वाभाविकता नहीं जाने पाई है।

१-वही, दो० ५-७। २- वही, दो० २३। ३-वही, दो० ३६-४३।
४- वही, दो० ५४। ५- वही, दो० ८०। ६-वही, दो० ७८।

रुक्मिणीमंगल

२७ रुक्मिणीमंगल में वह स्थल अत्यन्त भावपूर्ण बन पड़ा है जहां रुक्मिणी 'शिशुपाल। हं को देत ' की सूचना से 'चित्र लिखी सी ' रह जाती है। इस अप्रत्याशित सूचना से उसे विस्मय होता है। उसका मुख मुरझा जाता है, और नेत्रों में अश्रु भर आते हैं। सखी के पूछने पर वह कहती है कि पुष्प धूलि आंखों में जाने से ही उनमें जल भर आया है[1]। उसे अनुभव होता है कि उसके हृदय में विरह जन्य ताप उत्पन्न हो गया है इसीलिए वह बोलते समय मुंह बन्द कर लेती है।[2] जिससे उसके तप्त श्वास का भान दूसरों को न हो। कवि ने उसके '[illegible]' के भाव को 'कौने बादू उसक उसास भरे दुख कहत न आवे'[3] के कथन से और 'रति भाव' के प्रकट होने को 'दुरी रहति त्यों प्रिय रति प्रकटहिं दैन दिखाई'[4] कहकर बतलाया है तथा 'पुलक अंग सुर भंग स्वेद कबहु झलाई,'[5] 'थर थर कम्पंत अति कांपत,'[6] 'छुवै गयौ कछु विवरन तन '[7] और 'दृग जल भर आहीं'[8] आदि कथनों के द्वारा उस भाव के बहिर्मुख होने की सूचना दी है। इन कथनों में समाविष्ट सात्विक [illegible]।-- स्वरभंग, स्वेद, वेपथु, वैवर्ण्य, अश्रु आदि द्वारा रति भाव को पूर्णता प्रदान करने का प्रयास किया गया है।

२८ विरह भाव की उग्रता की स्थिति में रुक्मिणी के हृदय में आशंका का भाव पैदा होता है। कवि ने इस भाव को 'मोहन सोहन स्याम न छुवै हैं पिया हमारे'[9] के कथन से प्रकट किया है। उसके मनोरथ के मार्ग में लोक लाज और कुल कानि[10] एक बड़ी बाधा के रूप में आती है, किन्तु 'मति' के द्वारा भाव प्रवाह में व्यवधान उत्पन्न नहीं होने पाया है। जैसे भी श्रीकृष्ण प्राप्त हों, रुक्मिणी वैसा

१- न० ग्र०, रुक्मिणीमंगल, छन्द : ३-६। २- वही, छन्द ७।
३- वही, छन्द ११। ४,५- वही, छन्द १२। ६- वही, छन्द १३।
७- वही, छन्द १४। ८- वही, छन्द १५। ९- वही, छन्द १८।
१०- वही, छन्द १९।

उपाय करने की ओर प्रवृत्त होती है और 'आगि लागि जरि जाइ लाज जो काज बिगारे'[1] कह कर उसकी विगर्हणा करती है। 'आकुलता' का भाव रुक्मिणी में तब तक बना रहता है जब तक श्रीकृष्ण उसे ग्रहण नहीं कर लेते और कवि ने इस भाव को 'आरति लखि रुक्मिणी'[2], 'जानि प्रिया की आरति, हरि अरबर सों आये',[3] 'ह्वां दुलहिन तरफरैं,[4] 'आतुर त्रिषित चकोरी' जैसे कथनों द्वारा सूचित किया है।

२९ रुक्मिणी का पत्र पाकर प्रेम के कारण श्रीकृष्ण की जो मनोदशा हुई, वह भी अत्यन्त मनोवै[illegible] के साथ चित्रित हुई है। पत्र खोलते ही उन्हें अनुभव होता है कि उसमें अंकित अक्षर प्रेम रस से सिक्त हैं तथा पढ़े ही नहीं जा सकते और वह 'प्रेम-पाती' तो विरह के साथ लिखी गई है, इसलिए 'ताती' है। भाव विह्वलता के कारण वे पत्र नहीं पढ़ पाते हैं।[5] और द्विज ही उन्हें पढ़ कर सुनाता है। यहां 'तब हरि के मन नैन सिमटि सब श्रवननि आये'[6] के कथन में समाविष्ट 'औत्सुक्य' के द्वारा प्रेम भाव की सुन्दर परिपुष्टि हुई है।

३० प्रेम की सुस्थिरता के लिए दैन्य भाव का आगमन अनिवार्य है। रुक्मिणी मंगल में भी यही देखने को मिलता है। नारद के मुख से श्रीकृष्ण का गुणगान सुनकर रुक्मिणी के हृदय में प्रेम भाव का जो अंकुर उगता है, उसे कवि ने 'हौं भई परिचारि नाग तुम भये हमारे'[7] और 'जो नगधर मंझधार मोहि नहिं करि हों दासी'[8] के कथनों में निहित दैन्य भाव द्वारा सींचा है। रुक्मिणी की इस मनोदशा का मनोवैज्ञानिक चित्रण एक और स्थल पर हुआ है, जयमाला पहनाने के लिए आने पर जब उसकी दृष्टि 'कुंवर कन्हाई' पर पड़ती है तो कवि की वाणी से 'तिहि छिन दुलहिन दसा भई जो बरनि न जाई'[9] का कथन अनायास ही निकल पड़ा है जिससे प्रकट होता है कि कवि को रुक्मिणी के उसके मनोभाव का अनुभव तो हो ही गया है किन्तु वह इतना विशद है कि वाणी में पूर्णतः नहीं समा सकता है। जो कुछ समा सकता है वह कवि ने प्रकट

१- रु० मं०, छन्द २१। २- वही, छन्द २७। ३- वही, छन्द ७५।
४- वही, छन्द ७८। ५- वही, छन्द ५३। ६- वही, छन्द ५६।
७- वही, छन्द ६१। ८- वही, छन्द ६६। ९- वही, छन्द ११५।

कर दिया है :

> बरबराय तुरकाय कछु न बसाय तिया पै ।
> पंख नाहि तन बने नतरु उड़ि जाय पिया पै ।[1]

प्रकट है कि स्वयं रुक्मिणी ही उस भाव दशा के सम्मुख विवश है, प्रियतम के पास तक उड़ जाने के लिए उसके पास पंख जो नहीं हैं। इसके अतिरिक्त जब कृष्ण को पत्र द्वारा रुक्मिणी की [illegible] का अनुभव होता है, वे कहते हैं, कि "हे [illegible] ! मैं सबका मर्दन करके रुक्मिणी को वैसे निकाल लाता हूं जैसे लकड़ी में से उसका सार तत्व अग्नि निकल आती है।[2] यहां कृष्ण के हृदय का 'उत्साह' का भाव प्रकट हुआ है।

३१ [illegible] को आया हुआ जान कर कुंडिनपुरवासी उनके दर्शन के लिए आते हैं, इस अवसर पर 'जहं तंह ते आये देखनि हरि विस्मय पाये'[3] के कथन से विस्मय और 'ते तित ठौरे परे भये ते तित हो तित के'[4] से 'स्तब्धता' के भाव की सूचना मिलती है। कवि ने कृष्ण के आने के समाचार से उत्पन्न, राजाओं के हृदय के 'विषाद' को 'परे विलाद जिय मारे'[5] कहकर प्रकट किया है। वहां पर सब राजाओं के देखते देखते कृष्ण द्वारा रुक्मिणी का हरण कर लिए जाने पर राजाओं की 'किंकर्तव्यविमूढ़ता' की स्थिति को 'वे सब भूप भूप ठारे कमारे'[6] के कथन से सूचित किया है। रुक्मिणी को लेकर जाते हुए कृष्ण का पीछा करने वाले जरासंध आदि राजाओं की चेष्टा में कवि को हास्य का अनुभव होता है और उसे उसने 'महासिंह के पाछें कूकर भौरें'[7] के कथन द्वारा दरशाया है। शत्रुओं के भारी दल को देख कर बलदेव जी शस्त्र संभालते हैं और मदमत्त हाथी की भांति उनकी सेना को रौंद डालते हैं :

१-न० पृ०, छन्द ११६ । २- वही, छन्द ७५ । ३-वही, छन्द [illegible]
४-वही, छन्द [illegible] । ५- वही, छन्द [illegible] । ६- वही, छन्द [illegible]+ ११२ ।
७-वही, छन्द १२३ ।

> देखे रिपु दल भारे, तब बलदेव संभारे ।
> मदगज ज्यों सर पैठि कमल दलि मलि डारे ।[1]

यहां 'क्रोध' के भाव को प्रश्रय मिला है ।

इस भांति प्रकट है कि रुक्मिणीमंगल में कवि ने रति को संयोग और वियोग दोनों अवस्थाओं का चित्रण किया है । वह रतिभाव में स्थित मनोदशा का सहज चित्र प्रस्तुत करने में पूर्ण सफल रहा है । हां, रुक्मिणी के सात्विक अनुभावों का कवि ने एक साथ ही परिगणन ~~किया~~ कर दिया है जो अखरता है । रति भाव के अतिरिक्त ~~कवि ने~~ अन्य जितने भी भावों का यहां समावेश हुआ है, कवि ने उनको बड़ी ही भाव प्रवणता से इस प्रकार रखा है कि वे रतिभाव की ही परिपुष्टि हेतु समाविष्ट हुए विदित होते हैं और स्वतंत्र रूप से अपना कोई महत्व नहीं रखते हैं । ~~और~~ उल्लेखनीय है कि रुक्मिणीमंगल में चित्रित रतिभाव से नन्ददास के हृदय ~~में~~ के भावक रति भाव की ही स्थिति का आभास मिलता है और उसमें लौकिक रति भाव के आरोपण के लिए किंचित भी अवसर नहीं है ।

३२ भाव प्रवणता के साथ साथ रुक्मिणीमंगल में विचार प्रखरता के भी दर्शन होते हैं । रुक्मिणी को अश्रुपूर्ण नेत्रों से युक्त देख कर सखी आंसू आने का कारण पूछती है तो रुक्मिणी विचार पूर्वक कहती है, 'कि आंखों में पुष्प धूलि पड़ गई है ।'[2] श्रीकृष्ण के विरह में तड़पती हुई वह सोचती है कि क्या प्रियतम के रूप में मोहन उसे नहीं मिलेंगे ?[3] उसे श्रीकृष्ण प्राप्ति का उपाय विचार तत्व के अवलम्बन से ही सूझ जाता है, वह बुद्धिमत्तापूर्वक निश्चय करती है और लोक लाज, सगे सम्बन्धी आदि की परवाह न करके[4] श्री कृष्ण के लिए पत्र लिखती है । रुक्मिणी अपने पत्र में लिखती है कि वे उसकी विनती पर विचार करके जो भी उचित समझें शीघ्र करें ।[5]

इस प्रकार रुक्मिणी मंगल में प्रवाहित भाव धारा में स्थल स्थल पर विचार तरंगे [illegible] देती हैं । इन सब तरंगों का स्वतंत्र रूप से कोई महत्व नहीं प्रतीत होता अपितु वे उक्त भावधारा के प्रखरतर वेग को ही सूचित करती हुई जान पड़ती हैं ।

१- नं० ग्रं०, छन्द १२७ । २- वही, छन्द ६ । ३-वही, छन्द १८ ।
४- वही, छन्द १९-२१ । ५- वही, छन्द ६६ ।

रास पंचाध्यायी

३३ रासपंचाध्यायी में, शुकदेव जी की वन्दना, श्री कृष्ण की शोभा, शरद, रजनी, मुरली आदि के वर्णनों के अन्तराल में नन्ददास के हृदय का भागवद्रति भाव ही प्रवहमान रहा है। उनकी भावमग्नता का स्पष्ट परिचय श्रीकृष्ण की मुरली ध्वनि को सुनने से हुई गोपियों की विरह दशा के साथ मिलना आरम्भ होता है। मुरली नाद को सुनकर गोपियों की जो दशा हुई उसको चित्रित करते हुए कवि कहता है :

> सुनत चलीं ब्रज बधू गीत धुनि को मारग गहि ।
> भवन भीति द्रुम कुंज पुंज कितहूं अटकी नहिं ।।[1]

जो गोपियां सशरीर कृष्ण की ओर न जा सकीं, उनकी मनोदशा के व्यापार को कवि ने, `कोटि बरस लग नरक भोग अघ भुगते छिन में` के कथन द्वारा प्रकट किया है। कृष्ण के रूपस्मरण द्वारा गोपियों को जिस `आनन्द` का अनुभव हुआ, उसकी सूचना `कोटि स्वर्ग सुख भोग छीन काने मंगल सब` के कथन के रूप में[2] दी गई है। दूसरी ओर प्रिय की ओर जाती हुई गोपिया `गृह संगम` का त्याग करके पिंजड़ों से छूटे हुए पंछी की भांति स्वच्छन्द रूप में चल पड़ती हैं।[3] गोपियों के चित्त में इस स्वच्छ स्वच्छन्दता का भाव मुरली नाद श्रवण के उपरान्त कृष्ण दर्शन की उत्कट `अभिलाषा` के फलस्वरूप उत्पन्न हुआ है और `मद` की अवस्था का स्मरण दिलाता है।

३४ गोपियों के नूपुरों के ध्वनि स्मरण से उत्पन्न कृष्ण के हृदय के `वात्सल्य` की सूचना कवि ने `तब हरि के मन नैन सिमटि सब श्रवननि आये`[4] कह कर दी है। गोपियों के नूपुरों की ध्वनि ज्यों ज्यों समीप आती जाती है, उनकी दर्शन की कृष्ण की उत्सुकता क्रम भी बढ़ती जाती है और उसकी चरम परिणति को `प्रिय के अंग सिमटि मिले ह्योसे नैननि तब`[5] के कथन द्वारा दर्शाया गया है।

मुरली नाद को सुनकर आई हुई [illegible] के प्रेम भाव को गहनता प्रदान करने

१- न० ग्रं०, [illegible]या, पृ० ८, छन्द ५२। २- वही, छन्द ५३।
३- वही, छन्द ५४। ४- वही, छन्द ६६। ५- वही, छन्द ६७।

की दृष्टि से कृष्ण ने जो `बंक` बचन कहे हैं,[1] उन्हें सुनकर गोपियों में जड़ता की सी दशा प्रकट हो जाती है-- वे ठगी सी, विस्मित रह जाती हैं और कवि ने इस स्थिति को `मंद परस्पर ह्वो लसी निरखी अंखियां` कह कर प्रकट किया है, कवि ने, उसी प्रकरण में गोपियों के हृदय के `चिन्ता` के भाव का और संकेत किया है और `स्तब्धता` के भाव की उपस्थिति की भी सूचना दी है। वह कहता है, `जब प्रिय ने घर जाने के लिए कहा तो, वे प्रतिमाओं की भांति खड़ी की खड़ी रह गईं।[2] गोपियों के मनोभावों के व्यापार का चित्रण करते हुए कहा गया है कि उनकी गर्दन दुःख के भार से झुक गई, मुख मुरझा गया, हृदय में कृष्ण के वियोग की `आशंका` से विरह की आग जल उठी और उसकी लपटों से बिंबाफल जैसे लाल अधर झुलस गये`।[4]

३५ इसके उपरान्त `औत्सुक्य`, `हर्ष` और `परिहास` से पोषित रतिभाव का चित्रण कवि ने बड़े ही निस्संकोच भाव से किया है --

> बिलसत बिबिध बिलास हास नीवी कुच परसत।
> सरसत प्रेम अनंग रंग नव घन ज्यों बरसत ।।[5]

प्रिय कृष्ण के साथ विहार करने पर गोपी हृदय के गर्व का भी अनुभव कवि ने किया है, जो `नहिं अबरजु जो गरब करहिं गिरिधर की प्यारी`[6] के रूप में प्रकट हुआ है। गोपियों के इस गर्व का परिहार विरहाकुलता के द्वारा कराके कवि ने अभिव्यक्त प्रेमानन्द का वर्णन किया है। गोपियां विक्षिप्त सी होकर कहती हैं : `हे मालती, ध्यान देकर सुन, क्या तूने इधर गिरिधर को देखा है?[7] हे मुक्ताफल, क्या तुमने नन्दलाल को देखा है?[8] हे उदार मंदार, हे करवीर, तुमने ही कहीं मन हरने वाले बलवीर को तो नहीं देखा?[9] हे चन्दन तुम्हीं हमें नंदनंदन दे

१- वही, छन्द ७१। २- वही, छन्द ७४। ३- वही, छन्द ७५।
४- वही, छन्द ७६। ५- वही, छन्द ९६। ६- वही, छन्द १०१।
७- वही, पृ०३१, छन्द ६। ८-वही, ~~पृ०-३१,-छन्द-३१~~। छन्द ८।
९- वही, छन्द ९।

छिपा दो ।[१] ओ कदंब, अंब, निम्ब, तुम क्यों मौन हो, ऐ बट, तुंग, सुरंग कहो कहां नन्दनन्दन हैं ?[२] हे अवनी ! तूने हमारे प्राणप्रिय को कहां छिपाया है ? बताओ ।[३] रे तुलसी तुम तो गोविन्द का प्राणप्यारी हो, फिर हमारी दशा को नन्दनन्दन से क्यों नहीं कहती ?[४] इस प्रकार कवि ने गोपियों के हृदय के गर्व, क्षोभ और विकलता के भाव को प्रकट किया है । गोपियां कृष्ण को उन्मत्त की नाईं ढूंढती हैं और कृष्ण की लीलाओं का अनुसरण करती हैं । उन्हें जब कृष्ण का प्रेयसी के पग-चिन्ह दिखाई देते हैं तो उनमें पुन: विस्मय का भाव उदय होता है और उस प्रेयसी के मंजु मुकुर को भी पास ही पाकर उनमें 'वितर्क' का आगमन होता है जिसके फलस्वरूप वे इस निश्चय पर पहुंचती हैं कि वेणी गूंथते समय एक दूसरे का प्रतिबिम्ब देखने के लिए कृष्ण और उनकी प्रेयसी ने इसका उपयोग किया होगा । प्रियतम द्वारा परित्यक्त प्रेयसी के कृष्ण विरह जन्य भावदशा को हृदयस्पर्शी रूप में प्रस्तुत करते हुए कवि कहता है, 'उसके नेत्रों से बहती हुई जल धार, हार को धोती हुई कुचों पर आ रही है, उसके मुख की सुगन्ध से आकृष्ट होकर जो भ्रमर उस पर मंडराने लगते हैं उन्हें भी उड़ाने में वह असमर्थ है ।[५] वह, हे महाबाहु प्रियतम कहां हो ?[६] कहती हुई ऐसे दीन और करुण स्वर में विलाप करती है कि उसे सुन कर पक्षी ही नहीं पेड़ पौधे एवं लता आदि भी द्रवित होकर रोने लगते हैं ।' यहां वियोग रति का परिचय सात्विक अनुभाव 'अश्रु' द्वारा तो दिया ही गया है, 'स्तब्धता', 'दैन्य' और 'अश्रु-करुण' की उपस्थिति द्वारा वह स्पष्ट भी हो गया है ।

विरह [illegible] की स्थिति में गोपियां अलक्षित प्रियतम के व्यवहार में उनकी निष्ठुरता और गर्व का अनुभव करती हैं, कवि ने उसे गोपियों के द्वारा प्रकट कराया है । गोपियां कहती हैं, 'हे प्रियतम ज्यों ज्यों में तुम [illegible] जैसा खेल खेल रहे हो, वह तुम्हारे लिए खेल मात्र हो सकता है किन्तु हमारे लिए प्राणघातक हो है,

---

१-वही, पृ० १४ छन्द १० । क्रम २,३,४- वही, छन्द १३,१५,१६ ।
५-वही, पृ० १७, छन्द ३४ । ६- वही, छन्द ३५ ।

अत: हम प्रेमविभोर दासियों को मारने की निष्ठुरता क्यों कर रहे हो ? यदि इस प्रकार की निष्ठुरता से हमारे प्राण हरने थे तो कालीनाग के विष से, इन्द्रप्रेरित जलवर्षा से, कालीनाग से, दावानल से और वज्रपात से रक्षा क्यों की थी ? हे प्रियतम यदि तुम ब्रजराज की पत्नी यशोदा के पुत्र होने के कारण, हमें साधारण ग्वालिनें समझ कर हमसे दूर रहने के लिए इस प्रकार यत्न कर रहे हो तो क्या तुम भूल गये हो कि यशोदा के पुत्र रूप में जन्म दिलाने वाली हमीं तो हैं, हम ही तुम्हें विधाता से विनती करके इस लोक में लाई हैं । हम कुछ तुमसे ही पूछती हैं कि इस प्रकार अपने जनों का प्राण हरण करके, किसकी रक्षा करोगे ?[1] गोपियों के इस कथन में उनके हृदय का व्यंग्य मिश्रित 'विस्मय' का भाव निहित है । अन्तिम कथन से सूचित होता है कि उपर्युक्त कथनों में उक्त भावों के साथ साथ 'अमर्ष' भी विद्यमान है । प्रकरण के अन्त में कवि ने कहा है, 'प्रिय के रस वचन सुन कर गोपियों ने क्रोध त्याग दिया है ।'[2] इन सब स्थितियों के होते हुए भी, विचार करने पर, उक्त भावों के मूल में कवि के हृदय का 'दैन्य' भाव ही अन्तर्गत होता है ।

३६ कृष्ण के प्रकट होने पर गोपियों में 'हर्ष' का संचार होता है जिसे कोई कृष्ण के उर से [illegible] लगाकर, कोई हाथ से लिपट कर और कोई गले से लिपट कर प्रकट करती हैं । कवि ने यहाँ पर 'परम आनंद भयो है'[3] के कथन द्वारा हर्ष की विशेष सूचना दी है । गोपियों के प्रेम के प्रतिदान के रूप में कृष्ण कहते हैं, 'मैं गोपियों [illegible] । यदि कोटि कल्पों तक भी मैं तुम्हारे प्रति उपकार करूं तो भी उऋण नहीं हो सकता ।'[4] प्रकट है कि कवि ने कृष्ण के हृदय के कृतज्ञता के भाव द्वारा गोपियों के प्रेम भाव की गुरुता का मनोवैज्ञानिक ढंग से परिचय दिया है ।

अपने प्रेम का प्रतिदान 'रस वचन' के रूप में कृष्ण से पा कर गोपियाँ 'आनन्द' भाव से प्रियतम को हृदय से लगा लेती हैं और उनमें 'हर्ष' के द्वारा

१- वही, पृ० १८, छन्द २-५ । २- वही, पृ० २१, छन्द १ ।
३- वही, पृ० २०, छन्द ८ । ४- वही, पृ० २१, छन्द १० ।

परिपुष्ट रति भाव के अभिमुख होने की प्रवृत्ति दृष्टिगत होती है । वे पूर्ण रूप से कृष्ण को समर्पित होकर उनके साथ नृत्यगान करने लगती हैं । वे उनके रूपलावण्य पर मुग्ध होकर उनकी भावभंगिमा का अभिनय करती हैं और यशगान करती हैं । गोपियों के इस भाव व्यापार के फलस्वरूप कृष्ण में 'विस्मय' का आगमन होता है और 'हर्ष' के द्वारा उनके हृदय में प्रेम भाव की पूर्णता प्राप्त होती है जिसे कवि ने,'सांवरो कुंवर रीझि हंसि नैन भुजनि भरि'[1] कह कर प्रकट किया है ।

३७ कवि ने रति भाव की चरम परिणति रासक्रीड़ा में दर्शाई है । इस प्रसंग में कवि को गोपियों की जो भावपूर्ण मनोदशा अनुभव गत हुई, उसे प्रकट करसकना वह कविकर्म के बाहर की वस्तु समझता है । वह कहता है ,'रास-मण्डल में नृत्य करती हुई अद्भुत शोभावाली गोपियों ने अत्यन्त मनोमुग्धकारी नृत्य करके जिस अपूर्व रस का अनुभव किया उसका वर्णन करने में कौन कवि समर्थ हो सकता है ?[2] प्रकट करना तो दूर की बात है, उसका अनुभव भी सबको नहीं हो सकता है, स्वयं लक्ष्मी उसका अनुभव नहीं कर सकीं । क्योंकि इसका अनुभव करने के लिए गोपियों के समान पात्र होना आवश्यक है ।

३८ इससे विदित होता है कि रास पंचाध्यायी में रतिभाव अपना पूर्ण विकसित अवस्था में प्रस्तुत किया गया है । यहाँ कवि द्वारा अनुभूत इस भाव को संयोग और वियोग दोनों अवस्थाओं का शब्दों में यथासम्भव प्रकट करने का प्रयास दृष्टिगत होता है । रासपंचाध्यायी में रतिभाव के उपर्युक्त प्रकार से प्रकाशन होने पर भी यह बात नहीं है कि कवि के हृदय में किसी भी दिशा में लौकिक रति विद्यमान थी। इस प्रसंग में उल्लेखनीय है कि रासपंचाध्यायी में जिस शृंगार रस की निष्पत्ति हुई है उसके आलम्बन श्रीकृष्ण और गोपियां हैं । श्रीकृष्ण पर ब्रह्म परमात्मा हैं, अत: उनके साथ चाहे कोई किस भाव से भी प्रेम करे उसे लौकिक नहीं कहा जा सकता। श्रीकृष्ण नन्ददास के इष्टदेव हैं, उन्होंने गोपियों के जिस कृष्णोन्मुख प्रेम का वर्णन किया है, उससे यथार्थ में उनको [illegible] के उत्कर्ष का ही अनुभव होता है ।

१- वही, पृ० २२, छन्द १७ । २- वही, पृ० २२, छन्द १६ ।

३६ यद्यपि रासलीला भावात्मक प्रकरण है और रासपंचाध्यायी में भाव लहरियाँ निरन्तर अठखेलियाँ करती हुई दृष्टिगत होती हैं तथापि जहाँ कहीं भी अवसर मिला है, कवि ने उसमें बुद्धि तत्व को स्थान देने में कोई संकोच नहीं किया है । इसके प्रारंभ में ही कवि ने 'जोगमाया भाया कीनो'[१] के कथन द्वारा बुद्धितत्व का समर्थन किया है । मुरली की ध्वनि पर मुग्ध गोपियाँ प्रेम द्वारा श्रीकृष्ण को प्राप्त करती हैं तो राजा परीक्षित शुकदेव जी से पूछते हैं कि भगवद्भाव न रखने पर भी गोपियों को श्रीकृष्ण की प्राप्ति कैसे हो गई ? शुकदेव जी उन्हें बताते हैं कि भगवान के प्रति चाहे जो भाव रक्खा जाय, वे प्राप्त हो जाते हैं ।[२] श्रीकृष्ण के मुख से घर लौट जाने की बात सुनकर गोपियाँ तर्क उपस्थित करती हुई कहती हैं, कि हे प्राणनाथ, कठोर वचन न कहिए, ये आपके योग्य नहीं हैं । धर्म की बातें आप उससे कहिए जो उन बातों की जानने की अपेक्षा रखते हैं । धर्म, जप, तप, नियम, आदि सुफल प्राप्ति के लिए किए जाते हैं न कि सुफल, धर्मादि की प्राप्ति के लिए । आपको पा लेने पर और कुछ पाना शेष ही नहीं रह जाता है ।[३] गोपी-गर्व-हरण की दृष्टि से अन्तर्धान होने के उपरान्त श्रीकृष्ण जब प्रकट होते हैं तो गोपियों के प्रीति रीति विषयक तर्कपूर्ण प्रश्न में पुनः बुद्धि तत्व के दर्शन होते हैं । वे कृष्ण से पूछती हैं, "कि एक वे व्यक्ति होते हैं जो प्रेम करने वाले से बदले में प्रेम करते हैं और दूसरे वे हैं जो प्रेम न करने वाले के प्रति भी प्रेम करते हैं तथा हे कृष्ण ! इन दोनों प्रीति-[illegible] से भिन्न तीसरे प्रकार के व्यक्ति कौन हैं ?[४] इस भाँति रासपंचाध्यायी में विचार पक्ष अधिक ठोस रूप में सामने आता है । यहाँ विचार तत्व को केवल स्थान मात्र ही नहीं मिला है, प्रत्युत वह भावों से समन्वित होकर मनोरथ की प्राप्ति में सहायक होता है । यह गोपियों के उपर्युक्त प्रेमपूर्ण तर्कों का ही परिणाम है कि चतुर होते हुए भी श्री कृष्ण उनके सम्मुख पराजय स्वीकार करके उनके वश में हो जाते हैं ।[५]

१- वही, पृ० ३, छन्द १६ । २- वही, पृ० ६, छन्द ६२-६३ ।
३- वही, पृ० १६, छन्द ७२-७५ । ४- वही, पृ० २०, छन्द १४ ।
५- वही, छन्द १६ ।

सिद्धान्त पंचाध्यायी

४० सिद्धान्तपंचाध्यायी में कवि ने जैसा कि अन्यत्र लिखा जा चुका है, रास-पंचाध्यायी की सैद्धान्तिक व्याख्या की है। भावात्मक स्थल समान होने से यहां भी उन्हीं भावों को प्रश्रय मिला है जिनका उल्लेख ऊपर रासपंचाध्यायी के विवेचन में हुआ है। फिर भी उनका पृथक विवेचन किया जा सकता है।

४१ प्रियतम के हृदय में, प्रेमिकाओं के साथ किए गए पिछले प्रेम प्रसंग का स्मरण करके उनके साथ क्रीड़ा करने की 'अभिलाषा' उत्पन्न होती है। कवि कहता है, 'यमुनातट पर कृष्ण ने जिन गोपियों के वस्त्र हरण करके उनको लौटा दिया था, उन्हीं के साथ अब वे रास क्रीड़ा में रमण करना चाहते हैं।[1] यहां 'मन कीनो' द्वारा कृष्ण के हृदय की अभिलाषा का भाव व्यक्त किया गया है। यही भाव एक अन्य स्थल पर 'रच्यो चहत रस रास'[2] द्वारा प्रकट हुआ है। पश्चात् 'हरषि बारी' कह कर उनके हृदय में हर्ष के संचार और 'अनुराग' की उपस्थिति की सूचना दी है। श्रीकृष्ण के हृदय के ये भाव मुरली नाद के रूप में निकलते हैं और उनका अनुभव कर गोपियां 'मद' मस्त होकर उन्हीं की ओर चल पड़ती हैं। कवि ने गोपियों की, सभी लौकिक कार्यों एवं वस्तुओं के परित्याग की वृत्ति में उनके हृदय के लोकविरति के भाव का अनुभव किया है। कवि कहता है, 'धर्म, कर्म और काम्य कर्म, जिनका आदेश निगम देते हैं, गोपियों ने सभी को छोड़कर कृष्ण का अनुसरण किया।[3] 'प्रीतम सूचक' शब्द को सुन कर गोपियों में एक ओर रति भाव, परिपूर्णता की ओर जाता है, दूसरी ओर संसार के प्रति त्याग-वृत्ति दृढ़ होती है।[4]

४२ जो गोपियां सशरीर कृष्ण के पास नहीं जा पातीं, उनमें 'अमर्ष' द्वारा और मुरली नाद का अनुसरण करके कृष्ण के पास आने वाली गोपियों में 'हर्ष'[5] द्वारा रति भाव प्रकट किया गया है। गोपियों के शुद्ध प्रेम को प्रकट करने

१- न० ग्र० सिद्धान्तपंचाध्यायी, छन्द २२। २- वही, छन्द ६६।
३- वही, छन्द ३१। ४- वही, छन्द ३२। ५- वही, छन्द ४०

के लिए जब कृष्ण धर्म और अर्थ पर वचन कहते हैं तो गोपियों में 'विस्मय' मिश्रित 'आनन्द' का आगमन होता है । कवि कहता है, 'प्रियतम कृष्ण के वचन सुनकर गोपियां विस्मित हुईं और गद्गद स्वर में बोलीं -- हे नन्दलाल ! तुम तो हमारे प्राण प्रिय हो, अप्रिय वचन न कहो ।'[१] वे लोक विरति के द्वारा कृष्ण के प्रति अपने रति भाव का प्रमाण देती हुई कहती हैं, 'स्त्री, पति, पुत्र - इनसे कोई सुख नहीं मिलता है, इनसे तो सांसारिक मोह ममता का रोग दिन प्रतिदिन बढ़ता है और ये क्षण प्रतिक्षण महादुख देते हैं ।[२] प्रेम, प्रमाण-कथन की अपेक्षा नहीं रखता है, उसकी पुष्टि दैन्य भाव द्वारा स्वयं हो जाती है । इसीलिए कवि ने गोपियों में दैन्य भाव की स्थिति को दिखाया है । गोपियां कहती हैं, 'जिसप्रकार लक्ष्मी सब कुछ छोड़कर तुम्हारे चरणों में पड़ी रहती है उसी प्रकार हम भी सब कुछ छोड़कर तुम्हारे चरणों में आई हैं, अत: हे प्रियतम निष्ठुरता त्यागिए और हमें न ठुकराइए ।'[३]

गोपियों के प्रेम वचनों के परिणामस्वरूप उत्पन्न कृष्ण के हृदय में 'आनन्द' को कवि ने 'हंसि परे भरे रस' के कथन द्वारा प्रकट किया है ।[४]

कृष्ण का प्रेम प्राप्त कर लेने पर गोपियों में गर्व का संचार होता है, जिसका परिहार कवि ने विरहाकुलता द्वारा दर्शाया है । यही विरहाकुलता का भाव रास पंचाध्यायी में आया है और उसके विषय में ऊपर लिखा जा चुका है, अत: यहां उसका पुन: चित्रण अनावश्यक होगा ।

इसके अनन्तर कवि ने 'अभिलाषा', 'आकुलता' और हर्ष के द्वारा रतिभाव की उपस्थिति की बड़ी सुन्दर व्यंजना की है । कवि कहता है, 'गोपियां कृष्णदर्शन की 'लालसा' लिए हुए मछली की भांति तड़पती हैं[५] और विह्वल होकर अलक्षित कृष्ण के प्रति वचन भी स्पष्ट नहीं बोल पाती हैं,[६] जब कृष्ण प्रकट होते हैं तो वे उनका स्पर्श पाकर ऐसी 'चकित' हो जाती हैं जैसे सांसारिक जन परमहंस भागवत को

१-वही, छन्द ५८-५९ । २- वही, छन्द ५९ । ३- वही, छन्द ६०-६१ ।
४-वही, छन्द ६२ । ५- वही, छन्द ६५ । ६- वही, छन्द ६६ ।

प्राप्ति से सुखी होते हैं,[1] और कृष्ण के दर्शन से उन्हें आनन्द की वर्षा का अनुभव होता है।[2] कृष्ण के साथ क्रीड़ा करने पर उनकी जो दशा होती है, कवि ने उसका यथातथ्य रूप में निस्संकोच होकर चित्रण किया है --

> लै तीं मदन मोहन पिय रीझि भुज भरि लीन्हीं ।
> चुम्बन करि मुख सदन बदन तै बारी दीन्हीं ।
> लटकि लटकि ब्रजबाला लाला उर जब फूलीं ।
> उलटि अनंग कौ दह्यौ तब सब सुधि भूलीं ।।[3]

४३ रास के वर्णन में कवि को विस्मय का अनुभव होता है और उसे उसने अद्भुत रस रच्यौ रास` कह कर प्रकट किया है। प्रकट है कि सिद्धान्तपंचाध्यायी में `अभिलाषा`, `हर्ष`, `मद`, `विस्मय`, `आकुलता` आदि द्वारा गोपियों अथवा कृष्ण का रति भाव पूर्णता को प्राप्त हुआ है और उनमें रति भाव की स्थिति नन्ददास के हृदय की भावद् रति भाव को बतलाती है।

४४ यद्यपि रासपंचाध्यायी की सैद्धान्तिक व्याख्या होने से सिद्धान्तपंचाध्यायी में विचारपक्ष ही प्रधान है तथापि स्मरणीय है कि प्रस्तुत प्रसंग में विचारपक्ष, बुद्धि पक्ष के अर्थ में ~~[illegible]~~ इस बात से ग्रहणीय है, सैद्धान्तिक अथवा दार्शनिक पक्ष के अर्थ में नहीं; इस दृष्टि से विचार पक्ष को प्रकट करने वाले तत्व सिद्धान्तपंचाध्यायी में भी उसी प्रकार हैं जैसे ऊपर रास पंचाध्यायी के प्रसंग में कह आये हैं। अत: उनका पुनरुल्लेख समीचीन न होगा।

<u>भंवरगीत</u>

४५ भंवरगीत में उद्धव के मुख से कृष्ण का नाम सुनते ही `हर्ष` के द्वारा गोपियों में प्रेम भाव का संचार होता है और उनको `जड़ता` की सी अवस्था हो जाती है, उनका गला रुंध जाता है, वाणी गद्गद हो जाती है और वे

१-वही, छन्द १०० । २- वही, छन्द १०६ । ३- वही, छन्द १२९-३० ।

बोल भी नहीं पाती हैं।[१] वस्तुत: प्रेम की यही रीति है कि प्रिय तो दूर, उसके नाम की चर्चा मात्र अत्यन्त सुखद होती है। यहां कवि प्रेम भाव के उदय को `रोमान्च`, `अश्रु`, `कंठावरोध` आदि के द्वारा सूचित करता है। प्रिय-प्रेषित सन्देश से प्रेमी के हृदय में प्रेम का अन्त:स्रोत फूट पड़ता है और विरह की अवस्था में घनीभूत अनुभूति सात्विक भावों के रूप में विकास पाती है। श्रीकृष्ण के सन्देश को सुनकर गोपियां निहाल हो जाती हैं और प्रेम के अतिशय संचार के कारण अत्यन्त शिथिल अवस्था में भूमि पर मूर्छित होकर गिर पड़ती हैं,[२] उनके हृदय का प्रेमावेग, विह्वलता से पुष्ट हो कर मूर्छा के कारण बहिर्मुख होने का मार्ग ढूंढता है।

४६ उद्धव द्वारा निर्गुण ब्रह्म का उपदेश आरम्भ करने पर उनमें `वितर्क का आगमन होता है और उद्धव के मुख से कृष्ण के लिए `हाथ पांव नहिं नासिका नैन बैन नहिं कान` का कथन सुन कर वे कहती हैं, `यदि कृष्ण का मुख नहीं है तो उन्होंने मक्खन कैसे खाया ? पैरों के बिना गायों के साथ वन वन में विचरण कैसे किया। आंखों के बिना अंजन किसमें लगाया और हाथ नहीं हैं तो गोवर्द्धन कैसे उठाया ?[३] इस प्रकार कवि ने तर्क और स्मृति के द्वारा गोपियों के प्रेम को प्रकट किया है। किन्तु वितर्क की यह स्थिति यहीं समाप्त नहीं होती है, वह उद्धव के निर्गुण ब्रह्म के उपदेश के साथ साथ अग्रसर होती है और अन्त में गोपियों को उस मनोदशा को जन्म देकर लुप्त हो जाती है जिसको प्रकट करते हुए कवि कहता है कि, `कि गोपियों के नेत्रों के सामने उनके यह कहते ही कि हमको श्रीकृष्ण के रूप के अतिरिक्त और कुछ नहीं सुहाता,` कृष्ण की मोहिनी मूर्ति प्रकट हो जाती है जिसका दर्शन करते ही गोपियां उद्धव के साथ हो रहे तर्क वितर्क भूल जाती हैं। उनकी ओर से मुंह मोड़कर वे प्रियतम से बातें करने लगती हैं। उनके मुख से प्रेम सुधा के स्रोत की भांति शब्द प्रवाहित होने लगते हैं। यही हो विभोर व्यक्ति की प्रीति व्यंजना की मार्मिक रीति है।[४]

१- न० गृ०, भंवरगीत, छन्द ३ । २- वही, छन्द ६ ।
३- वही, छन्द १० । ४- वही, छन्द २८-२९ ।

४७ गोपियां कृष्ण का ~~स्वभाव~~ निष्ठुरता और उससे उत्पन्न व्याधि का अनुभव करती हैं, कवि ने उसे गोपियों के ही मुख से प्रकट किया है :

> दुख जल निधि हम बूड़तीं, कर अवलम्बा देहु ।
> निठुर भये कहां रहे ।।[१]

विवशता और दैन्य मिश्रित उन्माद का चित्रण भी द्रष्टव्य है :

`गोपी कहती है,` हे प्रियतम, दर्शन देकर पुनः अन्तर्धान हो जाने की कलानिपुणता तुम्हें किसने सिखाई ? हम तो तुम्हारे ही वश में हैं, इसलिए तुम्हारे प्रति अपने कातर स्वर में अपना वेदना व्यक्त कर रही हैं। तुम्हारे संयोग सुख से वंचित होने पर हम वैसे ही तड़प तड़प कर प्राण दे देंगी जैसे जल से अलग किये जाने पर मछलियां देती हैं,[२] फिर `चिन्ता`[३] और `प्रलाप`[४] के द्वारा कवि ने गोपियों के प्रेम भाव को व्यक्त किया है। गोपियों को भावावेश की स्थिति में कृष्ण के सभी रूपों और चरित्रों का दर्शन होने लगता है। उन्हें अपने रोम रोम में कृष्ण की उपस्थिति का भान होता है।[५]

भ्रमर के प्रति उपालम्भ के प्रसंग में पुनः वितर्क का आविर्भाव होकर श्रीकृष्ण के गुण बखान करती गोपियों में `उद्वेग` का आगमन होता है। किन्तु जिस प्रेमिका का हृदय रो रहा हो, वह अपना दुख दबा कर अधिक समय तक हास्य और व्यंग्य की बातों में कभी रुचि नहीं लगा सकती। कृष्ण के वियोग में यही स्थिति गोपियों की हो जाती है जिसको कवि ने मार्मिक ढंग से उपस्थित किया है। वह कहता है `गोविन्द के गुणों का स्मरण करती हुई गोपियों ने `भ्रमर` को संबोधित करके उद्धव और श्रीकृष्ण दोनों के लिए हास्य और व्यंग्य पूर्ण अनेक उक्तियां कहीं। प्रेम भाव के आवेश में उन्होंने कुल मर्यादा तक को छोड़ दिया और उसके अनन्तर सब एक साथ `हा करुणामय नाथ हो केशो कृष्ण मुरारि` कहकर इस प्रकार से रो पड़ीं जैसे उनका हृदय ही फट कर अश्रु रूप में बहने लगा हो।[६]

१- वही, छन्द ३० । २- वही, छन्द ३१ । ३- वही, छन्द ३४ ।
४- वही, छन्द ३६ । ५- वही, छन्द ४२ । ६- वही, छन्द ६० ।

यहाँ विरह की अन्तिम दशा मरण का चित्रण है ।

४८ इस प्रकार कवि ने गोपियों के विरह की दशाओं का चित्रण किया है और इन दशाओं का उत्तरोत्तर विकास बड़े कौशलपूर्वक दर्शाया है । विरह की उक्त दशाओं की परिणति के रूप में कवि ने जो चित्र उपस्थित किया है वह भी अत्यन्त भावपूर्ण और आकर्षक हुआ है । कवि कहता है, 'प्रियतम श्रीकृष्ण के रूप और उनके गुणों का स्मरण करते करते गोपियों के शरीर से प्रस्वेद की और नेत्रों से आंसुओं की जो धारायें कंचुकी, भूषण और हारों को भिंगोती हुई प्रवाहित हुईं, उनके परस्पर मिल जाने पर जैसे एक सागर सा उमड़ पड़ा । प्रणय के आवेश जन्य उस जल प्रवाह में इतना वेग था कि गोपियों के निकट खड़े उद्धव भी उसमें बह चले । वे सोचने लगे कि ब्रज में आकर मैंने अच्छी नेह बनाने की चेष्टा की जो मेरा सारा कुछ ही तर गया ।'[१]

प्रकट है कि भंवरगीत में गोपियों की वियोग रति का जैसा कवि को अनुभव हुआ है उसने विरह की दसों अवस्थाओं द्वारा प्रकट किया है और तर्क, वितर्क, व्यंग्य तथा उपालम्भों के द्वारा उसे उत्तरोत्तर बल प्रदान किया है । गोपियों के अतिरिक्त उद्धव के भी मनोगत भावों को कवि ने प्रकट किया है । मथुरा प्रत्यागमन के प्रसंग में उद्धव प्रेम के भाव में निमग्न दृष्टिगत होते हैं । उनके हृदय के प्रेम भाव को 'आनन्द', 'आवेग', 'गुण कथन' आदि के द्वारा प्रकट किया गया है ।[२] उद्धव के मुख से गोपियों की मनोदशा को जान कर कृष्ण के हृदय की जो दशा हुई उसको कवि ने 'विवस प्रेम आवेस रही नाहिन सुधि कोऊ'[३] कह कर प्रकट किया है ।

४९ इस प्रकार हैं भंवरगीत में विरह की दशाओं के द्वारा गोपियों के प्रेम की व्यंजना की गई है । ये दशायें कभी संचारी भावों की भांति प्रेमभाव को परिपुष्ट करती हुई दृष्टिगत होती हैं और कभी सात्विक अनुभावों की भांति उसकी सूचना देती हैं । यथार्थ में इन दशाओं में व्यंजित गोपियों के प्रेम द्वारा कवि की भावानुभूति में तीव्रता और विस्तार की वृद्धि के साथ साथ सूक्ष्मता के भी दर्शन होते हैं ।

१- वही छन्द ६२ । २- वही, छन्द ६६ । ३- वही, छन्द ७२ ।

यहां कवि ने सभी मनोभावों का समाहार रति में करके उस भाव की विस्तार और सर्वोत्कृष्टता का प्रमाण दिया है ।

५० भंवरगीत में कवि की सूक्ष्म भाव निरूपण की शक्ति तो उक्त प्रकार से प्रकट है ही, इससे कवि के बुद्धि पक्ष का भी सम्यक् परिचय मिलता है । गोपियों की भावप्रवणता तो सर्वविदित है किन्तु उनके विचार तत्त्व को प्रकाश में लाने का श्रेय नन्ददास को है । स्वयं गोपियों को भी अपने बुद्धितत्त्व का भान नहीं होता है और उद्धव के मुख से ज्ञानोपदेश की बात सुनते ही उन्हें जैसे इस तत्त्व का परिचय मिल गया हो, वे ज्ञानानुयायी उद्धव को पराजित करने के लिए इसी को अपना अस्त्र बनाती हैं और उद्धव के ज्ञान, योग और कर्म पर उसे प्रतिघात करती हैं । उद्धव ज्यों ही ब्रह्म को ज्ञान द्वारा देखने का उपदेश देते हैं, वे कहती हैं, ‘कि कौन ब्रह्म, ज्ञान की बातें किससे कह रहे हो ? हमारे ब्रह्म तो कृष्ण हैं जो प्रेम द्वारा सहज ही प्राप्त हो जाते हैं ।’[1] उद्धव के मुख से कृष्ण के निराकार होने की बात सुन कर वे कहती हैं, ‘कि यदि उनके अंग नहीं हैं तो उन्होंने मक्खन कैसे खाया, वन में गाय चराने कैसे गये और गोवर्द्धन कैसे उठाया ? हम जानती हैं कि वे नन्द-यशोदा के पुत्र रूप में सब अंगों से युक्त हैं ।’[2] जब उद्धव योग-साधन से ही श्रीकृष्ण की प्राप्ति की बात कहते हैं तो गोपियां कहती हैं, ‘कि योग उसे बताओ जिसे इसकी आवश्यकता है, हम प्रेम मार्ग को छोड़कर धूल नहीं समेटेंगी ।’[3] उद्धव द्वारा कर्म का पक्ष लिए जाने पर वे उत्तर देती हैं, ‘कि कर्म बुरे और अच्छे दोनों ही बन्धन के कारण होते हैं, बेड़ी चाहे लोहे की हो चाहे सोने की बन्धन ही तो है । प्रेम द्वारा ही बन्धनों से छुटकारा मिल सकता है ।’[4] उद्धव श्रीकृष्ण को निर्गुण बताते हैं, इस पर गोपियां कहती हैं, ‘कि उनके गुण नहीं हैं तो और गुण कहां से आ गये, कहीं बीज के बिना भी तरु उग सकता है ?’[5] इस प्रकार तर्क वितर्क करती हुई गोपियां उस दशा को प्राप्त होती हैं जिसमें उन्हें अपने सम्मुख ही श्रीकृष्ण के दर्शन होने लगते हैं और वे उन्हीं को सम्बोधित करती हुई तर्कों द्वारा अपने प्रेम को प्रकट करती हैं । पश्चात् भ्रमर को

१- वही, छन्द ८ । २- वही, छन्द १० । ३- वही, छन्द १२ ।
४- वही, छन्द १६ । ५- वही, छन्द ३६ ।

सम्पुत पाने पर उनकी तर्कशीलता और भी प्रबल हो उठती है और भ्रमर ही भाव के साथ उनके विचार का माध्यम बन जाता है। वे कहती हैं, "कि मधुप ! श्रीकृष्ण भी तुम जैसे ही काले हैं।[1] तुमको 'मधुकारी' कौन कहता है ? तुम तो योग साधनोपदेश के रूप में विष को गांठ लेकर प्रेमियों का वध करते फिरते हो। यहां आकर किसे अपना शिकार बनाना चाहते हो ?[2] तू मोहन का गुण गा गा रहा है, तेरे हृदय में कपट है और कपट से प्रेम शोभा नहीं देता है। यहां कोई ब्रजवासिनी तुझ पर विश्वास नहीं करेगी।[3] तू अनेक पुष्पों का रस लेकर उन्हें छोड़ देता है। अब ज्ञान के उपदेश द्वारा दुविधा उत्पन्न करना चाहता है।[4] वे परस्पर कहती हैं, "कि इसे निर्गुण का बड़ा ज्ञान है, तर्क वितर्क और युक्तियों से यह निर्गुण ब्रह्म के स्वरूप निरूपण में बहुत कुशल है किन्तु यह इतना भी नहीं जानता है कि संसार में जितनी भी वस्तुएं हैं उनमें गुण अवश्य है। कोई भी वस्तु गुणरहित नहीं है, तब ईश्वर का आस्तित्व मानने पर वही निर्गुण कैसे हो सकता है।"[5] इस भांति मर्मस्पर्श गोपियां सब तर्क वितर्क करती हैं, जब तक कि उनका बुद्धितत्व हृदय से उमड़े हुए प्रेम सागर में डूब कर अपना अस्तित्व नहीं खो देता है। उस प्रेम सागर में गोपियों का तर्क वितर्क तो डूब कर लुप्त होता ही है। साथ में ज्ञान, कर्म, योग के उपदेशक उद्धव को भी निमग्न कर देता है।

५१ इससे प्रकट है कि भंवरगीत में गोपियों के तर्क वितर्कों के रूप में बुद्धितत्व कवि की भावधारा को निरन्तर गति प्रदान करता है और जब यह धारा क्रमशः परिपुष्ट होकर हृदय में प्रेम-सागर के रूप में परिणत हो जाती है तो बुद्धि तत्व उसी में विलीन हो जाता है। गोपियों की भावदशा का जो परिचय प्रसंग के आरम्भ में[6] मिलता है, वह यद्यपि उद्धव के साथ हुए तर्क वितर्कों के आ जाने पर क्षीण होता हुआ प्रतीत होता है और जान पड़ता है कि कवि भावोत्कर्ष की ओर जाने की अपेक्षा तर्क वितर्कों के ही जाल में पड़ गया है तथापि किंचित गहनता से विचार

१- वही, छन्द ५६। २- वही, छन्द ५८। ३- वही, छन्द ५०।
४- वही, छन्द ५१। ५- वही, छन्द ५३। ६- वही, छन्द ३-६।

करने पर ज्ञात होता है कि इनके अन्तराल में भाव लहरियाँ निरन्तर उद्वेलित होती रहती हैं और अवसर पाने ही तीव्र वेग से प्रवाहमान होकर तर्क विचारों के जाल को निर्मूल करके बहा देती हैं। तब चाहे गोपियों की ओर देखिये, चाहे उद्धव की ओर या श्रीकृष्ण की ओर, सर्वत्र भावों की सरल धारा ही दृष्टिगत होती है। अब तर्कों के लिए किसी ओर भी स्थान नहीं रह जाता है। यही कवि के भावात्मक दृष्टिकोण की उपलब्धि है।

पदावली

५२ उपर्युक्त कृतियों में व्यक्त कवि के भाव-चित्रण से परिचय प्राप्त कर लेने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि उनमें रति या प्रेम भाव का ही प्रमुख रूप से चित्रण हुआ है। दैन्य, निस्मय आदि जो भी अन्य भाव उनमें आये हैं, वे अपनी स्वतंत्र सत्ता की अपेक्षा रति भाव की ही पुष्टि करते हुए विदित होते हैं। कवि की पदावली के अवलोकन से भी यही बात ज्ञात होती है। उसमें भी प्रेम भाव को ही प्रमुख स्थान मिला है। कवि ने इस प्रेम भाव को प्रमुखतः चार रूपों में प्रकट किया है। वे इस हैं, राधा का प्रेम, गोपियों का प्रेम, यशोदा का प्रेम और सखाओं का प्रेम।

५३ पदावली में राधा और गोपियों के प्रेम के रूप में कवि की भावानुभूति की सर्वाधिक सूचना मिलती है। कवि ने राधा के पक्ष में कृष्ण प्रेम का आरम्भ पूर्वानुराग द्वारा दर्शाया है। राधा में यह पूर्वानुराग 'अश्रु', 'स्वरभंग', आदि सात्त्विक अनुभावों द्वारा प्रकट किया गया है। राधा ने जब से कृष्ण का नाम सुना है, उसकी दशा विक्षिप्त की सी हो गई है, उसके नैन जल से भरे रहते हैं, चित्त में चैन नहीं रहता है, मुख से वचन तक नहीं निकलता है और तन की जो दशा हुई उसे तो कहा ही नहीं जा सकता। जिसके नाम को सुनते ही ऐसी दशा हो जाती है, उसकी मधुर मूर्ति कैसी होती होगी।'[1] उसे कृष्ण का मुख देखने की अभिलाषा होती है। उससे उनका मुख देखे बिना रहा नहीं जाता है।[2] [illegible] भी उसके प्रेम में मगन हो जाते हैं, इसकी सूचना सखी के द्वारा 'प्यारो तेरे लोचन लोने लोने, जिन बस कीने स्याम सलोने'[3] के कथन के रूप में दी गई है। कवि ने राधा और कृष्ण के प्रेम

की चरम परिणति, `दम्पति रति` में दिखाई है जिसका यथातथ्य चित्रण करने में उसने स्वच्छन्द वृत्ति का परिचय दिया है ।[१]

५४ गोपियों में रति भाव `हास विलास`[२] और रूप दर्शन की अभिलाषा[३] द्वारा प्रकट होता है । वे पलकों को बैरी कहने लगती हैं[४] क्योंकि उनके कारण प्रियतम का मुख देखने में बाधा पहुंचती है । वे जल भरने जाती हैं किन्तु स्नेह भर लाती हैं । इस स्नेह को कवि ने `अभिलाषा`, `रसव्यंजना`, `वधु` आदि के द्वारा प्रकट किया है ।[५] खंडिता के समय के व्यंग्य-वचन गोपियों के प्रच्छन्न हार्दिक प्रेमोद्गार को प्रकट करते हैं । वे कहती हैं, `कि प्रिय रात भर जागे तुम हो किन्तु नेत्र हमारे लाल हो रहे हैं, अधरसुधा का मधुपान तुमने किया है किन्तु मन हमारा घूम रहा है, नखचिन्ह तुम्हारे उर पर हैं किन्तु पीड़ा हमें हो रही है, इसका क्या कारण है?[६] दानलीला में गोपियों के चित्ताभि और `अमर्ष` का भाव चित्रित हुआ है । गोपी कहती हैं कि ऐसा कौन है जो मेरी मटकी छुए । बिना मांगे दिया नहीं जायगा और मांगने पर गाली दी जायगी`[७] वे व्यंग्य द्वारा चुटकी लेती हैं, ``कहिये जो दान कैसे मांगे, हम तो गोवर्धन पूजा करने के लिए आई हैं, तुम्हें पहले कैसे दे दें ?[८] गोपी-प्रेम की सर्वाधिक अभिव्यंजना रास क्रीड़ा द्वारा ही होती है, कवि ने इस रासक्रीड़ा का अनुभव किया है । उसने रास में नृत्य करती हुई गोपियों के मध्य कृष्ण के सलोने रूप को अत्यन्त निकट से देखा है ।[९]

५५ वर्षा में हिंडोला झूलते समय राधा कृष्ण के हृदय का प्रेम परस्पर हंसने और विवशता के द्वारा प्रकट किया गया है[१०] । फाग में पुन: विवशता का भाव अत्यन्त स्पष्ट रूप से चित्रित हुआ है । यहां कवि विवशता को पृथक रस के रूप में `प्रेम विवश रस` कहता है :

और हू प्रेम विवश रस को सुख कहत कह्यो नहिं जाई ।[११]

१-वही, पद ७७ और ७७। २- वही, पद ७६ । ३- वही, पद ७८ ।
४-वही, पद ७८ । ५- वही, पद ८० । ६- वही, पद ९१ ।
७- वही, पद ११३ । ८-वही, पद ११४ । ९- वही, पद ११९ ।

वसंत में गोपियां प्रेम भाव में आमग्न होकर वृन्दावन को महकता हुआ अनुभव करती हैं। उनका प्रेम भाव कोकिल, मोर, खंजन, भ्रमर, आदि को देखकर उद्दीप्त होता है और सात्विक अनुभाव 'स्वेद' द्वारा 'श्रमकनि' के रूप में प्रकट होता है।

५६ यशोदा के प्रेम भाव का आगमन वात्सल्य के रूप में कृष्णजन्म के साथ होता है। कवि ने हर्ष से गोपियों का भाव को 'फूलो है कोदा गाय, छोटा मुट्टी बुगि के'[1] कह कर प्रकट किया है। बाल क्रीड़ा के प्रसंग में माँ का वात्सल्य भाव की अनुभूति का कवि ने परिचय दिया है। कवि कहता है, 'यशोदा अपने पुत्र को मधुर बातों से जगाती हैं, कलेवा के लिए माखन, मिश्री, मिठाई और मलाई लाती हैं। इस माता के वचन सुनकर कृष्ण तुतलाते हुए उठते हैं और यशोदा का हृदय हर्ष से भर जाता है।[2]

५७ सखाओं के प्रेमभाव का चित्रण गोवर्द्धनलीला और फाग लीला के प्रसंगों में मिलता है। गोवर्द्धन धारण करते समय ग्वालों का प्रेम हर्ष के द्वारा प्रकट होता है। ग्वालों के हर्ष को सूचना कवि ने 'ग्वाल ताल दै नीके गावत गायनै के संग सुर जु भरे'[3] के कथन के रूप में देता है। फाग में, ग्वाले प्रेम भाव में भर कर कृष्ण के साथ रंग खेलते हैं।[4] दोलोत्सव में भी हलधर सहित सब ग्वाले हर्षित होकर फाग और धमार गाते हैं। यहां कवि ने 'गावत फाग धमार हरषि भरि'[5] कह कर ग्वालों के प्रेम भाव का चित्रण किया है।

५८ प्रेमभाव के अतिरिक्त नन्ददास के पदों में -- हास्य, अमर्ष, उत्साह, भय और विस्मय के भावों का भी किंचित चित्रण मिलता है जो निम्न प्रकार है :

'गोवर्द्धन लीला के एक ही प्रकरण में विस्मय, अमर्ष, हास्य, भय, दैन्य और उत्साह के दर्शन होते हैं। इन्द्र के कोप के कारण गोवर्द्धन पर प्रलयंकारी जलवर्षा होती है, कृष्ण बड़े उत्साह से गोवर्द्धन को कर पर धारण कर लेते हैं।

१- वही, पद ३८। २- वही, पद ३१। ३- वही, पद ११८।
४- वही, पद १८१। ५- वही, पद १६२।

प्रलयकारी वर्षा होने पर भी गोवर्द्धन के ऊपर स्थित गाय, मृग, चातक, चकोर, मोर -- किसी पर एक बूंद जल भी नहीं पड़ता है, इससे सभा को विस्मय होता है और कृष्ण की प्रभुता के सम्मुख इन्द्र की जड़ता को देख कर ऋषि मुनि और स्वयं भगवान में हास्य का संचार होता है। नन्ददास कहते हैं कि इन्द्र के गर्व को दूर करना तो गिरिधर प्रभु के लिए हंसी खेल है। यहां कवि `नगो उठाय ब्रज राज वर कर पै`[1] के कथन द्वारा उत्साह, `बरषै प्रलय को पानी` द्वारा भय, `भयोहि कौतुक भर` द्वारा विस्मय, `प्रभु की प्रभुताई` द्वारा दैन्य और `मुनि हंसे हँहि हँसि हरी हरहर` के कथन द्वारा हास्य की सूचना देता है। `इन्द्र हू की जड़ताई` के कथन से इन्द्र के उस गर्व का अनुभव होता है जिसके कारण उसने गोवर्द्धन पर घोर वर्षा की थी।

५९ इसके अतिरिक्त कृष्ण जन्म के समय नन्द के हृदय के `उत्साह` भाव का वर्णन होता है, जो `हर्ष` द्वारा परिपुष्ट होता है। नन्द बड़े उत्साह से ब्राह्मणों को दो लाख गायें और रत्नों के सात पर्वत दान में देते हैं। उनके घर में जो कोई मांगने आता है, वे इतना दान में देते हैं कि वह लौटने पर याचक नहीं रह जाता है।[2]

६० गुरु विट्ठलनाथ की स्तुति वाले पदों में नन्ददास का दैन्य भाव देखा जा सकता है। कवि ने अपने दैन्य भाव को `रहौं सदा चरनन के आगे`, वल्लभ कुल को दास कहाऊं` आदि कथनों द्वारा व्यक्त किया है।[3]

६१ `विस्मय` भाव एक और स्थल पर दिखाया गया है। श्याम का रूप और उनकी बांकी चितवन द्वारा गोपी अपना मार्ग भी भूल जाती है। मोहन के यह कहने पर कि `तुम्हें ब्रज में देखा है,` गोपी `ठगि सी` रह जाती है। तब से वह अत्यन्त व्याकुल रहती है और उसके मुख से वाणी भी नहीं निकलती है।[4]

६२ चोरी लीला के प्रसंग में `हास्य` और `अमर्ष` का भाव होता है। गोपी यशोदा से कहती है, `रानी, तुम अपने पुत्र के कर्म क्यों नहीं देखतीं? घर में जितने

१- वही, पद ११६। २- वही, पद २४।

३- वही, पद १२। ४- वही, पद ८४।

भी कथन हैं, इन्होंने एक भी नहीं छोड़ा है। कुछ भी कहना नहीं रह गये हैं।[१]

६३ कवि के भाव-पक्ष का इस प्रकार से परिचय देने के उपरान्त कहा जा सकता है कि उसकी कृतियों में रति भाव को ही प्रधानता प्राप्त हुई है। उत्साह, जुगुप्सा, निर्वेद, हास, क्रोध, भय और विस्मय के भावों को भी कवि के काव्य में स्थान मिला है किन्तु एक तो इन भावों का चित्रण ही अत्यन्त सीमित हुआ है और दूसरे जहां भी चित्रण हुआ है उसमें भाव, परिपूर्णता को प्राप्त नहीं हो सका है। वस्तुत: तथ्य तो यह है कि रति भाव के अतिरिक्त उत्साहादि जो भी अन्य भाव कवि की कृतियों में मिलते हैं, उनका अपना स्वतंत्र अस्तित्व उतना नहीं है जितना कि वे रति भाव की परिपुष्टि की ओर उन्मुख हुए दृष्टिगत होते हैं। कवि ने रति भाव को संयोग और वियोग दोनों अवस्थाओं में चित्रित किया है किन्तु वियोगावस्था के चित्रण अधिक हृदयग्राही बन पड़े हैं। यद्यपि कवि की वृत्ति वियोग का चित्रण करने में अधिक रमी है तथापि उसके भावों का पर्यवसान संयोगावस्था में ही दिखाई देता है। यहां उक्त रति या प्रेम भाव के आलम्बन सर्वत्र ही श्रीकृष्ण हैं जो कवि के इष्टदेव हैं। अत: इस रतिभाव को लौकिक रति या प्रेम कहना संगत न होगा। प्रत्युत इसे कवि के भगवत्प्रेम का ही तारतम्य का उससे परिचय मिलता है। यह परिचय कहीं तो राधा और गोपियों की प्रेम विह्वलता, कहीं रूपमंजरी की गिरिधर मिलन की उत्कट अभिलाषा, कहीं विरहिणी ब्रज बाला की विशिष्ट प्रेमावस्था, कहीं यशोदा के हृदय के बाल स्नेह एवं कहीं सखाओं के श्री कृष्ण के प्रति प्रेम के रूप में मिलता है।

इसके अतिरिक्त जहां एक ओर कवि ने उक्त प्रेम भाव के उद्दीपन के लिए रूप-दर्शन, गुण-श्रवण, स्वप्न दर्शन, मनोहर दृश्य, निर्जन एकान्त स्थान आदि के वर्णनों का, उसे प्रकट करने के लिए अश्रु, स्वरभंग, वैवर्ण्य, वेपथु, रोमांच, प्रलय आदि अनुभावों का तथा परिपोषण के लिए औत्सुक्य, व्रीड़ा, मोह, हर्ष, गर्व, आकुलता, विवशता आशंका, अवहित्थ, दैन्य, मद उग्रता, चपलता, वितर्क, अमर्ष आदि संचारी भावोंका आश्रय लिया है वहीं दूसरी ओर बुद्धि या विचार तत्व के सहारे इसे सर्वोपरि घोषित करने का प्रयास किया है।

चरित्र चित्रण

६४ पीछे इंगित किया जा चुका है कि नन्ददास ने अपने काव्य का प्रणयन भक्ति भावना की प्रेरणा से ही किया है। फलत: उनकी कृतियों में भक्तिभावना की विद्यमानता सर्वत्र ही दृष्टिगोचर होती है। उनकी इस भावना के आश्रय श्रीकृष्ण हैं और उन्हीं का व्यक्तित्व कवि की सब कृतियों में समाया हुआ है। श्रीकृष्ण के अतिरिक्त अन्य जितने भी पात्रों का उल्लेख कवि की कृतियों में हुआ है, उनका महत्व केवल इसलिए है कि उनमें कृष्ण के प्रति किसी प्रकार का प्रेम है। फिर भी यह बात नहीं है कि उनका अपना स्वतंत्र व्यक्तित्व है ही नहीं। वस्तुत: श्रीकृष्ण में ईश्वरत्व की भावना के साथ ही इन पात्रों के व्यक्तित्व में स्वतंत्रता आ जाती है। यह बात और है, कि कवि की कृति उनके व्यक्तित्व के विकास की ओर नहीं रमी है और उसने पात्रों की जो कुछ भी चारित्रिक झांकी दी है वह अपनी भक्ति भावना के आग्रह के अनुरूप ही दी है, किसी पात्र विशेष के चरित्र के उद्घाटन करने की दृष्टि से नहीं। अपनी भावनाओं के परितोष के लिए ही सही, कवि ने जिन पात्रों का उल्लेख अपनी कृतियों में किया है उनमें श्रीकृष्ण, राधा, रूपमंजरी, इन्दुमती, रुक्मिणी, यशोदा, गोपियां, उद्धव, शुकदेव जी, धर्मधीर और परीक्षित ऐसे पात्र हैं जिनपर चरित्र चित्रण की दृष्टि से विचार किया जा सकता है। आगामी परिच्छेदों में इन्हीं पात्रों के चरित्रांकन की चेष्टा की गई है।

श्रीकृष्ण

६५ अनेकार्थ भाषा के अनुसार गायों का पालन करना[१] दनुजों का नाश करना,[२] संसार की रक्षा करना,[३] प्रेम के वश में रहना[४] आदि श्रीकृष्ण के चरित्र की विशेषतायें हैं।

१- न० ग्र०, अनेकार्थ भाषा दोहा ४। २- वही, दोहा ४६।
३- वही, दोहा ७७। ४- वही, दोहा११९।

६६ स्यामसगाई में श्रीकृष्ण को चंचल और चतुर युवक के रूप में चित्रित किया गया है, जो गारुड़ी भी हैं। वे दही तथा माखन के चोर हैं और कहने सुनने के विषय में निर्लज्ज हैं।[१] वे माता की इच्छा का सम्मान करते हैं[२] और अपनी चतुराई एवं युक्ति से कीर्ति के हृदय में भी सम्मान प्राप्त करते हैं जिसने कुछ ही पूर्व उन्हें 'नंद ढोटा लंगर महा दधि माखन को चोर'[३] कहा था।

नाममाला में उन्हें ईश्वरत्व से युक्त,[४] निगमातिगम,[५] अगणित गुणों से युक्त[६] और मान करती हुई राधा के आगमन की प्रतीक्षा करने वाले[७] [illegible] नायक के रूप में चित्रित किया गया है।

रसमंजरी में उन्हें जगत को आश्रय प्रदान करने वाले रसिक[८], चतुर शिरोमणि और रूपगुणों से युक्त नवयुवक[९] कहा गया है।

रूपमंजरी में उन्हें सब प्रकार से योग्य और सदा सुखदायी कामदेव के सौन्दर्य को भी लज्जित करने वाले रूप से युक्त किशोर रूप में चित्रित किया गया है[१०] जो त्रिभुवन नायक[११], प्रत्येक को उसकी भावनानुसार फल देने वाले[१२], गिरिधरलाल के नाम से जगत में विख्यात हैं।[१३]

विरहमंजरी में उन्हें दक्षिण नायक के रूप में चित्रित किया गया है जो नायिका के चंचल नयनों से ही उसके हृदय का भाव जान लेते हैं।[१३अ]

६७ [illegible]मंगल में कृष्ण का द्वारकाधीश के रूप में परिचय मिलता है।[१४] वे रुक्मिणी के पत्र को लाने वाले ब्राह्मण का विधिवत आवभगत करके[१५] द्विज के प्रति अपने श्रद्धा-भाव का परिचय देते हैं। कवि ने उनमें रुक्मिणी के द्वारा यह

१-न० ग्र० स्यामसगाई, छन्द ५। २-वही, छं० ८। ३-वही, छं० ५।
४-वही, नाममाला, दोहा १२५। ५-वही, दो० १७२। ६-रसमंजरी, दो० १।
७-वही, पं० ७० । ८-रूपमंजरी, पं० १६० । ९-वही, पं० २०६।
१०-वही, पं० [illegible]। ११-वही, पं० [illegible]०। १२-वही, पं० ५३५। १३-वही, पं० ४१३।
१३अ-विरहमंजरी, पं० [illegible]। १४-रुक्मिणीमंगल, छं० ४५। १५-वही, छं० ५१।

विशेषता दिखाई है कि वे परम सुखधाम हैं जबकि अन्य सभी मनुष्य परतंत्र और दुख से भरे हुए हैं।[1] दुखार्तों पर दया करने के लिए वे द्रवित होकर शीघ्र दौड़ पड़ते हैं, इसीलिए रुक्मिणी के दुख से भरे पत्र को पढ़कर वे रुक्म पर क्रोधित होते हैं और उसी समय रुक्मिणी का दुख दूर करने के लिए चल पड़ते हैं।[2] कुंडिनपुर पहुंचने पर वहां के लोग उन्हें श्रेष्ठ नायक के रूप में देखते हैं।[3] वहां कृष्ण सब राजाओं के देखते देखते ही रुक्मिणी का हरण करके ले आते हैं[4] और रुक्म के द्वारा पीछा किए जाने पर उसे परास्त करते हैं तथा उसका सिर मुड़ा कर छोड़ देते हैं।[5]

इस प्रकार रुक्मिणीमंगल में कवि ने कृष्ण के शील का उद्घाटन करने का यत्न किया है।

रासपंचाध्यायी के कृष्ण अप्रतिम सौन्दर्यशाली हैं और माधुर्य रति के आलंबन के रूप में सामने आते हैं। यहां सर्वप्रथम वे मुरली के द्वारा गोपियों का मन मोह लेते हैं और उनके आने पर उनसे घर लौट जाने की बात कह कर उनके प्रेम की परीक्षा करते हैं।[6] उनके व्यक्तित्व की यह विशेषता है कि वे अपनी मुरली के द्वारा तीनों लोकों की नारियों का मन मोह लेते हैं।[7] वे गोपियों से उनके प्रेम के वश में होकर मिलते हैं[8] और उनके साथ विलासमय क्रीड़ा करते हैं,[9] किन्तु उनके हृदय में काम-भाव का किंचित भी समावेश नहीं हो पाता है, वे उसे पूर्णत: वश में किए रहते हैं।[10] उनका संयोग प्राप्त करने के सौभाग्य के कारण गोपियों में गर्व का संचार होने[11] पर उसे वे अपना विरह उत्पन्न करके मिटाते हैं और तब वह उनके साथ प्रेम मग्न होकर रास मण्डल में विविध प्रकार से रासक्रीड़ा करते हैं। वे गोपियों के प्रेम के प्रति कृतज्ञता प्रकट करना भी नहीं भूलते हैं।[12] इस प्रकार रासपंचाध्यायी में वे प्रेम की मधुर मूर्ति के रूप में चित्रित किए गए हैं।

१-वही, छन्द ६२ । २-वही, छन्द ६२-६३ । ३- वही, छन्द ६४ ।
४-वही, छन्द १९७-१९८। ५-वही, छन्द १३० । ६-रासपंचाध्यायी, अ०१, छं०७५।
७-वही, छन्द ८४ । ८-वही, छन्द ८६ । ९-वही, छन्द ९६ ।
१०-वही, छन्द ९८ । ११-वही, छन्द १०२ । १२-वही, छन्द ९७ ।

९८ इसके अनन्तर भंवरगीत में कवि उन्हें प्रेमी और संवेदनशील के रूप में चित्रित करते हुए उन्हें कहता है, "कि गोपियों के प्रेमविषयक वचनों को उद्धव के मुख से सुन कर उनकी आंखें भर आयीं और प्रेम में वे ऐसे मग्न हुए कि उन्हें कुछ सुधबुध ना नहीं रही ।"[१]

९९ पदावली में भी कवि ने कृष्ण के चरित्रों का बाल, और किशोर रूप में अंकन किया है । यहां कृष्ण के बाल चरित्र के संबंध में एक संभ्रान्त ग्रामीण परिवार के दैनिक जीवन से संबंधित अधिक से अधिक बातों का चित्रण करने का यत्न किया गया है । प्रभाती गान पर जागना,[२] पालने में झूलना, पैर का अंगूठा चूसना, हंसना, किलकना, सुन्दर वेष[३] आदि शैशव सम्बन्धी बातों का उल्लेख करके कवि ने बालकृष्ण के क्रियाकलाप का चित्र उपस्थित किया है । शिशु कृष्ण अतिशय सौन्दर्यशाली हैं ।[४] कवि ने अनेक पदों में उनके शिशु रूप के सौन्दर्य का वर्णन किया है । वे गाय को चिराते हुए अत्यन्त शोभा पाते हैं ।[५] गोपी को देखकर वे खड़े हो जाते हैं, आंखें नचाने लगते हैं, उसको ओर मुड़कर मुस्काते हैं ।[६] राधा को वे अपने बालरूप के सौन्दर्य तथा वाक्पटुता एवं क्रीड़ा प्रिय चपल विनोदी स्वभाव द्वारा सहज ही मोहित कर लेते हैं । इसीलिए राधा उनके नाम को सुनते ही भवन भूलकर बावरी सी हो जाती है ।[७] राधा के साथ विवाह होने पर कवि ने उनके दाम्पत्य भाव की झांकी भी दी है ।[८] श्रीकृष्ण बाल्यावस्था से ही गोपियों के अनुराग के आलम्बन बन जाते हैं[९] परंतु किशोर रूप में वे हास विनोद,[१०] नृत्य, वंशी[११] घुंघराले बाल, मनोहर वेषभूषा और अनुपम छवि[१२] द्वारा गोपियों को मुग्ध कर देते हैं । वे गिरिधारी[१२क] हैं और ब्रजवासियों को उसके कोप से रक्षा करते हैं ।[१३] वे रास रसिक रस नागर हैं ।[१४] फागलीला में कवि ने उन्हें बार बार रंग भीने[१४क] और रस भरे[१५] रूप में चित्रित किया है जो गोपी और ग्वालों के साथ विविध प्रकार से रंग ~~खेलत~~ खेलते हैं ।

१-भंवरगीत, छन्द ७३ । २- पदावली पद ३१ । ३-वही, पद ३४ ।
४-वही, पद ३७ । ५- वही, पद ३८ । ६- वही, पद ४५ ।
७-वही, पद ६३ । ८- वही, पद ६७ और ७० । ९-वही, पद ३५,३६,४२,४४,
४६,४८ । १०-वही, पद ७६ । ११-वही, पद ७७ । १२-वही, पद ७८ ।
१२क-वही, पद १०० । १३-वही, पद ११६ । १४-वही, पद ११९ ।

राधा

७० श्यामसगाई में राधा का परिचय, चंचल, विचित्र और भावुकता कन्या के रूप में दिया गया है।[1] वह कृष्ण के नटवर वेश को देखकर सुधबुध खो बैठती है।[2] और सखियों के कहने पर माता से नाग द्वारा डसे जाने की बात कहती है[3] जिससे गारुड़ी के रूप में कृष्ण बुलाये जांय और उनके दर्शन का अवसर मिल सके।

कृष्ण के आने के समाचार से वह प्रसन्न हो उठती है। और उन्हें सम्मुख देख कर उसमें बालासुलभ लज्जा का संचार होता है। कवि ने यहां उसके शील रक्षण को बड़ी सुन्दरता से चित्रित किया है :

सुनति बचन तत्काल, लड़ैती नैन उघारे,
निरखति हो घनस्याम बदन तें केस संवारे।
सब अपने ढिग निरखि कै पुनि निरखो ढिंग माई,
अधरा डार्यो बदन पै मधुर मधुर मुसकाइ
सकुच मन में बढ़ी ।।[4]

इसके अनन्तर नाममाला में राधा मान करने वाली नायिका के रूप में चित्रित की गई है। उसकी आंखें क्रोध से कुछ कुछ लाल हो रही हैं,[5] वह मान से भरी हुई है।[6] किन्तु फिर भी वह मनाने के लिए आई हुई सखी से बड़े संयम के साथ कुशल पूछती है।[7]

उसके दर्शन से सभी मनोरथ पूर्ण होते हैं।[8] वह अप्रतिम सुन्दरी है।[9] वह कृष्ण को कपटी कहती है[10] और कृष्ण की बड़ाई सुनना उसे अप्रिय लगता है।[11] फिर भी चतुर सखी की वचन चातुरी से उसका गर्व दूर हो जाता है और वह पुनः आ कर कृष्ण से मिलती है।

१- श्याम सगाई, छन्द १ । २- वही, छन्द १० । ३- वही, छन्द १२ ।
४- वही, छन्द २६ । ५- नाममाला दोहा ५२ । ६- वही, दो० ८० ।
७- वही, दो० ८१ । ८- वही, दो० ८२ । ९- वही, दो० ८४ ।
१०- वही, दोहा १२६ । ११- वही, दोहा १५० ।

७१ विरहमंजरी में प्रत्यक्ष विरह के वर्णन में राधा का उल्लेख मिलता है -

ज्यों नव कुंज सदन श्री राधा । विलसत पिय संग रूप अगाधा
पाँगो पीतम अंक सुहाई । कछु इक प्रेम लहरि सो आई ।
संभ्रम भई कहत रसबलिता । मेरे लाल कहां री ललिता ।।[१]

इससे उसके प्रेम का परिचय मिलता है ।

७२ कवि ने कुछ पदों में भी राधा का उल्लेख किया है, यहां उस ने दिखाया है कि राधा का कृष्ण के प्रति अनुराग विवाह से पूर्व ही जाता है ।[२] जब तक वह कृष्ण का मुख नहीं देख लेती है तब तक उसे चैन नहीं पड़ता है ।[३] उसके घुंघराले बाल, मधुर हास्य और चंचल लोचनों की छवि पर कृष्ण भी मुग्ध हो जाते हैं, उसके अंग अंग नवयौवन से भरे हुए हैं ।[४] उसके अनन्तर वह खण्डिता,[५] ~~प्रेम गर्विता~~,[६] ~~आदि के रूप में चित्रित की गयी है~~ अभिसारिका[६] प्रेम गर्विता[७] आदि के रूप में चित्रित की गयी है । वह रंगीली सुघड़ नायिका है,[८] वर्षा में कालिन्दी तट पर मोहन के साथ झूलती है,[९] फाग लीला में उसका रंगरंगीला चित्र दृष्टिगत होता है । [१०]

गोपियां
----

७३ नन्ददास की कृतियों में 'गोपी' नाम का उल्लेख सर्वप्रथम अनेकार्थ भाषा में मिलता है --

दान सांवरे लेत हैं, गोपी प्रेम निधान ।[११]

इसके उपरान्त रूपमंजरी में गोपियों के प्रेम की ओर एक पंक्ति में संकेत किया गया है ।

जब गोपिन की गोरितु होई । तब कहुं आय पाइये सोई ।[१२]

१-विरहमंजरी, पं० ७-८ । २-पदावली, पद ५४ । ३- वही, पद ५५ ।
४- वही, पद ५६ । ५- वही, पद १०१ । ६-वही, पद १०३ ।
७- वही, पद १०१ । ८- वही, पद १२८ । ९-वही, पद १५८ ।

विरहमंजरी में भी वनान्तर विरह के प्रसंग में गोपियों के प्रेम का संकेत मिलता है :

विरह वनान्तर को सुनि लीजै । गोपिन के मन में मन दीजै ।[1]

इन उल्लेखों से यह तो ज्ञान होता है कि गोपियां आदर्श प्रेम स्वरूपिणी रही होंगी किन्तु उनके प्रेम के विषय में अधिक जानने की जिज्ञासा इनसे शान्त नहीं होती है । यद्यपि विरहमंजरी में भी एक ब्रजबाला के प्रेम का वर्णन है तथापि वह इस रूप में नहीं उपस्थित किया गया है जिससे उनके प्रेम का पूर्ण रूप से निरूपण हो सके । विरहमंजरी में कवि ने दिखाया है कि एक ब्रजबाला संध्या को कृष्ण से मिलकर अटारी में सोती है । रात्रि के अन्तिम प्रहर में जब वह जागती है तो ~~बस-वह-विकल-होकर-इस-प्रकार~~ उसे कृष्ण की द्वारावती लीला की सुधि आती है। बस वह विकल होकर इस प्रकार महाविरहिणी हो जाती है कि कुछ ही क्षणों में उसे बारह मासों का विरह अनुभवगत हो जाता है[2] किन्तु ब्रज लीला की सुधि आने पर वह पुनः आनन्द से भर जाती है । कृष्ण की मुरली की मधुर ध्वनि को सुनकर वह उसी ओर, गाय देखने के बहाने चल देती है और कृष्ण को एकान्त में पाकर उसके हर्ष भरे नयनों में लज्जा भर आती है ।[3]

प्रकट है कि इससे उपर्युक्त जिज्ञासा का समाधान पूर्णरूपेण नहीं होता है ।

कवि ने अपनी अन्य कृतियों ~~में,~~ रासपंचाध्यायी, सिद्धान्तपंचाध्यायी और रसमंजरी में भी गोपियों के प्रेम का उल्लेख किया है ।

रासपंचाध्यायी में श्रीकृष्ण के मधुर मुरली नाद को सुनते ही गोपियां अपने घर, सगे सम्बन्धी, लोकलाज आदि का परित्याग कर उनकी ओर चल पड़ती हैं ।[4] उन्हें सामने देख कृष्ण जब घर लौट जाने को कहते हैं[4a] तो वे अपने प्रेमपूर्ण वचनों से कृष्ण को वश में कर लेती हैं[5] और उनके साथ विविध विलासमय क्रीड़ायें करती हैं[5a]। भगवान कृष्ण जैसे नायक का संयोग प्राप्त कर वे कुछ गर्व करने लगती हैं ।[6] इस गर्व को मिटाने और उनके प्रेम को विशुद्ध कर देने की दृष्टि से जब कृष्ण कुछ समय के लिए

अन्तर्धान हो जाते हैं तो वे विरह-विह्वल हो जाती हैं। उन्हें जड़ चेतन का भी बोध नहीं रहता है[१] और वे वृक्ष, लता एवं वन पशुओं के सम्मुख प्रलाप करने लगती हैं।[२] उसी अवस्था में वे कृष्ण के स्वरूप में इतना तन्मय हो जाती हैं कि स्वयं को ही कृष्ण मान कर उन्मत्त अवस्था में उनकी लीलाएं करने लगती हैं।[३] जब वे विरह से अत्यन्त विह्वल होकर अटपटे वचन कहने लगती हैं,[४] तो उन्हें पुनः श्रीकृष्ण का संयोग प्राप्त होता है।[५] अब कृष्ण ही स्वयं उनके आदर्श प्रेम की प्रशंसा करते हैं,[६] गोपियां इसके अनन्तर कृष्ण के साथ रासलीला में विविध प्रकार की प्रेम क्रीड़ाएं करती हैं।

इस प्रकार रासपंचाध्यायी में गोपियां ~~विरहिणी के रूप में चित्रित की गई हैं। वे उद्धव के मुख से~~ अपने आदर्श प्रेम का परिचय देती हैं।

इसी प्रकार सिद्धान्त पंचाध्यायी में भी गोपियों के उपर्युक्त प्रेम का परिचय दिया गया है।

७५ भंवरगीत में गोपियां विरहिणी के रूप में चित्रित की गई हैं। वे उद्धव के मुख से कृष्ण का नाम सुनते ही प्रेम विह्वल होकर पुलकित हो उठती हैं।[७] जब वे कृष्ण का सन्देश सुनती हैं तो मूर्च्छित हो जाती हैं।[८] सुधि आने पर उन्हें उद्धव के मुख से निर्गुण ब्रह्म, ज्ञान और योग की बातें सुनने को मिलती हैं किन्तु वे उद्धव की बातों का युक्तिपूर्वक इस प्रकार [illegible] उत्तर देती हैं[९] एवं कृष्ण और भ्रमर के प्रति उपालम्भ के रूप में दीनो कातरतो अवस्था में ऐसे परम प्रेम का परिचय देती हैं[१०] कि पण्डित उद्धव जी का ज्ञान समूल नष्ट हो जाता है। वे उनके प्रेम से इतने प्रभावित होते हैं कि कृष्ण का गुणगान भूलकर गोपियों के ही गुणों का गान करने लगते हैं।[११]

इस भांति भंवरगीत में गोपियों के विरह का बड़ा मार्मिक चित्रण किया गया है और इससे विरहिणी के रूप में इनका परम प्रेममय व्यक्तित्व मुखर हो उठा है।

१-वही, अ० २, छन्द ५। २-वही, छन्द ६-१६। ३-वही, छन्द १८।
४-वही, अ० ३, छन्द १। ५-वही, छन्द २। ६-वही, छं० १६, १७, १८।
७-भंवरगीत, छन्द ३। ८-वही, छन्द ६। ९-वही छन्द ७-२८।

७६ पदावली में भी कृष्ण के साथ साथ गोपियों का उल्लेख मिलता है। कृष्ण जन्म के समय वे भी ग्वालों के साथ हर्ष से फूला नहीं समाती हैं।[१] उनकी बाल क्रीड़ाओं के समय वे कृष्ण प्रेम में रंगी हुई चित्रित की गई हैं। किन्तु किशोर रूप के प्रति उनका प्रेम और भी सुदृढ़ हो जाता है, वे जल भरने जाती हैं किन्तु स्नेह भर लाती हैं।[२] दधि दानलीला के प्रसंग में वे कृष्ण के साथ विनम्रता-पूर्वक चुटकी लेती हैं।[३]

७७ इस प्रकार नन्ददास की कृतियों में गोपियां, प्रेम की साक्षात मूर्तियों के रूप में ~~बहु~~ सम्मुख आती हैं। यहां 'गोपियां' और 'प्रेम' का अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है। न प्रेम के बिना गोपियों का अस्तित्व है और न गोपियों के बिना प्रेम का। इसीलिए गोपी शब्द को सुनते ही तुरन्त उनके प्रेम का स्मरण हो आता है और यह कहा जाय जाय कि 'गोपी' शब्द से 'प्रेम' का ही बोध होता है, तो अत्युक्ति न होगी। भंवरगीत में उद्धव के ज्ञानोपदेश से उनमें जो बुद्धिपक्ष के दर्शन होते हैं, वह स्पष्टत: निर्गुण भक्ति के प्रति कवि की विरोध भावना के फलस्वरूप हैं और उससे गोपियों के प्रेम सम्पन्न व्यक्तित्व में कोई अन्तर नहीं आता है। अपने प्रेम के साथ ही, वे प्रकृति से सरल, निश्छल और ग्रामीण हैं। उनमें प्रेम के प्रति उत्साह और सजगता है, कृष्ण प्रेम के लिए वे अन्य समस्त वस्तुओं, विचारों और भावों का पूर्ण परित्याग कर देती हैं। जैसे वे मन से सहज ~~देवतो हैं~~ प्रेमवती हैं वैसे ही तन से सहज रूपवती हैं और भांति भांति के श्रृंगार सजाकर अपने रूप के आकर्षण को बढ़ा लेती हैं। वे प्रेमोन्मत्त हैं और वियोग में प्रेम का रेचन न होने पर विरह की दशाओं को प्राप्त कर ~~मूर्च्छित~~ विह्वल होना, रोना, कलपना, प्रलाप करना, मूर्च्छित होना आदि उनकी स्वभावजन्य अवस्थायें हैं। नन्ददास की कृतियों में सर्वत्र ही वे प्रेम या विरह की प्रतीक होकर उतरी हैं और कहीं भी उनके चरित्र का विशेष विकास दृष्टिगोचर नहीं होता है।

१- [illegible], पद ७७ । २- वही, पद ८० ।
३- वही, पद ११३-११४ ।

रूपमंजरी

७८ रूपमंजरी ग्रन्थ में, कवि, रूपमंजरी का परिचय एक सुन्दर और शुभ लक्षणों से युक्त कन्या के रूप में देता है।[1] वह अनुपम रूपवती है किन्तु विवाह योग्य होने पर उसका विवाह एक क्रूर और कुरूप नायक से हो जाता है।[2] उसका रूप द्वितीया के चन्द्रमा की भांति बढ़ने लगता है।[3] उसके सौंदर्य को व्यर्थ जाता हुआ जान कर उसकी सखी इन्दुमती स्वप्न में श्रीकृष्ण से उसका साक्षात्कार[4] करा देती है और जब वह उनसे प्रेम करने लगती है।[5] इसके अनन्तर वह उनसे मिलने के लिए आकुल हो उठती है और फलस्वरूप वह विरहिणी बन जाती है।[6] कवि ने उसके विरह को षट्ऋतु वर्णन के रूप में चित्रित किया है, जहां वह कृष्ण के वियोग में कभी तड़पती और कभी विकल होती है। अन्त में वह इतनी व्याकुल हो उठती है कि उसे आगे जीने की भी आशा नहीं रहती है[7] और प्रलाप करती हुई रो पड़ती है।[8] यहीं उसका स्वप्न में पुनः श्रीकृष्ण से संयोग होता है[9] और उनके साथ रत्यावस्था का अनुभव होता है और वह सुन्दर भाव प्रवण संयोग में शतशः उल्लास से भर जाती है।[10]

७९ इस प्रकार हृदय में कृष्ण का प्रेम उदय होने से पूर्व वह बाला वयसन्धि[11] और अज्ञात यौवना[12] के रूप में तथा कृष्ण प्रेम से परिचय पा लेने पर परकीया प्रोषित पतिका के रूप में चित्रित की गई है। यहां वह एक विरहिणी के रूप में निरन्तर कलपती हुई दृष्टिगत होती है। पावस की रात्रि में वह महा दुख पाती है,[13] शरद में विरह ताप के कारण उसके श्वास से अग्नि की ज्वाला निकलती है,[14] हिमऋतु में सूर्य भी उसे दुखदायी प्रतीत होता है,[15] वह शीत ऋतु में अत्यन्त भयभीत हो उठती है,[16] बसन्त में उसके दुख का ठिकाना नहीं रहता[17] और ग्रीष्म ऋतु में विरह की

१-न० ग्रं०, रूपमंजरी, पं० ५९-६०। २-वही, पं० ८६ । ३-वही, पं० ९१ ।
४-वही, पं० २५८-५९ । ५-वही, पं० २७० । ६-वही, पं० २९४-२९६ ।
७-वही, पं० ३७८ । ८- वही, पं० ४८४ । ९- वही, पं० ४९५ ।
१०-वही, पं० ५२६ । ११-[illegible], पं० ७५ । १२- वही, पं० ९६ ।
१३-वही, पं० ३११ । १४- वही, पं० ३४५ । १५- वही, पं० ३५९ ।
१६- वही, पं० ३७२ । १७- वही, पं० ४५० ।

प्रबल अग्नि उसके हृदय में गाने जाना है[1] जिसके कारण उसे एक क्षण भी जीवित रहना असम्भव प्रतीत होता है ।[2]

८० इससे प्रकट होता है कि रूपमंजरी भी गोपियों की भांति प्रेम और विरह का प्रतीक है । गोपियों के प्रेम और विरह के प्रतीक रूप में उसे चित्रित करना, कवि को अभिलषित ही था । इस बात का और उसने स्वयं संकेत किया है :

जब गोपिन की सी गति होई, तब कहुं आय बाज्यै सोऊ ।।[3]

वस्तुत: प्रेम और विरह के कारण ही रूपमंजरी का व्यक्तित्व प्रकाश में आता है किन्तु वह इस रूप में नहीं आता है कि उससे रूपमंजरी के चारित्रिक विकास का परिचय मिले । वस्तुतः प्रेम और विरह का चित्रण ही कवि का इष्ट होने के कारण रूपमंजरी नायिका के चरित्र में कोई उल्लेखनीय विकास दृष्टिगत नहीं होता है । कुरूप पति से विवाह होने पर उसके हृदय में क्या प्रतिक्रिया हुई, उसके लौकिक पति का क्या हुआ आदि बातों पर भी कवि ने कोई प्रकाश नहीं डाला है ।

इन्दुमती

८१ पीछे कहा गया है कि रूपमंजरी ग्रन्थ में उल्लिखित इन्दुमती स्वयं नन्ददास हैं ।[4]

कवि ने 'इन्दुमती' नाम को रूपमंजरी ग्रन्थ की नायिका की सखी के लिए प्रयुक्त किया है । वह रूपमंजरी के अप्रतिम सौन्दर्य को देखती है और उसको सार्थक बनाने के लिए यत्न करती है :

कहत कि कछु इक करउं उपाई, जो यह रूप अकारन नहिं जाई ।[5]

उसके यत्न का ही फल होता है[6] कि रूपमंजरी का स्वप्न में श्रीकृष्ण से परिचय हो जाता है और वह उनसे प्रेम करने लगती है । इसके अनन्तर वह रूपमंजरी की उसकी विरहावस्था में [illegible] करती है और समय समय धैर्य एवं उत्साह प्रदान करती है ।

१- वही, पं० १०१ । २- वही, पं० १०८ । ३- वही, पं० २५१ ।
४- [illegible], पैरा ऊपर पृ० ८ । ५-रूपमंजरी, पं० १५२ । ६-वही, पं० २५६ ।

वह भगवान की कृपा पर विश्वास करती है और धुन की पक्की है । चित्र-लेखा द्वारा उषा को अनिरुद्ध से मिलाने की बात का उदाहरण देकर वह रूपमंजरी से कहती है :

ऐसे हो जो तोहिं मिलाऊं । इन्दुमती तो नाम कहाऊं ।[1]

रूप मंजरी के हृदय में कृष्ण प्रेम का उदय होना देख वह उसी के हृदय में अपने प्रभु की पूजा करने लगती है और जो कुछ भी उत्तम उत्तम वस्तुएं होती हैं, लाकर उन्हें अर्पण करती है ।[2]

रूपमंजरी की विरह विह्वलता की अवस्था में वह भी [illegible]-से थोड़े जल में मछली की भांति व्याकुल हो उठती है ।[3]

वह बड़ी बुद्धिमती है और रूपमंजरी उसे अपने माता पिता से भी अधिक मानती है ।[4]

विरहिणी रूपमंजरी की करुण अवस्था को देखकर वह ईश्वर से कृपा के लिए दीन स्वरों में प्रार्थना करती है ।[5] उसकी ही दीन याचना का फल होता है कि रूपमंजरी का स्वप्न में दो बार कृष्ण से संयोग होता है और अंतिम संयोग में तो उसे परम उल्लास की प्राप्ति होती है । उसकी संगति से इन्दुमती भी सफल मनोरथ हो जाती है ।[6] बुद्धिमती होने के साथ साथ वह [illegible] भी है ।

ये ही इन्दुमती के स्वभाव की विशेषतायें हैं ।

रुक्मिणी

८२ रुक्मिणी का सर्वप्रथम परिचय रुक्मिणीमंगल में उस अवस्था में मिलता है जब वह शिशुपाल के साथ अपने विवाह की सूचना से चित्र लिखी सी रह जाती है ।[7] कृष्ण से विवाह न होने की आशंका से उसके हृदय में उनका विरह उत्पन्न हो जाता है । वह कन्या है, इसलिए अपने विरह-दुःख को किसी से नहीं कह सकती है,[8]

१-नं० ग्रं०, [illegible], पं० २२७ । २- वही, पं० २७२-२७४ । ३- वही, पं० ४७५ ।
४- वही, पं० ४०७ । ५- वही, पं० २७२-७४ और ५८८-९० ।
६- वही, पं० [illegible] । ७- रुक्मिणीमंगल, छं० ३ । ८- वही, छन्द ८ ।

वह सोच में पड़ जाती है । अन्त में वह लोकलाज का परित्याग करके अपनी दशा दर्शाते हुए कृष्ण के लिए एक पत्र लिखती है ।[1] पत्र में वह यह भी लिख देती है कि यदि उन्होंने उसे नहीं अपनाया तो वह तिनके के समान अग्नि के कुन में जली जायेगी ।[2] इधर विवाह से पूर्व वह देवी अम्बिका से भी वरदान माँग लेती है कि गोविन्द को पतिरूप में प्राप्त करूँ ।[3]

विवाह मण्डप में आने पर कृष्ण को देखते ही उसकी विचित्र सी दशा होजाती है, उसके शरीर में पंख न होते तो वह उनके पास उड़कर चली जाती ।[4]

यथार्थत: रुक्मिणी का कृष्ण प्रेम विरहाकुल गोपियों का ही प्रेम है, इसका कारण गोपियों के प्रेम का आदर्श रूप में रुक्मिणी के सम्मुख होना है ।

संक्षेप में यही रुक्मिणी के व्यक्तित्व की झांकी है ।

उद्धव

८३ भंवरगीत का आरम्भ ही उद्धव के नाम से होता है । यहाँ वे कृष्ण के संदेश वाहक के रूप में दृष्टिगत होते हैं । कृष्ण का संदेश कहने के उपरान्त वे निर्गुण ब्रह्म के उपासक और ज्ञान मार्ग के समर्थक के रूप में सामने आते हैं । वे प्रेमभक्ति द्वारा प्रतिपादित सगुणोपासना का ज्ञानमार्ग के प्रकाश में खण्डन करते हैं और जितनी तत्परता से गोपियां सगुण ब्रह्म का गुणगान करती हैं, उतनी ही तन्मयता से वे निर्गुणोपासना का पक्ष लेते हैं ।[5] उन्हें ज्ञान का गर्व है, वे तार्किक पण्डित हैं, किन्तु गोपियों के प्रेम प्रवाह में उनका सब गर्व और पंडिताई बह जाती है ।[6] गोपियों की प्रेम विह्वलता को देखकर उनमें शुद्ध प्रेमभक्ति का उदय होता है और वे गोपियों के दर्शन मात्र से अपने को धन्य समझने लगते हैं ।[7] यही नहीं वे पुलकित होकर और कृष्ण के गुणों को भूलकर गोपियों का गुणगान करने लगते हैं ।[8] इससे उनकी सहृदयता और सरलता का भी परिचय मिलता है ।

८४ इस प्रकार ब्रज से लौटते लौटते उनका स्वरूप ही बदल जाता है और मथुरा पहुंचने पर वे कृष्ण पर क्रोध भी प्रकट करते हैं कि उन्होंने गोपी जैसी सच्ची प्रेमि-

---

१-वही,छं०१०३। २-वही,छं०९८ । ३-रुक्मिणी०,छं०१०४-५।४-वही,छं०११६। ५-भंवरगीत,छं०-३१।६-वही,छं०६१।७-वही,छं० ६२। ८-वही, छं० ६८ ।

कार्यों की उपेक्षा की है ।[1] यह क्रोध सात्विक भाव का है, तामसिक नहीं, अत: भक्ति भाव की दृष्टि से उपादेय है । उद्धव के द्वारा वर्ण परिवर्तन से जहां गोपियों के प्रेम की महत्ता प्रमाणित होती है वहां उद्धव के स्वभाव की कोमलता की भी व्यंजना होती है ।

शुकदेव जी

८५ रासपंचाध्यायी के आरम्भ में शुकदेव जी का उल्लेख उपलब्ध होता है । वे संसार का कल्याण करने वाले हैं और वे हरि की लीलाओं के आनन्द में विचरण करते हैं । उनका शरीर स्निग्ध सुकुमार और नवयौवन से भरा हुआ है । वे कृष्ण भक्ति के प्रतिबिम्ब से प्रतीत होते हैं और अज्ञानता रूपी अन्धकार के लिए करोड़ों सूर्यों के समान हैं । उनके दर्शन मात्र से काम, क्रोध, मोह, मद, [illegible] लोभ आदि सांसारिक दुर्गुण नष्ट हो जाते हैं । उन्होंने मानवमात्र को अज्ञान के दुख से पीड़ित देखकर श्रीमद्भागवत् रूपी चन्द्रमा को प्रकट किया है ।[2]

संक्षेप में ये ही उनके व्यक्तित्व की [illegible] हैं ।

परीक्षित

८६ भक्तों में रत्नों के समान और परम भगवद्भक्त के रूप में, रासपंचाध्यायी में परीक्षित का परिचय दिया गया है । उनका मन प्रतिपल श्रीकृष्ण की कथा की ओर उसी प्रकार लगा रहता है जिस प्रकार कामी पुरुष का मन पराई स्त्री के साथ प्रेम प्रसंग में रमा रहता है । यहां वे शुकदेव जी से यह प्रश्न पूछते हुए चित्रित किए गए हैं कि गोपियों ने श्रीकृष्ण के प्रति ईश्वर भाव नहीं रखा, फिर भी वे उन्हें कैसे प्राप्त हो गए ? इसका उत्तर उन्हें शुकदेव जी से मिलता है, वे सर्व भाव भगवान हैं, उनके साथ चाहे जिस भाव से सम्बन्ध स्थापित किया जाय, वे प्राप्त हो जाते हैं ।[3]

१- वही, पृष्ठ ७१-७२ । नं० ग्रं०, रासपंचाध्यायी, अध्याय १, छं० १-१४ ।

२- वही, पृष्ठ [illegible] ।

धर्मधीर

८७ रूपमंजरी ग्रन्थ में धर्मधीर को निर्भयपुर के राजा और रूपमंजरी के पिता के रूप में चित्रित किया गया है। वे धर्म की रक्षा के लिए प्रकट हुए हैं। उनकी कीर्ति चारों ओर फैली हुई है और गुणीजन भी उनका गुणगान करते हैं।[1] इतना होने पर भी उनकी ही असावधानी से उनकी अनुपम सौन्दर्यशालिनी रूपमंजरी का विवाह एक 'कूर कुरूप' युवक से हो जाता है।[2] इसके अतिरिक्त धर्मधीर के विषय में अन्य कोई विवरण नन्ददास ने नहीं दिया है।

यशोदा

८८ श्यामसगाई में यशोदा का सहज मातृत्व चित्रित किया गया है। यहां स्नेहशीलता और सरलता उसके स्वभाव की दो विशेषताएं हैं। कीर्ति द्वारा कृष्ण के विवाह-प्रस्ताव के अस्वीकृत किए जाने पर वह चिन्तित हो उठती है।[3] और कृष्ण की युक्ति से जब कीर्ति यह प्रस्ताव सहर्ष मान लेती है तो उसके आनन्द की सीमा नहीं रहती है।[4] पदावली में भी यशोदा के स्वभाव का किंचित चित्रण मिलता है। यहां वह शिशु कृष्ण का मुख चूम कर फूली नहीं समाती है,[5] वह तन मन से उनकी बलैया लेती है,[6] प्रभाती गा कर कृष्ण को जगाती है और उनकी तुतली वाणी को सुनकर अत्यन्त हर्षित होती है।[7] इससे भी उसके सहज मातृत्व का ही परिचय मिलता है।

८९ चरित्र चित्रण की दृष्टि से नन्ददास की कृतियों पर उपर्युक्त प्रकार से विचार कर लेने पर ज्ञात होता है कि कवि ने पात्रों के चरित्रों के चित्रण के लिए अपनी कुशल कला का उपयोग नहीं किया जिससे उनके किसी भी पात्र के चरित्र को समुचित विकास प्राप्त नहीं हो सका है। उनके पात्रों के चरित्र-चित्र ऐसे हैं जिनमें

१- रूपमंजरी, पं० ५३-५६। २- वही, पं० ८६। ३- श्यामसगाई, छं० ७।
४- वही, छन्द १८। ५- न० ग्रं०, पदावली, पद २८।
६- वही, पद २८। ७- वही, पद ३१।

केवल एक रंग का उपयोग किया गया है वह भी श्याम-रंग है। नन्ददास के जिस पात्र को भी देखिए वह श्याम रंग में रंगा हुआ है, जो नहीं भी है रंगा है--जैसे उद्धव, वह रंग दिया गया है। श्रीकृष्ण और उद्धव को छोड़कर यहां प्रमुखतः सभी स्त्री पात्र हैं और वे सभी कृष्ण प्रेम में उन्मत्त हैं अथवा उनके विरह में रोती कलपती हैं, उनका एक मात्र लक्ष्य है कृष्ण के संयोग सुख को प्राप्त करना। कृष्ण प्रेम ही उनका स्वभाव है और यही उनकी प्रधान विशेषता है। कृष्ण के लिए वे घर, सगे, संबंधी, लोक लाज आदि किसी की भी परवाह नहीं करती हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि कवि ने जैसे 'गोपी-प्रेम' के रूप में आदर्श पा लिया हो और उसी को सभी पात्रों के हृदय में रखा गया हो इसीलिए उसकी सभी कृतियों में गोपियों का सा ही प्रेम दृष्टिगत होता है।

o

प्रकृति चित्रण

६० नन्ददास की कृतियों में प्रकृति का उल्लेख सर्वप्रथम अनेकार्थ भाषा में दृष्टि-गत होता है। कवि 'घन' शब्द के अर्थ लिखने के उपरान्त लिखता है :

घन अंबुद घन सघन घन, घन रुचि नन्दकुमार।[1]

इसी प्रकार 'विटप' शब्द के अर्थ लिखने के उपरान्त कवि का कथन है :

'विटप वृक्ष की डार गहि ठाढ़े नंद कुमार।[2]

प्रकट है कि कवि को प्रकृति वर्णन अभीष्ट नहीं है, शब्दों के अर्थों को स्पष्ट करने के लिए ही प्रसंग वश प्रकृति बोधक शब्दों का उल्लेख स्वयमेव हो गया है। यद्यपि इसे प्रकृति चित्रण नाम नहीं दिया जा सकता है क्योंकि इसमें कोई वर्णन न होकर प्रकृति बोधक एक शब्द का उल्लेख मात्र है तथापि यह उनकी शब्द 'प्रकृति'

६१ प्रकृति का इससे किंचित अधिक उल्लेख नाममाला में मिलता है। इसमें प्रकृति विषयक निम्न उल्लेख द्रष्टव्य है :

(१) अटवो में इकले दई मोहन नंदकुमार ।[१]

(२) सुबद सुहाई सरद की कैसी रजनी जाति ।
चलि वलि प्यारे पीय पै कत बैठी अनखाति ।।[२]

(३) रटत विहंगम रंग भरे, कौसन कंद सुजात ।
पुव आगमन आनन्दकर करत परस्पर बात ।।[३]

(४) यह रसाल को माल वलि नै जु रहो फल भार ।। [४]

इन उल्लेखों को कवि ने क्रमश: `कानन`, `रजनी`, `कंज`, और `आम्र` शब्दों के पर्याय देने के उपरान्त दिया है। अत: इनसे एक बात यह ज्ञात होती है कि कवि ने प्रकृति का उल्लेख शब्दों के अर्थ प्रकाशन के उद्देश्य से किया है।

नाममाला में कवि की प्रवृत्ति यह है कि वह दोहे की प्रथम पंक्ति या पहले दोहे में प्रत्येक शब्द के विभिन्न पर्याय देता है और दोहे की द्वितीय पंक्ति या दूसरे दोहे को राधा के मान की कथा की कड़ी के रूप में रखता है, अत: दूसरी बात यह ज्ञात होती है कि उक्त उद्धरणों में प्रकृति का वर्णन उद्दीपन के रूप में और प्रसंगवश हुआ है।

६२ रसमंजरी में परकीया वाग्विदग्धा के प्रसंग में कवि ने नायिका के मुख से प्रकृति का उल्लेख कराया है। [illegible] कहती है, `रे पथिक ! धाम बरस रहा है, कहीं कुछ विश्राम कर लो। यहां समीप ही यमुना तट है जहां शीतल मन्द सुगन्ध वायु बह रही है, वहां घनी छाया वाला तमाल वृक्ष है और प्रफुल्लित चमेली की लता है। वहीं क्षण भर बैठ कर रसिक हो लो, फिर चले जाना`।[५] इस उद्धरण में प्रकृति को उद्दीपन के रूप में चित्रित किया गया है। इसके अतिरिक्त रस मंजरी में प्रकृति के उल्लेख के प्रति कवि के एक भिन्न दृष्टिकोण की सूचना मिलती

१-नाममाला, दो० १७२। २- वही, दो० १७६। ३- वही, दो० २१८।
४- वही, दो० २२१। ५- न० ग्र०, रसमंजरी, पृ० १७९।

है । प्रोषित उत्कंठिता के प्रसंग में `कुंज सदन` में कवि ने नायिका से कहलाया है, `हे भ्राता निकुंज सुनो, हे बहन कुटो जरा ध्यान दो, हे माता रात्रि और पिता अंधेरे, तुम हमारे हितैषी हो । तुमसे पूछती हूं, बताओ मोहनलाल क्यों नहीं आये ? [१] यहां प्रकृति का मानवीकरण भी किया हो गया है, उससे संबंध भी स्थापित कर लिए गये हैं । इसी साथ ही उससे नायिका के `प्रलाप` की अवस्था का भी भान होता है ।

६३ रूपमंजरी में प्रकृति चित्रण कुछ विस्तार के साथ मिलता है । निर्भयपुर के वर्णन के प्रसंग में कवि कहता है, `आसपास सुन्दर बाग हैं, फुलवारियां फूलों से भरी हुई हैं, फूल तोड़ती हुई मालिन ऐसी शोभित हैं, मानों धरती पर परी उतर आई हो । वहां शुक सारिका, पिक, तीतर, हरियल, चातक-पोत और कपोतों के बोलने से उत्पन्न मधुर ध्वनि ऐसी लगती है मानों कामदेव की पाठशाला लगी हुई हो` ।[२] यहां यद्यपि वर्णन अत्यन्त संक्षिप्त है तथापि यह इस बात को प्रकट करने के लिए पर्याप्त है कि इसमें कवि की प्रवृत्ति प्रकृति के रूपों का ही उद्घाटन करने की ओर है और इसलिए यह चित्रण, आलम्बन रूप का चित्रण है । वस्तुत: आलम्बन रूप का प्रकृति चित्रण ही वास्तविक प्रकृति चित्रण है । इस प्रकार के प्रकृतिचित्रण के भी दो रूप होते हैं, एक में बिम्बग्रहण होता है और दूसरे में अर्थग्रहण । ऊपर के उदाहरण में अर्थ ग्रहण मात्र होता है । इसी प्रसंग में कवि का कथन है कि वहां फलों के भार से ऐसे वृक्ष ऐसे नमित हैं जैसे संपत्ति मिलने पर उच्च विचार वाले व्यक्ति विनम्र हो जाते हैं । तालाब की तो कवि का कहना ही क्या, उसमें सारस और हंस शोभित हैं, उसका निर्मल जल मुनियों का हृदय है जिसका स्पर्श करते ही सभी पाप धुल जाते हैं । उस सुन्दर जल में कमल के पुष्प खिले हुए हैं । जल में पुष्पों की पराग ऐसी पड़ी हुई है जैसे शीशे की भीतर वायु के रह जाने से कण के समान बुलबुले हों ।`[३]

१- वही, पृ० [illegible] । २- रूपमंजरी, पं० ४२-४५ । ३-वही, पं० ४६-५० ।

प्रकट है कि यहां प्रकृति का चित्रण उपदेश देने के माध्यम के रूप में किया गया है और केवल प्रकृतिचित्रण कवि को इष्ट नहीं है।

६४ रूपमंजरी में षट्ऋतुओं का भी वर्णन किया गया है। यहां कवि सर्वप्रथम पावस का वर्णन करते हुए कहता है, 'पावस ऋतु के आने पर सहचरी अत्यन्त भयभीत हो जाती है। बादलों से घिरी हुई दिशाओं को देख कर उसका भय बढ़ जाता है। काम देव की सेना रेणु की भांति बनी आती है। बादलों के घोर गर्जन से भयभीत होकर सहचरी सखी की गोद में छिप जाती है, भयानक काले काले बादल उमड़ आते हैं, जिनके घुमड़ते हुए देखकर भय उत्पन्न होता है और ऐसा लगता है मानों कामदेव हाथी लड़ा रहा हो।'[1]

यहां पावस का वर्णन उद्दीपन के रूप में हुआ है और रूपमंजरी के विरह भाव का भी प्रकाशन हुआ है। पावस वर्णन के प्रसंग में ही कवि ने प्रकृति को उपदेशात्मक रूप में भी प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया है, यह बात 'बाट घाट, तृन छादित ऐसे, बिनु अभ्यास बलि विद्या जैसे'[2] के कथन से प्रकट होती है।

शरद ऋतु में कोई उल्लेखनीय चित्रण नहीं दिया है, अतः उसका उल्लेख करना व्यर्थ है।

६५ जो प्रकृति प्रियतम की उपस्थिति में आनन्द का साधन होती है, वही उसकी अनुपस्थिति में दुखदाई बन जाती है और उसमें अपने मनोभावों के अनुसार क्रूरता और असहिष्णुता आदि के दर्शन होने लगते हैं। रूप मंजरी में हिम ऋतु के प्रसंग में यही बात कही गई है। वहां रूपमंजरी कहती है, 'हिम ऋतु के आने पर सूर्य महा दुखदायी हो जाता है। बड़ी बड़ी रातें और छोटे छोटे दिन प्रियतम के बिना कैसे व्यतीत हों। जब 'जाड़ राह' तन को अत्यन्त सताने लगती है तो सांवरे प्रियतम के हृदय से लगकर सोने की अभिलाषा होती है।[3]

शीत और बसन्त तथा ग्रीष्म ऋतुओं के वर्णनों में भी इसी भावना का अनुसरण किया गया है।

१- वही, पं० ३०७-३०८। २-वही, पं० ३२९। ३-वही, पं० ३५५-६१।

६.६ विरहमंजरी में प्रकृति के सम्बन्ध में नंददास उस परंपरागत दृष्टिकोण को अपनाते हुए दृष्टिगत होते हैं जो कालिदास के मेघदूत, नैषध चरित में हंस के वृत्तान्त आदि से प्रभावित हैं। विरहमंजरी में चन्द्रमा के द्वारा प्रियतम को सन्देश भेजने का उल्लेख है जिसका संकेत कवि ने ग्रन्थ के आरम्भ में ही दे दिया है। कवि कहता है, 'परम प्रेम की वृद्धि के लिए व्रज बाला के तन और मन में जब काम देव उदय होकर बढ़ गया तो वह विरहिणी होकर चन्द्रमा से कहने लगी-- हे चन्द्र! तुम द्वारावती की ओर जाते हो, वहाँ नन्दनन्दन से मेरा सन्देश कह देना।'[1] कवि ने विरहिणी के संदेश के रूप में बारह महीनों का वर्णन किया है। चैत मास के वर्णन में कवि विरहिणी से कहलाता है--' हे चन्द्र तुम प्रियतम से अच्छी प्रकार कहना कि तुम अन्त में बने हो गये'। उसी समय कोयल मधुर स्वर में बोल उठती है जिसे सुनते ही उसका हृदय व्यथित हो जाता है।[2]

स्पष्ट है कि यहाँ भी कवि ने प्रकृति को, मनोदशा के प्रकाशन के साधन के रूप में दिखाया है और विरहिणी की धारणा के अनुसार उसका रूप प्रस्तुत किया है। इस बात की पुष्टि विरहमंजरी के निम्न कथन से भी हो जाता है :

सुखद जु हुती तुम्हार संग। सो अब बैरी भयौ अनंग।[3]

कवि का यही दृष्टिकोण अन्य महीनों के वर्णनों में भी मिलता है।

यह उल्लेखनीय है कि विरहमंजरी में व्रजबाला के भावनात्मक विरह का वर्णन करना ही कवि को इष्ट है और बारह मासों के वर्णन केवल मात्र विरह को प्रकट करने के लिए ही किया गया है। यही ध्वनि कवि के निम्न कथन से निकलती है--

द्वादस मास विरह की कथा। विरहिनि को दुखदायक जथा।
छिनक मास बरनौ तिथि बाला। महा विरहिनी हुई तिहि काला।।[4]

१- न० ग्रं०, विरहमंजरी, पंक्ति १-२। २- वही, पंक्ति २५-२६।
३- वही, पं० २८। ४- वही, पंक्ति २१-२२।

९७ रुक्मिणीमंगल में द्वारकापुरी के वर्णन के प्रसंग में प्रकृति चित्रण की एक सुन्दर झांकी मिलती है :

ललित लतन की फूलनि, फूलनि अति छवि छाजैं ।
शिखर शिखर राजै मयूर जन दै बाजै ।
सुक पिय चातक सबद सुहाये धुनि कल कूहरों ।
मनों मार चटसार सुढार चटा दै पढ़ मो ।।[1]
और विहंगम रंगभरे बोलत छवि करहीं ।
मनु तरुवर रसभरे परस्पर बातैं करहीं ।।
सुभग सुगंध सरोवर निर्मल मुनि मन जैसे ।
प्रफुल्लित बहु कंज सरोवर राजत तैसे ।
कुंज कुंज प्रति पुंज भंवर गुंजत अनुसारे ।
मनु रवि-डर तम भजे तजे रोवत हैं बारे ।।[2]

यहाँ कवि ने प्रकृति का एक छोटा सा चित्र प्रस्तुत करने का सफल प्रयास किया है । इससे ज्ञात होता है कि इन पंक्तियों में प्रकृति का वर्णन करना ही कवि को इष्ट था । अतः इनमें कवि का प्रकृति-चित्रण सम्बन्धी दृष्टिकोण, आलम्बन रूप का है ।

९८ नन्ददास की कृतियों में प्रकृति का सर्वाधिक उल्लेख रासपंचाध्यायी में देखने को मिलता है । रासपंचाध्यायी में प्रकृति वर्णन की दृष्टि से सर्वप्रथम शरद रजनी के वर्णन का उल्लेख किया जा सकता है । यहाँ कवि कहता है, 'शरद रात्रि में फूले हुए फूल बहुत सुन्दर लगते हैं और उनमें ऐसी तुनाई आ जाता है मानों शरद ऋतु की सुन्दर सुहावनी रात्रि ही मूर्तिमान होकर हंस रही हो । उसी समय रास शोभा के आनन्द को बढ़ाने वाला चन्द्रमा इस प्रकार उदित होता है मानो सिंदूर से प्रियामुख मण्डित करके चतुर नायक प्रकट हो गया हो । चन्द्रमा की कोमल किरणों की लालिमा इस प्रकार वृन्दावन में छा गई जैसे काम देव द्वारा खेला गया फाग का गुलाल उड़ उड़ कर चारों ओर छा गया हो । चन्द्रमा की किरणें जब कुंज की पंक्तियों के छिद्रों से छन छन कर वहां आती हैं तो ज्ञान पड़ता है कि विपिन के

१- रुक्मिणीमंगल, छन्द ३०-३१ । २-वही, छन्द ३२-३४ ।

के ऊपर एक विस्तृत शामियाना तना हो और उज्ज्वल किरणें उसकी स्वेत डोरियां हों। धीरे धीरे ऊपर उठता हुआ चन्द्रमा ऐसा जान पड़ता है मानों वह श्रीकृष्ण की लीला को झांक झांक कर देख रहा हो।[1]

स्पष्ट है कि यहां पर शरद रजनी का वर्णन उद्दीपन के रूप में हुआ है। साथ ही अलंकार के लिए भी प्रकृति-चित्रों का उपयोग किया गया जान पड़ता है।

९९ इसी प्रकार वन विहार के प्रसंग में कवि ने प्रकृति का वर्णन किया है। उसका कथन है, 'यमुना तट पर कहीं मालती महक रही थी, कहीं बेला के मनोहर फूल थे और कहीं शीतल पवन मंदार झकोरे दे रहा था। एक ओर नवीन लवंग लता शोभित था, दूसरी ओर कुब्जक, केतकी और केवड़े के फूल महक रहे थे। तुलसी इधर सुगन्ध बिखेर रही थी, उधर कुंद प्रफुल्लित होकर सुख लूटा रहा था। यमुना के तट पर उसी की लहरों से बनी कुछ उज्ज्वल और सुन्दर बालू सुशोभित हो रही थी, उसी पर बैठकर श्रीकृष्ण आनन्द में भर कर विविध प्रकार की सुखद विलास लीलायें कर रहे थे।'[2]

यहां भी प्रकृति को उद्दीपन रूप में ही चित्रित किया गया है।

१०० विरह दशा के वर्णन में भी कवि ने प्रकृति का उल्लेख किया है। गोपियां कहती हैं :

> हे मालति! हे जाति! जूथिके! सुनियत दै चित।
> [illegible] मनहरन गिरिधर लाल लखे इत॥
> हे केतकि! इत कितहुं, तुम चितये पिय रूसे।
> किधौं नंदनंद मंद मुसकि तुमरे मन मूसे॥[3]

इसी प्रकार मुक्ताफल, मंदार, करवीर, चंपक, लताओं, पुनागवृक्ष, कदंब, अंब निंब, वट इत्यादि वृक्ष-लता और पशुओं के सम्मुख गोपियां प्रलाप करती हैं।[4]

१- रासपंचाध्यायी, अ० १, छं० ४९-४४। २- वही, छन्द ९२-९६।

१०१ इससे प्रकट होता है कि विरह दशा के उक्त प्रसंग में कवि ने प्रकृति को गोपियों के मनोद्गारों के प्रकाशन के साधन के रूप में चित्रित किया है। यहाँ प्रकृति के जड़ चेतन रूप में कोई भेद नहीं है। सारी प्रकृति का ही मानवीकरण कर दिया गया है। इसका कारण गोपियों की विरहावस्था है। विरह की अवस्था में विक्षिप्त सी होकर वे उक्त प्रकार का प्रलाप करती हैं। किन्तु, उन्हें कोई उत्तर नहीं मिलता है, जिससे उनका विरह और भी तीव्र हो जाता है; दूसरे शब्दों में, यहाँ प्रकृति उद्दीपन के रूप में भी चित्रित होती है।

१०२ सिद्धान्त पंचाध्यायी में प्रकृति का वर्णन केवल विरह दशा के प्रसंग में ही हुआ है[1] जो लगभग वही है जिसका उल्लेख रासपंचाध्यायी के उसी प्रसंग में ऊपर किया जा चुका है। अतः उसका पुनरुल्लेख अनावश्यक होगा।

१०३ भँवरगीत में प्रकृति का कोई चित्रण नहीं मिलता है। उद्धव के मनोद्गार प्रकाशन के साधन के रूप में केवल एक स्थान पर प्रकृति का उल्लेख मात्र किया गया है—

कै ह्वै रहौं द्रुम गुल्म लता बेली बन माहीं।
आवत जात सुभाय परै मोपै परछाहीं।।[2]

१०४ उपर्युक्त कृतियों के प्रकृति-वर्णन के समान ही पदावली में भी कवि ने प्रकृति का उल्लेख किया है जिसको संक्षेप में नीचे दिया जाता है।

कृष्ण जन्म के समय के एक पद में वर्षा के चित्रण में कवि का कथन है,

बार बार गरजो बरसावति अंबुद अंबर छायौ।
जमुना निज बपु सैल जानकें बृंद बधावन आयौ।[3]

इसी प्रकरण में एक अन्य पद्यांश भी द्रष्टव्य है :

फूली फूली घटा आई घहरि घहरि भूमि कै,
फूली फूली बरखा होति, झर लागति झूमि कै।
कमल कुमोदिनी फूली जमुना के कूलि कैं।
द्रुम बेलि फूली फूलि झुकि आई भूमि कै।

१-सिद्धान्त पंचाध्यायी, छं० ७१-७९ । २-भँवरगीत, छं०६७ । ३-पदावली, पद २३ ।

होता है । उनकी भक्ति के आश्रय श्रीकृष्ण हैं और श्रीकृष्ण के लीला क्षेत्र ब्रज और द्वारिका रहे हैं । ये दोनों ही स्थल भौतिक ऐश्वर्य के साथ साथ प्राकृतिक सौन्दर्य से भी उत्पन्न थे । कवि ने इन स्थलियों का सूक्ष्म निरीक्षण किया है और फलस्वरूप उनका स्वतंत्र रूप से वर्णन भी किया है । इस प्रकार के वर्णनों के बीच बीच में वहाँ के प्राकृतिक सौंदर्य का भी वर्णन स्वतः हो गया है । उक्त उदाहरणों से यही प्रकट होता है कि केवल प्रकृति का वर्णन करना कवि को इष्ट नहीं था इसीलिए उसकी कृतियों में प्रकृति का आलम्बन रूप में अत्यल्प चित्रण हुआ है और अधिकांश उल्लेख उद्दीपन रूप में ही हुए हैं । इनके अतिरिक्त कवि ने प्रकृति को अलंकारों एवं मनोद्गारों के प्रकाशन के साधन के रूप में चित्रित किया है । इन सभी रूपों में नन्ददास का प्रकृति चित्रण यद्यपि आकार में अधिक नहीं है तथापि वर्ण्य विषय और कृतियों के छोटे आकारों के साथ सीमित काव्य को देखते हुए इतना तो है ही कि उसे प्रकृति चित्रण की संज्ञा दी जा सके ।

o

अलंकार

१०६ अब तक प्रस्तुत किये गए अध्ययन से यह आभासित होने लग गया होगा कि नन्ददास सौंदर्य प्रिय कवि हैं और वस्तुओं के सौंदर्यमय पक्षों पर ही उनकी दृष्टि जाती है । जहाँ उनकी सौंदर्यानुभूति सजग हो उठती है, वहीं पर उन्हें सौंदर्य के बोध एवं प्रभावोत्पादन के लिए अप्रस्तुतों की कल्पना करनी पड़ती है जिसके फलस्वरूप अभिव्यक्ति के साथ साथ अलंकारों का भी समावेश हो जाता है । सत्य तो यह है कि अलंकारों का बलात समावेश करके चमत्कार उत्पन्न करने की ओर नन्ददास की कुछ प्रवृत्ति नहीं रही है और जो भी अलंकार उनकी कृतियों

में प्रयुक्त हुए हैं उनसे भाव और भाषा की प्रभावोत्पादकता और सजीवता की वृद्धि में सहायता पहुंची है तथा वे भावों पर भार नहीं हो पाये हैं। इन अलंकारों के द्वारा भावों में आकर्षण और सजावट के तो दर्शन होते ही हैं, साथ ही कवि कल्पना का विलासमय स्वरूप भी दृष्टिगत होता है। स्मरणीय है कि नन्ददास की कृतियों में समाहित अलंकारों द्वारा रूप, स्वभाव, दृश्य और भाव विषयक चित्रण ही प्रमुखत: उत्कर्ष को प्राप्त हुए हैं। अत: यहां उन्हीं के प्रकाश में, कवि के काव्य में आये हुए प्रमुख अलंकारों का दिग्दर्शन कराने के साथ साथ उसकी कल्पना सृष्टि का भी परिचय देने का प्रयत्न किया गया है।

रूपचित्रण

१०७ रूपमंजरी के सौंदर्य बोध के लिए कवि पहले उसके अंग अंग में शुभ लक्षणों का दर्शन करता है और उसे प्रकट करने के लिए, 'मृग की मानों चंचल औनी'[1] और 'दूसरी मनहुं समुद्र की बेटी'[2] जैसी उत्प्रेक्षाओं की कल्पना करता है किन्तु इससे भी संतुष्ट न होकर रूप सौंदर्य की अनुभूति के लिए नवीन कल्पना का सहारा लेता है। वह कहता है, 'उसके मुख की शोभा इतनी उज्ज्वल और कांतिमय है कि उसके पिता के घर में संध्या को दीपक नहीं जलाया जाता है, पर बिना दीपक के ही उसके मुख की आभा से प्रकाशमान रहता है।'[3] इस कल्पना के रूप में विभावना अलंकार को स्थान मिला है। कवि उत्प्रेक्षा करता है कि 'रूपमंजरी की भौंहें मानों बाल कामदेव की 'कमानें' हैं[4] और उसका बाल रूप संसार को प्रकाशित करने वाला एक दीपक है जिसमें स्त्री पुरुष सभी के नयन पतंग के समान उड़ उड़ कर गिरते हैं[5] यहां उत्प्रेक्षा के साथ उपमा का भी समावेश हुआ है। कवि 'उदाहरण' द्वारा कहता है कि' उसका रूप इस प्रकार बढ़ता है जैसे द्वितीया के चंद्रमा की कलाएं बढ़ती[6]

१-न० ग्र० रूपमंजरी, पं० ६३ । २- वही, पं० ६५ । ३-वही, पृ० ६६ ।
४-वही, पं० ७९ । ५- वही, पृ० ८० । ६- वही, पं० ९१ ।

हैं और 'प्रतीप' को अंगीकार करते हुए वह कहता है, 'उसके गोरे वर्ण के सामने तपे हुए सोने का रंग भी फीका लगता है,'[1] उसके नेत्रों के सामने मृग, खंजन, कमल और मछली सब छवि हीन होकर छिप जाते हैं[2] और 'हँसते समय उसके दाँतों की शोभा के सम्मुख दाड़िम और मोती कुछ भी नहीं हैं।'[3]

मस्तक की बिन्दी आदि शृंगार का वर्णन करने के उपरान्त कवि कहता है कि उसके श्रवण काल की-वरुणों का चंचलता, यौवन आने पर नेत्रों में आ गई है और उसके नेत्र जब तिरछे देखते हैं तो प्रतीत होता है मानों वे कानों के पास जा कर कुछ मंत्रणा कर रहे हों,[4] कवि के इन कथनों में गम्योत्प्रेक्षा के दर्शन होते हैं।

१०८ रूपमंजरी के सौंदर्य के उपमान जुटाने में कवि की कल्पना अत्यन्त सक्रिय रूप में दृष्टिगत होती है। नासिका की नथ के लिए 'मनकामनी',[5] अधरों के मध्य की रेखा के लिए 'पीक के पान रेखे',[6] दोनों हाथों के लिए 'कमल के निधि'[7] रोमावलि के लिए, 'वेनी की छक्कांई'[8] और कमर की किंकिणी के लिए 'काम सदन की बंदनमाला'[9] के उपमान जुटाकर उत्प्रेक्षाएं की गई हैं किन्तु जब रूपमंजरी चलती है तो कवि एक अद्भुत उत्प्रेक्षा की कल्पना करता है--'रूपमंजरी जहाँ जहाँ चरणों को रखती है वहाँ धरती अरुण होकर ऐसा प्रतीत होती है मानों वह अपनी जिह्वा को रखती जाती हो।'[10] इस विलक्षण कल्पना के उपरान्त भी जब उसे सन्तोष नहीं होता तब वह उसकी छवि के वर्णन करने में अपना असामर्थ्य प्रकट करता है, 'नन्ददास के लिए रूपमंजरी की छवि का वर्णन करने का प्रयत्न करना वैसा ही है जैसे पानी का निर्मल चन्द्रमा की ओर हाथ पसारना।'[11] इस कल्पना में भी उदाहरण अलंकार स्वभावत: आ गया है।

१- न० ग्रं०, रूपमंजरी, पं० १०५। २- वही, दो० १०३। ३-वही, पं० १२०।
४-वही, पं० ११३-११४। ५- वही, पं० ११७। ६- वही, पं० ११६।
७- वही, पं० १२७। ८- वही, पं० १३१। ९- वही, पं० १३४।
१०- वही, चौपा १३६। ११- वही, दोहा १५०।

कृष्णा के स्वभाव चित्रण में स्वभावोक्ति के अतिरिक्त विरोधाभास का सामान्य प्रयोग हुआ है। अज, अनन्त, अनाम हरि का नर नाचा करने का विरोधाभास व्यक्त किया गया है।

११८ गोपियों के साधु स्वभाव का कवि अर्थान्तरन्यास द्वारा उत्कर्ष दिखाता है, 'संसार में साधु संगति की बड़ी महिमा है, पारस की सत्संगति पाकर का लोहा जैसा तुच्छ धातु शुद्ध स्वर्ण हो जाती है।'[1]

११९ कवि मित्र के गुण के लिए उपमान जुटाने में नवीन कल्पना का उपयोग करता है। वह उदाहरण द्वारा कहता है, 'मित्र में यदि दोष भी हों तो, मित्र उनकी ओर ध्यान नहीं देता है जैसे केतकी के रस के वश में होकर भ्रमर उसके कांटों का परवाह नहीं करता है[2] और 'जो मित्र होता है वह मित्र के दोषों को किसी से नहीं कहता है जैसे कुंआ अपना परछाईं को अपने ही अन्दर में छिपाये रखता है।[3]

भाव चित्रण

१२० रूप और प्रकृति-चित्रण की भांति भाव चित्रण में भी कवि ने अलंकारों का सहारा लिया है। अलंकारों के द्वारा उसे भावों और मनोवेगों का उत्कर्ष दिखाने में पूर्ण सफलता मिली है। इससे कवि की सूक्ष्म दृष्टि और कल्पना-सृष्टि का परिचय मिलता है।

१२१ रूपमंजरी की विरह दशा को प्रकट करने के लिए कवि उत्प्रेक्षा का सहारा लेता है, 'छिपाया का चन्द्रमा मानों आसमान में काम की कटारी हो।'[4] विभावना द्वारा वह कहता है, 'सखी यह कौन सा समय आया है जो रात भर चन्द्रमा आग बरसाता है।'[5]

१- [illegible], कृष्ण ६८ । २- [illegible], दोहा ५४ ।
३- वही, दोहा ८० । ४- न० ग्रं०, रूपमंजरी पं० ३४६ ।
५- वही, पं० ३४२ ।

१२४ अगहन मास की विरह व्यथा का चित्रण करने में कवि की कल्पना सक्रिय हो उठती है, 'अगहन गहन समान गरिष्ठ और शरीर सहि'[१] विरहिणी के इस कथन में स्वभावतया उपमा अलंकार आ गया है । यह कल्पना व्यंजित हो जाती है कि कवि पुनः विभावना के सहारे उसे प्रकट करता है, 'दिन अहरू रजनी परै तुषारा । सालन भयो अगिनि की धारा ।'[२]

१२५ रासपंचाध्यायी में गोपियों की विरह व्यथा को उनके 'प्रलाप' के रूप में स्वभावोक्ति द्वारा स्पष्ट किया गया है । यहां वियोगिनी गोपियों के भावों के चित्रण में कवि की कल्पना सृष्टि में नवीन नवीन उद्भावनाएं दिखाई देती हैं । विरह की आशंका से गोपियों की क्या दशा हुई, उसको कवि ने उपमा के सहारे प्रकट किया है, 'दुख के भार से उनकी ग्रीवा कमल नाल के समान झुक गई ।[३] श्रीकृष्ण के बिना वे इस प्रकार व्याकुल हो गईं जैसे कोई निर्धन, महानिधि प्राप्त करके पुनः उसको खो देने पर होता है[४] और जब प्रियतम को एक विशिष्ट प्रिया उन्हें मिलती है, उससे उनकी मनोदशा में जो परिवर्तन हुआ उसे उत्प्रेक्षा द्वारा प्रकट किया गया है, 'मनहुं महानिधि माँहि मध्य आधी निधि पाई ।'[५]

१२६ रूपमंजरी के स्वप्न दर्शन का चित्रण करने के उपरान्त कवि ने अनूठी कल्पना करके सूक्ष्म निरीक्षण का परिचय दिया है । कवि कहता है, 'मन प्रियतम के प्रेम रस में फंस गया है जैसे हाथी कीचड़ में फंस जाता है और प्रतिक्षण उसी में धंसता जाता है ।[६] यहां स्वभावतः उदाहरण अलंकार आया है ।

१२७ गोपियों के प्रेम भाव को प्रकट करने के लिए कवि असंगति का सुन्दर उपयोग करता है, 'गोपियां कहती हैं - 'जब तुम गायों को चराने के लिए जाते समय वन में कोमल चरण रखते थे तो तिनके, कांटे और पत्थर चुभते तो तुम्हारे पैर में थे किन्तु पीड़ा हमारे मन में होती थी ।[७] प्रेम के चित्रण में कवि ने उपमा और

१- वही, चौपाई ७५ । २- नं० ग्रं०, विरहमंजरी, चौपाई ८८ ।
३- रासपंचाध्यायी, अध्याय १, छन्द ७६ । ४- वही, अ० २, छं० ४ ।
५- वही, छं० ३६ । ६- रूपमंजरी, पं० २१४ । ७- रासपंचाध्यायी, अ० ३, छं० ६ ।

उत्प्रेक्षा दोनों का सुन्दर उपयोग किया है। कृष्ण के प्रति रूपमंजरी का प्रेम हो जाने पर कवि कल्पना है, 'रूप मंजरी के हृदय में प्रियतम का प्रतिबिम्ब इस प्रकार दिखाई देने लगा जैसे चन्द्रकान्त मणि में चन्द्रमा का बिम्ब दिखाई देता है।[1] यहां उपमा द्वारा भाव को स्पष्ट किया गया है।

१२८ प्रीतम सूचक शब्द सुनकर गोपियां प्रेम से परिपूर्ण हो गई तो उन्होंने संसार की सभी वस्तुओं को इस प्रकार छोड़ दिया जैसे नाग केंचुली छोड़ देता है[2] (उपमा)। गोपियों के प्रेम से उत्पन्न कृष्ण के अन्तःकरण के भाव को भी कवि उपमा द्वारा प्रकट करता है, 'गोपियों के प्रेम वचनों ~~को पर कवि उपमा~~ की आंच ज्योंही कृष्ण के हृदय में लगी, उनका नवनीत के समान हृदय सहज ही पिघल गया[3] और 'कमल नयन श्रीकृष्ण का हृदय प्रेम समुद्र के समान है।[4] मुरली की ध्वनि सुन कर गोपियां कृष्ण की ओर इस प्रकार जाती हैं मानों पिंजड़ों से छूट कर नव प्रेम विहंगम उड़ चले हों।[5] यहां उत्प्रेक्षा अलंकार संयोजित हुआ है।

१२९ रूपमंजरी के हृदय में प्रेमोदय के लिए अत्यन्त व्यंजक उपमान का प्रयोग रूपक में हुआ है, 'रूपमंजरी का हृदय सूर्यकान्त मणि है, शरीर रुई है जो बत्ती बनाकर और घी में डुबा कर रक्खी गई है, श्रीकृष्ण सूर्य हैं जिसकी किरणों के संपर्क से इस बत्ती में आग लग जाती है।[6]

१३० कृष्ण की प्रेम दशा का चित्रण करने में भी कवि की कल्पना, पूर्ण सफल हुई है। कवि कहता है, 'श्रीकृष्ण का शरीर ऐसा प्रतीत होता है मानो प्रेमाधिक्य के कारण एक एक रोम एक एक गोपी बन गया हो, उनका शरीर कल्पवृक्ष के समान है और रोयें रूपी गोपियां पत्रों की तरह प्रकट हो रही हैं।[7] यहां स्वाभाविक रूपक अलंकार का उपयोग किया गया है।

१-रूपमंजरी, ~~छन्द~~ पं० २८३। २-सिद्धान्तपंचाध्यायी, छन्द ३२।
३- रासपंचाध्यायी, अ० १, छन्द ८५। ४-सिद्धान्तपंचाध्यायी, छन्द ८४।
५- ,, ,, छन्द ९५। ६- रूपमंजरी, पं० २६९।
७- [illegible] छन्द ७३।

दृश्य चित्रण

१३१ इस सम्बन्ध में उल्लेखनीय है कि कवि की दृष्टि केवल उन्हीं दृश्य-चित्रणों की ओर गई है जो कृष्ण प्रेम से संबंधित हैं अथवा जिनका संबंध कृष्ण की लीला-स्थलियों से है। अतः स्वतंत्र रूप से दृश्यों का चित्रण उसकी कृतियों में नहीं मिलता है और जो कुछ भी प्रसंगवश मिलता है उसमें प्रमुखतः उपमा और उत्प्रेक्षा को ही स्थान मिला है।

निर्भयपुर के वर्णन में कवि उत्प्रेक्षा द्वारा उसके महत्त्व को बताने का प्रयत्न करता है, 'ऊँचे ऊँचे सुन्दर महल ऐसे प्रतीत होते हैं मानों पृथ्वी पर ही दूसरा कैलाश हो'[1] साथ ही उपमा के उपयोग द्वारा वह कहता है, 'नाकन सुभग सिखंड कुलह यों, गिरिधर सिर की मुकुट लटक ज्यों।'[2] इसने अतिशयोक्ति द्वारा दृश्य चित्रण का प्रयास किया है, 'ऊँचो अटा घटा लग राजत, तिन पर कैको कैलि कराहीं'[3]।

उसके आस पास के बागों के वर्णन में भी कवि ने उत्प्रेक्षा को ही स्थान दिया है, 'फूल चुनती हुई मालिनों की छवि ऐसी जान पड़ती है मानों पृथ्वी पर उतर आई हो'[4]। 'पक्षियों का कलरव ऐसा प्रतीत होता है मानों सामवेद को पाठ आरम्भ करते हों।'[5] इसी प्रकार द्वारकापुरी के वर्णन में कवि दृश्यों को उपमाओं और उत्प्रेक्षाओं द्वारा स्पष्ट करने के लिए प्रयत्नशील जान पड़ता है किन्तु यहां कोई नवीन उपमान वह नहीं जुटा सका है, पक्षियों के कलरव के लिए 'भाट बटमार'[6] और तपस्वियों का परस्पर बात करना,[7] तथा सुगन्धित सरोवर के लिए 'निर्मल मुनिमन'[8] जैसे सुपरिचित उपमानों को जुटाता है।

१- रूपमंजरी, पं० ३८ । २- वही, पं० ४० । ३- वही, पं० ३९ ।
४- वही, पं० ४३ । ५- वही, पं० ४५ । ६- रुक्मिणीमंगल, छं० ३१।
७- वही, छन्द ३२ । ८- वही, छन्द ३३ ।

रूपमंजरी स्वप्न में देखे गए दृश्य का वर्णन करते हुए कहती है, 'पत्ते खड़खड़ करते हुए ऐसे जान पड़ते हैं मानों वृक्ष परस्पर बात कर रहे हों।'[1] यहाँ उत्प्रेक्षा का सहारा लिया गया है। ऋतु वर्णनों में भी उपमा और उत्प्रेक्षाओं द्वारा स्पष्टता लाने का यत्न किया गया है। 'वर्षा' में बादलों का गर्जन ऐसा जान पड़ता है मानो गुफा से सिंह की गर्जना आ रही हो (उत्प्रेक्षा)।[2] रूपमंजरी सखी की गोद में ऐसे छिप गई जैसे हिरणी की गोद में उसका बच्चा' (उपमा)।[3] 'बादलों का घुमड़ घुमड़ कर टकराना ऐसा जान पड़ता है, मानों कामदेव हाथियों को लड़ा रहा हो (उत्प्रेक्षा)।[4] बिजली का चमकना देखकर उसे प्रियतम के पीले पट का स्मरण हो आता है' (स्मरण)[5]। 'वर्षा जुगनू ऐसे प्रकाश हो रहे हैं मानो शोभा से अलग होकर चिनगारियाँ आ रही हों (उत्प्रेक्षा)।[6] होली खेलते हुए लोगों को देखकर रूपमंजरी कहती है, 'गिरिधर को धारण करने वाले एक तो मेरे प्रियतम हैं और जिसका गुणगान ये कर रहे हैं, वे कौन से गिरिधर होंगे।[7] (सन्देह)

आषाढ़ के मेघ गर्जन में वह श्लेष द्वारा व्यंजना करता है, 'पावस मेघ सो बरसो' और 'बृंदबान घन बरसन आये।'[8]

१३२ वृन्दावन के वर्णन में उसकी महिमा को प्रकट करने के लिए भी अलंकारों का सहारा लिया गया है। उपमा के सहारे वह कहता है, 'सदा शोभित रहने वाला वृन्दावन वनों में वैसे ही श्रेष्ठ है जैसे देवताओं में नारायण।'[9] इसके अनंतर अनन्वय द्वारा उसके उत्कर्ष को दिखाता है, 'या वन की वर बानिक या वन ही बनि आवे।'[10] उपमा के सहारे वह कहता है, 'वृन्दावन में भूमि चिन्तामणि के समान है जो सभी फलों को देने वाली है।'[11] वृन्दावन की भूमि की श्रेष्ठता को दिखाने के लिए कवि पुनः उत्प्रेक्षा करता है, 'उस वृक्ष के नीचे की भूमि सोने

१- न० ग्र०, रूपमंजरी, पं० २९७ । २- वही, पं० ३०६, ३- वही, पं० ३०७ ।
४- वही, पं० ३०८ । ५- वही, पं० ३१४ । ६- वही, पं० ३१७ ।
७- वही, पं० ३४० । ८- विरहमंजरी पं० ५७ । ९- रासपंचाध्यायी, अ० १
छन्द २३ । १०- वही, छन्द २४ । ११- वही, छन्द २५ ।

की और स्वर्णजटित है, उस भूमि पर वृन्दावन के अन्य वृक्षों के साथ कल्पवृक्ष का प्रतिबिम्ब जब पड़ता है तो प्रतीत होता है मानो पृथ्वी के भीतर भी वैसा ही दूसरा रमणीय वन है।[1] शरद[2] और वन विहार[3] के वर्णनों में भी कवि अपनी कल्पना को उपमा और उत्प्रेक्षा के रूप में ही प्रकट करता है।

१३३ रासनृत्य के प्रसंग में कवि ने कृष्ण और गोपियों की उत्प्रेक्षा की कल्पना अनुपम विलोभन रूप में प्रस्तुत की है, 'परिधि में नृत्य करती हुई स्वर्णवर्णी व्रजबालाओं के मध्य में नील वर्ण श्री कृष्ण ऐसे जान पड़ते हैं जैसे स्वर्णवर्णी मणियों के बीच में मरकतमणियाँ हों और क्रम क्रम से दोनों को सजाकर बनाई हुई माला, मानों वृन्दावन को पहना दी गई हो।'[4] इसी प्रकरण में एक और उत्प्रेक्षा द्रष्टव्य है, 'सांवले प्रियतम श्रीकृष्ण के साथ साथ नृत्य करती हुई ब्रज बालायें ऐसी जान पड़ती हैं मानों घन मण्डल के बीच में बिजलियों का समूह क्रीड़ा कर रहा हो।[5]

कार्य व्यापार-चित्रण

१३४ कार्य व्यापार का विस्तृत चित्रण करना कवि को यद्यपि अभीष्ट नहीं था, तथापि प्रसंग वश उसकी कृतियों में ऐसे चित्रण मिल जाते हैं जिनका प्रस्तुत प्रसंग में दिग्दर्शन कराया जा सकता है।

रुक्मिणी के पत्र को सुनने के उपरान्त श्रीकृष्ण जब ब्राह्मण की ओर देखकर हंसते हैं तो उनका मुख ऐसा प्रतीत होता है मानो चन्द्रमा कुमुदनी को प्रसन्न करने के लिए आ रहा हो।[6] यहाँ वस्तूत्प्रेक्षा के रूप में कल्पना की गई है।

उपमा के रूप में कल्पना करके कवि कृष्ण को रुक्मिणी के उद्धार के लिए तत्पर दिखाता है, कृष्ण ब्राह्मण से कहते हैं, "हे द्विजवर सबका मर्दन करके रुक्मि-

---

१-वही, छन्द ३० । २-वही, छन्द ४७-४८ । ३-वही, छं० ८८,८९,९१ ।
४-वही, अ० ५, छं० ९ । ५-वही, छं० ६ । ६-रुक्मिणीमंगल, छं० ७३ ।

रुक्मिणी को उसी प्रकार निकाल लाना हूं जैसे लकड़ी में से उसके सार अग्नि को निकाल लिया जाता है।'[1] कवि पुनः उपमा की कल्पना द्वारा रुक्मिणी का हरण करके ले जाने के कार्य की व्यंजना करता है, 'श्रीकृष्ण रुक्मिणी को उसी प्रकार हरण करके ले चले जिस प्रकार मधु निकालने वाला, मधुमक्खियों की आंखों में धूल झोंक, मधु लेकर चल देता है।'[2]

शत्रुओं का दमन करने के कार्य का चित्रण करने के लिए भी कवि उपमा का उपयोग करता है, 'शत्रुओं के भारी दल को आता हुआ देखकर बलदेव जी ने शस्त्र संभाल लिए और उसी प्रकार से शत्रुओं को रौंद डाला जिस प्रकार मदमस्त हाथी सरोवर में घुस कर कमलों को रौंद देता है।'[3]

१३५ उपर्युक्त विवेचन से कवि की उर्वरा कल्पना शक्ति और सूक्ष्म निरीक्षण का परिचय मिलता है। उसकी कृतियों में अलंकारों के रूप में जो नवीन उद्भावनाएं मिलती हैं उनसे कवि कल्पना की विचित्रता और अनुरंजकता का व्यक्त होती है। उसके सबसे प्रिय अलंकार उत्प्रेक्षा, उपमा और रूपक हैं, इनमें से भी उत्प्रेक्षा मूर्धन्य स्थान पर है। इन अलंकारों की सहायता से रूप, गुण, भाव, दृश्य और कार्य-व्यापार सभी प्रकार के चित्रों को स्पष्ट करने का प्रयास किया है। इनके अतिरिक्त उदाहरण, दृष्टान्त, अतिशयोक्ति, वक्रोक्ति, विभावना, दीपक, प्रतीप, असंगति सन्देह, अर्थान्तरन्यास, अनन्वय, सम, विषम आदि के उपयोग द्वारा चित्रोपमता उपस्थित करने में वह पूर्ण सफल रहा है। जहां एक ओर ऐसा प्रतीत होता है कि कवि को उक्त अलंकारों को अपनी रचनाओं में लाने के लिए कोई विशेष प्रयत्न नहीं करना पड़ा है दूसरी ओर उसकी भावप्रवणता और सांकेतिकता से सम्पन्न उसके व्यक्तित्व की झलक मिलती है। यही उसकी सफलता है जिसके आधार पर उसे प्रथम कोटि के सफल कलाकारों की पंक्ति में रखा जा सकता है।

१- रुक्मिणीमंगल, छन्द [illegible]।

२- वही, छन्द [illegible]।

३- वही, छन्द [illegible]।

छन्द

१३६ नन्ददास ने अपनी कृतियों की रचना के लिए अनेक छन्दों का उपयोग किया है, जिनका परिचय नीचे दिया जाता है :

(१) अनेकार्थभाषा : इस ग्रन्थ की रचना दोहा छन्द में की गई है, इसमें संख्याओं में मात्राओं की संख्या दी गई है :

(धाम)

धाम तेज औ धाम ननु, धाम चित्रन, गृह धाम । १३+११= २४
धाम ज्योति जो ब्रह्म है, भजो भूत हरि स्याम ॥[1] १३+ ११= २४

(२) श्यामसगाई : इस ग्रन्थ की रचना रोला, दोहा और दस मात्रा की टेक वाले एक मिश्रित छन्द में की गई है :

नाकी राधे कुंवरि, स्याम अत मेरो नीको, ११+१३ = २४
तुम्ह किरपा करि करौ, लाल मेरे को टीको । ११+१३ = २४
सब भांतिन सौं लायको, हम तुम बार प्रीति, १३+११ = २४
और न कछु मन में वहौं, यही अति करि रीति । १३+१० = २४
परस्पर कीजिए ।[2] = १०

कवि को इस छन्द के प्रयोग की प्रेरणा सूरदास से मिली है । सूरदास जी ने इस रोला, दोहा और दस मात्रा की टेक वाले छन्द का प्रयोग सूरसागर के दशमस्कंध में दानलीला के वर्णन में किया है ।[3]

(३) नाममाला : अनेकार्थ भाषा की भांति ही नाममाला की रचना भी दोहा छन्द में की गई है :

१- न० ग्र०, अनेकार्थ भाषा, दोहा १४ ।

२- वही, श्याम सगाई, छन्द ४ ।

३- दे० सूरसागर (ना० प्र० सभा) पद : २२३६ ।

रचना का संकेत करना अभीष्ट होगा कि वर्णन क्रम के विचार से रूपमंजरी और विरह मंजरी में दोनों के प्रयोग का प्रायः निश्चित क्रम दृष्टिगत होता है। कवि ने एक प्रकार का वर्णन या एक बात चौपाई में करने के उपरान्त उसका अन्त दोहे में किया है। विरहमंजरी में यह बात और भी स्पष्ट हो जाती है, जहाँ कवि प्रत्येक मास का चौपाई में वर्णन करके उसका अन्त दोहे में करता है। इसी दृष्टि से विरह-मंजरी में सोरठा छन्द का प्रयोग भी निश्चित क्रम से हुआ है, जब कि कवि प्रत्येक मास का चौपाई में वर्णन करके उसका अन्त दोहे में करता है। इसी दृष्टि से विरहमंजरी में सोरठा छन्द का प्रयोग भी निश्चित क्रम से हुआ है, जब कि कवि प्रत्येक मास के आगमन की सूचना सोरठे में देने के उपरान्त ही चौपाई में उस मास का वर्णन करता है। किन्तु रसमंजरी में इस क्रम का पूर्ण निर्वाह दृष्टिगत नहीं होता है। इसके कारणों पर भी पीछे विचार किया जा चुका है।[1]

कवि द्वारा प्रयुक्त चौपाई छन्द के अन्त में गुरु लघु (ऽ।) नहीं आने चाहिए, किन्तु नन्ददास की कृतियों में ये आ गए हैं :

> स्वाति बूंद अविभूत विष होइ (ऽ।), कदली दल कपूर होय सोइ (ऽ।)[2]
> नैन अंक मन जब प्रगटै भाव (ऽ।), ताकहुँ सुकवि कहत हैं हाव (ऽ।)[3]

छन्द भंग दोष के विषय में डा० दीनदयालु गुप्त जी का मत है कि, 'कुछ तो प्रतिलिपिकारों की भूल और कुछ सम्भव है, कवि से हो गए हों।'[4]

द्रष्टव्य है कि नन्ददास संस्कृत के विद्वान थे और काव्य-लक्षण ग्रन्थों के ज्ञाता थे, जैसा कि रसमंजरी आदि ग्रन्थों से विदित होता है। ऐसी दशा में उनके द्वारा इस प्रकार की त्रुटियाँ होना सम्भव नहीं जान पड़ता है। प्रतीत ऐसा ही होता है कि प्रतिलिपिकारों की असावधानी से ही ये दोष उनकी कृतियों में आये होंगे। गुप्त जी ने ही अपनी अष्टछाप में रूपमंजरी ग्रन्थ की निम्नलिखित पंक्ति में जो छंद भंग दोष होने की बात लिखी है, वह बाबू ब्रजरत्नदास जी द्वारा [illegible] नन्ददास ग्रन्थावली में नहीं मिलता है :

१- [illegible] पृष्ठ । २- न० ग्र०, [illegible], पं० १० ।
३- वही, पं० २८ । ४- अष्टछाप और वल्लभ संप्रदाय : डा० गुप्त, पृ० [illegible]।

सुंदर सुमन सुखेद बिछाय (ऽ।), अरगजे मरगजे बसन दुराय (ऽ।) ।
बंदन पर बंदन बरखाय (ऽ।), मंद सुगंध समीर डुलाय (ऽ।) ।
पिक गनाय कैधों कुलकाय(ऽ।), पपैया पी पिउ पिउ कुलकाय(ऽ।) ।
मधुर मधुर अरु बान बजाय(ऽ।), मोहन नंद सुवन गुन गाय (ऽ।) ।

---अष्टछाप और वल्लभ संप्रदाय, पृ० ८८६ ।

नन्ददास ग्रन्थावली में उक्त पंक्तियों का अन्तिम अक्षर (ऽ) गुरु है :

सुंदर सुमनन सेज बिछाईं (ऽ), अरगज मरगजि बसनि बसाईं (ऽ) ।
बंदन बरषि बंद उनवाईं (ऽ), ~~बंदिनि पी पिउ पिउ~~ मंद सुगन्ध समीर बहाईं (ऽ) ।
पिक गनाय कैधों कुलकाईं(ऽ),पपैया पी पिउ पिउ बुलाईं (ऽ) ।
मधुर मधुर तू बोल बजाईं(ऽ), मोहन नंद सुवन गुन गाईं (ऽ) ।

---न० ग्र०, रूपमंजरी, पं० ५८०-८३ ।

पं० उमाशंकर शुक्ल जी के नन्ददास में उपलिखित प्रथम तीन पंक्तियों के अंत में (ऽ) गुरु किया गया है किन्तु अन्तिम पंक्ति के अन्त में (ऽ।) गुरु लघु ही मिलता है।[१]

इससे इस बात की संभावना बढ़ जाती है कि कदाचित् ये त्रुटियां नन्ददास द्वारा न हुई हों वरन् बाद के प्रतिलिपिकारों की [illegible] से समाविष्ट हो गई हों।

(५) रुक्मिणीमंगल, रासपंचाध्यायी और सिद्धान्तपंचाध्यायी में रोला छंद का प्रयोग हुआ है :

मधुर वस्तु ज्यौं खात निरन्तर सुख तौ भारी । = २४ मात्रायें
बीचि बीचि कटु अम्ल तिक्त अतिसय [illegible]।[२] - ,,

रोला छन्द में ११ और १३ मात्रा की यति से २४ मात्रायें होनी चाहिए किंतु नन्ददास की इन पंक्तियों में यति भंग दोष दिखाई देता है, जिसके लिए भी प्रतिलिपिकार ही उत्तरदायी प्रतीत होते हैं। बाबू जगन्नाथदास रत्नाकर ने रोला के

(१) <u>पदावली</u> : नन्ददास के अधिकांश पद कीर्तन के रूप में हैं। इसीलिए उनमें छन्दोविधान का निर्वाह प्राय: नहीं मिलता है। पिंगलशास्त्रीय छन्दों की अपेक्षा संगीत शास्त्रीय राग रागिनियाँ ही उनके पदों में पाई जाती हैं। नन्ददास ने कवित्त, सवैया, घनाक्षरी आदि छन्दों के प्रयोग का भी प्रयत्न किया है, किंतु उनके काव्य में इन छन्दों का अपरिमार्जित और अविकसित रूप ही मिलता है। नन्ददास का एक कवित्त है :

> कृष्ण नाम जब तें श्रवन सुन्यो री आली,
> भूली री भवन हौं तो बावरी भई री।
> भरि भरि आवें नैन, चितहूं न परै चैन,
> मुखहू न आवै बैन, तन की दसा कछु और भई री।।
> जितेक नेम धरम किए री मैं बहुविध,
> अंग अंग भई हौं तो श्रवन मई री।।
> 'नंददास' जाके नाम सुनत ऐसी गति,
> माधुरी मूरति है धौं कैसी दई री।।[१]

स्पष्ट है कि इसमें कला की वह प्रौढ़ता नहीं है जो नंददास के रोला दोहा के टेक छन्द में है।

१३७ वस्तुत: नन्ददास के व्यक्तित्व का परिचय रासपंचाध्यायी में प्रयुक्त रोला और भंवरगीत में प्रयुक्त रोला, दोहा तथा १० मात्रा की पंक्ति वाले मिश्रित छंद से ही मिलता है। अन्य ग्रन्थों में भी छन्दों का प्रयोग वर्ण्य विषय के अनुकूल ही हुआ है, किन्तु कवि ने उनका प्रयोग काम चलाऊ रूप में किया है, इसलिए उनमें वह लालित्य, माधुर्य और गेयता नहीं आने पाई है जो रोला छन्द वाले ग्रंथ या भंवरगीत में मिलती है।

१- नं० ग्रं०, पदावली, पद ८४।

भाषा शैली

१३८ कवि के व्यक्तित्व को पूर्ण रूप से समझने के लिए अन्य बातों के साथ-साथ उसकी भाषा शैली का अध्ययन अनिवार्य रूप से किया जाता है। भाषा-शैली की दृष्टि से नन्ददास किस कोटि के कलाकार हैं और उनकी भाषा शैली की क्या विशेषताएं हैं ? इन प्रश्नों का उत्तर तो प्रस्तुत विवेचन के उपरान्त ही मिल सकेगा, किन्तु यहां यह उल्लेखनीय है कि उनकी कृतियों में, जैसा कि ऊपर कालक्रम पर विचार करते हुए संकेत किया जा चुका है, भाषा शैली के एक निश्चित विकास-क्रम का आभास मिलता है। नीचे इसी विकास क्रम को दृष्टिगत रखते हुए कवि की भाषा शैली पर विचार किया गया है।

अनेकार्थ भाषा

१३९ अनेकार्थ भाषा कोश ग्रन्थ है। इसमें संस्कृत शब्दों के विभिन्न अर्थ दिये गये हैं। इसका प्रणयन भाषा शैली के परिष्कार हेतु किये गये प्रयास के फलस्वरूप ही हुआ प्रतीत होता है। ग्रन्थ का विषय स्वभावत: शुष्क होने से इसमें साहित्यिकता की ओर कोई आग्रह नहीं दिखाई देता है। उदाहरण के लिए निम्न लिखित दोहे ले सकते हैं :

(पीत) पीत गेह बह निपट दिखु, पीत जु वस्त्र अनूप ।
पीत नाव विधि काधि नधि, श्यामनाम सुख रूप ॥[१]

और

(कुश) कुश पंडित कों कहत हैं, कुश अति/सूतहिं बखान ।
कुश हरि को अवतार इक, पीय भयो विदि आन ।।[२]

श्याम सगाई

१४० श्याम सगाई की भाषा अत्यन्त सरलता और शिथिलता लिए हुए है। इसमें केवल इतनी ही विशेषता है कि साधारण बोलचाल के शब्दों को छन्दबद्ध

१- न० ग्रं०, अनेकार्थ भाषा, दोहा ८८ । २- वही, दोहा ८६ ।

ग्रामीण बोलचाल के शब्दों के प्रयोग में भी सतर्कता बरती गई है और इनका स्थान प्रायः तत्सम एवं अर्ध तत्सम शब्दों को ही मिला है। अभिव्यंजना शक्ति के साथ साथ इसमें भाषा को अलंकारों के द्वारा संवारने की प्रवृत्ति भी दृष्टिगत होती है। इसमें स्थान स्थान पर मानों शुष्क विषय से श्रमित मस्तिष्क को विश्राम देने के लिए उत्प्रेक्षा और रूपक उपमा के गुलदस्ते सजा दिये गये हैं। मुहावरों और लोकोक्तियों के प्रयोग द्वारा भाषा में प्रभावोत्पादकता और सजीवता लाने की चेष्टा की गई है। उदाहरण के लिए निम्नलिखित दोहे ले सकते हैं :

(आकाश) गगन जु उड़ान बनि रहै नैक बनी तजि रोष ।
दैखन तेरौ अम जनु सुर लिय फिर झरोख ।।[1]

(वैश्वानर) अग्नि दग्ध ज्यौं द्रुमलता, फिरि फल फूलन न देत ।
बचन दग्ध त्यौं बीज बलि, बहुरि न अंकुर लेत ।।[2]

(दाख) यह द्राक्षा बलि पाँ परति रंचक हरि रस चाहि ।
मानिनि गुलोली बाल सौ, निपट रसीली आहि ।।[3]

(कल) रटत मिलन रंग भरे कोमल कंठ सुजात ।
जुग आनन आनंद जनु, करत परस्पर बात ।।[4]

(अति) भृश, अतिसय उत्कर्ष अति, अधिक, अत्यंत, नितांत ।
अति सर्वत्र भली नहीं, कहि गै संत अनंत ।।[5]

आदि

रसमंजरी

१४२ 'रसमंजरी' की शैली उपर्युक्त कोष ग्रन्थों की रचना शैली से कुछ ही भिन्न है। यह भिन्नता विषय वैभिन्य के कारण ही है। यहाँ नायक नायिका भेद परि-गणन के उपरान्त उनके लक्षणों के वर्णनों में कवि की भाषा शैली का विकास परिलक्षित होता है। इन वर्णनों में कवि की वर्णन विस्तार की प्रवृत्ति एवं

१- न० ग्रं०, नाम माला, पृष्ठ १९८ । २- वही, पृष्ठ १९९ ।
३- वही, पृ० २०१ । ४- वही, पृ० २०८ । ५- वही, पृ० २०३ ।

<u>रासपंचाध्यायी</u>

१४५ रुक्मिणीमंगल के उपरान्त भाषा शैली की दृष्टि से रासपंचाध्यायी का नाम आता है । रुक्मिणीमंगल की जिस प्रौढ़ शैली का ऊपर परिचय दिया गया है, वही रासपंचाध्यायी तक आकर और भी प्रौढ़ स्वरूप में प्रकट हो जाता है । वस्तुत: भाषा के सौन्दर्य, शैली की अनुरंजकता, सुबोधता और सरलता, लालित्य एवं प्रवाह की दृष्टि से रासपंचाध्यायी चरम उत्कर्ष को प्राप्त अत्यन्त सम्पन्न रचना है । इसका भाषा सौष्ठव अनुपम है । यहां भाषा की कोमलता, श्रुति, माधुर्य, ललित शब्द योजना, मृदुता, ध्वन्यात्मकता और संगीतात्मकता का सम्यक् सामंजस्य सरस सूक्तियों की छटा को पोषित करने में पूर्ण सक्षम है । शब्द चयन में नंददास ने भाव मैत्री, ध्वनि-साम्य और विषयानुकूलता का प्राय: सर्वत्र ही निर्वाह किया है । वे यहां उपयुक्त शब्दों को यथास्थान साहित्यिक ढंग से रखने और वर्णों के नादात्मक प्रयोग द्वारा शब्दचित्र तथा मूर्त चित्र उपस्थित करने एवं कल्पनाओं और भावनाओं के समन्वय एवं संयोजन में सिद्धहस्त प्रतीत होते हैं । रासपंचाध्यायी की यह शैली आलंकारिक और अनालंकारिक--दोनों रूपों में आकर्षक है । जहां वर्णन में इतिवृत्तात्मकता है वहां कवि बिना अलंकारों के ही भाषा का मधुर और सरसरूप प्रस्तुत कर देता है तथा वहां शैली स्वाभाविक तथा स्वत: प्रवर्तित होने से सरल एवं आडम्बर विहीन होती है । कवि के मस्तिष्क के विपुल भंडार से शब्द अनायास ही आते हुए प्रतीत होते हैं और उन्हें समझने में कोई कठिनाई अनुभव नहीं होती है । आलंकारिक शैली में भी सरस प्रवाह है, मधुर संगीत है और भाव सौन्दर्य को विकसित करने की अद्भुत क्षमता है । अलंकारों का प्रयोग भावों को स्पष्ट करने के लिए स्वत: हो गया है और इसमें कवि का कोई विशेष प्रयास दृष्टिगोचर नहीं होता है । इसमें कवि ने तत्सम प्रधान भाषा को ही ग्रहण किया है और [illegible] से जिन शब्दों को अपनाया है, उनका चयन मधुरता के प्रकाश में बड़ी सावधानी से किया गया है । भाषा कहीं कहीं अत्यन्त संस्कृत बहुल हो गई है । व्याकरणादि का भी सुरुचिपूर्ण निर्वाह किया गया है ।

इस प्रकार [illegible] पंचाध्यायी की भाषा शैली में नन्ददास के व्यक्तित्व की पूर्ण प्रतिभा, कल्पना [illegible] और सौन्दर्य प्रियता स्पष्ट रूप से झलकती है।

प्राय: अलंकारों का आश्रय ग्रहण करती हुई प्रतीत होती है किन्तु भंवरगीत में आकर कवि की शैली उस उन्नतम स्थिति में पहुंच जाती है जहां पहुंचने में अलंकार अपनी बोझिलता के कारण अलग हो जाते हैं और भाषा के माधुर्य का, मनोहारिणी शब्द रमणीयता के रूप में पुनरोदय होता है, तब उसका यह शब्द रमणीयता भी इतना मनोमुग्धकारी प्रभावोत्पादक एवं भावव्यंजक होता है कि उसे अलंकार जैसे बाह्य साज श्रृंगार की अपेक्षा भी नहीं रह जाती है। भंवरगीत की भाषा-शैली की यही प्रमुख विशेषता है जिसके कारण वह नन्ददास की सर्वोत्तम रचना कही जा सकती है। कवि ने यहां गोपियों के प्रेम, विरह विह्वलता, विरह में आन्तरिक संयोग दशा सभी का सुन्दर भावमयी भाषा शैली में चित्रण किया है और साथ ही गोपियों तथा श्रीकृष्ण पर इन दशाओं से जो प्रभाव पड़ता है तथा अनेक अनुभावों द्वारा जो स्पष्ट होते हैं, उसका वर्णन कर मानों सजीवता ला दी है। उसकी वाक्यरचना इतनी सीधी है कि उसे समझने के लिए किसी प्रकार के अन्वय की आवश्यकता नहीं पड़ती है। शैली में मधुरता, चारुता एवं प्रवाह है, प्रत्येक शब्द अपने स्थान पर आवश्यक प्रतीत होता है। शब्द छोटे हैं और समास निर्माण की ओर कोई प्रयास परिलक्षित नहीं होता है। ध्वनि संकलन ऐसा हुआ है जिससे भी श्रोता के कानों को कर्कश नहीं प्रतीत होता है। कवि की कवित्व-शक्ति के वास्तविक रूप का इसमें पूर्ण प्रकाशन हुआ है और रसस्निग्धता और रसात्मकता के साथ साथ भक्ति भावना की संयुक्तता भी उसमें आ गई है। विषय के अनुसार तर्क वितर्क की अनिवार्य स्थिति के होते हुए भी कवि ने सरस-भाषा शैली के सहारे उसे नाटकीयता का रूप प्रदान कर दिया है। मुहावरे तथा शब्दों के लाक्षणिक प्रयोग ने शैली को और भी रुचिरता प्रदान कर दी है। उदाहरण के लिए निम्नलिखित छन्द अभीष्ट होगा :

> सुनत स्याम को नाम बाम गृह की सुधि भूली ।
> भरि आनंद रस हृदय प्रेम बेली द्रुम फूली ।।
> पुलकि रोम सब अंग भए भरि आए जल नैन ।
> कंठ घुटे गद्गद गिरा बोल्यो जात न बैन ।।
> विवस्था प्रेम की ।।

—नं० ग्र०, भ्रमरगीत, छं० ३ ।

१४६ कवि की भाषा शैली का उपर्युक्त प्रकार से परिचय प्राप्त कर लेने पर विदित होता है कि अनेकार्थभाषा और श्यामसगाई में कवि की शैली अत्यन्त आरम्भिक और शिथिलता लिए हुए है। अनेकार्थ भाषा की रचना संस्कृत-शब्दार्थ प्रकाशन हितु हुई है अतः उसमें शैली की रुचिरता की आशा न करना असंगत न होगा। नाममाला भी कोष ग्रन्थ है किन्तु उसमें भाषा शैली का उतना शिथिल रूप नहीं मिलता है जितना अनेकार्थ भाषा और श्यामसगाई में मिलता है। उसमें शब्दों के नामों के साथ साथ राधा के मान की कथा का रुचिर प्रवाह भी मिलता ही है, भावानुसार शब्द चयन, भाव प्रकाशनार्थ अलंकारों का आरम्भिक प्रयोग और मुहावरे एवं लोकोक्तियों की सामान्य समाविष्टि भी दृष्टिगोचर होती है। इसके अतिरिक्त इसमें दृश्यचित्रण, रूपवर्णन और प्रकृति दर्शन को प्रस्तुत करने की ओर भी कवि का प्रारम्भिकप्रयास दिखाई देता है।

शैली की दृष्टि से नाममाला के उपरान्त रसमंजरी की ओर दृष्टि जाती है। रसमंजरी में यद्यपि नायक-नायिकाओं के भेदों को बताया गया है और उसमें परिगणनात्मकता आ गई है तथापि यहां पहली बार वह सरसता मिलती है जो सहृदयों को कुछ समय के लिए ही सही, रससिक्त करने में समर्थ जान पड़ती है। यह बात कवि के निम्न कथन से भी प्रकट है :

> इहि विधि यह रस मंजरी, कही जथामति नंद।
> पढ़त बढ़त अति चौप चित, रसमय सुख को कंद।।[१]

भाषा मधुर एवं प्रवाहपूर्ण है। साहित्यिकता की दृष्टि से चौपाइयों की अपेक्षा दोहों में विशेष [illegible] होता है। सब मिला कर इतना अवश्य जान पड़ता है कि रसमंजरी की शैली, नाममाला से अधिक सरस है।

रूपमंजरी और विरहमंजरी में, मंजरी की ही शैली का मुखरित रूप सामने आता है। इन ग्रन्थों की भाषा शैली में जो प्रवाह, मधुरता और माधुर्य मिलता है, वह मंजरी में दृष्टिगत नहीं होता है। इसके साथ ही रूपमंजरी और विरहमंजरी

१- नं० ग्रं०, पृ० १६३, दोहा १३६।

में अलंकारों के यथेष्ट प्रयोग द्वारा भाषाशैली की भावव्यंजकता में भी पर्याप्त वृद्धि के दर्शन होते हैं। इन दो ग्रन्थों में भी विरहमंजरी की शैली अधिक प्रौढ़ प्रतीत होती है। जो तारल्य केवल दोहा-चौपाई में लिखी गई रूपमंजरी में नहीं आने पाई है, वह दोहा, चौपाई और रोलै में रचित विरहमंजरी में समाविष्ट हुई दृष्टिगोचर होता है।

वस्तुत: कवि की शैली के वास्तविक दर्शन रोला छन्द वाली कृतियों में ही होते हैं। रुक्मिणीमंगल, रासपंचाध्यायी और सिद्धान्तपंचाध्यायी की रचनाएं रोलाछंद में मिलती हैं। इनमें भी रुक्मिणीमंगल की अपेक्षा रासपंचाध्यायी और सिद्धान्त-पंचाध्यायी की शैली विशेष रूप से उल्लेखनीय है। रासपंचाध्यायी की भाषाशैली में प्रवाह, लालित्य, सरलता, सुबोधता, माधुर्य, तारल्य, कोमलता, ध्वन्यात्मकता, गेयता और सुनियोजित शब्दावली सभी तो हैं। इसमें जहां एक ओर अलंकारों के स्वच्छंद प्रयोग से भावप्रकाशन की शक्ति का सम्यक् विस्तार देखने को मिलता है, वहीं दूसरी ओर भाषा की स्वाभाविकता को सर्वथा रक्षा हुई है। यही बात न्यूनाधिक रूप में सिद्धान्तपंचाध्यायी के लिए भी कही जा सकती है। यह दूसरी बात है कि सिद्धांत पंचाध्यायी में रासपंचाध्यायी के आध्यात्मिक पक्ष को प्रस्तुत करने का प्रयत्न होने से कहीं कहीं शैली के प्रवाह में अचंचलता का निर्वाह नहीं हो पाया है। यह उसके वर्ण्य विषय की प्रकृति के कारण हुआ जान पड़ता है।

इस पर भी रासपंचाध्यायी और सिद्धान्तपंचाध्यायी में कवि की भाषा शैली का वह रूप नहीं मिलता जिसमें भंवरगीत की रचना हुई है। भंवरगीत की भाषा में भावव्यंजकता की शक्ति तो इतनी आ गई है कि उसमें अलंकार जैसे बाह्य प्रसाधक विधानों की भी आवश्यकता नहीं रह गई है, थोड़े शब्दों में यथासंभव अधिक से अधिक कहने की कवि की प्रवृत्ति भी इस ग्रन्थ में पर्याप्त सफल हुई है। कथोपकथनों में नाटकीयता के समावेश से भाषा की सुबोधता, तारल्य, माधुर्य एवं व्यंग्य भी वृद्धि को प्राप्त हुए हैं। वस्तुत: भंवरगीत में भावों के जिस वेग का भान होता है, उसे सूक्ष्म रूपों में तीव्रता प्रदान करने के गुरुतर कार्य के लिए जिस प्रकार की भाषाशैली की आवश्यकता थी, संयोग से कवि को वही प्राप्त हुई है।

शब्दावली, मुहावरे और लोकोक्तियाँ

१५० जिस प्रकार नंददास के भावों को उत्कर्ष प्रदान करने और उन्हें सुग्राह्य बनाने में उनकी भावप्रवणता, उनकी सूक्ष्मात्मक कल्पना और उसके अनुरूप अलंकारों का योग दृष्टिगत होता है उसी प्रकार उनकी भाषा को प्रौढ़ता प्रदान करने का श्रेय उनके विपुल शब्द भण्डार और शब्द संयोजन की शक्ति के साथ साथ उनके द्वारा प्रयुक्त मुहावरे तथा शब्दों के प्रामाणिक प्रयोग एवं लोकोक्तियों को है। यहाँ उनकी भाषा को प्रौढ़ता प्रदान करने वाले इन्हीं तत्वों का उनकी कृतियों के प्रकाश में संक्षिप्त परिचय देने का प्रयत्न किया गया है।

शब्दावली

१५१ नन्ददास ने संस्कृत साहित्य का विस्तृत अध्ययन किया था। यह बात अनेकार्थ भाषा, नाममाला और रसमंजरी से सहज ही प्रकट होती है। अतः उनकी रचनाओं में स्वभावतः संस्कृत का प्रभाव परिलक्षित होता है। यहाँ तक कि कहीं कहीं कवि क्रियाओं को भी संस्कृत से लेकर ज्यों की त्यों रखने में भी संकोच नहीं करता है :

तन्नमामि पद परम गुरु कृष्ण कमलदल नैन ।[1]

० ० ०

कहसि क्वासि प्रिय महाबाहु इमि वदति अकेली,[2]

यहाँ 'तन्नमामि', 'क्वासि' और 'वदति' शब्द द्रष्टव्य हैं। इसी प्रकार उनकी शब्दावली में संस्कृत के सभी प्रकार के शब्दों का पर्याप्त प्रयोग मिलता है, यथा :

कृपा निधान, कच, सदा, नीलोत्पल, अलक, मुख, ललित, तिमिर, दिवाकर, राकेश, कृष्ण, अद्भुत, उन्नत, अधर, छवि, काम, क्रोध, मद लोभ, मोह, उर, नाभि, बाहु, पवित्र, अवनी, विभाकर, रहस्य, आज्ञा, भाषा, मृग,

---

१-न० ग्रं०, नाममाला, दो० १ । २-वही, रासपंचाध्यायी, अ० २, छन्द ३५ ।

त्रिभुवन, कानन, सम्पा, पराक्रम, भ्रम, भवन, नैन, अर्द्ध, उदधि, सुखदायक, क्रूर, मृदुल, प्रकम्प, सप्तनिधि, बलिभुव, विचित्र, अग्र, अस्त्र आदि ।

१५२ कवि की रचनाओं में उन शब्दों का प्रयोग भी बहुत हुआ है जिनके उच्चारण की असुविधा को कवि ने स्वरभक्ति आदि ध्वनियों में किंचित उलटफेर द्वारा दूर किया है । यह उलटफेर प्रायः निम्नलिखित ढंग से किया गया है :

(१) अनुनासिक वर्णों के स्थान पर (ं) अनुस्वार का प्रयोग --

रंग, अंग, तरंग, सुंदर, कुंडिका, गंगा, गंध, चिंतामनि, अंड, आरंभिका, वृंदावन, संकुल, पुरंदर, उपंग, कंप, मंगल, आनंद आदि।

इस प्रकार के शब्दों का प्रयोग ध्वनि परिवर्तन के बिना ही किया गया है ।

(२) `श` के स्थान पर `स` का प्रयोग -

सोभित, सरीर, सिसुपाल, सकुन, किसोर, सता, सिव, स्रम, सूल आदि ।

(३) `ण` के स्थान पर `न` का प्रयोग --

भूषन, प्रान, भवन, गुन, कंकन, किंकिनि, उज्जल, रामायन आदि ।

(४) स्वरभक्ति --

परमातम, उनमूल, गरब, परप, कलपतरु, सनमुख, कनक,

(५) `य` के स्थान पर `ज` का प्रयोग --

जथामति, जमुना, जोग आदि ।

ऐसे शब्दों को अर्धतत्सम की कोटि में रखा जा सकता है ।

इनके अतिरिक्त कुछ शब्दों को कवि ने ब्रज भाषा के साँचे में इस प्रकार ढाला है कि वे उसी के प्रतीत होते हैं, यथा,

`क्षुभित` के लिए `छुभित`, `स्वप्न` के लिए `सुपन` `परिक्रिया` के लिए `परिच्छा` ।

१५३ किन्तु नन्ददास की भाषा का लालित्य बहुत कुछ उन तद्भव शब्दों के कारण है जिन्हें कवि ने ब्रजभाषा से खोज खोज कर निकाला है और उन्हें

भावपूर्ण प्रसादता का गुण देकर अपने काव्य में स्थान दिया है । इस प्रकार के कुछ शब्द यहां दिए जाते हैं :

आछि, अंबरा, अटारो, औघर, कहरि, छिन, गुसांई, चक्रवाधि, छुगति, जदपि, जोगि, जाड़, जिय, ढाडि, तुरत, बहुत, लाजो, भानै, मुझान, सांवरी, सांवरों, गोत, सजनो, सरिस, सांझ, सौन, सूल, डाऊं, पचि मरना, सबु पाना, समाना, छटकना, डेरा, दिसि, आदि ।

कवि ने ब्रज बोली के ग्रामीण शब्दों का भी प्रयोग किया है । यथा,
अब, बेगि, बार, छमि, गांस, नरिका, पूत, लगावै, करनो, चिरिया, चुटिया, नेरे, मूड़, डरपनो, बानक, कुनाई, कुमारे, गंवारि, उपजान आदि।
कुछ शब्दों को कवि ने स्वयं गढ़ लिया है :

पुरवा (पोखर), उरवा (उर), मुरवा (मोर, मयूर), आदि ।

इसके अतिरिक्त कवि के काव्य में पूर्वी हिन्दी के शब्दों के रूप भी मिलते हैं ।

जह, वाको, आछि, नाहिंन, नहिंन, कस, गोहन, तुम्हारा, रावरे, नोको, आनि आदि ।

१६४ कवि ने विदेशी शब्दों के प्रयोग में बड़ी सतर्कता बरती है । यही कारण है कि उसकी कृतियों में इनका समावेश बहुत ही कम हुआ है - 'महल','अरदास','लायक' ।

'अरदास' शब्द का प्रयोग केवल एक स्थान पर हुआ है :

बहुत भांति वंदन करो, कहतहिं करि अरदास ।[1]

किन्तु 'लायक' शब्द का प्रयोग कवि ने अनेक स्थलों पर किया है :

(१) जाको चित्र धन लोभ न आवै । या लायक नायक को दावै ।[2]

(२) कृष्ण पुनि गत सब लायक नायक । गिरिधर कुंवर सदा सुखदायक ।[3]

(३) या कहि मेरो कौ कम सुखायक । कुंवर गिरिधर लाल को लायक ।[4]

१-प० पु० ... नामावली, छन्द ३ । २-प्रेमपचीसी, पं० ८५ । ३-वही, पं० १६० ।
४- वही, पं० ३८१ ।

(४) तुम सब लायक त्रिभुवन नायक, सुखदायक सुभकारन सुभायक ।[1]

(५) तुम सब लायक कहा हुए सिसुपाल किया को ?[2]

(६) कोउ कहै 'यह नायक रुकमिनी याके लायक' ।[3]

(७) क्रूर वचन जनि कहौ नाहिन ये तुम्हरे लायक ।[4]

मुहावरे

१५५ मनभाई, टोना कियो,[5] नाकं आई,[6] मनहिं फूले फिरें,[7] एकहि डोल[8] बनाव,[9] करत छूटा सौं बान,[10] करदो चूनो पड़ा,[11] पानी पर पाथर तिरे,[12] बानर के कर नारियल,[13] मनि जैसे काँच कंठ,[14] करनाड़े सलवरि पछिताई,[15] द्वितीया के चांद की तरह बढ़ना,[16] चन्द्रमा को और लाग बढ़ाना है,[17] छलकि गयो छियो,[18] अगिन मैं अगिन ज्यों दई,[19] करत नकवानी,[20] दाने पर जस लागत मौन,[21] चित्र लिखा सो रहो,[22] मन को सो गति करना,[23] घटा सौं बातें करई,[24] ठग मूरी खाई,[25] आंख में धूल झोंकना,[26] मत्तसिंह के पाछे कूकर भूकर भौंरे,[27] चंद पै धूरि उड़ावै,[28] नैन सिमिटि सब स्रवननि आये,[28] रहि गई इक टक ठाढ़ी,[29] बिन मोल की दासी,[30] छद्रू होत,[31] मूल उन्मूलकारी,[32] ध्यान को आंखिन देखो,[33]

१-वही, पं० ५८८ । २-रुक्मिणीमंगल, छन्द ६८ । ३-वही, छन्द १४ ।
४-रासपंचाध्यायी, अ० १, छन्द ७८ । ५-भ० गु०, श्यामसगाई, छन्द १ ।
६-वही, छन्द २१ । ७-वही, छन्द ७ । ८-वही, छन्द ६ । ९-वही, छं० २३।
१०-नाममाला दो० १३ । ११-वही, दो० ७३। १२-वही, दो० १३० ।
१३-वही, दोहा १४८ । १४-वही, दोहा १६० । १५-रूपमंजरी, पं० ८९।
१६-वही, पं० ११। १७-वही, पं० १५०। १८-विरहमंजरी, दो० २५ ।
१९-वही, दो० ३९ । २०-वही, दो० ५३ । २१-वही, दो० ११ ।
२२-रुक्मिणीमंगल, छन्द ३। २३-वही, छं० ७५ । २४-वही, छन्द ३५ ।
२५-वही, छन्द १६७ । २६-वही, छन्द ११९ । २७-वही, छन्द १२३।
२८-वही, छन्द १२९ । २८-रा[illegible]यी, अ० १, छं० ६६। २९-वही, छं०७५।
३०-वही, अ० ३, छं० २। ३१-वही, अ० ५, छं० १२। ३२-वही, अ० ५, छं० ३ ।
३३-भंवरगीत, छन्द ७ ।

कला का परिपोषण, रसमंजरी, रूपमंजरी और विरहमंजरी में हुआ जान पड़ता है । यहां सहृदयों को रससिक्त करने के अपने प्रयास में कवि को पर्याप्त सफलता मिला है । काव्यकला का जो रूप भाव, भाषा, छन्द, अलंकारादि के द्वारा इन ग्रन्थों में सामने आता है वह कवि को कला का आभास देने में पूर्ण समर्थ है । यह बात रूपमंजरी और विरहमंजरी के विषय में विशेष रूप से उल्लेखनीय है । रस मंजरी में यद्यपि कवि ने नायक नायिका भेद को अपना अभिव्यक्ति का विषय बनाया तथापि उसके समुचित अनुशीलन से यह बात ओझल नहीं हो पाती है कि उसमें रीतितत्व की अपेक्षा भक्त हृदय की भाव लहरियों को उठने का ही सर्वत्र अवसर मिला है । यहां मुक्तक एवं सुचारु शैली में भाव चित्रण को इस प्रकार मनोहर रूप में प्रस्तुत किया गया है कि पाठक या श्रोता बरबस ही विमुग्ध हो उठता है ।

१५८ इस प्रकार कवि का काव्यपक्ष उक्त तीनों मंजरी ग्रन्थों में परिपोषित होकर पल्लवित एवं पुष्पित होने योग्य हो जाता है और रुक्मिणीमंगल, रास-पंचाध्यायी तथा सिद्धान्त पंचाध्यायी में उसका पल्लवित एवं पुष्पित रूप ही हमें देखने को मिलता है । रुक्मिणीमंगल में उसके काव्यपक्ष का पल्लवित एवं पंचा-ध्यायी ग्रन्थों में पुष्पित रूप देखा जा सकता है । इनमें भाव तो उत्कर्ष को प्राप्त हुए ही हैं कल्पना भी स्वतंत्र रूप से अठखेलियां करती हुई दृष्टिगोचर होती है । यह कवि की कला की ही विशेषता है कि उसके आश्रय से कवि भागवत दशमस्कंध का आश्रय ग्रहण करने पर भी उक्त दोनों ग्रन्थों को नवीन काव्य के रूप में प्रस्तुत कर सका है, जिसमें भाषा शैली,-चारुता, मधुरता, सरलता, अलंकारिता, रमणीयता, प्रवाह और सुगेयता से सुशोभित है । अलंकारों का भरपूर प्रयोग होने पर भी उन्हें काव्य में बलात् स्थान देने की प्रवृत्ति कहीं नहीं दिखाई देती है, अपितु वे रूप, गुण, भाव, दृश्य, कार्य, व्यापारादि का चित्रण करते समय सहज को [illegible] हैं । इससे कवि की नैसर्गिक भावप्रवणता एवं सौन्दर्यप्रियता का भी [illegible] है । छन्द भी इन ग्रन्थों में "रोला" प्रयुक्त हुआ है जिसमें कवि की कला [illegible] होकर [illegible] अवसर हुई है । [illegible] इतना निर्वाचित हुआ है कि प्रत्येक कथन चित्र रूप में ही सम्मुख आता है ।

अध्याय ८

उपसंहार

उपसंहार

१ हिन्दी साहित्य के उद्भव के साथ चाहे धर्म, नीति, श्रृंगार, वीर आदि सब प्रकार की काव्य रचना का सूत्रपात हुआ हो किन्तु देश पर यवनों के आक्रमण का वज्रपात होते ही कवियों की वाणी यशगान के रूप में प्रमुखत: प्रकट होने लगी । वाणी के कलाकारों ने आरम्भ में तो [illegible] का वीरतापूर्वक सामना करने वाले राजाओं का यशगान किया किन्तु जब पूरा जोर लगाने पर भी विधर्मियों को निकाल बाहर करने में देश[illegible] को सफलता नहीं मिली और यवनों ने यहां साम्राज्य स्थापित कर लिया तो नैराश्य सागर में निमग्न हिन्दू समाज को सहारा देते हुये कवियों की वाणी भगवान के यश गान के रूप में प्रस्फुटित हुई। आरम्भ में भगवान के निर्गुण रूप की ओर ही कवियों का ध्यान गया किन्तु यह निर्गुण रूप डूबते हुये को केवल तिनके का सहारा सिद्ध हुआ और सगुण राम तथा कृष्ण का आश्रय ही उन्हें कठिन मझधार में बचाने में समर्थ सुदृढ़ नौका के रूप में प्रतीत हुआ। फलत: इन देवों के यशगान की धारा कवियों के हृदय सरोवर में उमड़ने लगी । एक ओर तुलसी ने भगवान श्रीराम के चरित्र गान द्वारा भगवद् भक्ति एवं लोक मंगल का पथ प्रशस्त किया, दूसरी ओर जीवन से निराश जनता को आश्रय प्रदान करने वाली भगवान [illegible] के यशगान की नौका को खेने का भार अष्टछाप के भक्त कवियों ने वहन किया। इनमें सूरदास तो अगुवा थे ही, नन्ददास भी अपने पद लालित्य और भाषा माधुर्य के सहारे किसी से पीछे न रहे ।

२ नन्ददास की भगवान के यशगान की उक्त नौका को यमुना के किनारे, ब्रजभूमि के बीर गोकुल ग्राम में ले गये जहां करोड़ों काम देवों को अपने रूप से लज्जित करने वाले मनमोहन [illegible] के साथ असंख्य ब्रज बालायें रासलीला का अनुपम आनन्द प्राप्त कर रही थीं । यहां, मुरली की मधुर तान के साथ [illegible] हृदय की सभी व्याधियों के लिए अमोघ औषधि के समान था जिसका अनुभव करते ही कवि के मुख से यह महत्वपूर्ण उक्ति [illegible]

ही निकल पड़ी कि कृष्ण का यशगान जिस वाणी या कविता में नहीं होता है वह व्यर्थ है और उसके श्रवण का कोई फल नहीं होता है।

जीवन और काव्य

३ वस्तुत: कृष्ण भक्ति का एकान्त आश्रय ग्रहण करने के उपरान्त आलोच्य कवि उसकी सरस और मधुर धारा में इस प्रकार निमग्न हो गया कि उसे अपनी सुधि ही न रही। उसे सर्वत्र कृष्ण का ही स्वरूप दिखाई पड़ा, उसे ऐसा भान हुआ कि कृष्ण के अतिरिक्त कुछ है ही नहीं। ऐसी स्थिति में कृष्ण के यशगान के अतिरिक्त कुछ भी लिखना कवि के लिये सम्भव न हो सका। यही कारण है कि वह अपनी कृतियों में अपने विषय में कोई सूचना नहीं दे पाया, इस सम्बन्ध में वह स्वयं अपवाद नहीं है। अपनी सुधि - बिसरा कर भक्तिरस में सराबोर, भक्तों के प्राय: सभी कवियों की यही मन: स्थिति है, क्या सूर, क्या तुलसी सभी अपने इष्ट के ध्यान में ऐसे मग्न रहे कि अपने विषय में लिखना ही भूल गये। नन्ददास इस ध्यानावस्था में एक स्तर ऊपर ही मिलते हैं, जहाँ अन्य कवियों को भगवान के सम्मुख दैन्य प्रदर्शन के समय कुछ तो अपनी सुधि रही है, वहीं अपनी कृतियों में नन्ददास अधिक स्वानुभूति विरत होकर सामने आते हैं। कवि कृतियों से इतर सामग्री भी जैसे उसकी ही प्रवृत्ति का अनुसरण करके उसके जीवन के विषय में कोई सूचना देने में मौन है। फिर भी यह सत्य है कि कवि की कृतियाँ ही उसके व्यक्तित्व का प्रतिबिम्ब होती हैं। अत: खोजने पर नन्ददास की कृतियों में ऐसे उल्लेख मिल जाते हैं जिनसे उसके जीवन पटल के स्वरूप का भान होता है।

४ स्मरणीय है कि कवि के हृदय में आरम्भ से ही भगवद् भक्ति के भाव विद्यमान थे जो आगे चलकर पुष्टि सम्प्रदाय के संसर्ग से कृष्ण भक्ति के सरोवर के रूप में विकसित हुए। जिस युग में नन्ददास का जन्म हुआ वह युग ही धार्मिक चेतना और भक्ति भावना का युग था जब ज्ञान और योग की भावना के ऊपर प्रेम लक्षणा भक्ति का ... हो रहा था। उस युग में भक्ति भाव ... का कुछ ऐसा प्रवाह बहा

कि मावना का कोई मी कोना उसके प्रवाह से सुरक्षित न रह पाया । फिर, कवि ही जो युग की मावना के प्रतिनिधि होते हैं, उस प्रमाव से अछूते कैसे रह सकते ? आलोच्य कवि मी उसमें अपवाद स्वरूप नहीं था । उसकी आरम्भिक पदावली में जहां कवित्व शक्ति का प्रमाण मिलता है वहीं मक्ति मावना का पुट मी दिखाई देता है और समय पाकर उसके द्वारा कवि कर्म की तो सार्थकता सिद्ध हुई ही, मक्ति का कलित क्षेत्र मी प्रेम मावना की धारा से आप्लावित होकर असंपृक्त न रह गया । फिर मी, नन्ददास जी को कृष्ण मक्ति के रमणीय क्षेत्र के दर्शन कराने का श्रेय गोस्वामी विट्ठलनाथ जी को ही है । गोस्वामी विट्ठलनाथ जी की शरण पाते ही नन्ददास जी समस्त लौकिक वस्तुओं एवं सम्बन्धों का परित्याग करके गुरू और श्रीकृष्ण की मक्ति में ही लीन रहने लगे । वल्लम सम्प्रदाय में प्रविष्ट होने के अनन्तर वल्लमाचार्य, विट्ठलनाथ और उनके पुत्र गिरिधर जी के प्रति अगाध निष्ठा का प्रादुर्माव तो कवि मानस में हुआ ही, सम्प्रदाय के आराध्य श्रीकृष्ण के स्वरूप की स्थापना मी उसके हृदय मन्दिर में हो गई । फलत: इस स्वरूप के सम्मुख श्रीकृष्ण का गुणगान करना ही कवि की जीवन चर्या का प्रधान अंग बन गया जो जीवन के अन्त काल तक रहा ।

५ भगवान के यशगान की धारा से सिंचित होकर ही कवि के हृदय का मक्तिलोक कलित काव्योद्यान के रूप में परिणत हुआ । काव्य के अन्तर्गत उसके नाम से जो अनेक रचनायें मिलती हैं उनकी प्रामाणिकता के निर्धारण पर तो इधर विचार किया गया किन्तु श्रीनाथ जी के सम्मुख कीर्तन गान के हेतु कविने जिन अनेक पदों की रचना की, उनका संकलन जैसा होना चाहिए वैसा नहीं हुआ है । नन्ददास के पदों के सम्पादन की दिशा में पं० उमाशंकर शुक्ल जी एवं बाबू ब्रजरत्नदास जी द्वारा जो स्तुत्य प्रयास हुआ है उसके अन्तर्गत उल्लेखनीय है कि शुक्ल जी के 'नन्ददास' नामक ग्रन्थ के परिशिष्ट में [illegible] के १८८ पदों को स्थान मिला और बाबू ब्रजरत्नदास जी की 'नन्ददास ग्रन्थावली' में कविके १९५ पदों का सम्पादन हुआ है। कहना न होगा कि यह कार्य [illegible] है क्योंकि इसके अतिरिक्त भी

पर्याप्त संख्या में कवि के नाम से पद मिलते हैं जो कीर्तन संग्रहों और जनश्रुतियों में बिखरे पड़े हैं। आवश्यकता इस बात की है कि नन्ददास की छाप वाले सभी पदों का संग्रह और परीक्षण करके सम्पादन किया जाय। इससे कवि के जीवन की कदाचित् अधिक झांकियां उपलब्ध हो सकेंगी।

६ साहित्यिक जगत में नन्ददास जी सामान्यतः अपने ग्रन्थों के द्वारा ही जाने जाते हैं। ग्रन्थों में भी रास पंचाध्यायी और [illegible] का जितना सम्मान है उतना अन्य किसी कृति का नहीं। इसमें सन्देह नहीं कि ये दो ग्रन्थ अनुभूति और अभिव्यक्ति दोनों दृष्टियों से कवि की श्रेष्ठ कृतियां हैं किन्तु अपने स्थान पर अन्य कृतियां भी कम महत्वपूर्ण नहीं है। अनेकार्थ भाषा कवि की आरम्भिक प्रवृत्तियों पर प्रकाश डालती है तथा श्याम सगाई एवं नाममाला तत्वतः उसके साम्प्रदायिक दृष्टिकोण को प्रकट करती हैं। अनेकार्थ भाषा में कवि की आरम्भिक भक्ति भावना को प्रश्रय मिला है तो श्याम सगाई और नाममाला में राधा भाव ही प्रमुख है। राधा को विरह मंजरी में भी स्मरण किया गया है, अनेक पद भी उनके यशगान में लिखे गये हैं। इस सम्बन्ध में यह दृष्टव्य है कि भागवत में राधा का कहीं भी उल्लेख नहीं मिलता है और आचार्य वल्लभ ने भी अपने ग्रन्थों में उसे स्थान नहीं दिया है किन्तु आगे चलकर [illegible] जी के समय में पुष्टि सम्प्रदाय में राधा का [illegible] चित्रण किया गया है। तदनुसार ही नन्ददास ने भी अपनी आरम्भिक कृतियों -------- श्याम सगाई, नाममाला और विरह मंजरी के साथ साथ पदावली में राधा का भरपूर चित्रण किया है किन्तु रास पंचाध्यायी, सिद्धान्त पंचाध्यायी और भंवर गीत में अवसर रहने पर भी वे राधा को स्थान नहीं दे पाये। इसका कारण यह है कि भागवत के आधार पर उक्त ग्रन्थों की रचना करते समय कवि ने उसमें राधा का उल्लेख नहीं पाया। भागवत पुष्टि मार्ग में प्रमाण ग्रन्थ माना जाता है। इसके साथ ही उपनिषद, ब्रह्मसूत्र और गीता भी [illegible] के रूप में इस मार्ग के प्रमाण ग्रन्थ हैं तथा इनमें से किसी में राधा का उल्लेख नहीं मिलता है। अतः प्रमाण ग्रन्थों से अनुमोदित न होने के कारण ही कवि द्वारा उक्त ग्रन्थों में राधा का चित्रण न किये जाने की [illegible] बात पड़ती है।

रसमंजरी, रूपमंजरी और विरह मंजरी में कवि ने प्रेम तत्व का निरूपण करते हुए सिद्धान्ततत्व की ओर संकेत किया है। रस मंजरी का विषय यद्यपि नायक-नायिका भेद है और उसकी रचना का आधार संस्कृत रसमंजरी है तथापि कवि ने प्रेम तत्व का उसके आरम्भ में ही उल्लेख करके ग्रन्थ के अन्तराल में स्थित प्रेम रस की ओर संकेत कर दिया है। यही प्रेम रस रूपमंजरी और विरहमंजरी के काव्य कलेवर का भी प्राण है। इन मंजरियों में से जिसको भी लें उसी में प्रेम रस उमड़ा हुआ मिलता है।

७ यहां रसमंजरी, रूपमंजरी और विरहमंजरी में आए हुए कवि के 'प्रेम तत्व' या 'तत्व' विषयक उल्लेख पर कुछ अधिक प्रकाश डालना कदाचित अनावश्यक न होगा। 'तत्व' का उल्लेख नाममाला में भी मिलता है :

नाम रूप गुन भेद के सोइ प्रगट सब ठौर,
वा बिन तत्व न और कछु कहै सु बड़ अति बौर (नं०ग्रं०,पृ०७६)

कवि का कुछ ऐसा ही कथन अनेकार्थ भाषा में भी मिलता है :

एकै वस्तु अनेक ह्वै जगमगात जग धाम,
जिमि कंचन तै किंकिनी कंकन कुंडल नाम।(नं०ग्रं०,पृ०४६)

प्रकट है कि अनेकार्थ भाषा में प्रयुक्त 'वस्तु' और नाममाला में प्रयुक्त 'तत्व' के प्रयोजन की दिशा एक ही--परमात्म तत्व की ओर है। अत: यहां तत्व के कहने से तात्पर्य परमात्म तत्व से है, यद्यपि अनेकार्थ भाषा में तत्व न कह कर 'वस्तु' का प्रयोग किया गया है।

रसमंजरी में वर्णित नायक-नायिका भेद प्रेम रस से भरा हुआ है :

'तु तौं सुनि लै रसमंजरी, जब बिच परम प्रेम रस भरी।
(नं० ग्रं०,पृ० १४५)

अत: इस वर्णन से परिचित होने पर यदि किसी वस्तु की प्राप्ति होगी तो वह प्रेम रस ही होगा। प्रेम रस पर अधिकार न होने से उस अधिकार क्षेत्र में स्थित वस्तु--'तत्व' का निकट होने पर भी उसी प्रकार आभास नहीं हो पाता है जैसे समीप होने पर मछली को कमल के रूप रंग का अनुभव नहीं हो पाता है अथवा

दृष्टिहीन को निकट ही स्थित बहुमूल्य नग के रूप - कान्ति जन्य दृश्य सुख का लाभ प्राप्त नहीं होता है। इसके विपरीत कमल के रस से परिचित भ्रमर को दूर होते हुए भी उसका रूप रस सहज प्राप्य होता है। अत: कहा जा सकता है कि प्रेम ही वह दृष्टि है जिसके द्वारा तत्व को पहचाना जा सकता है। इस प्रकार तत्व साध्य और प्रेम साधन के रूप में दृष्टिगत होता है। रसमंजरी में भी " वस्तु " के कथन से कविने परमात्म तत्व का ही बोध कराया है :

> हाव भाव हेलादिक जिते , रति समेत समभावहु तिते ।
> जब लग इनके भेद न जाने , तब लग प्रेम न तत्व पिछाने ।
> जाको जेह अधिकार न होई , निकटहि वस्तु दूरि है सोई ।
> निकटहि निरमोलिक नग जैसे , नैन हीन तिहि पावै कैसे ।
>
> (न०ग्र०, पृ० १४४)

इस प्रकार रसमंजरी में 'तत्व' और 'वस्तु' के समान प्रयोजन युक्त प्रयोग से कवि का आशय परमात्म तत्व से ही जान पड़ता है। इससे प्रेम रस से तत्व को जानने के कथन की संगति भी ठीक बैठ जाती है और वस्तु या तत्व के निकट होने की बात भी उसमें परमात्म तत्व के सर्वव्यापकत्व के भाव का आरोप मानने पर ही समझ में आती है।

रूप मंजरी में कवि ने जिस प्रेम पद्धति का वर्णन किया है उसको सुनने और मनन करने से रसवस्तु --- प्रेम रस की प्राप्ति होती है जिसके द्वारा तत्व का ज्ञान होता है। क्योंकि रूपमंजरी के उक्त वर्णन में भगवान का यश गान ही समाहित है। अत: उक्त प्रेम रस, भगवद् प्रेम रस ही होगा। इस प्रकार रूप मंजरी में "तत्व" के कथन से कवि का तात्पर्य भगवद् तत्व से ही है जिसको भगवदोन्मुख प्रेम द्वारा उसी प्रकार जाना जाता है जिस प्रकार रस को जानने वाला भ्रमर कमल को पहचान लेता है। अभिप्राय है कि भ्रमर की दृष्टि में कमल और कमल के रस में कोई भेद नहीं होता है, यदि यह कहा जाय कि भ्रमर के लिए कमल की अपेक्षा उसका रस ही महत्वपूर्ण है तो असंगत न होगा। इससे इतना तो सिद्ध होता ही है कि भक्त की दृष्टि में भगवद् प्रेम और भगवद् तत्व में कोई भेद नहीं होता है।

विरह मंजरी में नन्ददास ने स्पष्ट कहा है कि इसको प्रेम पूर्वक पढ़ने और मनन करने से 'सिद्धान्त तत्व' की प्राप्ति होती है । यहां सिद्धान्त तत्व से तात्पर्य 'पुष्टिमार्गी सिद्धान्त का सार' होना प्रतीत होता है । जैसा कि ऊपर कहा गया है, विरह मंजरी में भी प्रेम रस भरा हुआ है और कवि ने इसमें सर्वत्र ही भगवत्प्रेम की ओर संकेत किया है । अत: भगवत्प्रेम से प्राप्त होने वाला तत्व भगवद्तत्व ही होगा, कवि ने रूपमंजरी में कहा भी है कि कलियुग में भगवान को केवल प्रेम द्वारा ही प्राप्त किया जा सकता है । इससे विरह मंजरी में भी 'तत्व' के कथन द्वारा भगवद् तत्व की ओर ही संकेत किया जाना ज्ञात होता है ।

इस प्रकार उक्त ग्रन्थों में कवि परमात्म तत्व की ओर ही सतत तल्लीन जान पड़ता है । वस्तुत: रुक्मिणी मंगल, रास पंचाध्यायी, सिद्धान्त पंचाध्यायी और भंवरगीत में भागवत की सहायता से परमात्म तत्व के सामी-प्यानुभव के सुलभ होने का जो सुयोग कवि को प्राप्त हुवा वह अनेकार्थ भाषा, नाममाला, रसमंजरी, रूपमंजरी और विरह मंजरी में उल्लिखित भगवत्प्रेम एवं भगवत्व से परिचय के फलस्वरूप ही उपलब्ध हुवा । अत: इस दृष्टि से अनेकार्थ भाषा, नाममाला तथा मंजरी ग्रन्थों का महत्व कम नहीं है ।

८ कवि की अधिकांश कृतियां भागवत के आधार पर प्रणीत हुई हैं । रोला छन्द में लिखे गये ग्रन्थ और भंवरगीत की रचना के लिए तो वह बहुलांश में भागवत का ऋणी है ही, श्याम सगाई और नाममाला को छोड़कर अन्य कृतियों पर भी भागवत का प्रभाव परिलक्षित होता है । इनमें से रूपमंजरी और विरहमंजरी ऐसे ग्रन्थ हैं जिनमें ऊपर से देखने में भागवतानुसरण की यद्यपि कोई प्रतीति नहीं होती है तथापि इन ग्रन्थों के भी अनेक प्रसंगों का भागवत से भावात्म साम्य दृष्टव्य है :

(१) भागवत प्रथम स्कन्ध के पांचवें अध्याय (श्लोक १०,११) में कहा गया है कि रस भाव अलंकारादि से युक्त होने पर भी जिस वाणी से भगवान कृष्ण का बखान नहीं होता वह व्यर्थ है और दूषित शब्दों से युक्त असुन्दर रचना भी भगवान के सुयश सूचक नामों से युक्त होने से पापों का नाश करने वाली

होती है । नन्ददास जी ने रूपमंजरी ग्रन्थ में जैसे उक्त कथन का भावानुवाद किया है :

> तुव जस रस जिहि कवित न होई, भीति चित्र सम चित्र है सोई ।
> हरि जस रस जिहि कवित नाहि , सुने कवन फल ताहि ।
> सठ कठ पूतरि संग धुरि , सोये कौं मुख बाहि ।।
> (न० ग्रं० पृ० ११८)

(२) भागवत छठे स्कन्ध के चौथे अध्याय (श्लोक २६) में दक्ष प्रजापति भगवान की स्तुति करते हुए कहते हैं कि प्रभो आप शुद्ध हैं और शुद्ध हृदय मन्दिर ही आपका निवास स्थान है । नवें स्कन्ध के चौथे अध्याय (श्लोक ६८) में भगवान स्वयं भी दुर्वासा जी से कहते हैं कि मेरे प्रेमी भक्त तो मेरे हृदय हैं और उन प्रेमी भक्तों का हृदय मैं ही हूं । ग्यारहवें स्कन्ध के ग्यारहवें अध्याय (श्लोक ३५) में वे आगे कहते हैं कि मेरा परम भक्त निरन्तर मेरा ध्यान करता रहे । जो कुछ मिले वह मुझे समर्पित करदे और दास्य भाव से मुझे आत्म निवेदन करे । नन्ददास ने भी रूपमंजरी की भावना के भगवदोन्मुख होने पर इसी प्रकार का कथन दिया है :

> रूपमंजरी तिय कौं लियौ , गिरिधर अपनौ आलय कियौ ।
> इंदुमती तंह अति अनुरागी , वाही में प्रभु पूजन लागी ।
> जंह तंह जो कुछ उत्तम पावै , सो सब आनि कै ताहि चढ़ावै ।
> (न० ग्रं०, पृ० १३०-३१)

इन्दुमती भगवान को समर्पित होकर दास्य भाव से आत्म निवेदन करती है :

> अहो अहो गिरिधर परम उदारा, करताहू के तुम करतारा ।
> भवसागर तरिवे कहुं कहु तरि , पाइ हुती कहुं कहुं क्रम क्रम करि ।
> सो तरि कृति है मझिधारा, गिरिधर लाल लंघावहु पारा ।
> (न० ग्रं०,पृ० १२५)

(३) छठे स्कन्ध के नवें अध्याय (श्लोक ४८) में भगवान कहते हैं कि "मेरे प्रसन्न हो जाने पर कोई भी वस्तु दुर्लभ नहीं रह जाती है किन्तु मेरे अनन्य

प्रेमी मेरे अतिरिक्त और कुछ नहीं चाहते। नन्ददास भी रूपमंजरी ग्रन्थ में यही बात कहते हैं :

जौ अनुकूल होय करतारा, सपने सांच करत नहिं बारा ।

मृग तृष्णा हू पानी करै, मन के लड्डुन भूख पुनि हरै ।

(न० ग्र०, पृ० १२८)

और यह जानते हुए भी इन्दुमती या रूपमंजरी के हृदय में भगवान के अतिरिक्त और कोई चाह ही नहीं होती है।

(४) भागवत सप्तम स्कन्ध के नवें अध्याय (श्लोक ३८) में प्रह्लाद भगवान से कहते हैं कि 'आप मनुष्य, पशु-पक्षी, ऋषि देवता और मत्स्य आदि अवतार लेकर लोगों का पालन तथा विश्व के द्रोहियों का संहार करते हैं। इन अवतारों के द्वारा आप प्रत्येक युग में उसके धर्मों की रक्षा करते हैं। कलियुग में आप छिपकर गुप्त रूप से ही रहते हैं, इसलिये आपका नाम त्रियुग भी है। इसीलिए नन्ददास ने रूपमंजरी में कहा है :

तिहूं काल में प्रगट प्रभु, प्रगट न इहि कलिकाल ,

तातें सपनो ओट दै , भेंटे गिरिधर लाल ।।

(न० ग्र०, पृ० १४३)

इसी प्रकार गिरिधर गोपाल प्रियतम की प्रतिमा देखकर गुरुदेव के आदेशानुसार, उनकी हृदय में उनकी पूजा करने, सत्संग द्वारा भगवान के नैकट्य का अनुभव प्राप्त करने, भगवद्तत्व आदि के उल्लेख रूपमंजरी में भागवत के अनुसार ही हैं। इसके अतिरिक्त भागवत तृतीय स्कन्ध के सत्ताइसवें अध्याय (श्लोक २५) में भगवान ने कहा है कि 'जैसे सोये हुए पुरुष को स्वप्न में अनेक अनर्थों का अनुभव होता है किन्तु जाग पड़ने पर उसे उन स्वप्नों के अनुभवों से किसी प्रकार का मोह नहीं होता' कदाचित इसी कथन के अनुसार कवि ने विरहमंजरी में कहा है :

सुपने कोउ दुख पावत जैसे, जागि परें सुख पावत तैसे ।

(न० ग्र०, पृ० १७२)

साथ ही भागवत के उक्त अध्याय (श्लोक २१-२३) में भगवान ने जिन अनेक साधनों को पुरुष की प्रकृति (अविद्या) के दिन रात क्षीण होते हुए धीरे धीरे लीन होने का श्रेय दिया है उनमें से भगवद् कथा श्रवण द्वारा पुष्ट हुई तीव्र भक्ति और चित्त की प्रगाढ़ एकाग्रता भी है, ये दोनों बातें विरह मंजरी की गोपी में मिलती हैं।

इससे नन्ददास के काव्यमय जीवन पर भागवत का प्रमुख प्रभाव प्रकट होता है। अत: यद्यपि यह सत्य है कि कवि ने अपनी कृतियों में पुष्टिमार्ग की [illegible] का प्रतिपादन किया है तथापि यह भी तथ्य है कि पुष्टिमार्गी भक्ति के प्रकाशनार्थ उसने भागवत का भी स्वतन्त्र रूप से सहारा लिया है। वस्तुत: अनेकार्थ भाषा, श्याम सगाई और नाममाला में हरिभजन, हरिनाम स्मरण, राधा भाव, राधा - कृष्ण का युगल भाव आदि के रूप में साम्प्रदायिक भावना की प्राय: एकान्तत: व्यंजना हुई है। रसमंजरी, रूपमंजरी और विरह मंजरी में साम्प्रदायिक भक्ति भावना की अभिव्यक्ति तो हुई है, उनमें भागवत की भावनाओं को भी अपनाया गया है। रुक्मिणी मंगल, रास पंचाध्यायी, सिद्धान्त पन्चाध्यायी और भंवरगीत में, जिनकी रचना का आधार ही श्रीमद् भागवत है, पुष्टिमार्गी भक्ति के क्रमश: प्रकाशन के साथ साथ भागवत का प्रकृत अनुसरण परिलक्षित होता है। यहां यह कथनीय है कि कवि की वृत्ति प्राय: भागवत के उन्हीं अंशों में रमी है जिनका भगवान कृष्ण की प्रेममयी भक्ति से एकान्त सम्बन्ध प्रतीत होता है और ज्ञान, कर्म एवं योग विषयक प्रसंगों को उसने या तो छोड़ दिया है या उनके प्रति यथाशक्य विरोध प्रकट किया है। इसके अतिरिक्त अपने आराध्य प्रभु के महत्व अथवा शील का अंश कहीं भी विरोध [illegible] हुआ, कविवर ने बड़े संयम से काम लिया है और ऐसे अंशों को अपने काव्य की सीमा से विलग रखने की सफल चेष्टा की है।

भक्ति भावना

[illegible] हैं पहले भक्त हैं, फिर अन्य कुछ। उनका प्रत्येक भाव अथवा विचार घट कृष्ण की [illegible] भक्ति के श्याम रंग में रंगा हुआ है। उनकी प्रत्येक

कृति के अन्तराल में भक्ति कालिन्दा की कृष्ण धारा निरन्तर प्रवाहित होती हुई अवलोकित होती है जिसके सम्पर्क से अन्य दिशाओं से आने वाली ज्ञान, कर्म अथवा योग की धाराएं भी अपना स्वरूप बिसरा कर उसी में विलीन हो जाती हैं। कवि का चित सतत इसी कृष्ण धारा में अवगाहन करता हुआ दृष्टिगत होता है। उसकी दृष्टि में कृष्ण ही ईश्वर, नारायण, भगवान और परब्रह्म परमात्मा हैं, वे ही लोक हित एवं रंजनार्थ विविध रूपों में अवतार लेते हैं। विशुद्ध प्रेम ही उनकी प्राप्ति का सहज साधन है। जीव उनके सम्पर्क से संसार से छुटकारा पाकर आनंद को प्राप्त होता है। उनके द्वारा गोपियों के साथ आयोजित रास कोई साधारण नृत्य नहीं है, वह अलौकिक है और उसके श्रवण एवं मनन से भगवद् प्रेम की प्राप्ति होती है। कृष्ण की मुरली भी शब्द ब्रह्ममय है और सब मनोरथों को पूर्ण करने में समर्थ है। वृन्दावन गोलोक का प्रतीक है और इसी में कृष्ण अपनी विविध लीलाएं करते हैं। इस प्रकार के विचार कण ही कवि की उक्त भक्ति की प्रतिस्विनी धारा को संवलन करते हुए दृष्टिगोचर होते हैं। उसकी भक्ति का आधार प्रेम है और इसीलिए उसने इसे प्रेमभक्ति के नाम से अभिहित किया है। इसमें भी कवि ने परकीया प्रेम को प्रमुखता प्रदान की है। प्रेम, विरह द्वारा विशुद्ध होकर अनन्यता को प्राप्त होता है। अतः इस भक्ति के लिए विरहावस्था नितान्त आवश्यक है। जल से बिछुड़ी हुई मछली के समान भगवान के विरह में तड़पने की अवस्था आने पर ही चित्तवृत्तियां भगवान की ओर अशेष रूप में लग पाती हैं और तभी भक्त के अन्तस्तल से दीन वाणी का प्रकृत निःसरण होता है जिसको सुनकर भगवान कृपा करके भक्त को अपने सामीप्यानुभव का लाभ प्राप्त कराते हैं। प्रेमभक्ति की प्राप्ति के लिए भी भगवान के अनुग्रह की अपेक्षा रहती है। भक्त का चित्त यदि एक बार भी भगवान की ओर चला जाता है तो वे उसको अशेष आसक्ति को [illegible] करके अपने में लगा लेते हैं, फिर भक्त का हृदय उनके स्वरूप में इस प्रकार फैलता जाता है जिसप्रकार पंक में हाथी। भक्त इसप्रकार से भगवान को समर्पित होकर अनिर्वचनीय आनंद का अनुभव करता है। उसे सर्वत्र सब [illegible] में अपने इष्ट के स्वरूप का भान होने लगता है। इस भक्ति में सत्संग एवं गुरु कृपा का [illegible] स्थान है। गुरु की कृपा से ही भक्त का चित्त भगवान की ओर [illegible] होता है और भगवान के

स[illegible] का लाभ प्राप्त कराने में सत्संगतिका भी योग रहता है, इन्दुमती की रूपमंजरी के सत्संग से ही भगवद् स्वरूप का अनुभव होता है।

१० कवि ने प्रेम भक्ति के अन्तर्गत रूपमार्ग का भी निरूपण किया है। यथार्थत: रूप मार्ग अत्यन्त दुर्गम पथ है। इसपर चलना सबके लिए सहज नहीं है क्योंकि इसमें भगवदानुरक्ति के साथ साथ लौकासक्ति भी विद्यमान रहती है। अत: कौन जाने कब भक्ति भाव हाथ से छूट जाय और भक्त को काम वासना ही अपना अभीष्ट जान पड़े। इसीलिए इस पर चलने के लिए बड़े विवेक एवं धैर्य की आवश्यकता है, साथ ही चित्त को भगवान में लगाये रखने का निरन्तर प्रयास भी अपेक्षित है। कविर ने इस तथ्य को अपने सहज एवं [illegible] के रूप में प्रकट किया :

> जग में नाद अमृत मग जैसो , रूप अमीकर मारग तैसो ।
> गरल अमृत एकत करि राखि , भिन्न भिन्न के बिरलै चाखि ।
> छीर नीर निरवारि पिवि जो, हरि मग प्रभु पदई पावै सो ।
> दृष्टि अगोचर कमल जु होई , बास लोजि परि पैये सोई ।
>
> (न० पु०, पृ० ११८)

११ यही नहीं कवि ने रूपमार्ग के अनुसरण द्वारा भगवान के उस अगाध रूप का अनुभव किया जिसको वाणी द्वारा प्रकट नहीं किया जा सकता है क्योंकि रूप को केवल नयन ही जान सकते हैं और नैनों को सृष्टिकर्ता ने [illegible] नहीं दी है। वह रूप इतना अद्भुत है कि नयन उसको पूर्णत: ग्रहण भी नहीं कर पाते हैं: चातक के मुख में भी तो स्वाति नक्षत्र का सुन्दर जल नहीं समा पाता :

> कुंवरि की छवि किहि विधि कहिये, रूप बचन कै नाहिन लहिये ।
> रूप को रस जाने ये नैना , जिनहिं नाहिन विधि दीने बैना ।
> अस वह रूप अनूपम जैसो , नैननि गहयो गयो नहिं तैसो,
> ज्यों सुंदर घन स्वाति को माई , चातक संपुटी न समाई ।
>
> (न० पु०, पृ० १२८)

यथार्थत: भगवद् स्नेह सरोवर में गोते लगाते हुए कवि विविध प्रकार से भगवद् स्वरूप की अनुभूति प्राप्त करता है। वह कभी भगवान का नाम स्मरण करता है, कभी उनकी गुणों का श्रवण और कीर्तन करता है, कभी पाद सेवन, अर्चन एवं वन्दन का सहारा लेता है और कभी दीन वाणी में अपनी विनम्रता प्रकट करता है। रूप मंजरी में जो उसे उपपति रस के द्वारा भगवान के नैकट्य का अनुभव हुआ उसका श्रेय उसकी गहन एवं सृजनात्मक भक्ति भावना को है जिसके द्वारा उसे नवीन नवीन मार्गों से भगवान का सामीप्यानुभव सुलभ होता है। विरह मंजरी की भक्तिनी व्रजबाला के हृदय में जो संयोग में भी वियोग की तीव्र अनुभूति द्वारा स्नेह संवर्द्धन करके भगवान के संयोग सुख की स्थिति दिखाई गई है, वह भी कवि के भक्ति भाव की गहनता की परिचायक है।

१२ प्रेमी भक्त के रूप में नन्ददास जी की [illegible] के दर्शन तो उनके काव्य में [illegible] होते ही हैं, व्रज गोकुल यमुनातट आदि श्रीकृष्ण की लीला स्थलियों की ओर भी उनकी प्रमुख निष्ठा का परिचय मिलता है। कदाचित् यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि जहां एक ओर कवि उक्त विचार कणों के लिए वल्लभ सम्प्रदाय के दार्शनिक पक्ष का ऋणी है, वहीं दूसरी ओर उसकी उपर्युक्त प्रेम भक्ति की धारा इस सम्प्रदाय की प्रेम लक्षणा भक्ति का ही प्रतिपादन करती हुई दृष्टिगत होती है। वस्तुत: नन्ददास ने अपने काव्य में पुष्टिमार्गीय भक्ति का यथा[illegible] पूर्ण निरूपित रूप प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। इसमें कहीं भी उसका प्रेम विह्वल भक्त हृदय भाग भर को भी औझल नहीं होने पाया है।

काव्य-कला

१३ यह कहना असंगत नहीं होगा कि न[illegible] की कृतियों में प्रेम भक्ति की धारा को [illegible] रूप में सतत प्रवहमान रखने का श्रेय उसकी उत्कृष्ट काव्य कला को है। जिस प्रकार रूप मंजरी, विरह मंजरी, रुक्मिणी मंगल, रास पंचाध्यायी, सिद्धान्त पंचाध्यायी और भंवरगीत में कवि की भक्ति का चरम उद्रेक [illegible] होता है उसी प्रकार इन ग्रन्थों में उसकी कला की चरम अभिव्य[illegible] भी [illegible] होती है, इनमें से भी अन्तिम चार ग्रन्थ कला की दृष्टि से विशेष

उल्लेखनीय हैं। यों तो कवि की प्राय: सभी कृतियों में भावपक्ष और विचार तत्व के समन्वित रूप के साथ साथ मनोरम अभिव्यक्ति के दर्शन होते हैं, फिर भी रुक्मिणी मंगल, रासपंचाध्यायी, सिद्धान्तपंचाध्यायी और भंवरगीत में कवि की कला का अनुपम रूप देखने को मिलता है। इनमें रोला और रोला दोहा वाले मिश्रित छन्द में कवि की कला को मुखरित होने का यथेष्ट अवसर मिला है। यहां, भाव लहरियां अपने रम्य रूप में सहृदयों को आकर्षित करने में पूर्ण समर्थ हैं।

१४ नन्ददास की रास पंचाध्यायी और भंवरगीत की कविता में अद्भुत चमत्कार है जो शताब्दियों से सहृदय पाठकों को अपनी शब्द माधुरी तथा भाव गाम्भीर्य से बलात् आकृष्ट करता आ रहा है। इनके उपरान्त भी रास कथा लिखी गई तथा भ्रमरगीतों का प्रणयन हुआ किन्तु उनसे इस आकर्षण में किसी प्रकार की न्यूनता नहीं आने पाई है। आरम्भिक कृतियों को छोड़कर काव्य कला की दृष्टि से कवि के अन्य ग्रन्थों का भी महत्व कम नहीं है। वस्तुत: नन्ददास की तनिक तनिक सी कृतियां रस तथा माधुर्य की अगाध स्त्रोत हैं। उनमें हृदय एवं कला पक्ष दोनों का यथावसर अपूर्व सम्मिश्रण दृष्टिगत होता है। यहां वृन्दावन तथा निर्भयपुर का वर्णन जितना कलात्मक है उतना ही स्वाभाविक तथा मनोरम है गोपियों की प्रेम दशा का चित्रण। कविने रास का जो चित्रण किया है वह वर्णन की यथार्थता के कारण पाठकों के सम्मुख झूलने लगता है। द्वारकापुरी के वर्णन-प्रसंग में झरोखों से निकलने वाले अगरु धूम को देखकर श्याम मेघ की भावना से वलभी - निवासी मत्त मयूरों का उल्लेख कुछ कम मनोहर नहीं प्रतीत होता है, इतना ही स्वाभाविक है कृष्ण चन्द्र के आगमन की प्रतीक्षा करती हुई झरोखों से झांकने वाली रमणी रुक्मिणी की भावदशा का ललाम वर्णन।

नन्ददास द्वारा चित्रित गोपी कृष्ण प्रेम की रस लहरियों से तो भावुकों के कर्ण कुहरों में अमृत रस बरसने लगता है और वे कलुष संकुल जगत से ऊपर उठकर आनन्दमय दिव्य लोक में जा विराजते हैं। भाषा, भाव, रस, अलंकार आदि किसी भी दृष्टि से नन्ददास की कविता का अनुशीलन किया जाय, उनकी मनोरम - व्यंजना पद पद पर प्रकाशित होती है।

१५ यदि देखा जाय तो नन्ददास जी का काव्य उस मनोरम चित्र के समान है जिसके अल्प कलेवर में समग्र अंगों का विन्यास बड़ी सूक्ष्मता के साथ किया रहता है । उनकी दृष्टि काव्य के बाह्य सज्जा पर ही नहीं जमी प्रत्युत उन्होंने काव्य के अन्तराल को परखा है और रस पेशल कविता के मर्म को पहचाना है । उनके काव्य में अप्रस्तुत का विधान तथा अलंकारों का समावेश, अनुभूतियों में तीव्रता लाने के लिए तथा उन्हें सरलता पूर्वक पाठक के हृदय तक पहुंचा देने के निमित्त कवि की वाणी के अन्तरंग मधुमय कोमल साधनों के अन्यतम रूप में स्वत: ही हुआ है । कवि के काव्य में आये हुये अलंकारों में वह सुषमा झलकती है जो अभीष्ट अर्थ को मनोरम रूप में संवहन करने की क्षमता रखती है । यहां अलंकारों की रानी उपमा देवी का नितान्त भव्य, मनोहर तथा हृदयावर्जक रूप मिलता है और आनन्द से सिक्त हृदय कवि की वाणी उपमा के द्वारा विभूषित होने में कोमल उल्लास तथा मधुमय आनन्द का बोध करती है ।

१६ नन्ददास के काव्य की भाषा प्रौढ़, सरस, [illegible]पूर्ण, संगीतमयी और श्रुतिमधुर है । वह माधुर्य एवं प्रसाद गुणों से युक्त है और [illegible], कोमलता ध्वन्यात्मकता, कहावतों, मुहावरों आदि से [illegible] होकर कविता कामिनी के कलित कलेवर को सुशोभित करती हुई दृष्टिगत होती है । [illegible] उसमें रूप, दृश्य, भाव एवं नाद चित्रण की अपूर्व क्षमता है । नन्ददास जी स्वयं भाषा कोष के धनी थे । विपुल शब्द भण्डार पर अधिकार होने के साथ साथ वे साहित्य शास्त्र के भी पण्डित थे । शब्दावली की भंगिमा के अनुसार चयन करने में उन्हें पूर्ण सफलता मिली है । उपयुक्त शब्दों को चुन चुनकर कलात्मक ढंग से काव्य में यथास्थान रखने में वे नितान्त पटु थे । उनकी रास पंचाध्यायी तो अपनी श्रुति मधुर भाषा शैली एवं कोमल कान्त पदावली के कारण हिन्दी की गीत गोविन्द भी कही जाती है ।

१७ [illegible] है कि कवि ने अपनी काव्य [illegible] के निमित्त न्यूनाधिक रूप में सूत्र मात्र ही आधार ग्रन्थों से ग्रहण किये हैं और उनको वर्तमान रूप प्रदान करने का श्रेय उसकी वस्तु [illegible], [illegible] कथात्मकता, भाव प्रवणता, [illegible] एवं औरों [illegible] है मुख्य मौलिक प्रवृत्ति को है जिसके कारण उसका काव्य [illegible] में प्राची दिशा की प्रात: कालीन अभिनव छटा की भांति लावण्यमय

होकर नूतन रूप में सम्मुख आता है । रूपमंजरी और विरह मंजरी तो उसकी मौलिक प्रवृत्ति की सर्वाधिक साक्षी हैं । इनमें आई हुई [illegible] अधिकांशत: कवि की अपनी और [illegible] नवीन रूप से संयोजित है जो कल्पना कमनीयता की अभिराम उदाहरण तो है ही, हिन्दी काव्य में प्राय: नई वस्तु भी है ।

१८ अपनी अधिकांश कृतियों में कवि ने गम्भीर तथा सूक्ष्म भावों को मनोरम [illegible] के द्वारा अभिव्यक्त करने में अद्भुत सामर्थ्य का परिचय दिया है । उसके चुने हुए ग्रन्थों में प्रसादमयी भावना और अद्भुत प्रतिभा विलास के साथ साथ सरस हृदयावर्जक कोमल कान्त पदावली एवं भाषा माधुर्य देखने को मिलता है जो अन्य कवियों की तो बात ही क्या, सूर और तुलसी के काव्य के भी कदाचित कुछ ही स्थानों में मिले । नन्ददास की इस प्रकार की विशेषता वस्तुत: उसकी अन्त:प्रेरणा तथा प्रकृष्ट प्रतिभा का मधुमय फल है । उनकी कविता भाव संपृक्ता है, आनन्द का वास्तविक स्रोत है, भगवदानुभूति रूप रत्नों की मनोरम पेटिका है और है कमनीय कल्पना की ऊँची उड़ान । उनके चुने हुए ग्रन्थ ब्रज भाषा साहित्य के शृंगार हैं, उनमें इतनी माधुरी है कि पाठकों का हृदय उनकी ओर बलात् आकृष्ट हो जाता है । अपनी शब्द माधुरी तथा भाव माधुरी के कारण नन्ददास के काव्य में भाव प्रवण भक्तों तथा रसिकों को समभावेन उत्साह, स्फूर्ति तथा प्रेरणा प्रदान करने की [illegible] क्षमता है । शब्द एवं भाव माधुर्य के लिए रास पंचाध्यायी और भंवरगीत का पठन पर्याप्त होगा । इनमें अनूठी उक्ति युक्त कमनीय रचना चातुरी, प्रतिभा के साथ पाण्डित्य का सुन्दर मेल और मंजुल भावना का भव्य समावेश हुआ है जिससे कवि के तर्क एवं भाव पूर्ण मानस का सहज परिचय मिलता है ।

१९ वस्तुत: नन्ददास का काव्य बाहर भीतर एक ही रस से ओत प्रोत है और वह है भगवद् प्रेम रस । इसमें जहां देखें, आनन्दकन्द व्रजचन्द के यश का ललाम वर्णन ही अलौकिक होता है । अनुभूति के पक्ष में नन्ददास के काव्य की सबसे बड़ी विशेषता है अलौकिक प्रेम की एकान्त एवं अनन्य भावना और अभिव्यक्ति के पक्ष में कवि अपनी कुशलित एवं कलात्मक शब्द चयन, दृश्य चित्रण, कोमल कान्त पदावली तथा भाषा माधुर्य के द्वारा " और कवि गढ़िया नन्ददास जड़िया" वाली उक्ति को [illegible] करता हुआ दृष्टिगत होता है ।

२० इस प्रकार भाव और भाषा का जो समन्वयात्मक उत्कर्ष नन्ददास के उक्त काव्य में मिलता है वह मध्य कालीन भक्ति काव्य का ही नहीं, सम्पूर्ण हिन्दी साहित्य का अमुल्य रत्न है जिसकी लावण्य-मय द्युति सम्पूर्ण काव्य व्योम को प्रखर तारे की नाई ज्योतित करने में योग देती हुई दृष्टिगत होती है ।

परिशिष्ट:

सहायक ग्रन्थ सूची

सहायक ग्रन्थ सूची

प्रस्तुत अध्ययन में जिन ग्रन्थों से प्रमुखत: सहायता ली गई है उनकी सूची निम्न प्रकार है :

१- अणु भाष्य, भाग १ तथा २, बनारस संस्कृत सिरीज, प्रकाशक: ब्रज वासी दास एण्ड कम्पनी, बनारस, संस्करण सन् १९०७ ई० ।

२ अनेकार्थ समुच्चय, शाश्वत कृत (संस्कृत), शाश्वत कोष, सम्पादक: श्रीकृष्ण जी ओक, आरियन्टल बुक्स सप्लाइंग ऐजेन्सी पूना, सन् १९१८ ई० ।

३ अमर कोष : नवल किशोर प्रेस, लखनऊ, सन् १८८४ ई० ।

४ अलंकार मंजूषा, लेखक लाला भगवान दीन, प्रकाशक: राम नारायण लाल पुस्तक विक्रेता, इलाहाबाद, संवत् २००८ वि० संस्करण ।

५ अष्टछाप (वार्तासंगृह), संपादक डा० धीरेन्द्र वर्मा, राम [illegible] लाल प्रकाशक तथा पुस्तक विक्रेता, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण ।

६ अष्टछाप (प्राचीन वार्ता रहस्य, द्वितीय भाग), विद्या विभाग कांकरौली, संवत् २००९ वि० संस्करण ।

७ अष्ट छाप और वल्लभ सम्प्रदाय, लेखक डा० दीनदयाल गुप्त जी, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, संवत् २००४ वि०

८ अष्टछाप परिचय, लेखक: प्रभु दयाल मीतल, अग्रवाल प्रेस मथुरा, संवत् २००६ वि० संस्करण ।

९ अष्ट सखान की वार्ता : हरिराय जी ।

१० इस्त्वार द [illegible] ऐंदुई ए ऐंदुस्तानी: गार्सां द तासी, संशोधित एवं परिवर्धित संस्करण, [illegible] लाबीत, पैरिस, सन् १८७०-७१ ई० ।

११ उज्ज्वल नीलमणि: रूप गोस्वामी, निर्णय सागर प्रेस, बम्बई, संवत् १९३२ वि० ।

१२ कांकरौली का इतिहास : [illegible] शास्त्री, विद्याविभाग कांकरौली, संवत् १९९६ ।

१३ काव्य प्रकाश [illegible] अनुवादक हरिमंगल मिश्र, साहित्य [illegible] प्रयाग,

१५ काव्य शास्त्र: भागीरथ मिश्र, विश्वविद्यालय प्रकाशन गोरखपुर, सन् १९५७ ई० ।

१६ कृष्ण काव्य में भंवरगीत: डा० श्याम सुन्दर लाल दीक्षित, विनोद पुस्तक मन्दिर आगरा, सन् १९५८ ई० ।

१७ खोज रिपोर्ट : (नागरी प्रचारिणी सभा काशी) ।

१८ गोवर्धन नाथ जी के प्राकट्य की वार्ता, प्रकाशक: नवल किशोर प्रेस लखनऊ, सन् १८८४ ई० ।

१९ गोस्वामी तुलसीदास: डा० रामदत्त भारद्वाज, भारतीय साहित्य मन्दिर, फव्वारा, दिल्ली, १९६२ ई० ।

२० चैतन्य [illegible]: कृष्ण दास कविराज गोस्वामी ।

२१ चैतन्य मत और ब्रज साहित्य: प्रभुदयाल मीतल, अग्रवाल प्रेस, मथुरा, सं० २०१९ वि०

२२ छन्द: प्रभाकर: जगन्नाथप्रसाद भानु, जगन्नाथ प्रिंटिंग प्रेस, बिलासपुर, दसवां संस्करण

२३ जायसी ग्रन्थावली, सम्पादक: मन मोहन गौतम, रीगल डिपो नई सड़क, दिल्ली, संवत् २०१६ ई० ।

२४ तत्वदीप निबन्ध (शास्त्रार्थ प्रकरण, फल प्रकरण और भागवतार्थ प्रकरण), लेखक : वल्लभाचार्य, सम्पादक: नन्द किशोर रमेश भट्ट, प्रकाशक - निर्णय सागर प्रेस, बम्बई ।

२५ तत्वार्थ दीप (शास्त्रार्थ तथा सर्व निर्णय प्रकरण), प्रकाशक: रत्न गोपाल भट्ट, बनारस ।

२६ तुलसी की जीवन भूमि: श्री चन्द्रबली पाण्डे, ना०प्र० सभा, काशी, संवत् २०११ वि०

२७ तुलसी चर्चा: रामदत्त भारद्वाज तथा मधुव्रत शर्मा, लक्ष्मी प्रेस कासगंज, सं० २००५ वि०

२८ तुलसीदास डा० माता प्रसाद गुप्त, हिन्दी परिषद, प्रयाग विश्वविद्यालय, सन् १९५३ ई० संस्करण ।

२९ तुलसीदास और उनकी कविता: राम नरेश त्रिपाठी, हिन्दी मन्दिर, प्रयाग, सन् १९३७ ई० ।

३० दो सौ बावन [illegible] की वार्ता : (रणछोड़ पुस्तकालय) डाकोर, सं० १९६० वि०

३१ दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता, हरिराय जी प्रणीत, तृतीय खण्ड, सम्पादक:

३२ नन्ददास (दो भाग): पं० श्री उमाशंकर शुक्ल, प्रयाग विश्वविद्यालय, सन् १९४२ ई० ।

३३ नन्ददास ग्रन्थावली, सम्पादक, बाबू ब्रज रत्न दास, ना० प्र० सभा, काशी, संवत् २००६ ।

३४ नन्ददास: एक अध्ययन: डा० राम रतन भटनागर, किताब महल, इलाहाबाद, सन् १९५५ ई० ।

३५ नारद भक्ति सूत्र, प्रकाशक: गीता प्रेस, गोरखपुर ।

३६ निजवार्ता, घरू वार्ता, तथा चौरासी बैठकन के चरित्र, प्रकाशक लल्लू भाई छगन लाल देसाई, अहमदाबाद, संवत् १९९० वि० ।

३७ [illegible] (द्वितीय भाग) सम्पादक: धीरेन्द्र वर्मा, प्रयाग विश्वविद्यालय सन् १९३१ ई० ।

३८ पुष्टिमार्गीयोपदेशिका, लेखक: चिमन लाल हरिशंकर, अनुवादक तथा प्रकाशक: माधव शर्मा काशी ।

३९ ब्रजभाषा साहित्य में नायिका निरूपण: प्रभुदयाल मीतल, अग्रवाल प्रेस मथुरा, संवत् २००१ वि० संस्करण ।

४० ब्रजभाषा साहित्य का नायिका भेद: प्रभु दयाल मीतल, अग्रवाल प्रेस, मथुरा, संवत् २००५ वि० संस्करण ।

४१ ब्रज माधुरी सार, सम्पादक: वियोगी हरि, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, संवत् २००८ वि० संस्करण ।

४२ भक्तमाल, नाभा दास कृत, प्रियादास की टीका तथा सीताराम शरण भगवान प्रसाद रूपकला विरचित भक्तिसुधा स्वाद तिलक सहित, नवल किशोर प्रेस, लखनऊ, संवत् १९२६ वि० ।

४३ भक्त नामावलि: टीकाकार भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ।

४४ भक्ति रसामृत सिन्धु, लेखक श्री रूप गोस्वामी, प्रकाशक: अच्युत ग्रन्थमाला काशी ।

४५ भंवरगीत (नन्ददास कृत), सम्पादक: प्रेम नारायण टण्डन, हिन्दी साहित्य भण्डार, गंगा प्रसाद रोड लखनऊ, सन् १९६० ई० संस्करण ।

४६ भारतीय साधना और सूर साहित्य: डा० मुन्शीराम शर्मा, प्रकाशक: साधना सदन कानपुर, संवत् २०१० वि० संस्करण ।

४७ भ्रमरगीत (नन्ददास कृत): सम्पादक विश्वम्भर नाथ मेहरोत्रा, राम नारायण लाल, पुस्तक विक्रेता, इलाहाबाद, सन् १९५९ ई० संस्करण ।

४८ भ्रमर गीत सार, सम्पादक: आचार्य राम चन्द्र शुक्ल, साहित्य सेवा सदन काशी, संवत् १९८३ वि० संस्करण ।

४९ मौडर्न वर्नाक्यूलर लिटरेचर, आव हिन्दोस्तान: डा० ग्रियर्सन, सं० १९४६ वि० ।

५० मिश्रबन्धु विनोद: मिश्र बन्धु, प्रकाशक: गंगा पुस्तक माला कार्यालय लखनऊ, संवत् १९९४ वि० ।

५१ मूल गोसाईं चरित, वेणीमाधव दास कृत, प्रकाशक: गीता प्रेस गोरखपुर ।

५२ युगल सर्वस्व: भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, प्रकाशक खड्ग विलास प्रेस, बांकीपुर ।

५३ रत्नावली, लेखक और सम्पादक, राम दत्त भारद्वाज, देवसुकवि सुधा [illegible] कवि कुटीर, लखनऊ, संवत् १९९८ वि० संस्करण ।

५४ रसमंजरी : भानुदत्त मिश्र, [illegible] निबन्ध, भवनम् वाराणसी, सं० २००८ वि० ।

५५ राधा वल्लभ सम्प्रदाय: सिद्धान्त और साहित्य, लेखक डा० विजयेन्द्र स्नातक, हिन्दी अनुसन्धान परिषद दिल्ली विश्वविद्यालय, संवत् २०१४ वि० ।

५६ राम चरित मानस, तुलसीदास, प्रकाशक: गीता प्रेस, गोरखपुर ।

५७ रास [illegible]ाध्यायी, सम्पादक प्रेम नारायण टंडन, हिन्दी साहित्य भण्डार, अमीनाबाद, लखनऊ, सन् १९६० ई० ।

५८ रास पंचाध्यायी और भंवरगीत, सम्पादक : राधा कृष्णदास, ना० प्र० सभा, काशी, सन् १९०२ ई० ।

५९ वल्लभ पुष्टि प्रकाश, रघुनाथ जी शिवजी द्वारा संगृहीत, लक्ष्मी वेंकटेश्वर प्रेस,

६० वल्लभाचार्य और उनके सिद्धान्त: व्रजनाथ भट्ट, वैल्लभाटीग विद्यासमिति बम्बई, सन् १९३७ ई० ।

६१ वार्ता साहित्य : डा० हरीहर नाथ टंडन, भारत प्रकाशन मन्दिर, अलीगढ़, सन् १९६० ई० ।

६२ विचारधारा: धीरेन्द्र वर्मा, साहित्य भवन प्रयाग, संवत् २००५ वि० ।

६३ वैष्णाविज्म शैविज्म: राम कृष्ण गोपाल भण्डारकर, भण्डारकर ओरियन्टल रिसर्च इन्स्टिट्यूट, पूना, संस्करण, सन् १९२८ ई० ।

६४ शाण्डिल्य भक्ति सूत्र व्याख्या भक्ति [illegible], सम्पादक: पं० गोपी नाथ मुद्रक: जय कृष्ण दास गुप्त, विद्या विलास प्रेस, बनारस ।

६५ श्री मद् भगवद् गीता: गीता प्रेस, गोरखपुर ।

६६ श्री मद् भागवत: गीता प्रेस, गोरखपुर ।

६७ शिवसिंह सरोज: शिवसिंह सेंगर, नवल किशोर प्रेस, लखनऊ । संवत् १९७० वि० ।

६८ शुद्धाद्वैत दर्शन: भट्ट रमानाथ शर्मा बड़ा मन्दिर भोई वाड़ा बम्बई ।

६९ षोडश ग्रन्थ (अन्त: करण प्रबोध, कृष्णाश्रय, चतु:श्लोकी, जलभेद, निरोध लक्षण, पंच पद्य, पुष्टि प्रवाह मर्यादा, बालबोध, भक्तिवर्द्धिनी, यमुनाष्टक, वल्लभाष्टक, विवेक धैर्याश्रय, सन्यास निर्णय, सिद्धान्त मुक्तावली, सिद्धान्त रहस्य और सेवाफल), लेखक: वल्लभाचार्य, सम्पादक: भट्ट रामनाथ शर्मा, निर्णय सागर प्रेस बम्बई, संस्करण संवत् १९७९ वि० ।

७० संस्कृत साहित्य का इतिहास; बलदेव उपाध्याय, हिन्दू विश्वविद्यालय काशी, सन् १९५३ ई० ।

७१ स [illegible] कल्पद्रुम, लेखक : वि[illegible]नाथ भट्ट, लक्ष्मी वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई ।

७२ सम्प्रदाय प्रदीप, लेखक : गदाधर प्रसाद, विद्या विभाग, कांकरोली।

७३ [illegible] लहरी (सूरदास कृत) ।

७४ [illegible]: श्याम सुन्दर दास, इण्डियन प्रेस, प्रयाग, संवत् १९९४ ।

७५ सुबोधिनी, लेखक: [illegible] जी ।